आरोग्यका अमूल्य साधन
शिवाम्बु—स्वमूत्र

लेखक
रावजीभाई मणिभाई पटेल

भारत सेवक समाज प्रकाशन

HOW URINE WORKS ?

Urine, on being taken into the body, is filtered; it becomes purer and purer even in the course of one day's living upon it, plus tap-water, if required. First, it cleanses, then frees from obstruction and finally rebuilds the vital organs and passages after they have been wasted by the ravages of disease. In fact it rebuilds not only the lungs, pancreas, liver, brain, heart etc., but also repairs the linings of brain and bowel and other linings, as has been demonstrated in the case of many "killing" diseases, such as consumption of the intestines and the worst form of colitis. In fine, it accomplishes what fasting merely on water or fruit juices (as some naturopaths advocate) can never achieve.

—**John W. Armstrong**

[नोट :- भावार्थके लिए देखें पृ० ३७ का पैरा ३]



स्व. रावजीभाई म. पटेल

जन्म २३-६-१८८८ अवसान २०-१-१९६२

आरोग्यका अमूल्य साधन
शिवाम्बु—स्वमूत्र

लेखक
रावजीभाई मणिभाई पटेल

अनुवादक और संपादक
हंसराज 'हंस'

वक्तव्य
मोरारजीभाई देसाई

प्रस्तावना
काका कालेलकर

भारत सेवक समाज प्रकाशन

प्रकाशक

भारत सेवक समाज, गुजरातकी ओरसे
पन्नालाल बालाभाई झवेरी
पानकोर नाका, अहमदाबाद

मुद्रक

जितेन्द्र ठा० देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – ३८००१४

प्रथम संस्करण मई, १९६१
दसवाँ संस्करण, प्रति ५००० : नवम्बर १९८३
कुल प्रतियाँ ५४,०००

सलाह केन्द्र

C/o संयुक्त सदाचार समिति
लाल दरवाजा, अहमदाबाद – १
समय : ४ से ६ शामको

फोन : २८२५९५
कोचरब आश्रम, पालड़ी, अहमदाबाद – ७
समय : ८ से ९ – ३० सुबह

मूल्य बारह रुपये
RS. 15-00

समर्पण

दरिद्र और पीड़ित जनताको रोग-निवारणार्थ
श्रद्धापूर्वक स्वमूत्रका उपयोग करनेकी
आशा सहित

प्रकाशकीय

स्व. श्री रावजीभाई मणिभाई पटेलकी मूत्रचिकित्सा सम्बन्धी क्रान्तिकारी पुस्तक 'मानवमूत्रं' के हिन्दी अनुवादका नौवाँ संस्करण प्रकाशित करते हुए बहुत आनंद होता है। दो वर्षमें ही आठवें संस्करणकी ७ हजार प्रतियाँ बिक जानेसे उसकी लोकप्रियता एवं उपयोगिता सिद्ध होती है। हिन्दी संस्करणके अतिरिक्त गुजराती तथा अंग्रेजी पुस्तकें भी अच्छी संख्यामें बिकी हैं। कन्नड़ भाषामें तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ है। तामिल, मराठी, उर्दू, बंगाली अनुवादोंके लिए भी माँग आती है। इससे यह फलित होता है कि यह पुस्तक अतीव उपयोगी साबित हुई है। किसी भी प्रकारके प्रचार या विज्ञापनके बिना किसी गंभीर विषयकी पुस्तकका जनताने इतना स्वागत एवं आदर किया हो ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

फिर इस चिकित्साकी जानकारी एवं मार्गदर्शन प्राप्त करनेके लिए स्वमूत्रचिकित्सा सलाहकेन्द्रमें विविध रोगोंसे पीड़ित रोगियोंके प्रतिमास २०० से २५० पत्र आते हैं। सभीको अपेक्षित जानकारी एवं मार्गदर्शन दिया जाता है और उन्हें सूचित किया जाता है कि वे एक मासके मूत्रप्रयोगका परिणाम अवश्य लिख भेजें। साधारण, गंभीर, दुःसाध्य एवं असाध्य रोगोंमें अधूरा-पूरा लाभ उठानेवाले बीसियों रोगियोंके विवरण मिलते रहते हैं। यह एक उल्लेखनीय बात है कि अधिकांश रोगी प्रचलित उपचारोंसे निराश एवं ऊब कर मूत्रचिकित्साको अपनाते हैं। उन विवरणोंको 'सदाचार निर्माण' मासिकके स्वमूत्रचिकित्सा विभागमें प्रकाशित किया जाता है।

बहुतसे रोगी सलाहकेन्द्रमें आकर मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं और तदनुसार मूत्रप्रयोग करके अपनी बीमारीको मिटा कर स्वस्थ होते हैं। हजारों रोगियोंने यह अनुभव किया है कि अपने घरमें रह कर इस अमूल्य चिकित्सासे नीरोग एवं स्वस्थ बना जा सकता है।

यहाँ यह बताना उचित एवं आवश्यक लगता है कि एलोपैथिक, आयुर्वेदिक आदि उपचारोंसे रोगमुक्त नहीं होनेवाले लोग इस सरल एवं अमूल्य चिकित्सासे नीरोग एवं स्वस्थ हुए हैं, जिससे इस चिकित्साकी रोग-निवारण क्षमता सिद्ध होती है।

हमारी सबसे विनय है कि पूर्वग्रह एवं पक्षपातको छोड़कर श्रद्धा एवं निष्ठासे मूत्रप्रयोग करके इसकी परीक्षा करें और अपने अनुभवको जनताके सामने रखें।

इस उपचारकी विशेषता यह है कि यह दोषजनक एवं हानिकर नहीं है, भले किसीको पूरा लाभ या फायदा न हो।

हम आशा और कामना करते हैं कि लोग विधिपूर्वक मूत्रप्रयोग करके स्वस्थ, सशक्त एवं दीर्घजीवी बनें।

अहमदाबाद
१०–२–'७८

पन्नालाल झवेरी
अध्यक्ष
भारत सेवक समाज,
गुजरात

वक्तव्य

बड़ी उमरमें और अस्वस्थ दशामें रावजीभाईने मूत्रचिकित्साका नया प्रयोग खुद आज़माया और लाभ उठाया। लोकहितके लिए इतनी शक्ति और हिम्मतसे इस प्रयोगका प्रचार किया और अनुभव जुटाया कि जिसे देखकर नौजवानका सिर भी नीचा हो जाये, और यह छोटी पुस्तक तैयार कर डाली। शुरूमें ही उन्होंने मुझे अपने इस प्रयोगसे परिचित रखा था और जॉन डब्ल्यू० आर्मस्ट्रॉङ्गकी पुस्तक 'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' मुझे भेज दी थी। किसी दवा पर आधार न रखते हुए केवल मूत्रसे अनेक रोगोंको दूर करनेकी चिकित्सा-पद्धतिकी गणना नैसर्गिक उपचारमें की जा सकती है। परन्तु सामान्य रूपसे जिसे नैसर्गिक उपचार कहा जाता है उसमें इस उपचारका समावेश नहीं किया गया है।

किसी भी वैज्ञानिक विषयमें प्रयोगोंके अनुभवसे जो सिद्धियाँ मिलती हैं, मुख्यतः वही आधार-शिला होती हैं। इसमें किसी भी प्रकारके चमत्कार या गुप्त कारण या भेदके लिए स्थान नहीं हो सकता। मैं नहीं जानता हूँ कि मूत्रचिकित्साके बारेमें आर्मस्ट्रॉङ्गकी पुस्तकके अतिरिक्त कोई अन्य पुस्तक भी है। यों तो आयुर्वेदमें मनुष्यके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न प्राणियोंके मूत्रका औषधके रूपमें उपयोग बताया है और साथ ही उसके सफल उपयोगका उल्लेख भी मिलता है। परन्तु हर किसी रोगमें मूत्रके उपयोगका अनुभव जिस ढंगसे इस पुस्तकमें प्रस्तुत किया गया है, वह सबके आकर्षणका विषय है। अभी और अधिक प्रयोग किये जायें और उपलब्ध अनुभवोंके आधार पर सारी चिकित्सा-पद्धति व्यवस्थित हो जाय, तो मामूली ख़र्चसे अनेक असाध्य रोगोंको दूर करनेमें काफ़ी मदद मिले।

इस चिकित्सामें मुख्य कठिनाई यह है कि मूत्रके नामसे ही शरम और नफ़रत आती है। इसलिए लोगोंकी मनोवृत्तिमें इतना परिवर्तन हो जाना चाहिए कि वे अन्य गन्धवाली और बे-स्वाद

दवाइयोंकी तरह मूत्र पी सकें तथा उससे मालिश कर सकें। लेखकने इस बारेमें खास मेहनत की है। अपने और स्वजनोंके अनुभवोंके अतिरिक्त शिक्षित तथा अशिक्षित स्त्री-पुरुषोंके अनुभव भी दिये हैं। श्री बापालाल वैद्यका एक अनुभवसिद्ध लेख भी इसमें है। परिशिष्टमें मार्गदर्शक प्रश्नोत्तरीके रूपमें श्री रावजीभाईने इस चिकित्साका रहस्य प्रस्तुत किया है, जो पाठकके अनेक संशयोंको दूर करनेमें सहायक सिद्ध होगा। इस युगमें आये दिन विलक्षण अगणित दवाएँ बड़े पैमाने पर तैयार होती रहती हैं। मुझे आशा है कि ऐसे युगमें यह सुन्दर तथा सरल चिकित्सा-पद्धति अपना योग्य स्थान प्राप्त करेगी।

१२–१–'५९

. . . .

प्रधानमंत्री श्री मोरारजीभाई देसाई ता० २-८-७७ के पत्रमें श्री पन्नालाल झवेरीको लिखते हैं:—

"स्वमूत्रचिकित्सा सम्बन्धी हिन्दी व गुजराती संस्करणोंकी बढ़ती हुई माँग यह सूचित करती है कि अधिक लोग इस चिकित्सामें रस ले रहे हैं। परन्तु उन्होंने मूत्रकी घृणाको अभी तक दूर नहीं किया है, इसके लिए प्रचार द्वारा उन्हें समझानेकी बहुत जरूरत है। गरीब भारत देशके लिए यह चिकित्सा उत्तम है।

"आप जानते ही हैं कि इस चिकित्सामें मेरी गहरी श्रद्धा है। मैंने आरोग्यमंत्री श्री राजनारायणजीसे इस बारेमें बात की है। इस चिकित्साके व्यवस्थित प्रचार और अनुसंधान संबंधी सूचनाएँ उन्हें लिख भेजें। मुझे विश्वास है कि धीरे-धीरे बहुतसे लोग इससे लाभ उठायेंगे। भिन्न-भिन्न रोगोंके लिए लोगोंको मार्गदर्शन देनेकी व्यवस्था हो जाये तो इसका प्रचार जल्दी हो सके।"

ता० १९-८-७७ के पत्रमें वे लिखते हैं—

"रोगी मूत्रचिकित्सासे ठीक हो जाते हैं इसलिए डॉक्टरों और वैद्योंका विरोध टिक नहीं सकता। इस क्षेत्रमें काम करनेवाले निष्ठा और शुद्ध भावसे कार्य करते रहेंगे तो उन्हें सफलता मिलेगी ही।"

मोरारजीभाई देसाई

विज्ञान-निष्ठाकी हिम्मत

आदमी अन्न खाता है, पानी पीता है और इस तरह अपने शरीरको संतोष और पोषण देता है। शरीर उस अन्न और पानीका पूरा-पूरा उपयोग करके उसमें से जो चीज़ कामकी नहीं, उसे शरीरसे बाहर फेंक देता है। साथ-साथ शरीरके कई दोष भी उसके साथ निकल जाते हैं। पशु-पक्षियोंकी भी यही हालत है। सब प्राणी अपने शरीरके पोषणके लिए अन्न खाते हैं, पानी पीते हैं और शरीरके मलको मूत्र और विष्ठाके रूपमें बाहर फेंक देते हैं। सब प्राणी कभी-कभी अपनी विष्ठाको और मूत्रको सूँघते हैं और नाक ऊँची करके नफ़रत बताते हैं। सबसे पवित्र चीज़ है अन्न और पानी; और सबसे गन्दी चीज़ है विष्ठा और मूत्र।

मनुष्यके शरीरसे और भी दो चीज़ें बाहर आती हैं, वे हैं उसका श्वास और पसीना। हम शुद्ध हवा पेटमें लेते हैं। उसके द्वारा हमें रक्तशुद्धिकारक प्राणवायु मिलती है। लेकिन जब हम वही हवा पेटसे बाहर निकालते हैं तब उसमें प्राणवायुकी जगह प्राणनाशक कार्बनडायोक्साइड पाया जाता है। कभी-कभी मुँह या नाकसे निकलने-वाला श्वास दुर्गन्धयुक्त भी होता है।

गर्मीके दिनोंमें और परिश्रम करने पर शरीरमें से पसीना निकलता है। वह भी अस्वच्छ पदार्थ है। कभी-कभी उसकी गंध भी अच्छी नहीं होती।

कुदरती तौर पर मनुष्यके मनमें अपने शरीरसे निकलनेवाली इन चारों चीज़ोंकी तरफ़ नफ़रत या घृणा होती है। इसलिए वह इन क्रियाओंके बाद नहा लेता है और बार-बार शरीरको साफ़ करता रहता है।

किन्तु कुदरतके वहाँ कोई चीज़ निकम्मी नहीं होती। जो प्राणनाशक वायु हम मुंहसे बाहर निकालते हैं वही है वनस्पतिका

आहार। और वनस्पति अपने पत्तोंके द्वारा जो प्राणवायु बाहर छोड़ती है वह है मनुष्यका आहार। कई पशु-पक्षी और मछलियाँ मनुष्यकी विष्ठा खा जाते हैं। मनुष्य भी अपनी विष्ठा और मूत्रका खाद बनाकर वनस्पतिको खिला देता है और इस तरह उसका वनस्पतिमें रूपांतर होने पर कंद, मूल, फल, छाल, पत्ते, अंकुर, फूल या फलके रूपमें उसे खा जाता है। वनस्पतिका उपयोग दवाके तौर पर भी किया जाता है।

किसीने ठीक ही कहा है कि जिस तरह हम पेशाब करते हैं, टट्टी जाते हैं, उसी तरह मुँहसे गंदी हवाको बाहर फेंक देते हैं। टट्टी जाना और पेशाब करना अगर नफ़रतअंगेज़ (घृणाजनक) गंदी क्रिया है, तो मुँहसे श्वास बाहर निकालना भी उतनी ही गंदी क्रिया है। लेकिन मुँहसे श्वास बाहर निकालनेकी ऐसी गंदी क्रियाके द्वारा ही मनुष्यने अपने जीवनकी एक सर्वश्रेष्ठ सिद्धि पायी है। मुँहसे श्वास बाहर निकालनेसे ही मनुष्य बोलने लगा और आगे जाकर गाने भी लगा। वाणी, भाषा, संभाषण, वक्तृता और संगीत – यह सब पेटमें से गंदी हवा बाहर फेंकनेकी क्रियाके ही फल हैं!

मनुष्यकी जिज्ञासा ईश्वरकी सिसृक्षासे कम नहीं है। ईश्वर सृष्टिको पैदा करता है और मनुष्य इस सृष्टिके सब व्यापारोंको समझना चाहता है और समझने पर हरेक चीज़से और हरेक प्रक्रियासे लाभ उठाना भी चाहता है। वनस्पति और खनिज धातु पर अनेक प्रयोग करके मनुष्यने दवाइयाँ और रसायन बनाये और वह रोगमुक्त होने लगा। कुदरती चीज़ोंमें से मनुष्यने तरह-तरहके प्रयोग करके नशेका सामान भी ढूँढ़ निकाला। फल, गुड़, अनाज और दूध जब सड़ते हैं तब उनमेंसे दुर्गंध पैदा होती है। ये चीज़ें फिर खाने लायक नहीं रहतीं। लेकिन मनुष्यने सड़ी हुई चीज़ोंमें से भी शराब आदि पेय तैयार किये और पेनिसिलिन आदि अद्भुत दवाइयाँ भी बनायीं। सजीव पनीरका व्यवहार पश्चिममें होता ही है।

हमारे आयुर्वेदने न जाने कितने प्रयोग किये होंगे। उन्होंने दवाके तौर पर तरह तरहके रक्त और मांसका उपयोग तो किया ही,

लेकिन बिल्लीकी विष्ठा तक नहीं छोड़ी। पश्चिमके लोगोंने ऊँटकी लीदमें से अमोनिया तैयार किया।

अब मनुष्य गाय-बैल आदि पशुओंके गोबर द्वारा और अपनी विष्ठा और मूत्र द्वारा खादके उपरांत गैस भी बनाने लगा है, जो घरमें दिया जलानेके और रसोई बनानेके चूल्हे-स्टोवमें भी काम आती है।

आयुर्वेदने प्रयोग करके देखा कि गायके पेशाबमें और गोबरमें कुछ विशेष गुण हैं। उसने मनुष्योंको सुझाया कि गायका दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर सबके मिलानेसे जो पंचगव्य होता है वह शरीर-शुद्धिके लिए बहुत ही मुफ़ीद है। लेकिन गायके मूत्रका और विष्ठाका सेवन कौन करे? धर्मने मददमें आकर नफ़रतको तोड़ दिया। जनेऊ बदलनेके दिन सारे द्विजोंको पंचगव्य लेना ही पड़ता है। चन्द रोगोंमें गायका ताज़ा मूत्र रोगीको दिया जाता है और हमने ऐसे भी गो-भक्त देखे हैं कि जो रोज़ सुबह उठते ही गायके पीछे पीछे जाकर उसका थोड़ा-सा मूत्र पेटमें ले ही लेते हैं और अपनी इस गो-भक्तिका इकरार और प्रदर्शन भी करते हैं।

हमारे देशमें कई जगह लोग गाय-भैंसके गोबरसे कंडे या उपले बनाते हैं और उनके जलानेके बाद उनकी काली राख लेकर दाँत घिसते हैं। अनुभवी लोगोंका कहना है कि किसी भी टुथ पाउडर या दंत-मंजनसे ऐसी 'राखुंडी' की काली राख दाँतके लिए अधिक मुफ़ीद है।

हमारे धर्माभिमानी लोग पश्चिमके लोगोंको कभी-कभी अभिमानपूर्वक समझाते हैं कि हमारे पुरखोंकी विज्ञान-निष्ठा आप लोगोंसे कम नहीं थी। जो चीज़ हितकर साबित हुई उसका सेवन करनेसे वे कभी भी हिचकिचाये नहीं। विज्ञानसे लाभ उठानेमें उन्होंने कुदरती नफ़रतको बीचमें आने नहीं दिया। हमारा पंचगव्यका सेवन इसका अच्छेसे अच्छा सबूत है। आँखमें से जो अश्रु निकलते हैं उनका भी उपयोग आयुर्वेदमें और यूनानी तिब्बमें दवाके तौर पर बताया है।

इस तरह कुदरतमें जो जो चीज़ पायी जाती है उसका उपयोग ढूँढ़ते मनुष्यने कोई भी चीज छोड़ी नहीं है।

मैं एक दफ़ा योगका साहित्य पढ़ रहा था। आजकलका नहीं, प्राचीन कालका योगसाहित्य। उसमें एक जगह पर लिखा था कि कसरत करनेके बाद जो पसीना आता है उसे मालिश करके चमड़ीके अन्दर ही सुखा देना चाहिये। बात पढ़ते विचित्र-सी लगी। कसरत करने पर या धूपमें बैठने पर जो पसीना आता है उसके साथ चमड़ीके सूक्ष्म रंध्र या छेदमें इकट्ठी हुई गंदगी बाहर निकल जाती है। ऐसी गन्दगी दूर करनेके लिए हम लोग अक्सर शरीरको तेल लगाते हैं और बादमें गरम पानीसे नहाकर चमड़ीको साफ करते हैं अथवा साबून लगाकर शरीरके सारे रोम-रंध्र साफ़ करते हैं। गरम पानीसे नहानेके बाद जो दूसरा पसीना आता है उसे भी हम शरीर पर नहीं रहने देते। मोटा तौलिया लेकर पसीना चूस लेते हैं। इसकी जगह शरीरका पसीना मालिश करके चमड़ीके अन्दर ही सुखा देनेका रिवाज बिल्कुल गंदा-सा लगता है। लेकिन योगके ग्रंथोंमें इसका लाभ बताया है। पूरी जाँच किये बिना उस सूचनाका हम विरोध न करें, इतना ही आज कह सकते हैं।

कोई बात पुराने ग्रन्थोंमें लिखी है, इस वास्ते उसे मानना ही चाहिये ऐसी हमारी मनोवृत्ति नहीं है। पुराने लोग (ऋषि-मुनि भी) ग़लती कर सकते हैं, ग़लत रास्ते पर जा भी सकते हैं। लेकिन पूरी जाँच किये बिना किसी चीज़का स्वीकार करना जितना अंधविश्वास है उतना ही पूरी जाँचके बिना किसी चीज़का अस्वीकार करना, विरोध करना या उसे ग़लत करार देना अन्धविश्वास ही है। चाहे उसे हम अन्धअविश्वास कहें।

श्री रावजीभाई मणिभाई पटेल हमारे सत्याग्रह आश्रमके एक पुराने आदरणीय साथी हैं। गांधीजीके साथ दक्षिण अफ्रीकामें रह चुके हैं। न साहित्यिक होनेका इनका दावा है, न कोई डाक्टर या

वैद होनेका, तो भी आज तक इन्होंने जो लिखा है वह अच्छे साहित्यमें शुमार हो चुका है। इनके जीवनके प्रेरक तत्त्व हैं सत्यनिष्ठा और समाजसेवा। इसी कारण समाजमें इनका प्रभाव है। एक अंग्रेज़ी किताब पढ़कर एक इलाज इनके हाथमें आया। मनुष्य अगर अपना ही पेशाब दवाके तौर पर ले ले तो कई रोगोंसे वह मुक्त हो सकता है। इन्होंने पूरी निष्ठासे और उत्साहसे इस इलाजको आज़माया और अपनाया। इसका सारा इतिहास रावजीभाईने इस किताबमें दिया है। सत्यनिष्ठा और विज्ञाननिष्ठाके बल पर सफलता पानेके बाद इन्होंने अपना और अनेकोंका अनुभव इस किताबमें दिया है। इस इलाजके प्रति जो कुदरती नफ़रत होती है वह इस किताबको पढ़ते पढ़ते ढीली हो जाती है। नीरोग मनुष्य इस इलाजके प्रति आसानीसे सहानुभूति नहीं बता सकता, लेकिन रोगपीड़ित आदमी जब देखता है कि तरह तरहकी कड़वी, तीखी और महँगी दवाएँ दीर्घकाल तक लेकर परेशान तो हो चुका हूँ, अब यह तो अपने ही शरीरसे निकले हुए आख़िरी पानीका सेवन करनेकी बात है, तब देखूँ तो सही। मनुष्य हिम्मत करके अनुभव करने लगता है। ऐसे लोगोंके अनुभव रावजीभाईने अपनी किताबमें इकट्ठे किये हैं। आरोग्यप्राप्तिके लिए मनुष्य क्या न करेगा? गायका पेशाब अगर पवित्र है, आरोग्यकर है, तो अपने ही पेशाबका प्रयोग कर देखनेमें हरजा क्या है?

आजकल पश्चिमके वैदकमें नया प्रयोग दाख़िल हुआ है। मनुष्यके शरीरमेंसे उसका गरम-गरम ख़ून निकालकर फिर उसीको उसके शरीरमें पिचकारी द्वारा इन्जेक्ट करते हैं। शायद उसे 'प्रोटीन शॉक' कहते होंगे। हमारे ही शरीरसे निकली हुई चीज़ फिर शरीरमें डालनेसे कुछ अद्भुत परिणाम लाती है। कुदरतका मार्ग अद्भुत है।

इसी तरह श्री रावजीभाईने स्वमूत्रका एक इलाज आज़माया। अनेक लोगोंके अनुभव देख लिये और केवल परोपकारके लिए उसका वे प्रचार कर रहे हैं। उनका कर्तव्य शायद यहाँ समाप्त होता

है। श्री रावजीभाईने गुजरातीमें जो किताब लिखी उसकी कई आवृत्तियाँ निकल चुकी हैं। अब व्यापक प्रचारके लिए यह हिन्दी आवृत्ति शाया की जा रही है। श्री ढेबरभाई और श्री मोरारजीभाई जैसोंके अभिप्राय इन्होंने यहाँ दिये हैं। श्री रावजीभाईकी इस प्रवृत्तिका पुरस्कार करते श्री ढेबरभाई कहते हैं कि 'अपने पेशाबके सेवनसे क्या क्या लाभ होता है सो तो रावजीभाईने बताया। लेकिन सत्त्व, रज और तम इन गुणोंके विस्तारका जिन्होंने अनुभव किया है उनको चाहिये कि वे देखें कि इस इलाजसे शरीर पर या मन पर कोई बुरा असर तो नहीं होता।' केवल मनमें शंका लाकर हम बैठ नहीं सकते। संशोध-प्रवृत्ति चलानी ही चाहिये। श्री रावजीभाई कहते हैं कि उनके दो-तीन सालके अनुभवमें कोई बुरा असर नहीं पाया गया। लेकिन इतना सबूत बस नहीं है। संशोधका भी अपना एक शास्त्र है। उसके अनुसार बरसों तक शोध-खोज चलानी चाहिये। विज्ञान-वेत्ता डाक्टरोंका, वैद्योंका और हकीमोंका यह काम है।

. . . .

स्वमूत्र-सेवनमें भी इसी दिशामें गवेषणा तुरन्त चलानी चाहिये और विज्ञानका लाभ मानवजातिको मिलना चाहिये।

आरोग्य-रक्षाका सबसे उत्तम उपाय विज्ञानकी मददसे निश्चित किया हुआ कुदरती और योग्य आहार-विहार ही है। शुद्ध हवा, शुद्ध पानी, काफी मात्रामें धूपका (सूर्य-किरणोंका) सेवन, शुद्ध सात्त्विक प्रमाण-बद्ध आहार और वह भी विज्ञानकी दृष्टिसे युक्त यानी balanced हो तो मनुष्य बीमार ही नहीं पड़ेगा। साथ साथ मनका स्वास्थ्य भी संभालना चाहिये। जब मनुष्य राग, द्वेष, ईर्षा, असूया, मत्सर आदि विकारोंके वेगमें फँस जाता है तब उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। फिर तो खोये हुए स्वास्थ्यको फिरसे पानेके लिए बड़ी साधना करनी पड़ती है। मनुष्यने स्नान, लंघन, केवल जलपान, निद्रा और व्यायामसे लेकर पारदकी दवाइयाँ खाने तक अनेक इलाज आज़माये हैं। पुराने लोग पारेको महादेवका वीर्य कहते हैं। उस पारेकी दवा अगर अच्छी तरहसे बन सकी तो कहते हैं कि उस

रसायनसे मनुष्य वज्रकाय होगा। लेकिन पारदशुद्धि न होंने पर उसकी कच्ची दवासे तरह तरहके रोग हो जाते हैं। ऐसे पारदके अद्भुत गुण बताकर आयुर्वेद अन्तमें कहता है कि सबसे श्रेष्ठ रसायन तो ब्रह्मचर्य ही है। मनको काबूमें रखकर जीवनक्रम अगर सात्त्विक बनाया और सेवामय जीवनके द्वारा मनका स्वास्थ्य संभाला तो भी मनुष्य वज्रकाय हो सकता है।

जो हो, कोई भी दवा मनुष्यको अति आहार करनेका, अति-विलास करनेका या विकृत जीवन व्यतीत करनेका अधिकार नहीं दे सकती। नैसर्गिक, शुद्ध, सात्त्विक, उद्योगपरायण और समाधानयुक्त जीवन ही आरोग्यकी सच्ची कुंजी है। इसमें जब मनुष्य दुर्दैवसे या ग़लती करनेसे रोगी बन जाता है तब उसके लिए आयुर्वेद, निसर्गोपचार आदि अनेक इलाज किये जाते हैं। ऐसे इलाजोंके करनेके साथ मनुष्यको दृढ़ संकल्प करना ही चाहिये कि जो ग़लतियाँ हुईं सो हुईं। ईश्वरकी कृपासे बचनेका उपाय भी मिल गया। अब आइन्दा हम ग़लतियाँ नहीं करेंगे। निसर्गका द्रोह नहीं करेंगे। योग और प्रयोगके द्वारा जो ज्ञान और विज्ञान प्राप्त हुए हैं उनकी मददसे संयमित और शुद्ध जीवन ही व्यतीत करेंगे। सादगी और सात्त्विकता छोड़ेंगे नहीं और मनको भी प्रसन्न और समर्थ बना कर उसकी मदद आरोग्यके लिए ले लेंगे।

यह बात भी समझमें आनी चाहिये कि करोड़ों मनुष्योंके रोगोंके लिए इलाज भी मनुष्यको सस्तेमें और आसानीसे मिलने चाहिये। आयुर्वेद कहता है — **यस्मिन् देशे हि यो जातः तज्जं तस्यौषधं हितम्** — अर्थात् जिस देशमें आदमी पैदा हुआ है, जिस देशमें रहता है और जहाँकी खुराक पाता है, उसके लिए दवा भी उसी देशकी पैदा हुई होनी चाहिये; वही हितकर है। तो क्या हम ऐसा भी कह सकेंगे कि शरीरमें जो रोग होते हैं उनके इलाज भी शरीरमें से ही और शरीरके रिवाजी आहारसे ही मिलने चाहिये?

मसूरी,
२१–५–’६१

काका कालेलकर

उपोद्घात

स्व० श्री रावजीभाई पटेलने गुजरातीमें 'मानवमूत्र' नामक पुस्तक लिखी, जिसे भारत सेवक समाज, गुजरातने प्रकाशित किया उस पुस्तकके अंग्रेज़ी भाषान्तरका उपोद्घात लिखना मेरे लिए बड़े आनन्दका विषय है।

श्री रावजीभाई पटेल भारतके स्वतन्त्रतायुद्धके एक अग्रगण्य योद्धा थे। वे जीवनभर समाजके एक रचनात्मक कार्यकर्ता भी थे ऐसे महान् व्यक्ति द्वारा निष्ठा तथा सेवा-भावनासे लिखे हुए जो अनुभव पुस्तकके रूपमें प्रकाशित हुए हैं उन्हें सावधानतासे अध्ययन करनेकी ज़रूरत है। मूत्र मल नहीं किन्तु जीवनजल है और वह स्वस्थ जीवनके लिए तथा मनुष्यके लगभग सभी रोगोंके, जिनमें कैन्सर व फेफड़ोंके क्षय जैसे रोग भी शामिल हैं, उन्मूलनके लिए प्रकृतिकी अमूल्य देन है, यह मान्यता जिज्ञासाको उत्तेजित करनेवाली, रसप्रद और आकर्षक है। यदि इस मान्यताको वैज्ञानिक आधार पर किये गये व्यवस्थित प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा सके तो यह मनुष्य-जातिके लिए एक महान् वरदान होगा, विशेषतः आधुनिक आकाश-यात्राके युगमें।

वे पहले-पहल १९५४ में हृदय-रोगसे आक्रान्त हुए और फिर १९५८ में। दूसरे आक्रमणके अरसेमें उन्हे एक मित्रसे जॉन डब्ल्यू० आर्मस्ट्रॉङ्ग द्वारा लिखित 'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' नामक पुस्तक मिली, जिससे उन्हें मूत्रप्रयोग संबंधी मुख्य प्रेरणा प्राप्त हुई। स्वयं जॉन आर्मस्ट्रॉङ्ग पुरानी बाइबलके पाँचवें अध्यायके इस वाक्यसे — 'तू अपने शरीरसे निकले हुए पानीको पी' — प्रेरित हुए और उन्होंने इसे मूत्रपानका आदेश समझा। वर्तमान लेखकने पुराण, बाइबल आयुर्वेद और जैन शास्त्रके अवतरण देकर स्वमूत्रके स्वास्थ्य-रक्षक

गुणोंकी ऐतिहासिक तथ्यताको प्रमाणित किया है। लेखककी एक और मान्यता यह है कि पशु अपनी बीमारीके वक्त जैविक सहज प्रेरणासे स्वस्थ होनेके लिए अपना मूत्र पीते हैं और मनुष्योंने अपने सामाजिक विकासके दौरान इस रक्षणात्मक जैविक सहज प्रेरणाको खो दिया है। लेखककी दूसरी मौलिक मान्यता यह है कि मूत्र मल नहीं, किन्तु जीवनका अमृत है, जिसमें शारीरिक स्वास्थ्यको बनाये रखनेवाले और शारीरिक अस्वस्थताको दूर करनेवाले सभी उपयोगी तथा सजीव तत्त्व हैं। पुस्तकके पन्ने पन्ने पर लेखककी इस दृढ़ तथा अटल श्रद्धाका पता चलता है कि व्यक्तिका अपना मूत्र जीवनका अमृत है। यह स्वाभाविक है कि श्रद्धाके समर्थक उदाहरण या प्रमाणका उत्साहके साथ स्वागत किया जाता है, जब कि विपरीत मन्तव्य या कथनको अज्ञान, पूर्वग्रह या निहित स्वार्थका परिणाम मानकर तिरस्कृत किया जाता है।

स्वमूत्रके प्रयोगसे स्वस्थ तथा नीरोग होनेवाले रोगियोंके विवरण इस पुस्तकमें प्रस्तुत किये गये हैं। फेफड़ोंका क्षय, हड्डीका क्षय, क्षयका उरुक्षत, मधुमेह, गेन्ग्रीन, कैन्सर तथा अन्य ग्रोथ्स, मूत्रका रुक जाना, गुरदेकी सूजन, हृदयरोग, हृदयकी कमज़ोरी, ख़ूनका अधिक दबाव, सूजन, मलेरिया तथा अन्य बुख़ार, हाथीपाँव, सरदी-खाँसी, इयोसिनोफ़ीलिया, दमा, गहरे जख्म और जलनेके घाव, मोटापा, मोतिया, ग्लॉकोमा, मासिक धर्मकी पीड़ा, पायरिया, अम्लपित्त, आँतका व्रण, उपांत्रशोथ (एपेन्डिसाइटिस), बड़ी आँतकी सूजन, संग्रहणी, जलोदर, गठिया, रीढ़का अकड़ाव, लक़वा, एक्ज़ीमा, सफेद कोढ़, सोराइसिस, गलितकुष्ठ और दूसरे रोगोंके दूर होनेके विवरण दिये हैं। रोगोंके विवरण जैसे मिले वैसे दिये गये हैं और वे क्रमबद्ध, व्यवस्थित तथा निश्चित व्याधिसमूहसे संबद्ध नहीं हैं, इसलिए अंकशास्त्रकी दृष्टिसे उनकी उपयोगिता और महत्ता सिद्ध नहीं हो सकती।

पुस्तककी शैली उत्साह तथा स्फूर्ति बढ़ानेवाली है और वह विचारप्रेरक है। यदि सरल मूत्रोपचारको अपनाकर अधिकांश छोटे-

बड़े रोगोंसे छुटकारा पानेका दावा किया जाता है, तो इस पर और ध्यान केन्द्रित करनेकी ज़रूरत है। मूत्रोपचारकी समस्याको हल करनेके लिए इस बातकी भी ज़रूरत है कि बहुत-से कार्यकर्ता विज्ञान तथा अंकशास्त्रकी दृष्टिसे बड़े पैमाने पर इसका अध्ययन करें, ताकि यह रहस्य, चमत्कार या श्रद्धाका विषय न रहकर सरल वैज्ञानिक तथ्य सिद्ध हो जाये।

पुस्तक पढ़नेके बाद कुछ विचारणीय प्रश्न प्रस्तुत करनेकी इच्छा होती है :—

१. लेखकने लिखा है कि पर्याप्त संख्याके रोगियोंने उपवासके साथ-साथ मूत्रपान और मूत्रमालिश करके विविध रोगोंको दूर किया है।

२. पुस्तकमें जिन रोगियोंका विवरण दिया है उनका अध्ययन लगातार पाँच वर्ष तक किया जाये अर्थात् यह देखभाल की जाये कि वे फिरसे उसी रोगसे पीड़ित होते हैं कि नहीं। इस तरहका अध्ययन ज्ञानवर्धक तथा बोधक होगा।

३. सभी पशु अपनी बीमारीके वक्त सहज प्रेरणासे अपना मूत्र पीते हैं, इस मान्यताकी सत्यताका या असत्यताका निरीक्षण तथा परीक्षण विश्वभरके जीवशास्त्रियोंको उदार मनसे अर्थात् किसी प्रकारके पूर्वग्रहके बिना करना चाहिये।

४. लेखककी यह दृढ़ और अटल मान्यता है कि मूत्र शरीरका मल न होकर जीवन-रस है, जिसमें व्यक्तिके आरोग्य-लाभके लिए उपयोगी तथा पोषक सभी तत्त्व हैं और इसे प्रमाणित करनेके लिए अनेक उदाहरण तथा प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि शरीरशास्त्री और जीवरसायन-शास्त्री अध्ययनके बाद इस मान्यताका समर्थन या निराकरण करें।

५. प्रस्तुत विवरण स्वमूत्रपान और उपवास दोनोंके परिणाम पर आधारित है। केवल मूत्रपान, केवल पानीके साथ उपवास और उपवास सहित मूत्रपान, इन तीनोंके क्रमिक तथा व्यवस्थित प्रयोगको आज़माना

उपयुक्त होगा क्या? इस तरहके नियंत्रित प्रयोग स्वस्थ स्वयंसेवकों और रोगियों दोनों पर व्यवस्थित ढंगसे किये जा सकते हैं। यदि मानवमूत्रके चिकित्सा सम्बन्धी महत्त्वको सर्वमान्य बनाना है तो उपर्युक्त प्रयोगोंका अध्ययन आवश्यक होगा।

६. मधुमेह या ऑपरेशनके अयोग्य कैन्सर जैसे किसी एक रोगविशेषके अनेक प्रकारोंकी मूत्रचिकित्सा करनेके लिए जोरदार सिफारिश की जाती है, ताकि यह मालूम हो सके कि उसी रोग विशेषके किसी प्रतिष्ठित चिकित्सापद्धति द्वारा किये गये उपचारकी तुलनामें मूत्रोपचारकी सफलता या असफलता कितने प्रतिशत है।

अन्तमें, किसी हद तक यह कहना न्याय-संगत है कि 'मानवमूत्र पुस्तक विचारप्रेरक है। मूत्रोपचारको आंशिक या पूर्ण मान्य या अमान्य करनेसे पहले यह आवश्यक है कि मूत्रप्रयोगको वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय-पद्धतिसे आज़मा लिया जाये। लेखकने जो विचारनिष्ठा प्रदर्शित की है वह अति प्रशंसनीय है; परन्तु उन्हें अपने आलोचकोंके प्रति इतना कठोर तथा अनुदार नहीं होना चाहिये था। लेखकने अपनी गुजराती पुस्तकके अंग्रेज़ी संस्करणका उपोद्घात लिखनेके लिए तो जुलाई १९६१ में मुझसे कहा था। मुझे बहुत दुःख है कि मैं राज्य-व्यवस्थाके कार्यभार और अन्य परिस्थितिके कारण उनके जीते-जी वैसा नहीं कर सका।

अहमदाबाद
१३ नवम्बर, १९६२

जीवराज एन० मेहता

अपनी बात

न जाना जानकीपतिने प्रातःकाल क्या होगा!

राजसिंहासनके बजाय वनवास मिला, फिर भी रामका चेहरा हँसता ही रहा और उन्होंने उसी हर्ष तथा उल्लासके साथ वल्कल पहनकर बनकी राह ली। इन प्रकरणोंको लिखनेमें कुछ ऐसा ही हुआ है। जीवनभर मैं राजनीतिके मैदानमें खेलता रहा और समाजसेवाका मज़ा लूटता रहा। वैसा जीवन जीनेमें तो यथासंभव मैंने संयमसे काम लिया है। मनके घोड़ेकी लगाम काबूमें रखनेकी काफ़ी कोशिश की है। इसमें मुझे सुख और आनन्दका अनुभव हुआ है। आखिर आत्मसन्तोष ही सच्चा सुख है और इस आत्मसन्तोषकी प्राप्तिके लिए मैं सदा लालायित रहा हूँ। इस प्रकार जीकर एक साधारण मानवके नाते अपनी जीवन-कथा 'जीवननां झरणां' के दूसरे भागमें लिखकर मैंने संतोष माना है और मानो मैं जीवनसे निवृत्त होकर परम मित्र मृत्युकी राह देखता हुआ शान्तिसे बैठा था।

परन्तु यहाँ क्या अपनी मरज़ीसे काम होता है? **'ईश्वरेच्छा बलीयसी'** के न्यायसे सभी काम होते रहते हैं। ऐसा ही हुआ। मेरे सिर पर तो मौत नाच रही थी। ईश्वरने मुझे ऐसी प्रवृत्तिमें डाल दिया, जिसका जीवनमें कभी स्वप्न तक भी न आया था। मैं तो पीड़ाहीन जीवन जीनेके लिए प्रयत्नशील था कि अनायास मेरे सामने मूत्रोपचारके प्रचारका कार्य अकस्मात् उपस्थित हो गया। आयुर्वेद, एलोपैथी, होमियोपैथी, नेचरोपैथी, हाइड्रोपैथी या बायोकैमिक; ऐसी किसी चिकित्सा-पद्धतिको मेरी बला जाने। भला मेरा इनसे क्या वास्ता? मैं तो इनके अटपटे नामोंका उच्चारण भी न कर पाऊँ,

और मुझे इसका दु:ख भी नहीं है। ऐसे क्षेत्रमें ईश्वरने मुझे डाल दिया। किस लिए? मुझे कुछ पता नहीं। फिर भी मैं इस ओर क्यों आकृष्ट हुआ? इसलिए कि वह सर्वात्मा हम सबमें ओतप्रोत है। इसमें शक नहीं कि दु:खियोंकी सेवाका अवसर मिलता हो तो स्वर्गको ठुकरा कर भी मैं नरकमें जानेकी वृत्ति और हिम्मत अवश्य रखता हूँ। गांधीजी तो गुणोंके सागर थे, परन्तु मेरी इतनी सामर्थ्य कहाँ कि उनके दो चार गुणोंको भी अपना सकता? फिर भी महात्माजीके लोकसेवाके गुणको समझने और अपनानेके लिए मैं प्रयत्नशील रहता था। परन्तु सेवाधर्म तो परम गहन है और सेवा करना लोहेके चने चबाना है और काँटोंका ताज पहनना है। कोई मरजीवा ही उन्हें हज़म कर सकता है और उसे सिर पर रख सकता है। बापूके साथ रहनेसे मैं लोकसेवाके गुणको थोड़ा-बहुत सीख पाया और इसीमें सन्तोष माना।

प्रभु तो अन्तर्यामी ठहरे। लोकसेवाके सीखे हुए गुणको चरितार्थ करनेका अवसर मेरे लिए प्रस्तुत कर दिया। लोग तो मूत्रके नामसे ही नाक-भौं चढ़ाने लगते हैं, उसकी चिकित्साकी बात तो एक तरफ़। मानो मेरी श्रद्धा तथा निष्ठाकी परीक्षा करनेके लिए ही मूत्रचिकित्सा जैसा घिनौना काम ईश्वरने मेरे सामने उपस्थित कर दिया और उसे अपनानेके लिए प्रेरित किया। अब मैं मौतकी घड़ियाँ गिनना छोड़कर मूत्रप्रयोगके प्रचारमें जुट गया। 'हिम्मते मरदा मदद दे ख़ुदा' के न्यायसे जहाँ-तहाँसे एकके बाद एक मुझे सहायक मिलने लगे और अपने-अपने पुराने अनुभव सुनाने लगे, जिससे मेरे हृदयमें श्रद्धाका बीज अंकुरित हुआ।

मैंने मूत्रोपचारके प्रश्न पर न तो आयुर्वेदिक दृष्टिसे विचार किया है और न ही डाक्टरी दृष्टिसे। मुझे इसकी ज़रूरत भी महसूस नहीं होती। कुशलसे कुशल डाक्टर, धन्वन्तरी जैसे वैद्य और लुकमान-से हकीम भी विश्वकर्माकी सृष्टिको समझ नहीं पाते। उसकी सृष्टि तो

श्रद्धाका विषय है। मैं कुदरतमें श्रद्धा रखता हूँ। मूत्र किसी प्रचलित चिकित्सा-शास्त्रका विषय नहीं है। यह तो जीवमात्रके लिए ईश्वरकी अपूर्व देन है। प्राकृतिक वनस्पतियोंके अभ्याससे आयुर्वेदका जन्म हुआ होगा। मूत्रकी देन तो उससे भी पहलेकी है और यह देन विध्यात्मक है, नकारात्मक नहीं। ईश्वरने जीवको अपने शरीरकी रक्षाके लिए यह साधन जन्मसे ही दिया है। इसलिए यह किसी रोगका उपाय नहीं है, किन्तु शारीरिक स्वास्थ्यका साधन है। यह श्रद्धा मेरे हृदयमें घर कर गयी। कैसे? क्यों? किस आधार पर? ऐसे प्रश्न अपने-आपको पूछकर मैंने दीर्घसूत्री बननेकी धृष्टता नहीं की। सूर्य है। मैं देखता हूँ। भला उसे सिद्ध करनेके लिए किसी युक्तिकी जरूरत है क्या? ईश्वरने मनुष्य या किसी भी जीवजन्तुके शारीरिक स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए वैद्यकी रचना नहीं की। परन्तु उसके लिए हरएकको साधन दे दिया है। यह अटल और सच्ची श्रद्धाकी बात है। फिर जीव अपनी मूर्खतासे चाहे जैसा आचरण करे। मानवने तो विश्वके सभी छोटे-बड़े जीव-जन्तुओंकी अपेक्षा अधिक मूर्ख बनकर अपने लिए चिकित्सकोंकी संस्था खड़ी कर डाली। भले ऐसा हुआ, परन्तु इस कारण असल बातको किस लिए तिलांजलि दी जाये? जिस मनुष्यके शरीरकी रचना करके ईश्वरने कमाल कर दिया, उस मनुष्यको उसने परावलम्बी बनाया होगा? और दूसरे जीव-जन्तु, पशु-पक्षी और कीट-पतंगेको स्वावलम्बी बनाया! ईश्वरने तो जीव-मात्रका शरीर सम्पूर्ण तथा स्वाधीन बनाया है और उसकी संपूर्णता तथा स्वाधीनताको बनाये रखनेके लिए प्रत्येकको अपना-अपना साधन दे दिया है। यह बात आजके संस्कारी तथा सभ्य (कलचर्ड एन्ड सिविलाईज्ड) माने जानेवाले समाजको चाहे अरुचिकर लगती हो; परन्तु यह नग्न सत्य है, सूर्यकी भाँति स्वयं प्रकाशित है। इस सत्यके प्रकाशको कहाँ तक छिपाये रखा जा सकता है?

ऐसे अनेक प्रश्न मेरे सामने उपस्थित हुए और मेरे दिलमें बस गया कि जगतकी पीड़ित मानवजातिकी सेवा करनेका यह विशाल क्षेत्र

है ही। इसे मैं नहीं जानता कि मैं क्षुद्र क्या कर सकूँगा, न मुझमें सामर्थ्य है और न मेरी शारीरिक स्थिति है। फिर भी प्रभुने जिस प्रकाशसे मेरे हृदयका अन्धकार दूर किया है, उस प्रकाशसे दूसरोंके हृदयका अन्धकार दूर कर पाऊँ तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ, इस भावनासे इन प्रकरणोंको लिखने बैठा हूँ। परन्तु लिखने मात्रसे यह महान् कार्य सिद्ध नहीं होगा; क्योंकि इस कार्यके सिद्ध होनेमें जहाँ अनेक अनुकूलताएँ हैं वहाँ सिद्धिके लिए बाधक कुछ प्रतिकूलताएँ भी हैं।

अनुकूलताएँ :-- (१) मूत्र ईश्वरीय देन है। (२) शरीरके स्वास्थ्यकी किसी भी प्रकारकी कमीको पूरा करनेके लिए यही एक अद्भुत वैज्ञानिक दृष्टिसे संपूर्ण द्रव्य है। (३) यह अर्थ और गुणकी दृष्टिसे अमूल्य है। इसका उपयोग करनेके लिए धातु या कागज़के सिक्कोंकी जरूरत नहीं है, किन्तु श्रद्धा और निष्ठा अपेक्षित है। (४) और किसी भी पदार्थकी अपेक्षा यह अधिक प्रभावशाली है। (५) आयुर्वेदने इसे विषघ्न तथा रसायन कहा है। 'विषघ्न' अर्थात् शरीरके आन्तरिक तथा बाह्य विषका नाशक और 'रसायन' अर्थात वृद्धावस्थाको रोककर रोगरहित यौवन देनेवाला है। (६) यह निर्दोष है अर्थात् इसके उपयोगसे किसी भी प्रकारकी हानि नहीं होती। ऐसे कल्याणकारी द्रव्यका महत्त्व जनताके हृदय पर अंकित किया जा सके, तो इससे जनताकी और आयुर्वेदकी बड़ीसे बड़ी सेवा होगी। यह सच है कि आयुर्वेदके प्रति मुझे पक्षपात है, फिर भी मैं यह मानने लगा हूँ कि मूत्रचिकित्सा आयुर्वेदकी जननी है। मेरे इस कथनसे कोई आयुर्वेदका भक्त व्याकुल तथा खिन्न न हो और वह सोच-समझकर निर्णय करे। फिर भी मेरी बात उसे मंजूर न हो और मूत्रोपचारको आयुर्वेदका एक अंग माने तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है और यह एक विशेष अनुकूलता है कि हमारे देशकी दरिद्र तथा रोग-पीड़ित जनता इस उपचारको तुरन्त अपना लेगी; क्योंकि वह प्रचलित चिकित्सापद्धतिकी दवाओंके बोझसे शारीरिक, मानसिक और आर्थिक दृष्टिसे शोषित तथा सत्त्वहीन हो गयी है और तंग आ गयी है।

प्रतिकूलताएँ :— (१) मूत्रको समाजमें घृणित समझा जाता है और उसके स्वाद तथा गंधके बारेमें एक झूठा खयाल बन गया है। (२) हम यह मान बैठे हैं कि मूत्र द्वारा शरीरमें से ज़हर निकलता है और इस भ्रान्त मान्यताका प्रचार भी किया जाता है। (३) सैकड़ों बरसोंसे मूत्रचिकित्सा बन्द है, इसलिए उसके उपयोगकी शास्त्रीय पद्धतिका ज्ञान नहीं है। (४) मूत्रोपचारमें यथोचित परहेज़ रखनेमें हम लापरवाह हैं और आहार-विहारमें संयमी नहीं हैं। (५) आधुनिक समाज यह समझता है कि मूत्रचिकित्सा तो उच्च तथा सांस्कृतिक जीवनके विरुद्ध है। (६)अन्य चिकित्सा पद्धतियोंके व्यवसायी अपने निहित स्वार्थकी रक्षाके लिए स्वच्छता, संस्कृति और सभ्यताकी दुहाई देकर मूत्रोपचारका विरोध जी-जानसे करते हैं, जिससे उपर्युक्त प्रतिकूलताएँ और प्रबल बनती हैं। यद्यपि अनेक वैद्य यह मानते हैं कि मूत्रचिकित्सा आयुर्वेदका एक अंग है, तथापि धनार्थी वैद्य इसके विरुद्ध प्रचारमें सहयोग देते होंगे। (७) हममें और हमारे समाजमें इतनी नैतिक हिम्मत नहीं है कि अपने कल्याणके लिए झूठी मान्यताओं और कुविचारोंको ठुकराकर सत्यका आचरण कर सकें।

उपर्युक्त प्रतिकूलताओंके होते हुए भी मेरा यह दृढ़-विश्वास है कि आयुर्वेदके अनुभवी पंडित सत्यनिष्ठासे प्रयत्न करें तो मूत्रचिकित्सा द्वारा रोगोंको दबानेवाली डाक्टरी पद्धतिको नामशेष नहीं तो प्रभावहीन बनाकर भारतकी जनताको उसके शिकंजेमें से छुड़ाया जा सकता है। इसके लिए आयुर्वेदके भक्तोंको तप करना होगा, अन्वेषण करना होगा और अपने जीवनका बलिदान देना होगा। अब तो डाक्टरी चिकित्सा सीमाका उल्लंघन करने लगी है। इसमें शक नहीं कि सदाचारी, परोपकारी और निःस्वार्थी डाक्टर भी हैं। परन्तु आटेमें नमकके समान! उनकी आवाज़ नक्कारखानेमें तूती जैसी है। कुछ भले और साफ़दिल डाक्टर तो कह देते हैं— "डाक्टरीका पेशा सीखा है, इसलिए यह पेशा करते हैं। सच पूछें तो हम निमित्तमात्र हैं, हम डाक्टरकी अपेक्षा दवा बनानेवालों और दवा बेचनेवालोंके दलाल

अधिक हैं।" और कुछ सरल हृदय डाक्टर गुपचुप यह भी स्वीकार कर लेते हैं कि बुख़ार या ज़ुकाममें वे ख़ुद तो चिरायतेके काढ़ेका या हरड़का उपयोग करते हैं और रोगीको एकाध रुपयेका इन्जेक्शन लगाकर पाँच-सात रुपये ले लेते हैं। डाक्टरीके प्रमाणपत्रको सार्थक करनेवाले और रोगीको सचमुच आराम देनेवाले कुशल डाक्टर तो हज़ारमें से सौ-पचास होंगे। बाकी सब तो उन्हीं कुशल डाक्टरोंके बल पर निभते हैं और अपनी सनदके आधार पर कमा खाते हैं। फिर भी समर्थ और असमर्थ डाक्टर दोनों परस्पर पोषक हैं और एक-दूसरेके सहारे समाज पर अपूर्व प्रभुत्व रखते हैं। समाजका कल्याण करके वे प्रभुत्व जमायें तो यह चिन्ताकी बात नहीं है। परन्तु दुःख तो इसलिए होता है कि वे समाजके तन, मन और धनको नष्ट करके प्रभुत्व जमाते हैं। समाजका कोई भी अंग अपनी भौतिक या आध्यात्मिक शक्तिसे अधिकार जमाये तो यह आपत्तिजनक नहीं है; परन्तु ऐसी किसी शक्तिके बिना ही जगतका उद्धारक तथा दुःखहारक बनकर बैठ जाये और संसारका सत्यानाश करे तो उसकी शिकायत करना कर्तव्य बन जाता है। विश्वमें आजकल डाक्टरी पेशेकी कुछ ऐसी दशा हो गयी है कि जगतके रोगोंका नाश करनेके आन्दोलनमें वह निष्फल सिद्ध हुआ है। इतना ही नहीं, किन्तु पुराने रोग पहलेसे अधिक तीव्र हुए हैं और नये-नये रोग पैदा हो गये हैं। दिन-प्रति-दिन किसी भी देशके गाँव, कसबे और शहर अधिक सुख-सुविधावाले तथा स्वच्छ बनते जाते हैं, फिर भी वहाँ रोगोंकी और साथ ही डाक्टरोंकी तथा अन्य चिकित्सकोंकी संख्या अनेकगुनी बढ़ती जाती है, यह अत्यन्त खेदका विषय है। इस बारेमें एक जीता-जागता दृष्टान्त प्रस्तुत करता हूँ।

सन् १९३१–३२में और सन् १९५७–५८ में अहमदाबादकी आबादी, म्युनिसिपैलिटीका बजट और चिकित्सकोंकी संख्या इस प्रकार है :—

सन्	आबादी*	बजट	चिकित्सक
१९३१–३२	३,८२,०००	३०,८०,०००	२०० (लगभग)
१९५७–५८	९,७०,०००	३,०७,००,०००	८०० (लगभग)

ये हैं अहमदाबाद शहरकी प्रगतिके आँकड़े ! इनसे पता चलता है कि पिछले पच्चीस बरसमें शहरकी आबादी २५० प्रतिशत बढ़ी है। शहरको स्वस्थ, सुखी और सुन्दर बनानेके लिए सफाई, सेनिटेशन, सड़कें, नालियाँ, गुंजान आबादीके लिए नये आवास, छोटे-बड़े बाग आदि पर पच्चीस बरस पहले जो खर्च होता था, वह लगभग ९०० प्रतिशत बढ़ गया है। सुख और स्वास्थ्य सम्बन्धी म्युनिसिपैलिटीके इस बढ़े हुए खर्चके अनुपातमें जनता पर आरोग्यके खर्चका बोझ कम होना चाहिये था, परन्तु उस खर्चमें ४०० प्रतिशतकी वृद्धि हुई है, क्योंकि जनता पर निभनेवाले डाक्टरों और वैद्य-हकीमोंकी संख्या चौगुनी हो गयी है। इसका क्या कारण है ? प्रत्येक विचारशील व्यक्तिके लिए यह प्रश्न गम्भीरतासे विचारणीय है। जनताका स्वास्थ्य सुधरनेके बजाय खूब बिगड़ा है, जो रोग थे वे अधिक तीव्र हुए हैं और अनेक नये रोग पैदा हो गये हैं, इस ठोस सत्यसे भला कोई इनकार कर सकता है ? यह स्थिति केवल अहमदाबाद शहरकी ही नहीं है, परन्तु भारतके किसी भी छोटे-बड़े गाँवकी, कसबेकी और शहरकी ऐसी ही चिन्ताजनक स्थिति है। इसके लिए जिम्मेदार कौन है ? जो संस्था या

* सन् १९६३–६४ में आबादी १२,२३,०००, बजट ५,३२,६४,००० और रजिस्टर्ड चिकित्सकोंकी संख्या लगभग १,६०० थी और सन् १९६७–६८ में आबादी लगभग १४,६०,००० और बजट लगभग १०,४९,००,००० है और रजिस्टर्ड चिकित्सकोंकी संख्या उसी अनुपातसे लगभग ३,३०० होगी। सन् १९७१-७२ में आबादी १५,८५,५४४ और बजट १७, ०९, ५६, १७६ है। रजिस्टर्ड चिकित्सकों की संख्या मालूम नहीं हुई है।
—सम्पादक

वर्ग यह कहता है कि जनताके आरोग्यकी ज़िम्मेदारी उस पर है, वह रक्षक है, उसीकी सेवामें यह नग्न सत्य प्रस्तुत करता हूँ।

सन् १९०९ में गांधीजीने 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तक लिखा, जिसमें वकीलों और डाक्टरोंकी कड़ी आलोचना की गयी है। वकालत, डाक्टरी और वेश्यावृत्ति, इन तीनों पेशोंको उन्होंने एक कोटिका माना है। ४९ वर्ष पूर्व जब मैंने उनका चकित करनेवाला अभिप्राय 'हिन्द स्वराज' में पढ़ा, तब मुझे महसूस हुआ कि बापूजी जैसे सौम्य तथा सन्त पुरुष स्वयं बैरिस्टर होकर भी जब ऐसा कठोर अभिप्राय देते हैं तब उसमें कुछ तथ्य होगा ही। और गांधीजी तो सदा सत्यकी खोजमें रहे, अतः अपने बदले हुए विचार या अभिप्रायको, चाहे वह किसी कालका क्यों न रहा हो, तुरन्त प्रकट कर देते थे। परन्तु इस बारेमें उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। स्वानुभवसे भी मुझे गांधीजी-की इस मान्यतामें सत्यकी प्रतीति होती है। वकील, डाक्टर (वैद्य-हकीम) और वेश्या ये तीन मानव तो हैं ही। इसलिए उनकी मानवता जिस हद तक उनके पेशे पर प्रभुत्व जमाती है उस हद तक वे सज्जन और समाजके लिए उपकारी सिद्ध होते हैं। परन्तु जीवनभर का अनुभव तो यह बताता है कि धनार्थी वकालतने समाजके सामाजिक तथा नैतिक स्वास्थ्यका नाश किया है। और ऐसे ही चिकित्साके व्यवसायने जनताके शारीरिक स्वास्थ्यका सत्यानाश कर डाला है। थोड़े-बहुत जो सहृदय और सज्जन वकील-डाक्टर हैं, वे भी सूर्यके प्रकाश जैसी स्पष्ट इस बातको नहीं मानते हैं और यदि मानते हों तो वे रूढ़िके चक्कर और दलबन्दीमें से निकलते नहीं हैं, यही दुःखकी बात है।

इसलिए जनताको स्वयं सजग होना चाहिये और इस प्रगतिके युगमें समाजके बुद्धिजीवी लोग सामाजिक, नैतिक और शारीरिक स्वास्थ्यका जो उन्मूलन कर रहे हैं उससे अपनी रक्षा करनेके लिए प्रयत्नशील तथा कटिबद्ध होना चाहिये।

जले दिलसे उपर्युक्त कठोर तथा अप्रिय निवेदन करनेके लिए सहृदय पाठक मुझे क्षमा करें और उसमें रहे हुए सत्यका **दर्शन** और चिन्तन करें। '**सुज्ञेषु किं बहुना?**' अर्थात् बुद्धिमानोंके लिए इशारा ही काफ़ी है।

अन्तमें अपनी खास खुशीका ज़िक्र करना चाहता हूँ। **श्री मोरारजीभाई देसाई**, वित्तमन्त्री भारत सरकारने इस **पुस्तकके बारेमें अपना वक्तव्य** लिखकर मूत्रोपचारकी यथार्थताका **समर्थन किया है,** जिससे मुझे **बहुत प्रोत्साहन** मिला है और आनन्द भी। **भला** स्वजनका कहीं उपकार **माना** जाता है?

ता० ७–१२–'५८ **रावजीभाई मणिभाई पटेल**

प्रवर्तककी जीवन-झाँकी

श्री रावजीभाई मणिभाई पटेल बीसवीं सदीके एक प्रयोगवीर हुए हैं। उन्होंने सत्यनिष्ठा और समाज एवं देशसेवासे अपने जीवनको सार्थक किया है। वे शरीरसे बूढ़े होने पर भी दिलसे जवान थे। वे कर्मठता, कर्तव्यपरायणता, कार्यदक्षता आदि गुणोंसे लोकप्रिय हो गये थे। मूत्रोपचारके पुनरुद्धार एवं प्रचारसे वे अमर हो गये हैं। उनके जीवनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है।

जीवन-निर्माण — गुजरातके खेड़ा जिलेके चरोतर प्रदेशमें रावजीभाईका जन्म ता० २३–६–१८८८ को हुआ और वहीं उनका अध्ययनकाल व्यतीत हुआ। उन्होंने मोतीभाई अमीन जैसे प्रखर विद्वान तथा सज्जनसे शिक्षा और प्रेरणा प्राप्त की। सन् १९०७ में सूरतमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ, तभीसे उन्हें देशसेवाकी लगन लगी।

अफ्रीकामें गांधीजीके साथ — उसके बाद कौटुम्बिक परिस्थितिके कारण अध्ययनको अधूरा छोड़कर उन्हें दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा और वहाँ वे दुकानदार बने। परन्तु उस कामसे उन्हें सन्तोष न हुआ। उनके मनकी अभिरुचि देशसेवा तथा आत्मज्ञानकी ओर बढ़ने लगी। पू० गांधीजी उस समय अफ्रीकामें थे। उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करनेके लिए वे पत्रव्यवहार करते थे और आखिर १९१२ में वे फिनिक्स आश्रममें दाखिल हो गये। वहाँ रहकर उन्होंने सत्याग्रहकी लड़ाइयोंमें हिस्सा लिया और पूर्ण रूपसे आश्रमवासी तथा सत्याग्रही बन गये। युवावस्थामें इस प्रकार उनके जीवनका उत्तम निर्माण हुआ।

स्वदेश वापस आना — १९१५ के सालमें वे अपने चाचाकी बीमारीके कारण उनके साथ स्वदेश वापस आये और थोड़े समयके बाद ही वे अहमदाबादमें गांधीजीके सत्याग्रह आश्रममें रहने लग गये।

आज़ादीकी लड़ाई —— उसके बाद रावजीभाईके जीवनका इतिहास देशकी आज़ादीकी लड़ाईके इतिहासका एक भाग है। सभी लड़ाइयोंमें उन्होंने अगुआ बनकर भाग लिया और बारंबार जेलयात्रा की। आज़ादी मिलनेके बाद उन्होंने राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्रमें गांधीजीकी विचारधाराके अनुसार विविध प्रकारसे देश तथा समाजकी सेवा की।

सामाजिक सेवा —— गांधीजीके अवसानके बाद वे सामाजिक कार्यों तथा आध्यात्मिकताकी ओर अधिकाधिक झुकने लगे और गुजरातके सार्वजनिक जीवनमें जो जो विकार तथा दोष दिखायी दिये उनके विरोधमें निर्भयतासे उन्होंने अपनी आवाज़ उठाई। उन्होंने अपनी आवाज़को केवल आलोचना, निवेदन या प्रवचन तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु जो व्यक्ति या संस्था अपनी कठिनाई लेकर उनके पास आता, उसकी हर तरहसे मदद करनेका काम उन्होंने उठा लिया। इस कामको करनेमें वे किसीकी धाक और शरमकी परवाह नहीं करते थे। वे निःशंक तथा निर्भय होकर सहानुभूति तथा प्रेमसे प्रत्येककी कठिनाई या अन्यायको दूर करनेका प्रयत्न करते थे। इस प्रकार वे अनेक दुःखियोंके विश्राम तथा आश्वासनके धाम बन गये।

भारत सेवक समाजमें —— १९५३ में पंडित जवाहरलालजीकी प्रेरणासे श्री नंदाजीने भारत सेवक समाजकी स्थापना की, तब गुजरातमें उक्त समाजके कामकी ज़िम्मेदारी श्री रावजीभाईको सौंपी गयी, जिसे उन्होंने मरते दम तक निभाया। इस अरसेमें उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य शुरू किये। उन्होंने भारत सेवक समाज द्वारा लाँच-रिश्वत, जुआ, अन्याय और अन्य बुराइयोंके विरुद्ध बड़ा आन्दोलन शुरू किया। इस तरह वे अनेक छोटे-बड़े व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आये और भारत सेवक समाजके कार्यको बड़ा वेगवान् बनाया।

मूत्रचिकित्साका प्रयोग —— उनका दूसरा कार्य था मूत्रचिकित्साके प्रयोगका। जब वे अफ्रीकामें थे तभीसे पू० गांधीजीके आरोग्य सम्बन्धी नैसर्गिक उपचारके प्रति उनके हृदयमें दृढ़ श्रद्धा जम गयी थी। १९५४में

वे हृदयरोगसे आक्रान्त हुए। जब तब वे डाक्टरी उपचार करते, जिससे उन्हें कुछ आराम मिल जाता। काम करते रहने पर कभी-कभी उनकी तबीयत बिगड़ जाती। इस अरसेमें उनके हाथमें आर्मस्ट्रॉङ्गकी पुस्तक 'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' आई। विश्वास आ जानेसे उन्होंने स्वयं मूत्रप्रयोग किया और निकटके मित्रों, स्नेहियों और परिचितोंको बताया। अनेक लोगोंने भिन्न-भिन्न रोगोंको इस प्रयोगसे मिटाया। इस-लिए उत्साहित होकर उन्होंने समाचारपत्रोंमें इस प्रयोगके बारेमें लिखा। परिणामस्वरूप नज़दीक व दूरके विविध रोगोंसे पीड़ित व्यक्तियोंने पत्र द्वारा या प्रत्यक्ष मिलकर उनके परामर्श तथा मार्गदर्शनसे लाभ उठाया। आखिर उन्होंने जनकल्याणकी दृष्टिसे अपने तथा दूसरोंके अनु-भवोंके आधार पर 'मानवमूत्र' पुस्तक लिख डाली, जो मार्च १९५९ में प्रकाशित हुई। इस कार्यको व्यवस्थित करनेके लिए भारत सेवक समाजने उनकी सूचनासे इस कामको अपने हाथमें लिया।

इन प्रयोगोंको शुरू करनेमें और चालू रखनेमें श्री रावजीभाईने अत्यन्त नैतिक साहस प्रदर्शित किया है; क्योंकि शुरूसे ही अधिकांश डाक्टर या वैद्य इन प्रयोगोंकी अवगणना तथा विरोध करते आये हैं। कुछ समाचारपत्रोंने भी अनुचित ढंगसे इनका विरोध किया है। सद्भाग्यसे कुछ अच्छे डाक्टरों और वैद्योंने इन प्रयोगोंको तटस्थतासे जाँच करके इनकी उपयोगिताको मान्य किया है।

श्री रावजीभाई और भारत सेवक समाजका एकमात्र उद्देश्य यह है कि इन प्रयोगोंसे दरिद्र तथा दुःखी जनताकी सेवा की जाये।

श्री रावजीभाईके ता० २०–१–'६२ को चल बसनेसे यह कार्य अधूरा रहा है। मेरी विनय है कि उनके सम्बन्धी, मित्र, मूत्रप्रयोग में श्रद्धा रखनेवाले सभी व्यक्ति और समाजसेवक उनके अधूरे कार्यको पूरा करनेके लिए जी-जानसे प्रयत्न करें।

पन्नालाल बालाभाई झवेरी

अनुवादकका निवेदन

प्राणिमात्रको सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय। सुख-दुःखका सरल, सहज तथा सुन्दर लक्षण यह किया गया है:—

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुख-दुःखयोः ॥

(मनुस्मृति ४–१६०)

अर्थात् जीवन और तदुपयोगी साधन-सामग्रीकी स्वाधीनता सुख और पराधीनताका दुःख है। कहा और माना तो यह जाता है कि विज्ञानने मनुष्यजातिके लिए सुख-सुविधाओंके साधन पैदा किये हैं और आये दिन उनमें वृद्धि हो रही है। परन्तु ज़रा गम्भीरतासे विचार किया जाये, तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्यजातिको उन साधनोंने स्वार्थी तथा पराधीन बनाया है, जिससे उसके शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यकी बहुत हानि हुई है और हो रही है।

भारतीय संस्कृतिमें चार पुरुषार्थ माने गये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन पुरुषार्थोंकी साधना स्वस्थ शरीर द्वारा ही हो सकती है। इसलिए शारीरिक स्वस्थता जीवनकी प्रथम तथा अनिवार्य आवश्यकता है। स्वानुभवके आधार पर मेरा नम्र निवेदन है कि स्वमूत्र शरीरको नीरोग तथा स्वस्थ रखनेका सरल, सहज, स्वाधीन और सम्पूर्ण साधन है।

'मानवमूत्र' के वयोवृद्ध लेखक श्री रावजीभाई मणिभाई पटेलसे मेरा सामान्य परिचय तो सन् १९४३ में साबरमती (अहमदाबाद) सेन्ट्रल जेलकी चारदीवारीमें हुआ था और विशेष परिचय सन् १९६० में स्थानीय पंचशील सोसायटीमें स्थित उनके अपने भवनमें हुआ।

उन्हें जब यह मालूम हुआ कि मूत्रोपचारमें मेरी श्रद्धा तथा अनुभूति है तब उन्होंने अपनी लोकोपयोगी तथा लोकप्रिय पुस्तक 'मानवमूत्र' का हिन्दी भाषान्तर करनेके लिए मुझसे कहा, जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार किया। लोक-कल्याणकारी कार्यमें सहयोग देना तो जीवनको सार्थक करना है।

सन् १९६०के मई मासमें उपर्युक्त पुस्तकका चौथा गुजराती संस्करण प्रकाशित हुआ था। उसी संस्करणकी एक प्रति मुझे दी गयी और मैंने १५ जूनको अनुवादका श्रीगणेश कर दिया। श्री रावजीभाई तो चाहते थे कि चार छः मासमें ही हिन्दी संस्करण प्रकाशित हो जाये। इसके लिए उन्होंने अनेक बार मुझे सावधान भी किया। परन्तु मैं उन्हें 'सहज पके सो मीठा हो' की याद दिलाता रहा। उनकी धीरता और उदारताके कारण ही मैं अभीष्ट कार्य अभीष्ट ढंगसे कर सका, जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

हिन्दी संस्करणकी विशेषता

अनुवाद मुख्यतः भावात्मक है और कहीं कहीं तो आशयको ध्यानमें रखकर स्वतन्त्र भी लिखा है। अनुवाद पूर्ण होने आया कि विचार आया —— विषय तथा प्रकरणोंको क्रमबद्ध और व्यवस्थित किया जाये। अतः रावजीकाकासे निवेदन किया और उन्होंने मेरे विचारको मान्य किया। मेरा कार्य बढ़ा और उत्साह भी।

यों तो सारी पुस्तकको क्रमबद्ध और व्यवस्थित करनेका भरसक प्रयत्न किया है, परन्तु प्रथम और तृतीय खण्डके प्रकरणोंको व्यवस्थित करनेके लिए खूब काट-छाँट की गयी है। रोगियोंके विवरणोंको आगे पीछे किया गया है और प्रकरणोंके नाम तक बदल दिये हैं। जैसे हृदय-रोगके भिन्न-भिन्न रोगियोंके विवरण 'हृदयके रोग' नामक प्रकरणमें दिये गये हैं। इसी प्रकार क्षय, कैन्सर आदिके रोगियोंके विवरण उस नामके प्रकरण में दिये हैं, जिससे मूल पुस्तकका संकलन बहुत व्यवस्थित हो गया है। बादमें गुजराती और अंग्रेज़ी संस्करण भी हिन्दी संस्करणके अनुसार तैयार हुए हैं।

आभार

विद्वान तथा सहृदय मुनि श्री नेमिचन्द्रजीने अनुवाद तथा संपादन कार्यमें मेरी हर तरह और हर समय मदद की है। उन्हींके सहयोग तथा परामर्शसे मैं हिन्दी संस्करणको यह रूप दे सका हूँ। कार्यके दौरान उनसे इतनी आत्मीयता हो गई है कि उनका आभार माननेका दुःसाहस करना धृष्टता होगी।

योगाभ्यासी वैद्य श्री रामरतनदासजी, नेत्र-विशेषज्ञ डॉ. गोविन्द-भाई पटेल, सहृदय डॉ. टी. आर. सावन और आयुर्वेद महाविद्यालय, सूरतके आचार्य श्री बापालाल ग. वैद्यने चिकित्साशास्त्र सम्बन्धी विषयको समझानेमें मेरी विशेष सहायता की है; जिसके लिए उन सबका मैं हार्दिक आभार मानता हूँ। और भी अनेक स्नेहियोंने मेरी कुछ न कुछ मदद की है, अतः उनका भी मैं आभारी हूँ।

स्वानुभव

अब मेरी आयुके ७८ बसंत बीत चुके हैं। सन् १९४९में मुझे गठियाकी व्याधि हो गई थी, जिससे लगभग १० वर्ष तक पीड़ित रहा। अपने मित्र डॉक्टर शिवव्रतलाल औदीच्यसे होमियो-पैथिक दवा लेता रहा। लगातार खुराकें खानेसे कुछ समयके लिए तो काफी आराम हो जाता, परन्तु फिर वही पीड़ा शुरू हो जाती और कभी बढ़ भी जाती। आखिर सन् १९५८–५९में मेरी व्याधिने उग्र रूप धारण कर लिया। घुटनोंका दर्द इतना बढ़ गया कि एकाध मील कछुवेकी गतिसे चल पाता। खानेके समय पलथी लगाकर बैठना मुश्किल हो गया और शौचके समय पैरोंके बल पर बड़ी मुश्किलसे बैठ पाता।

मैं कार्यवश हरिजन आश्रम गया। वहाँ गूजरात विद्यापीठके भूतपूर्व सहयोगी श्री नारायण ओधवजी सलारियासे अकस्मात् भेंट हो गई। मूत्रप्रयोग सम्बन्धी उनके प्रेरक अनुभव सुनकर अंग्रेजी पुस्तक 'दी वाटर ऑफ लाइफ' पढ़ी और मूत्रप्रयोग आजमानेका

निश्चय किया। अपने होमियोपैथ मित्रके परामर्शसे ८ नवम्बर, '५९ को जलकी भाँति स्वमूत्रका उषापान किया, क्योंकि मनमें उसके प्रति घृणा न थी, श्रद्धा थी। दिनमें तीन-चार बार मूत्रपान करने लगा, जिसकी पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि कुछ दिनों तक रोजाना दस्त जैसी तीन-चार टट्टियाँ आती रहीं और पेट साफ रहने लगा। फिर श्री रावजीभाईके परामर्शसे १९ नवम्बरको मूत्रमालिश भी शुरू कर दी। करीब दो मास बाद एक और प्रतिक्रिया हुई। मुख्यतः टाँगों पर सफेद मुँहकी छोटी-बड़ी फुंसियाँ निकलने लगीं। श्री रावजीभाई की सूचनासे पन्द्रह दिनके लिए नमक छोड़ देनेसे उनका निकलना बन्द हो गया। जोरसे मूत्रमालिश करनेसे फुंसियाँ फूट जातीं और फिर धीरे-धीरे नष्ट हो जातीं। इस अरसेमें एक खास बात यह हुई कि मैंने एक बड़ी फुंसी पर मरहम लगा दिया, जिससे वह मिट तो गई, पर अपना दाग छोड़ गई। और किसी फुंसीका कोई दाग नहीं है। इससे यह फलित होता है कि मूत्रोपचारके समयमें अन्य कोई भी उपचार करना ठीक नहीं है।

लाभ

१. मेरी दायीं पलक पर सरसोंके दाने जितना एक मस्सा था, जो २४ नवम्बर, '५९को अर्थात् सोलह दिनमें इतना सूख गया कि उँगली लगते ही झड़ गया और मूत्र लगाते ही खूनका निकलना बन्द हो गया।

२. सिरके बालोंका गिरना बन्द हो गया।

३. मलशुद्धि ठीक होती है, पेट साफ रहता है और भूख अच्छी लगती है।

४. सर्दीमें मेरी चमड़ी सूखी हो जाती थी और फट जाती थी, जिसके लिए रोजाना तेलकी मालिश करनी पड़ती थी। मूत्रमालिश से वह इतनी चिकनी और कोमल हो गई है कि अब पंजाबकी सर्दी में भी तेलकी मालिश करनेकी जरूरत नहीं रही।

५. हाथ-पाँवों और कन्धोंकी हड्डियाँ दर्द नहीं करतीं। पलथी लगाकर काफी समय तक बैठ सकता हूँ और पद्मासन भी कर सकता हूँ।

६. मूत्रमालिशसे शरीरकी एक छोटी गाँठ मिट गई है। शरीर पर झुर्रियाँ नहीं पड़ी हैं, जिसके श्रेयके अधिकारी हैं शिवाम्बु और योगासन।

आज भी प्रतिदिन दो-चार बार शिवाम्बु पीता हूँ और नहाते समय उससे मालिश भी कर लेता हूँ। स्नानसे पूर्व रातके रखे हुए शिवाम्बुसे आँखें धोता हूँ, नाकमें सुड़क कर ४-५ बार चढ़ाता हूँ और निकाल देता हूँ, गरारे एवं नेति करता हूँ तथा मसूड़ों पर घिसता हूँ। सर्दी, जुकाम और सिर दर्दसे मुक्त रहनेके लिए उपर्युक्त क्रियाएँ प्रत्येक व्यक्तिको करनी ही चाहिये। शिवाम्बु मेरे लिए अंजन, मंजन, तेल-साबुन और दु:ख-भंजन सिद्ध हो रहा है और अपने नामको सार्थक कर रहा है।

गुजरात संयुक्त सदाचार समितिका मासिक है 'सदाचार निर्माण,' जिसके प्रत्येक अंकमें शिवाम्बुचिकित्सासे लाभ उठानेवाले रोगियोंके विवरण प्रकाशित होते रहते हैं। उनमेंसे कुछ विशेष महत्त्व-पूर्ण विवरण पुस्तकके अन्तमें 'शिवाम्बुकी नई उपलब्धियाँ' शीर्षकसे दिये गये हैं। कुछ नई उपलब्धियाँ तो वस्तुत: बड़ी चमत्कारी हैं। इससे यह फलित होता है कि शिवाम्बुचिकित्सा सर्वथा एवं सदा कल्याण-कारी है। काश! भारतकी दरिद्र जनता इससे पूरा लाभ उठाये।

विनय

अन्तमें पाठकवृन्दसे रामभक्त गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें निवेदन है –

जड़-चेतन गुण-दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
संतहंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारिविकार॥

अहमदाबाद
१ जनवरी, १९८१

हंसराज

अनुक्रमणिका

प्रथम खंड : मूत्रोपचारका तात्त्विक विचार

द्वितीय खंड : पुनरुद्धारकके अनुभव

तृतीय खंड : सर्वानुभवकी कसौटी पर

चतुर्थ खंड : चिकित्सकोंकी दृष्टिमें

पंचम खंड : शिवाम्बुकी नई उपलब्धियाँ

आरोग्यका अमूल्य साधन
शिवाम्बु – स्वमूत्र

प्रथम खंड

मूत्रोपचारका तात्त्विक विचार

सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥

सत्यकी ही जय होती है, असत्यकी नहीं। जिस मार्गसे कृतार्थ ऋषिगण जाते हैं, और जहाँ उस सत्यका परम निधान है, देवोंका वह मार्ग हमारे लिए सत्यके द्वारा ही खुलता है।

१

अगोचर शक्ति

प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यम्
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण।
यन्नेति नेति वचनै र्निगमा अवोचु-
स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ।।

जो मन और वाणीके लिए अगोचर है, जिसकी कृपासे सभी तरहकी वाणी प्रकट होती है, वेद भी जिसका वर्णन 'यह नहीं, यह नहीं' कहकर ही कर सके हैं, जिसे ऋषियोंने देवोंका देव, अजन्मा, अच्युत और सबका आदि कहा है, सवेरे उठकर मैं उस ब्रह्मका भजन करता हूँ।

वही ब्रह्म मेरे हृदयमें भी विराजमान है। उस अन्तर्यामीका स्मरण करके मैं अपने कार्यका श्रीगणेश करता हूँ। और मेरी नम्र प्रार्थना है कि वह कृपासागर मेरे जैसे वामनको उच्च तथा विशाल दृष्टि दे। क्षणभरमें हज़ारों मीलकी दौड़ लगानेवाले मनकी पहुँचसे भी जो परे है, भला वह चक्षुका विषय हो सकता है? ऐसे ब्रह्मकी लीलाको कौन समझ सकता है? मनुष्य चाहे गर्व करे, परन्तु उसकी दृष्टि कितनी? उसकी दृष्टि तो कुएँके मेंढक जितनी! उसने अपनी मर्यादित दृष्टिसे उस अगोचर तथा अगम्य शक्ति — ब्रह्मके भिन्न-भिन्न नाम रखे हैं। एक भक्त कविने ठीक ही कहा है :—

बाबा, नाहीं दूजा कोई।
एक अनेकन नाम तुम्हारे, मो पै और न होई,
अलख इलाही एक तू, तू ही राम, रहीम;
तू ही मालिक, मोहना, केसो नाम करीम।

साईं सरजनहार तू, तू पावन, तू पाक;
तू कायम करतार तू, तू हरि हाजिर आप।
अविगत अल्लाह एक तू; गनी गुसाईं एक;
अजब अनूपम आप है, 'दादू' नाम अनेक।

विश्वमें जो अगोचर तथा अगम्य शक्ति ओतप्रोत होकर काम कर रही है, वही कभी अंशावतारके रूपमें प्रगट होती है, कभी पैग़म्बर बनती है, कभी ईसा और कभी अन्य धर्मप्रवर्तकका रूप लेती है। सभी अवतारी मनुष्य देशकालकी परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न धर्मोंकी स्थापना करते हैं। भिन्न-भिन्न धर्म उपासनाके भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। इसलिए विश्व भरकी प्रजा उस उस धर्मके द्वारा उसी अगम्य शक्तिकी शरणमें जाती है।

श्रीकृष्ण द्वारा दी गयी दिव्य दृष्टिसे अर्जुनने विश्वका जो विराट् दर्शन किया, उसमें अनेक प्राणियों और पदार्थोंके समूह दिखायी दिये, हज़ारों सूर्यका तेज दिखायी दिया, सारा भूमंडल और आकाश दिखायी दिया। और ब्रह्माके भी आदि कर्ता, देवाधिदेव, सत् तथा असत्से पर, आदि देव, विश्वके परमनिधान इत्यादि विशेषणोंसे अर्जुनने उस ब्रह्मकी स्तुति की। फिर भी उस शक्तिके आदि, मध्य और अन्तको वह देख नहीं सका। देखता भी कैसे? जो अनादि है उसका आदि कहाँसे हो? जिसका आदि नहीं उसका मध्य कहाँसे हो, और जब मध्य नहीं तो उसका अन्त भी कहाँसे हो? ऐसी अगोचर तथा अगम्य शक्तिकी शरणमें अर्जुनने परम शान्ति प्राप्त की; क्योंकि वह अगम्य शक्तिकी शरण लेकर तद्रूप हो गया अर्थात् अगम्य शक्तिमें आत्मसमर्पण करनेसे अगम्य शक्ति गम्य हो सकी। वह किस तरहसे गम्य हुई, आइये, इसपर विचार करें।

२

ईश्वरकी लीला

ईश्वर अगोचर, अगम्य, अनादि तथा अविनाशी है, यह सब तो ठीक, परन्तु वैसा ही बना रहनेका अर्थ क्या? इसमें उसे भी क्या मज़ा? क्या आनन्द? उसे गोचर होना ही चाहिये, गम्य होना ही चाहिये, अन्यथा इस विश्वरचनाका कुछ अर्थ नहीं। इसलिए उसने लीला की। ईश्वरकी लीला है सृष्टि। सृष्टिमें सब कुछ ही आ जाता है। पृथ्वीके अतिरिक्त आकाशमें अनेक ब्रह्मांड हैं; तारे, चन्द्र तथा सूर्य, ये सभी उसमें आ जाते हैं। खेचर, जलचर और भूचर सभी प्राणी उसीमें समाविष्ट हैं। स्थावर या जंगम, छोटे-बड़े पदार्थ, इन सबका समावेश उसमें होता है। यह है ईश्वरकी सृष्टि। जिसके द्वारा अगोचर तथा अगम्य ईश्वर गोचर तथा गम्य बना। जैसे कवि अपनी कवितामें है, शिल्पी अपने शिल्पमें है, चित्रकार अपने चित्रमें है, वैसे ही ईश्वर अपनी सृष्टिके अणु-अणुमें है। और जैसे वह संपूर्ण है वैसे ही उसकी सृष्टि या उसका छोटा-बड़ा अंग संपूर्ण है। हम अपूर्ण और हमारी दृष्टि अपूर्ण, तो फिर उसकी पूर्णताको हम कैसे पा सकें? हम प्रकृतिकी समीपता साध नहीं सके। हम प्रकृतिके साथ तद्रूप नहीं हो सके। हम उससे बहुत दूर हैं। जितने उससे दूर हैं उतने उससे अज्ञान हैं। जहाँ अज्ञानता हो वहाँ रसिकता कहाँसे हो? वहाँ तन्मयता कहाँसे हो? यदि रसिकता न हो, तन्मयता न हो, तो यह स्वाभाविक है कि प्रकृति हमें उग्र, भयंकर और तुच्छ प्रतीत हो। जब हम प्रकृतिके स्रष्टाकी शरणमें होते हैं, तभी प्रकृतिमें हमारा विश्वास होता है और उसके साथ हमारी तद्रूपता हो सकती है। हमारे हृदयपटल पर यह अंकित हो जाना चाहिये कि प्रकृतिका

छोटा या बड़ा, सौम्य या भयंकर अंग हमारा ही अंग है। ऐसी श्रद्धाके साथ वैसी प्रतीति भी करनी चाहिये।

'**यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे**' का पाठ तो हम रट डालते हैं, परन्तु न तो उसमें हमारी श्रद्धा होती है और न ही उसकी प्रतीति करनेकी तड़प होती है। इसलिए हम दीन ही बने रहते हैं और प्रकृतिके साथ एकरूपता नहीं साध सकते। हम यह कहते तो जरूर हैं कि विश्वके सभी जीवोंमें एक ही नियंता बस रहा है; फिर भी हमें अपने कथनमें विश्वास नहीं है और इस मान्यताको हमने अपने जीवनमें चरितार्थ नहीं किया है।

सन् १९१० के सालकी बात है। मैं बम्बईसे दक्षिण अफ्रीका जानेके लिए एक जर्मन स्टीमर में सवार हुआ। एक दिन जहाज जब समुद्रके ऐन बीचमें जा रहा था, तब मैं स्टीमरके अगले डेक पर प्रभुलीलाका मजा लूट रहा था। उस वक्त मेरे साथ एक जर्मन सज्जन बैठे थे। उन्होंने मुझसे एकाएक पूछा—"आप तो हिन्दू हैं न?" "हाँ, मैं हिन्दू हूँ", मैंने जवाब दिया। उन्होंने पूछा—"आप मांस नहीं खाते?" "नहीं खाता। मैं तो बिल्कुल शाकाहारी हूँ।" "आप मांस क्यों नहीं खाते?" उन्होंने प्रश्न किया। "इस-लिए कि जिस प्राणीका मांस खाया जाता है वह भी हमारी तरह प्राण रखता है, सुख-दुःखका अनुभव करता है। हिन्दू धर्म मानता है कि सभी प्राणियोंमें एक ही आत्मा रहती है, और मैं इस मान्यतामें श्रद्धा रखता हूँ।" मैंने निष्ठा तथा दृढ़ताके साथ उत्तर दिया।

वे मेरी ऐसी बात सुनकर कुछ मजाकमें बोल उठे—"तब तो आपको भी किसी दिन उस मछलीका अवतार लेना पड़ेगा, ठीक है न?" मैंने निश्चयपूर्वक कहा—"मछलीके रूपमें मैं भूत-कालमें था अथवा भविष्यकालमें होऊँगा, इसका तो मुझे पता नहीं, पर मैं अपने धर्मकी दृष्टिसे यह अवश्य जानता हूँ और मानता हूँ कि मुझमें और उसमें एक ही तत्त्व ओतप्रोत है।"

यह प्रकरण लिखते हुए मुझे उक्त प्रसंग याद आ गया और इस दृष्टिसे मछली या मगर-मच्छ, सिंह और व्याघ्र जैसे हिंसक प्राणी अथवा नाग और साँप जैसे ज़हरीले प्राणी एक ही कोटिके माने जाने चाहिये। साथ ही सृष्टिमें आकार पाये हुए स्थावर या जड़ पदार्थ भी प्रकृतिके एक अविभाज्य अंग माने जाने चाहिये। ऐसा जाननेवाले और अनुभव करनेवालेको यह सृष्टि सुन्दर, सौम्य और सत्, चित्, आनन्दसे परिपूर्ण लगती है।

ऐसे विचारमें रमण करनेवालेको यह बात स्पष्ट मालूम होगी कि जैसे सृष्टिका निर्माता संपूर्ण है वैसे उसकी रची हुई सृष्टिका प्रत्येक अंग संपूर्ण तथा स्वाश्रित है। कलाकार संपूर्ण होता है तो उसकी कला भी संपूर्ण होती है, इसी प्रकार विश्वका निर्माता संपूर्ण है तो उसकी सृष्टिका प्रत्येक अंग भी संपूर्ण होना चाहिये।

देखिये, खोज निकालिये कि सृष्टिमें कोई भी जीव ऐसा है कि जिसके जन्मके साथ उसके जीवनकी सभी जरूरतें तैयार न हों? कई बार नया जन्म लेनेवालेके शरीरमें कुछ-न-कुछ कमी मालूम होती है, वह तो उसे जन्म देनेवाली माता या अन्य पार्थिव दोषके कारण होगी। प्रकृतिने जीवमात्रके शरीरकी रचना संपूर्ण और स्वाश्रित बनायी है।

हम मानव-जन्मको ही लें। प्रभुने बालकको जन्म दिया और साथ ही उसकी खुराकके लिए माताके स्तनोंमें दूध दिया। माताके दूधमें विकृति न हो, माता संयमी तथा मिताहारी हो, तो उसके स्वस्थ तथा स्वच्छ दूधसे बालकका पोषण होता रहता है और उसका विकास भी। फिर भी माता-पिताके किसी अनाचारसे दूधमें विकृति आ जाये और जिससे बालकमें कोई व्याधि पैदा हो जाये, तो उससे छुटकारा पानेके लिए ईश्वरने उस बालकको साधन दिया ही है, और वह है बालकका अपना मूत्र। प्रकृतिने उसे इस अमूल्य साधनके साथ इस भूलोकमें भेजा है। इसलिए मैंने लिखा है कि जैसे ईश्वर संपूर्ण है, वैसे ही उसकी सृष्टिका छोटा-सा अंग भी संपूर्ण और स्वाश्रित है।

३

प्रकृति और बुद्धि

ईश्वरकी सृष्टिमें मनुष्य एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जीव-सृष्टिमें मनुष्यका स्थान सर्वोत्तम माना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि मानव-जीवनमें ही प्रकृतिके साथ तद्रूपता हो सकती है अर्थात् ईश्वरके साथ एकरूपता सध सकती है। इस स्थितिको प्राप्त करनेके लिए ईश्वरने मनुष्यको दो मुख्य साधन दिये हैं -- मन और बुद्धि। सामान्यत: मन मनुष्यमें एक नियामक शक्ति है और बुद्धि मनका अन्तिम निर्णय करनेवाली शक्ति है।

मनके निर्णयका आधार आसपासकी परिस्थिति, संपर्क, पुरुषार्थ और पूर्व संस्कारों पर भी रहता है। बुद्धिका यह काम है कि वह मनके संकल्प-विकल्पोंको पूरा करनेकी योजना बनाये। दूषित वातावरणसे घिरा हुआ मन अच्छी बुद्धिको भी अपने साथ घसीट ले जाता है। परन्तु मन अपने सुसंस्कारोंके कारण प्रकृतिके नियत नियमोंमें श्रद्धा तथा प्रीति रखता हो, तो बुद्धि मनको प्रकृतिकी रचनाका अर्थात् प्रकृतिके निर्माताकी सृष्टिका सहायक बनानेमें मदद करती है। और मन अपने कुसंस्कारों या खराब संपर्कके कारण प्रकृतिमें श्रद्धावान् न हो, तो बुद्धि उसे प्रकृतिके सामने मोरचाबन्दी करनेमें तथा प्रकृतिकी स्पर्धा करनेमें सहायता करती है। संस्कार जैसे व्यक्तिगत होते हैं वैसे ही समूहगत भी। समूहगत संस्कारोंके आधार पर भिन्न-भिन्न संस्कृतियोंका निर्माण होता है, जैसे पूर्वकी संस्कृति और पश्चिमकी संस्कृति।

प्रकृतिके स्रष्टाके नामसे धर्मप्रवर्तकोंने तो अपनी धर्माज्ञाओंमें स्पष्ट शब्दोंमें आदेश दिया है -- "तू अपनी रोज़ी पसीनेकी कमाईसे खा। तुझे दो हाथ और दो पाँव दिये हैं। जो यज्ञार्थ पुरुषार्थसे नया

पैदा करके नहीं खाता है वह चोर है और जो ऐसे अन्नका खुद ही उपभोग करता है वह पापी है।" प्रत्येक धर्मके सच्चे अनुयायी इस आदेशका पालन करते हैं। तब एक प्रश्न खड़ा होता है कि यदि मेहनत करके अपना निर्वाह करनेके लिए मनुष्यको दो हाथ और दो पैर दिये हैं तो फिर बुद्धिका क्या उपयोग?

प्रत्येक धर्मके सन्त पुरुषने इसका उत्तर यह दिया है कि बुद्धि तो प्रकृतिके सहकारके लिए है अर्थात् किसी भी कारणसे प्रकृतिके किसी अंगमें कोई दोष या कमी आ जाये तो उसे दूर करनेमें सहायता करनेके लिए ईश्वरने मनुष्यको बुद्धि प्रदान की है। बुद्धिका उपयोग परोपकार तथा परसेवाके लिए हो तो यह संसार गुलज़ार बन जाये। बुद्धिका उपयोग केवल स्वार्थके लिए हो तो यह विश्व श्मशान बन जाये। परार्थ बुद्धिसे प्रकृति संतुलित तथा सुन्दर बनती है और स्वार्थ-बुद्धिसे प्रकृति विषम तथा कुरूप बनती है, और मनुष्यजाति पर ही नहीं, अपितु जीवमात्र पर आफ़त आती है। परन्तु बुद्धिके उपयोगके आधार हैं मनके संस्कार। मन सुसंस्कारी हो, विवेकी हो, तप और त्यागकी भट्टीमें तपकर शुद्ध हुआ हो, तो बुद्धिका उपयोग मानव-जातिके कल्याणके कार्यमें होगा! किन्तु मन स्वेच्छाचारी हो, महत्त्वा-कांक्षी हो, सत्तालोलुप हो तथा कामी, लोभी और क्रोधी हो, तो वह अपनी बुद्धिका उपयोग मानवजातिका सत्यानाश करनेमें करेगा।

उपर्युक्त विचारसे यह फलित होता है कि प्रकृति और प्रकृतिके कल्याणकारी नियमोंके अधीन रहकर यदि मन अपनी बुद्धिका उपयोग करता है, तो बुद्धि प्रकृतिके लिए सहायक सिद्ध होती है, जीव मात्रके लिए उपकारी सिद्ध होती है और संसारकी श्रेष्ठ सेवा करती है। परन्तु आज हम क्या देखते हैं? मनके विकासके साथ-साथ बुद्धिका भी अद्भुत विकास हुआ है। वह इतनी शक्तिशाली हो गयी है कि उसकी सिद्धियाँ देखकर जनसाधारण चकित हो जाता है। बुद्धिने प्रकृतिकी शक्तिका अध्ययन किया, उसके गुण-दोषको जाना और उसमेंसे

नयी नयी शक्तियाँ पैदा कीं। उससे प्राप्त की हुई सामर्थ्य द्वारा बुद्धिने उसीके सामने मोरचा लगाया है। वह सामर्थ्य है विज्ञान। विज्ञान विकसित बुद्धिका अद्‌भुत परिणाम है।

गत महायुद्धमें अणुबम द्वारा की गयी हीरोशीमाकी संहार-लीलाके स्मरणमात्रसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उस संहार-लीलासे यह बात एकदम स्पष्ट है कि इस अणुयुगमें मानव, पशु-पक्षी और वनस्पति कितने अरक्षित हैं! अत्यन्त खेदका विषय है कि फिर भी विश्व सो रहा है और अणुयुद्धके स्वप्न देख रहा है। उसी विज्ञानने हमारे जीवनक्षेत्रमें विनाशकताके बीज बो दिये हैं। यह हमारे जीवनको सुविधाप्रिय और आरामतलब बनाता जा रहा है और सत्य, अहिंसा, धैर्य, तितिक्षा, सहिष्णुता, सादगी, श्रमशीलता आदि सात्त्विक गुणोंका नाश कर रहा है। दिन-प्रति-दिन हम उस विनाशक विज्ञानकी दिशामें अंधी दौड़ लगा रहे हैं।

४

मूत्रप्रयोगकी परंपरा

पूर्वी परंपरा

दूसरे प्रकरणमें हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि स्रष्टाकी तरह सृष्टिका छोटा-बड़ा अंग भी संपूर्ण है। और ईश्वरने जीवमात्र-की शारीरिक रचनाको संपूर्ण तथा स्वाश्रित बनाया है और उसे अपने रोगोंकी निवृत्ति और स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए अमूल्य साधन अर्थात् मूत्र प्रदान किया है। चौपाये पशु जो हमारे संपर्कमें आते हैं, उन्हें देखनेसे यह साफ पता चलता है कि प्रकृतिने उनके शरीरकी रचना ही ऐसी की है कि उनकी जीभ मूत्रेन्द्रिय तक पहुँच जाती है और वे सहज भावसे अपने मूत्रका उपयोग करके अपने स्वास्थ्यकी रक्षाका प्रयत्न करते हैं।

प्राचीन भारतकी संस्कृतिके इतिहाससे यह मालूम होता है कि मनुष्य भी मूत्रके उपयोगसे अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करते थे। अयुक्त आहारसे, असंयमसे, दुर्व्यसनसे, अनियमित रहन-सहनसे, अतिशय श्रम या श्रमहीन जीवनसे अथवा किसी अन्य कारणसे यदि मनुष्य किसी रोगका शिकार हो जाते थे, तो उस कारणको दूर करके मूत्रप्रयोगसे अपने रोगका नाश करते थे। पचास बरस पहले अपने देशमें घर-घर वृद्ध दादियाँ वनस्पति या खनिज क्षारोंसे बच्चों और बड़ोंके बिगड़े हुए स्वास्थ्यको ठीक कर लेती थीं। इसी तरह प्राचीन कालमें मूत्र शारीरिक रोगोंको दूर करनेका एक घरेलू उपचार था। पुराणकालमें लिखी गयी संस्कृत पुस्तक 'शिवाम्बुकल्प'में मूत्रके माहात्म्यका वर्णन है। उसकी शैली पौराणिक है और शिवजी तथा पार्वतीके संवादके रूपमें है। उसमेंसे कुछ उपयोगी अंश मैं नीचे दे रहा हूँ:—

"हे पार्वती! अब मैं तुझे क्रियाकी सिद्धिको देनेवाले और शास्त्रके जानकारों द्वारा प्रयत्नपूर्वक बताये हुए पात्रोंके बारेमें कहता हूँ। सोनेका, चांदीका, तांबेका, कांसेका, पीतलका, लोहेका, जस्तेका, मिट्टीका, काचका, बांसका, बेलका; शंख, सांप या हड्डीका, चमड़ेका और पत्तोंका बना हुआ पात्र हो। इनमेंसे किसी भी प्रकारके पात्रमें साधक शिवाम्बुको धारण करे। हे देवी! मिट्टीका पात्र उत्तम और ताबेका सर्वोत्तम है।

"खारे और तीखे पदार्थ न खानेवाला, श्रमरहित और जितेन्द्रिय साधक रातको भूमि पर सो जाये। चौथे पहरमें उठकर विवेकी तथा उच्च आशयवाला साधक पूर्व दिशाकी ओर मुख करके मूत्रोत्सर्ग करे और आदि तथा अन्तकी धाराको छोड़कर मध्यकी धाराको ग्रहण करे, क्योंकि मूत्रपानका यह उत्तम प्रकार है। जैसे साँपके मुँह और पूँछमें ज़हर होता है, वैसे ही मूत्रधाराके विषयमें यही बात प्रसिद्ध है। शिवाम्बु दिव्य अमृत है, वृद्धावस्था और रोगका नाश करनेवाला है। उसका पान करके योगी अपनी साधना करता है।"

आगे चलकर शिवाम्बु पीनेकी विधि और उसका फल बताया है। उसमें पौराणिक पद्धतिके अनुसार बहुत अतिशयोक्ति मालूम होती है। उसके सावधिक (अमुक समय तक) उपयोग करनेसे जो जो लाभ होते हैं, वे इस प्रकार हैं:—

"सबसे पहले मुखशुद्धि करके आवश्यक क्रियाएँ करनेके बाद जन्मरोगके नाशक तथा निर्मल शिवाम्बुके पानका प्रयोग एक मास तक करनेसे अन्तर निर्मल होता है।"

फिर उसमें बारह मासके प्रयोगसे लेकर बारह बरसके प्रयोगसे मिलनेवाली सिद्धियोंका उल्लेख है, जिनका विवरण यहाँ देनेकी ज़रूरत नहीं है। अपना प्रयोजन तो शारीरिक स्वास्थ्यसे है।

शिवाम्बुकल्पमें अन्यत्र इस प्रकार लिखा है:—

"जो योगी प्रातः शिवाम्बु नाकसे लेता है, उसके वात, पित्त और कफके रोग नष्ट हो जाते हैं, जठराग्नि प्रदीप्त होती है और शरीर अति बलवान बनता है।

"दिनमें तीन बार और रातमें तीन बार जो शिवाम्बुसे शरीरकी मालिश करता है वह दीर्घायु होता है, उसके सभी अंगोंके जोड़ मज़बूत हो जाते हैं और सर्वथा रोगरहित होकर परम आनन्द प्राप्त करता है।

"अहोरात्र शिवाम्बुसे तीन बार अंग-मर्दन करनेवालेकी काया सुनहली और सुन्दर हो जाती है।

"हे पार्वती! जो तीन वर्ष तक एक बार शिवाम्बुका पान करता है और शिवाम्बुसे मालिश करता है, उसका शरीर महापराक्रमी तथा अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है, वह कला तथा विज्ञानसे युक्त होकर वाक्सिद्धिको प्राप्त करता है और जब तक चाँद-तारे हैं तब तक जीता है।"

उपर्युक्त अवतरणोंमें प्रतीत होनेवाली अतिशयोक्तियोंको छोड़ देने पर भी निम्नलिखित बातें फलित होती हैं, जिन्हें स्वीकार करनेमें किसीको भी आपत्ति नहीं हो सकती।

(१) मूत्रोपचार कोई नयी खोज नहीं है।
(२) सैकड़ों बरस पहले भारतवर्षमें यह उपचार प्रचलित था।
(३) मूत्रके उचित उपयोगसे किसी भी भूल या दोषसे खोया हुआ शारीरिक स्वास्थ्य पुनः प्राप्त किया जा सकता है और स्वास्थ्यको बनाये रखा जा सकता है।

इसी पुस्तकमें यह वर्णन भी है कि भिन्न-भिन्न अनुपानके साथ मूत्रका सेवन करनेसे भिन्न-भिन्न रोग नष्ट हो जाते हैं; जिससे हमें कुछ वास्ता नहीं है। परन्तु उस वर्णनसे यह निश्चित सार तो निकाला जा सकता है कि सभी रोगोंको मिटानेकी शक्ति मूत्रमें है। इस पुस्तकके उल्लेखके अतिरिक्त यह बात सुविदित है कि हमारे योगी आत्मदर्शन तथा योगसिद्धिसे पहले अपने शरीरको पूर्ण स्वस्थ तथा

नीरोग बनानेके लिए मूत्रका ही उपयोग करते थे। दक्षिणमें बरसों तक योगसिद्ध महात्माओंके पास रहकर योगसिद्ध होनेवाले मेरे एक मित्रने मेरे स्वानुभवका लेख पढ़कर तुरन्त मुझे पत्र लिखा था, जिसका आशय यह है कि उन्होंने भी अपनी साधनाके कालमें मूत्रप्रयोग किया था। मूत्रप्रयोगसे न केवल शरीर ही स्वस्थ और नीरोग बनता है, किन्तु इन्द्रियों और मनको निर्विकार बनानेमें भी मदद मिलती है। और यदि इस प्रयोगमें भगवानका स्मरण होता रहे और उसकी प्रार्थना तथा भक्तिमें चित्त सदा लीन रहे तो सफलता मिलती ही है। उन्हें अपने गुरुसे इस प्रकारका प्रयोग करनेकी आज्ञा मिली थी, जिसे उन्होंने पूरी श्रद्धा और किसी भी प्रकारके संकोचके बिना स्वीकार किया। शुरूमें तो उन्होंने यही समझा था कि मनसे घृणामात्रको दूर करनेके लिए वैसी आज्ञा दी होगी। बादमें उन्होंने अनुभव किया कि यह पूर्ण स्वास्थ्यकी प्राप्तिका निश्चित उपाय है और संपूर्ण स्वस्थ शरीरके बिना योगसाधना नहीं हो सकती। इसलिए योगसाधनासे पहले प्रत्येक साधकको अपना शरीर संपूर्ण स्वस्थ बना लेना चाहिये। उन्होंने सवा मासका मूत्रोपवास करके शरीरको स्वस्थ बनाया और समता तथा शांतिसे योगकी आराधना की अन्तमें वे लिखते हैं —

"आपने मूत्रप्रयोगसे जो लाभ उठाया उसे निःसंकोच जगत्के समक्ष प्रस्तुत करके आपने एक अपूर्व लोकसेवाका काम किया, ऐसा मुझे प्रतीत होता है।"

जैन धर्ममें भी विशेष प्रकारकी प्रतिमा अर्थात् प्रतिज्ञा स्वीकार करनेवाले मुनिके लिए मूत्रपानका विधान है। इस बारेमें आचार्य भद्रबाहुकृत व्यवहारसूत्रका मूल पाठ और भावार्थ नीचे दिया जाता है :—

दो पडिमाओ पन्नत्ताओ। तं जहा — खुड्डिया वा मोयपडिमा, महल्लिया वा मोयपडिमा। खुड्डियाणं मोयपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पइ — से पढमनिदाहकालसमयंसि वा चरमनिदाहकालसमयंसि वा बहिया गामस्स वा (. . .) रायहाणीए वा वणंसि वा

वणदुग्गंसि वा पव्वयंसि वा पव्वयदुग्गंसि वा भोच्चा आरुभइ चोदसमेणं पारेइ; अभोच्चा आरुभइ सोलसमेणं पारेइ। जाए जाए मोए आईयव्वे दिया आगच्छइ। महल्लियाणं मोयपडिमं जाव पव्वयदुग्गंसि वा भोच्चा आरुभइ सोलसमेणं पारेइ; अभोच्चा आरुभइ अट्ठारसमेणं पारेइ। जाए जाए मोए आईयव्वे दिया आगच्छइ। (उद्देश ९, सूत्र ३५)

भावार्थ :-- दो प्रतिमाएँ (दृढ़ संकल्पपूर्वक प्रतिज्ञाएँ) बतायी हैं। वे इस प्रकार हैं -- छोटी मोक (मूत्र) प्रतिमा और बड़ी मोक-प्रतिमा। छोटी मोकप्रतिमाको स्वीकार करनेवाले मुनि ग्रीष्मऋतुके प्रारम्भमें अथवा ग्रीष्मऋतुके अन्तमें (या शरत्कालके प्रारम्भमें भी) गाँवके बाहर या नगरके बाहर, राजधानीमें, वनमें, वनसमूहमें, पहाड़ पर, अनेक पहाड़ोंके बीचमें, गुफा आदि एकान्त स्थानमें इसे धारण करे। अगर वह मुनि आहार करके इस प्रतिमाको स्वीकार करता है, तो छः उपवास करके पारणा करे, और आहार किये बिना इस प्रतिमाको स्वीकार करता है, तो सात उपवास करके पारणा करे। बड़ी मोकप्रतिमा भी उपर्युक्त स्थानोंमेंसे किसी एक स्थानमें स्वीकार करे। आहार करके स्वीकार करे तो सात उपवास करके पारणा करे और आहार किये बिना स्वीकार करे तो आठ उपवास करके पारणा करे। उपवासमें दिनभरके मूत्रका दिनमें ही पान करे।

तिब्बतमें लामा तो मूत्रका खूब उपयोग करते आये हैं। यह मूत्रका ही प्रताप है कि वे डेढ़ सौ बरस तक अपने स्वास्थ्यको सुरक्षित रख सकते हैं। स्वर्गस्थ मोरिस विल्सनने हिमालयके उच्चतम तथा प्रसिद्ध शिखर एवरेस्ट पर आरोहण करनेसे पहले इस प्रयोगको लामाओंसे जान लिया था। उन्होंने चढ़ाईके समय पीने और मालिशके लिए अपने मूत्रका उपयोग किया था, जिससे वे हर प्रकारकी छोटी-बड़ी बीमारीसे अपने शरीरकी रक्षा कर सके, और उसी अमूल्य साधनसे उपवास तथा मालिश करके अपनी चेतना और जीवन-शक्तिको कायम रख सके।

रेगिस्तान और समुद्रके यात्री भी मूत्रका उपयोग किया करते थे। मरुभूमिके यात्रियोंके खानपानकी सामग्री जब समाप्त हो जाती थी तब कई दिनों तक वे अपना पेशाब पीकर राज़ीखुशीसे अपनी मंज़िल पर पहुँच जाते थे। इसी प्रकार नाविकोंके इतिहासमें यह वर्णन आता है कि समुद्रमें तूफान आ जानेसे जब जहाज़ अपना रास्ता भूल जाते थे और पीनेका पानी तथा खानेका सामान कम हो जाता था तब नाविक यात्रियोंको उन्हींका पेशाब पिलाकर टिकाये रखते थे और यों करते-करते कुछ दिनोंमें दूसरा जहाज़ मिल जाता या किनारा हाथ लग जाता, जिससे वे सभी ज़िन्दा बच जाते थे।

परन्तु मनुष्य आखिर मनुष्य है। उसमें अनेक कमज़ोरियाँ हैं। केवल इनेगिने मनुष्य ही उन कमज़ोरियों पर काबू पा सकते हैं। बाकी सब तो इस संसारमें ग़ैर-ज़िम्मेदार बनकर अनेक छोटी-बड़ी बुरी आदतोंसे अपनी तंदुरुस्तीको बिगाड़ते ही आये हैं। मनुष्य जैसे-जैसे प्राकृतिक जीवनसे दूर होता जाता है वैसे-वैसे उसका स्वास्थ्य भी बिगड़ता जाता है। और इस वैज्ञानिक युगमें तो उसकी अस्वस्थता शायद पराकाष्ठाको पहुँची होगी! इससे बढ़कर दुर्दशा और क्या होगी? इस दुर्दशाका बीज तभी बोया गया होगा कि जब मनुष्यने शारीरिक स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए प्रकृतिकी सरल तथा अमूल्य देन — मूत्रके शुद्ध उपयोगको छोड़कर आसपासकी वनस्पतियोंके अनुपानके साथ उसका उपयोग शुरू किया होगा और धीरे-धीरे अनुपानकी वस्तुओंका सेवन ही प्रधान बन गया होगा अर्थात् मूल वस्तु – मूत्रका सेवन गौण हो गया होगा। उस कालके शरीरशास्त्री अरण्यमें कुदरतकी गोदमें रहते थे और अन्वेषणकी वृत्तिसे अनेक अनुभव और प्रयोग करते थे। इस प्रकार उन्होंने आयुर्वेदकी रचना की होगी। आरम्भमें मूत्रको केन्द्रमें रखकर अनुपानके रूपमें वनस्पति-द्रव्योंका उपयोग शुरू किया होगा। फिर अन्तमें मूत्रको भी तिलांजलि देकर पानी, शहद, घी या दूध आदिका उपयोग शुरू हुआ होगा, जिसका परिणाम यह

आया कि मूल द्रव्य मूत्रका स्थान वनस्पति-द्रव्योंने ले लिया। इससे इतना लाभ तो अवश्य हुआ कि प्रकृतिका संपर्क बना रहा, परन्तु प्रकृतिकी मूल देनको बिल्कुल भुला दिया गया। जैसे आजकी एलोपैथी विज्ञानकी दृष्टिसे इतनी आगे बढ़ गयी है, और समाज पर उसने इतना अधिक काबू पा लिया है कि यदि आयुर्वेदका गठबन्धन उसके साथ कर दिया जायेगा तो आयुर्वेदके विस्मृत हो जानेकी पूरी सम्भावना है। इसी प्रकार आयुर्वेदके प्रचंड वेगके कारण प्रकृतिकी मूल वस्तु भुला दी गयी होगी। इस विस्मृत दिव्य देनकी कुछ झलक आज भी लोक-जीवनमें दिखायी देती है। गाँवमें बूढ़ी माताएँ अपने बच्चोंकी बीमारीमें उन्हींका मूत्र पिलाकर उनके स्वास्थ्यकी रक्षा करती हैं। समाजमें आज भी जो यह मान्यता प्रचलित है कि 'यह आदमी तो कटी उँगली पर भी पेशाब नहीं करता,' उसका अर्थ यही है कि पेशाबमें ज़ख्मको ठीक करनेकी शक्ति है। मैंने स्वयं देखा है कि गाँवकी सीममें डेरे डालकर मेहनत-मजदूरी पर गुज़र करनेवाले खानाबदोश लुहार अपने बैलोंको उन्हींका पेशाब पिलाते हैं और बैल मूत्रमें रहे हुए पोषण तत्त्वोंको पाकर मस्त और बलवान हो जाते हैं।

तो फिर यह प्रश्न स्वाभाविक ही है कि वर्तमान कालमें मूत्रका उपयोग क्यों बन्द हुआ? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि हमारे जीवनके मूल्य बदल गये हैं। जैसे-जैसे हम प्रकृतिसे दूर हटते गये, वैसे-वैसे प्राकृतिक साधनोंका उपयोग हम भूलते गये। यह प्रगति विज्ञानविभूषित युगका लक्षण है! फिर भी अनेक मनुष्य हैं जो इस कुदरती साधनसे पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं। यहाँ और विदेशमें ज्ञात-अज्ञात बहुत-से व्यक्ति हैं जो आधुनिक युगके विज्ञानसे पूर्ण अभिज्ञ होते हुए भी उसके दोषों और कष्टोंसे दूर रहकर सच्चे प्राकृतिक साधनसे पूरा-पूरा फायदा उठाते हैं। भारतमें साधु-संत, योगी-संन्यासी, यति-महात्मा और सत्यके आग्रही अनेक हैं तथा विदेशमें भी हैं।

मूत्र-प्रयोगकी प्रणाली प्रकृतिकी रचनाके अनुसार होनेसे दोषरहित तथा धर्मयुक्त है; क्योंकि मूत्रप्रयोगसे जीवनको संयमी तथा सादा-सरल बनानेमें प्रोत्साहन मिलता है। प्राचीन कालमें शारीरिक स्वास्थ्यके लिए मूत्रका उपयोग ख़ूब होता था, परन्तु मध्यकालमें इसे भुला दिया गया। यह हर्ष तथा गौरवका विषय है कि मूत्रप्रयोगका पुनरुद्धार हो रहा है। विज्ञान-प्रधान इस युगमें दिन-प्रति-दिन रोगोंके इस प्राकृतिक उपचारका प्रचार बढ़ता जा रहा है। आशा है कि विश्व इसे सहर्ष अपना लेगा और यह प्राचीन कालकी भाँति पुनः प्रतिष्ठित होगा।

पश्चिमी परंपरा

अभी तक निश्चित रूपसे यह पता नहीं चला है कि पश्चिमी देशोंमें मूत्रप्रयोग कबसे प्रचलित था। परन्तु ऐसा लगता है कि ईसाके एक वाक्यके आधार पर श्रद्धालु ईसाइयोंने यह प्रयोग शुरू किया होगा। 'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' के लेखक स्व० जॉन डब्ल्यू० आर्म-स्ट्रॉङ्गने भी पुरानी बाइबलसे इसकी प्रेरणा प्राप्त की थी। उसके पाँचवें अध्यायमें यह आज्ञा है—"Drink waters out of thine own cistern." अर्थात् अपने ही शरीरसे निकलनेवाले जल (मूत्र)का पान कर। इस वाक्यने आर्मस्ट्रॉङ्गकी अनेक स्मृतियोंको ताज़ा कर दिया और उन्होंने इस प्रयोगको अपने पर आज़माया, जिसका विवरण द्वितीय खंडमें दिया गया है। परन्तु इससे यह अवश्य फलित होता है कि पश्चिमी देश इस प्रयोगको जानते थे और इससे लाभ उठाते थे। और नयी बाइबल (मेथ्यू ६, १७) में ऐसा उल्लेख है—"When thou fastest, anoint thy head and wash thy face." इस वाक्यको पढ़ते ही आर्मस्ट्रॉङ्गको यह सूझा कि मूत्र-पानके साथ मूत्र-मालिश भी करनी चाहिये। अतः उन्होंने मालिश भी शुरू कर दी और वे ख़ासकर गले, मुंह और सिरकी मालिश अच्छी तरहसे करने लगे। आखिर उन्हें धर्मपुस्तक बाइबलके कथनकी यथार्थता समझमें आयी।

इस प्रकार पश्चिमकी जनताने धर्मपुस्तक बाइबलसे इस प्रयोगकी प्रेरणा प्राप्त की है। बाइबलके उपर्युक्त आदेश पर श्रद्धा रखनेवाले एक प्रसिद्ध मिशनरी डाक्टर गुजरातमें रह चुके हैं। उनकी उपचार-पद्धति इस प्रकारकी थी कि वे रोगीसे जाँचके बहाने उसका पेशाब ले लेते और फिर अमुक परिमाणमें उस पेशाबको दवामें मिलाकर उस रोगीको दे देते, जिससे वह शीघ्र ही ठीक हो जाता। इस तरह उन्होंने हज़ारों रोगियोंके अनेक रोगोंको मिटाया था और ख्याति तथा कीर्ति प्राप्त की थी। उनकी इस उपचार-पद्धतिको सहायक डाक्टरके सिवा और कोई नहीं जानता था।

गत शताब्दिके शुरूमें इंग्लैंडमें एक अद्‌भुत पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसका नाम — "वन थाऊज़न्ड नोटेबल थिंग्स' (एक हज़ार जानने योग्य बातें) था। उसमें निम्नलिखित मूत्रोपचार दिये हैं: —

(१) शरीरके भीतरी और बाहरी प्रत्येक रोगका सर्वव्यापक तथा उत्तम उपाय यह है कि सुबह लगातार नौ दिन तक अपना मूत्र पियें। वह प्रशीताद (स्कर्वी) को मिटाता है और आपके शरीरको हलका तथा प्रफुल्लित बनाता है।

(२) इसी प्रकार मूत्रका प्रयोग करनेसे जलोदर और कमल रोग मिटता है।

(३) गरम मूत्रसे कानको धोया जाये तो बहरापन, कान बजना और कानके अनेक रोग दूर होते हैं।

(४) आँखोंको मूत्रसे धोनेसे उनकी पीड़ा, लाली और सूजन दूर हो जाती है और दृष्टि निर्मल तथा तेजस्वी हो जाती है।

(५) मूत्रसे हाथ धोये जायें और मालिश की जाये तो उनकी जड़ता ठीक हो जाती है; उनका फटना मिट जाता है, उनके छाले दूर हो जाते हैं और उनके जोड़ लचीले हो जाते हैं।

(६) मूत्र द्वारा धोनेसे ताज़ा ज़ख़्म ठीक हो जाता है।
(७) मूत्र-मालिशसे खाज या जलन मिट जाती है।
(८) गुदाको बार बार मूत्र द्वारा धोनेसे बवासीर और अन्य पीड़ा नष्ट हो जाती है।

इसके अलावा सन् १६९५ में 'सॅल्मन्स इंग्लिश फ़िज़ीशियन' (सॅल्मनका अंग्रेज़ चिकित्सक) नामकी पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसमें मूत्र संबंधी अद्भुत बातें मिलती हैं। उनमें से कुछ यहाँ दी जाती हैं :—

"मनुष्य और बहुत-से चौपाये जानवरोंका मूत्र अनेक उपयोगमें आता है। मनुष्यके मूत्रका उपयोग मुख्यतः भौतिक विज्ञान तथा रसायन-शास्त्रमें होता है। मूत्र रुधिरका जलीय अंश है। रुधिर रक्तवाहिनियों द्वारा गुरदेमें जाता है, वहाँ उसका जलीय अंश अलग होकर खमीर-की प्रक्रियासे मूत्रमें बदल जाता है। पुरुष या स्त्रीका मूत्र उष्ण और रुक्ष होता है। यह जमावोंको पिघलाकर साफ़ करता है और सड़ान तथा विकारको रोकता है। इसका पान किया जाये तो जिगर, तिल्ली, पित्ताशयके रोग, जलोदर, मासिक धर्मका रुक जाना, पांडुरोग, प्लेग और सभी प्रकारके विषैले ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

"ताज़े या गुनगुने मूत्रसे मालिश की जाये तो चमड़ी साफ़ और मुलायम हो जाती है। यह चाहे जैसे ज़हरीले हथियारके ज़ख़्मोंको ठीक करता है। त्वचाके भयंकर रोगोंको मिटाता है। बुख़ारमें शरीर पर मालिश करनेसे बुख़ारकी गरमीको कम करता है। शरीरके कंपन, अंगोंकी शून्यता और लकवेके लिए मूत्र-मालिश श्रेष्ठ उपाय है। मूत्र चुपड़ने और मसलनेसे तिल्लीके दर्द मिट जाते हैं।

"मूत्रमें ऐसे क्षार भी हैं जो हवामें उड़ जाते हैं। वे अत्यन्त गुणकारी होते हैं। वे अम्लताको चूस लेते हैं और शरीरके बहुत-से रोगोंको जड़-मूलसे नष्ट करते हैं। वे गुरदे, आँतों और गर्भाशयकी पीड़ाओंको दूर करते हैं। मुँहकी सूजन, चक्कर आना, दिमाग़की नसोंका

टूटना या खिंचना, सुस्ती आना, आधा सिरदर्द, लकवा, लंगड़ापन, बहरापन, किसी अंगका निरुपयोगी हो जाना या सूख जाना, जुकाम; सिर और दिमाग़की बीमारियाँ, ज्ञानतंतुओं और जोड़ोंके रोग, प्रदर आदि गर्भाशयके रोग — इन सब व्याधियोंके लिए मूत्र अमूल्य तथा श्रेष्ठ उपाय है। वह गुरदे और मूत्रमार्गके अवरोधोंको और उनमें जमे हुए क्षारोंको गलाकर दूर करता है और गुरदेकी पथरीको तोड़कर बाहर निकाल देता है। मूत्रका रुक जाना, पीड़ाके साथ मूत्रका आना इत्यादि मूत्र सम्बन्धी सभी बीमारियोंके लिए वह एक खास इलाज है।"

मूत्रका उपयोग फ्रांसमें भी होता था। अठारहवीं सदीके आरम्भमें तो पेरिसके दंत-चिकित्सक मूत्रसे दाँत धोकर दाँतके सभी रोग दूर करते थे।

दिन-प्रति-दिन मूत्र सम्बन्धी हमारा अज्ञान दूर होता जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक युगमें भी अंग्रेज़ी चिकित्साके कुशल तथा विख्यात डाक्टर इस बातको मानने लगे हैं कि मानव-मूत्रमें शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेकी अनोखी शक्ति है। जीवशास्त्रके प्रसिद्ध प्रोफ़ेसर जीन रोस्टेन्डने मनुष्यके शरीरमें रसग्रंथियोंकी खोज करके यह सिद्ध किया है कि उन ग्रंथियोंमें से झरनेवाले जीवन-रस, जिन्हें 'हॉरमोन्स' कहते हैं, शरीरके लिए एक उत्तम आहार हैं। तभीसे शरीरशास्त्री मूत्र-शक्तिकी यथार्थताको समझने लगे हैं; क्योंकि उन ग्रंथियोंमें से झरने-वाले रसोंका कुछ भाग गुरदेमें छनकर मूत्रके साथ बाहर निकलता है, जिसका फिर उपयोग करनेसे अस्वस्थ शरीरको स्वस्थ बनाया जा सकता है। इस तरह जीवशास्त्रकी एकदम अंतिम प्रकारकी खोजसे मालूम होता है कि मूत्र कोई निकम्मी चीज नहीं है, किन्तु एक अमूल्य वस्तु है। यह तो चमत्कारी अद्भुत रसायन है। अंग्रेज़ शरीरशास्त्री एलिस बारकरका यह अभिप्राय है कि हमारा शरीर किसी भी औषधि द्रव्यकी अपेक्षा अधिक चमत्कारी द्रव्य बनाता है,

जो सबसे अधिक सम्पूर्ण है, और उसमें शरीरके विषैले जन्तुओंका नाश करनेवाले विरोधी तत्त्व हैं; वह द्रव्य अपना ही मूत्र है।

इंग्लैंडके एक प्रसिद्ध डाक्टर टी० विलसन डीचमेन पीएच० सी०, एम० डी० एक पत्रिकामें लिखते हैं कि प्रत्येक रोगीके शरीरकी भिन्न-भिन्न रुग्ण अवस्थाके कारण उसके मूत्रका स्वरूप भी भिन्न-भिन्न होता है। इसलिए किसी अंगके टूट जानेसे या किसी अंगमें कुछ कमी होनेसे जो रोग होते हैं, उन्हें छोड़कर बाकी सभी रोगोंको ठीक करनेके लिए यह मूत्र अत्यन्त उपयोगी है। दवाओंकी संख्या तीन हज़ारसे भी अधिक है। उनमें से रोगीके लिए उपयुक्त दवा पसन्द करनेमें जो भूल होती है, मूत्र उस भूलसे डाक्टरको बचाता है। शरीरके भीतरी बल जिसे ठीक नहीं कर सकते उसे बाहरी बल भी ठीक नहीं कर सकते।

एक अंग्रेज लेखक सीरिल स्कॉटने अपनी पुस्तक — 'डॉक्टर्स, डिजीज एण्ड हेल्थ' (डाक्टर, रोग और स्वास्थ्य) में इंग्लैंडके लीड्स और हेरोगेट शहरके जे० पी०, स्व० डब्ल्यू० एच० बक्सटरके मूत्र-प्रयोगका जो रोचक विवरण दिया है वह इस प्रकार है :—

"बक्सटर महाशय नियमित अपना मूत्र पीते थे और उन्होंने मूत्रके बारेमें अनेक लेख भी लिखे थे। उनकी आयु खूब लम्बी थी। उन्होंने अपने अति भयंकर कैन्सरके रोगको मूत्र-पट्टी रखकर और मूत्र-पान करके मिटाया था। उन्होंने अपने अन्य रोगोंको भी इसी सरल उपचारसे दूर किया था। उनकी यह दृढ़ मान्यता है कि जगतमें मूत्र ही सर्वोत्तम जन्तुनाशक द्रव्य है। आगन्तुक रोगसे अपनी रक्षा करनेके लिए वे रोज़ाना तीन टंबलर पेशाब पीते थे। वे मूत्रपानको निर्दोष तथा हितकर समझते थे। वे अपनी दृष्टिकी रक्षाके लिए सदा अपनी आँखोंमें मूत्र डालते थे। वे ज़ख्म, सूजन, फोड़े आदिके लिए भी मूत्रोपचारका समर्थन करते थे। वे मूत्रको अद्वितीय रेचक मानते थे।"

अब तो मूत्रका उपयोग विलासकी सामग्री बनानेमें भी होने लगा है। इंग्लैंडके रसायन-विशारदोंने मूत्रके क्षारोंसे श्रेष्ठ प्रकारके नहानेके

साबुन और बढ़िया तथा क़ीमती क्रीम तैयार किये हैं। इस प्रकार मानव-मूत्रका उपयोग होता रहता है, जिसे न हम जान सकते हैं और न देख सकते हैं। कुछ समयके बाद यह भी संभव है कि चिकित्सक गुप्त रीतिसे मूत्रोपचार द्वारा अपने रोगियोंके रोगोंको दूर करके यश तथा धन कमाने लग जायें।

५

मानव-मूत्रका मूल सिद्धान्त

पिछले प्रकरणमें यह बताया गया है कि स्वमूत्रको शारीरिक आरोग्यका अचूक साधन मानकर प्राचीन कालमें उसका उपयोग होता था और आज भी हो रहा है। आम लोगोंकी नीति, रीति, पद्धति और उक्तिमें सामान्य समझ खूब होती है। जैसे, "वह तो पेशाब पीकर उसके पीछे पड़ा है", "यह भला आदमी तो कटी उँगली पर भी नहीं मूतता।" गाँवमें विवाहके अवसर पर गाये जानेवाले गीतोंके साथ-साथ ताना-मेहना मारनेका रिवाज भी है। कन्यापक्षकी गानेवाली स्त्रियाँ वरको ताना देती हैं — "तेरी माँने तुझे मूत पिला-कर बड़ा किया, पर अब तूने घी-दूध पीना।" छोटे बच्चेको सफ़ेद-पीले दस्त आते हों तो बूढ़ी दादी बच्चेकी मातासे कहती है — "देखती नहीं, बच्चेको सफ़ेद-पीले दस्त लगे हैं? किसीको क्या पूछना है? बच्चेका ही मूत लेकर तनिक पिला दे न।"

इन सब बातोंमें कुछ रहस्य और सामान्य समझ भी है। यह सामान्य समझ पीढ़ियोंके संस्कारसे आती है। चाहे साधारण जनताके सीधे-सादे शब्दोंवाली भाषा अपने आपको सभ्य तथा सुशिक्षित मानने-वाले समाजको पसंद न आती हो, परन्तु उसीने हमारे समाजको गढ़ा है और उसके दैनिक जीवनमें यह सामान्य समझ ओतप्रोत है। साधारण जनता धर्म या तत्त्वज्ञानके मुख्य तथा गूढ़ सिद्धान्तोंको नहीं

समझती, परन्तु उन सिद्धान्तोंका सामान्य बोध उसकी वाणीमें ओतप्रोत हो जाता है। विश्वप्रेमकी पंडिताऊ व्याख्यासे भले वह अपरिचित हो, परन्तु उसके ये सरल उद्‌गार — "अपने जैसा दूसरोंको समझो", "भाई भाई बनकर रहो", "जो बरताव तुम्हें अच्छा नहीं लगता वह दूसरोंके साथ मत करो", "बुराईका बदला भलाईसे दो" इत्यादि उसके सामान्य बोधका परिचय देते हैं। ये उद्‌गार मूल विश्वप्रेम तथा एकात्मभावके सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्तोंका परिपाक हैं। जिस तरह सामान्य बोधका मूल विश्वप्रेम तथा एकात्मभावके सिद्धान्तमें है, उसी प्रकार मूत्र-सम्बन्धी उक्ति या सामान्य समझ भी अपने मूल सिद्धान्तका परिपाक है। वह मूल सिद्धान्त कौनसा है, आइये, हम उसे समझें।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश — ये पाँच महाभूत हैं, जिनसे यह सृष्टि बनी हुई है। मानव-देह भी इन्हीं पाँच तत्त्वोंसे बनी हुई है। ईश्वरने प्रत्येक मनुष्यको एक जैसी देह दी है और प्रत्येक स्वस्थ देहमें समुचित परिमाणमें ये पाँच तत्त्व होते हैं। मनुष्यके अपने दोषसे जब उस परिमाणमें कमी-बेशी होती है तब उसका स्वास्थ्य बिगड़ता है। उस बिगड़े हुए स्वास्थ्यको फिरसे ठीक करनेके लिए पाँच तत्त्वोंके परिमाणकी कमी-बेशीको ठीक कर लेना चाहिये। यह कार्य करनेकी शक्ति केवल स्वमूत्रमें है। पृथ्वीको जितना समुद्रका आधार है, उतना ही आधार मानव-देहको स्वमूत्रका है। पृथ्वीके निर्माण तथा जीवनमें समुद्रका जो स्थान है, मानव-देहमें वह स्थान स्वमूत्रका है। और जैसे सभी महाभूतोंको आत्मसात् करनेकी शक्ति जलमें है, वैसे शरीरमें रहे हुए सभी तत्त्वोंको आत्मसात् करनेकी शक्ति उसके मूत्रमें है। इसीलिए मानव-शरीरके बिगड़े हुए स्वास्थ्यको फिरसे ठीक करनेके लिए स्वमूत्र प्राणिमात्रके लिए कुदरती देन है।

जो सत्य मानव-देहको लागू होता है वही सत्य जीवमात्रकी देहको लागू होता है। उपर्युक्त सिद्धान्तके अनुसार इस मूत्र-द्रव्यको मैं साधारण औषध नहीं समझता, मैं तो इसे जीवनका अमृत मानता

हूँ। मेरी यह बात बहुत-से लोगोंको मूर्खतापूर्ण तथा विचित्र लग सकती है, परन्तु थोड़ी गम्भीरतासे विचार करने पर इसकी सचाई मालूम हो सकती है। पेनिसिलिनमें मानव-देहके लिए अनेक हानिकर तत्त्व हैं, ऐसा अब सिद्ध हुआ है। फिर भी उसे नवजीवनदाताकी उपाधिसे विभूषित करनेवाले वैज्ञानिक महाशयोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे इस जीवनके अमृतका अनुभव करें और साथ ही मैं उन्हें यह विश्वास दिलाता हूँ कि ऐसा करनेके लिए उन्हें हाथ नहीं मलने पड़ेंगे; क्योंकि किसी भी व्यक्तिको उसके उचित उपयोगसे नुकसान तो होता ही नहीं, बल्कि फ़ायदा अचूक होता है।

कुछ हमदर्द चिकित्सकोंकी सूचना है कि मूत्रकी गन्ध और स्वादमें रुचिकर परिवर्तन हो जाये तो बहुत सरलता हो जाये। अपेक्षित परिवर्तनके लिए मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु मूत्रकी मूल शक्ति कायम रहनी चाहिये। मैं मानता हूँ कि मूत्रके स्वाद और गन्धको बदलनेसे मूत्रकी शक्तिके नाशकी भी पूरी सम्भावना है।

कई सहृदय वैद्योंका कहना है कि मूत्रके साथ कुछ वनस्पति-द्रव्य अनुपानके रूपमें लिये जायें तो बहुत लाभ हो। इस बातसे भी मैं सम्मत नहीं हूँ। क्योंकि वनस्पति-द्रव्योंके मिश्रणसे जो लाभ होगा, उसके असली हकदारका निर्णय कैसे होगा? फिर तो बुद्धिकी कुश्ती चलेगी और यह दैवी द्रव्य पैसा कमानेका साधन हो जायेगा। हम तो मूत्रप्रयोगको आबालवृद्धके लिए सरल और सुलभ बनाये रखना चाहते हैं और इसे घर-घरका वैद्य बनाना चाहते हैं। यह तभी संभव है जब कि न तो उसके स्वरूपको विकृत किया जाये और न ही उसे किसी अन्य द्रव्यसे मिश्रित किया जाये। जबसे वैद्य या डाक्टरका पेशा धन कमानेका साधन बना, तबसे मानवजातिकी पीड़ा बढ़ गई। इसे पीड़ा-मुक्त करना हो और लोक-कल्याण करना हो, तो मूत्रको व्यवसायी चिकित्सकोंके एकाधिकारसे बचाना आवश्यक है।

६

मानव-मूत्रकी वैज्ञानिकता

एक दिनकी बात है। मैं अपने दो मित्रोंके साथ मोटरमें बैठा था। मेरी आजकी मूत्रोपचारकी प्रवृत्तिके बारेमें बात चल पड़ी। दोमें से एक मित्र बोल उठे — "रावजीभाई, मूत्रका वैज्ञानिक अन्वेषण तो कराना चाहिये न?" यह सुनकर तुरन्त दूसरे मित्रने कहा — "क्या खाक अन्वेषण कराना है? जो ख़ुद ही विज्ञान है उसका अन्वेषण करानेकी क्या ज़रूरत? यह तो स्वयंसिद्ध है।"

मैं यह निश्चयात्मक उत्तर सुनकर चौंक उठा। 'विज्ञान' वैज्ञानिक है कि नहीं, इसका अन्वेषण करनेवाला विज्ञानको ही नहीं समझता। यह भी कुछ ऐसी ही बात है। उपर्युक्त उत्तर एक विचारशील तथा ज़िम्मेदार व्यक्तिका था। तब मुझे पता चला कि 'मूत्र' द्रव्यमें उस व्यक्तिका कितना विश्वास है! मैं इस उत्तरसे केवल उत्साहित ही नहीं हुआ, अपितु मेरे लिए वह एक मननीय प्रश्न बन गया। जीवनके बहत्तर वसन्त बितानेके बाद मैं एक नया विद्यार्थी बन बैठा हूँ। मेरे पास मूत्र-सम्बन्धी कोई साहित्य तो है नहीं, जो थोड़ा-बहुत मिला उसमेंसे मुझे इस कार्यकी प्रेरणा मिली। मैं समझता हूँ कि आयुर्वेदकी पुरानी पुस्तकोंमें से बहुत कुछ मिल सकता है, परन्तु आयुर्वेदके जानकार और अनुभवी भी आधुनिक औषध-विज्ञानके चक्करमें पड़े हैं, अथवा उसके विरुद्ध अपना विचार प्रदर्शित करनेकी क्षमता उनमें नहीं है। चाहे जो हो, परन्तु आग जैसे राखसे दब जाती है, वैसे ही सत्य बात पर 'वैज्ञानिक वहम' का काला परदा गिर गया है और तथाकथित वैज्ञानिक अत्यंत हितकारी तथा विशुद्ध मूत्रको मैला, गंदा और जहरीला कहकर अपने विज्ञानका टट्टू चलाते रहते हैं। भले चलायें, मुझे उनसे द्वेष नहीं है। मुझे मानवजातिके लिए जो

सर्वथा उपयोगी प्रतीत हुआ है उसका प्रचार करनेके लिए मैं तो अपनी जान पर भी खेल सकता हूँ। मेरा यह प्रचार वैज्ञानिक होगा और ज्ञानपूर्वक भी।

इस प्रचारके दौरान मुझे एक पत्र मिला। रांदेर (सूरत) में श्री झवेरी रहते हैं, जिनकी उमर ८० वर्षकी है। उन्होंने पंचमहाभूतोंका गहरा अध्ययन किया है और इस विषयमें अंग्रेज़ी भाषामें एक बड़ी पुस्तक लिखी है तथा अनेक लेख भी। उन्होंने मेरी प्रवृत्तिको जानकर प्रेमपूर्वक उत्साहित करते हुए लिखा है — "पंचमहाभूतोंके तत्त्वोंका विचार करते हुए मुझे विश्वास हो गया कि समुद्र न हो तो पृथ्वीका अस्तित्व भी न हो। परन्तु आपकी 'मानव-मूत्र' पुस्तक पढ़ते हुए मैं एक और नवीन सत्य समझ सका, जिसे आज तक नहीं समझ पाया था। वह सत्य यह है कि जैसे पृथ्वीका आधार समुद्र है वैसे ही मानव-शरीर या किसी भी प्राणीके शरीरका आधार उसका मूत्र है। **समुद्र नहीं तो पृथ्वी नहीं, मूत्र नहीं तो शरीर नहीं।** यह मूत्र स्वयं विज्ञान है, स्वयंसिद्ध है।"

अपने अनुभवसे जो समझमें आये वह 'ज्ञान'। वही ज्ञान जब अनेकों के अनुभवसे सिद्ध हो जाये तो 'विज्ञान।' यह बात सूर्यकी भाँति स्पष्ट है कि पृथ्वीके जीवनमें जो स्थान समुद्रका है वही स्थान प्राणीके शरीरमें मूत्रका है। जल तत्त्व इतना शक्तिशाली है कि शरीरके सभी भागोंको आत्मसात् कर सकता है। इसलिए शरीरके प्रत्येक छोटे-बड़े अवयवके साथ इसका सम्पर्क रहा रहता है। इस जल तत्त्व पर सारे शरीरका आधार है। यह तत्त्व निर्जीव नहीं किन्तु सजीव है। अतः शरीरके सभी कोषोंके साथ इसका सम्पर्क रहता है और उनके रक्षण तथा विकासकी शक्ति इसमें है। सच पूछें तो प्रकृतिने हमारे शरीरको अनेक रोगोंसे बचानेका काम इसे सौंपा है। और स्वमूत्रका दूसरा नाम है शिवाम्बु अर्थात् कल्याणकारी पानी। इसलिए **स्वमूत्र प्रत्येक प्राणीके शरीरका वैद्य है।**

फिर भी किसी कारणसे जो पूर्वग्रह बन चुका हो वह भला आसानीसे दूर हो सकता है? इस वैज्ञानिक युगकी एलोपैथीके अनुयायी ऐसा कहते हैं कि मूत्र तो शरीरका ज़हर या विकार है और उसमें शरीरके लिए हानिकर तत्त्व होते हैं। इसलिए उसके उपयोगसे शरीरको हानि पहुँचती ही है। इस देशमें नैसर्गिक उपचार भी पाश्चात्य विचारधाराकी उपज है। इसलिए यहाँके प्राकृतिक चिकित्सक भी प्राय: डाक्टरोंकी हाँ में हाँ मिलाते हैं। मैं उन्हें ऐसी मान्यताके लिए दोषी नहीं ठहराता हूँ, परन्तु यह अवश्य जानना चाहता हूँ कि प्रत्येक बात-को विज्ञानकी कसौटी पर कसनेकी दुहाई देनेवाले डाक्टरों अथवा वैज्ञानिकोंने स्वमूत्रको क्या शास्त्रीय पद्धतिसे हानिकर सिद्ध किया है? यद्यपि कई चिकित्सक मनुष्यसे कुछ मिलता-जुलता आहार करने-वाले पशुओंके मूत्रका उपयोग कुछ रोगोंके लिए करते हैं।

अब मैं इस चर्चामें पड़ना नहीं चाहता कि वैसा करना किस हद तक वैज्ञानिक या अवैज्ञानिक है। परन्तु यदि गाय, बकरी, ऊँट और गधेका मूत्र रोगीको पिलानेमें आपत्ति नहीं है, तो फिर रोगी मनुष्यको उसीका मूत्र पिलानेमें आपत्ति कैसी? इसके जवाबमें सभी व्यवसायी चिकित्सक एक निरर्थक दलील यह करते हैं कि मनुष्यके शरीरका विकृत तत्त्व उसके मूत्रमें होता है। तो क्या गाय, बकरी, ऊँट और गधेके मूत्रमें उनके शरीरका अमृत तत्त्व होता है? दिनभर मैला और बदबूदार कूड़ा-करकट खानेवाली भटकती हुई गायका खालमें पड़ा हुआ अस्वच्छ तथा मलिन मूत्र रोगीको देनेकी अपेक्षा रोगीका अपना मूत्र गुण और स्वच्छताकी दृष्टिसे हजारगुना उत्तम है, ऐसा आयुर्वेद-विशारद श्री बापालाल वैद्यने खुद मूत्रप्रयोग करनेके बाद स्वानुभवसे घोषित किया है। जो लोग मूत्रके गुण-दोषसे अपरि-चित हों और उसका अनुभव न रखते हों, उन्हें स्वमूत्रको शरीरका ज़हर या विकार कहनेका क्या अधिकार है? क्या उन्हें वैज्ञानिक कहा जा सकता है?

वैज्ञानिक विश्लेषणसे मालूम हुआ है कि स्वस्थ मनुष्यके मूत्रमें शरीरके लिए पोषक तथा उपयोगी अनेक तत्त्व होते हैं। डाक्टर फॅरनने अपनी विश्वप्रसिद्ध पुस्तक – 'इन्ट्रोडक्शन टू बायोकॅमिस्ट्री' (जीव-रसायनशास्त्रका परिचय) में बताया है कि स्वस्थ मनुष्यके मूत्रमें भिन्न-भिन्न परिमाणमें उन्नीस तत्त्व पाये जाते हैं, जिनका उल्लेख अगले प्रकरणमें किया जायेगा। आहारशास्त्री और शारीरिक रसायन विद्याके जानकार उन सभी तत्त्वोंको शारीरिक पोषण और स्वास्थ्यके लिए आवश्यक मानते हैं। उनमें से एक तत्त्व यूरिया भी है, जो सबसे अधिक परिमाणमें होता है, अर्थात् ३४०० मिलिग्राम मूत्रमें १४५९ मिलिग्राम यूरिया रहता है और वह मानव-शरीरके लिए बहुत पोषक है।

थोड़ी देरके लिए मान लें कि दवामें बनावटी यूरिया देनेसे असली यूरियाकी कमी पूरी हो जाती है। परन्तु मूत्रमें पाये जानेवाले अन्य क्षारोंकी पूर्ति कैसे होगी? तो फिर ज्ञात-अज्ञात सभी क्षारोंकी पूर्तिके लिए मूत्रका ही उपयोग क्यों न किया जाये? उपर्युक्त विवेचनसे मैं इस तथ्यको प्रमाणित करना चाहता हूँ कि औषध-विज्ञानकी दृष्टिसे भी मूत्र कोई हानिकारक वस्तु नहीं है। स्वमूत्र तो चिकित्सा-शास्त्रकी दृष्टिसे सजीव रस (लिविंग सॉल्यूशन) है। उसमें ऐसे तत्त्व हैं जो मांस, रुधिर और कोषतन्तुजाल (टिश्यूज़) को बनाते हैं, पुष्ट करते हैं और सजीव करते हैं। आयुर्वेदमें मानव-मूत्रको विषघ्न तथा रसायन कहा है। जगतभरमें ऐसी एक भी प्रयोगशाला नहीं है जो मूत्र जैसा शुद्ध, विषघ्न (ज़हरको मारनेवाला) और निर्दोष द्रव्य बना सके। इसे तो प्राकृतिक देहकी प्रयोगशालामें ही तैयार किया जा सकता है। मानव-मूत्रकी एक और विशेषता यह है कि वह जन्तुनाशक होते हुए भी निर्दोष है। तारपीन, टिंचर बेन्जोइन, एसिड आदि अनेक द्रव्य जन्तुनाशक तो हैं, पर निर्दोष नहीं हैं।

उन्हें पीनेसे मनुष्य मर जाता है। मूत्रपानमें ऐसा कोई खतरा नहीं है; प्रत्युत यह मनुष्यको चिरजीवी बनाता है।

मूत्रके बारेमें एक और बात भी विचारणीय है। रोगके कारण शरीरमें जो विकृति आ जाती है, उस विकृतिके तत्त्व भी मूत्र द्वारा बाहर आते हैं। प्रत्येक रोगीके मूत्रमें कुछ पोषक और कुछ विकृत दोनों प्रकारके तत्त्व होते हैं। इसलिए मूत्रपान और मूत्र-मालिश द्वारा उपयोगी तथा पोषक क्षार शरीरमें जाकर अपना स्थान ले लेते हैं, और साथ ही रोगके विकारवाले तत्त्व वापस शरीरमें जाकर होमियोपैथिक या वॅक्सिनेशनके सिद्धान्तके अनुसार एन्टिबॉडीके रूपमें काम करके रोगका नाश करते हैं। आजकल जर्मन डाक्टर रोगीको पेशाबके इंजेक्शन देते हैं। और अब तो रोगीके मलमें से अमुक द्रव्य लेकर तैयार किये हुए इंजेक्शन भी उसे लगाये जाने लगे हैं। यदि यह पद्धति वैज्ञानिक समझी जाये तो मूत्रचिकित्सा तो और भी अधिक वैज्ञानिक होनी चाहिये।

अन्तमें मूत्रोपचारकी एक महत्त्वपूर्ण बातका स्मरण दिला देना ज़रूरी समझता हूँ। वह यह है कि रोगीका रोग मिटानेके लिए उसीका मूत्र पिलाना चाहिये। चाहे जैसे नीरोग मनुष्यका मूत्र पिलानेसे हानिकी सम्भावना है। अतः मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि मनुष्य या पशुका स्वयंका मूत्र ही उसके लिए सम्पूर्ण वैज्ञानिक द्रव्य है।

७

मूत्रकी गुण-दोष समीक्षा

मैंने अब तक मूत्रकी गुणगाथा ही गायी है। परन्तु मेरी इस बातसे सभीको सम्मत होना ही चाहिये, ऐसी आशा भला मैं कैसे कर सकता हूँ? जीवशास्त्र, शरीरशास्त्र, रसायनशास्त्र और विज्ञान-शास्त्र, इनमें से किसी भी शास्त्रका मैंने अध्ययन नहीं किया है। फिर भी मैं यह जानता हूँ कि जीवशास्त्रियों या शरीरशास्त्रियोंका अध्ययन अभी तक किसी अन्तिम निर्णय तक नहीं पहुँच सका है। ...रशास्त्री कोई नयी बात खोज निकालते हैं और विश्वको दावेके साथ कहते हैं कि उनकी यह अन्तिम खोज है। कुछ ही बरसोंमें कोई दूसरा शरीरशास्त्री अन्य खोज करता है, जिससे अन्तिम मानी जानेवाली खोज पर न केवल परदा ही गिरता है, किन्तु उसका नाम तक मिट जाता है और नयी खोज सम्पूर्ण खोज कहलाने लगती है। रसायनशास्त्रियों और विज्ञानशास्त्रियोंकी खोजकी भी यही दशा है। जो औषधि कल तक सर्वोत्तम तथा विश्वकल्याणकारी मालूम होती थी, वह आज निःसार तथा निरर्थक हो गयी है, और आज जो औषधि श्रेष्ठ तथा उपयोगी समझी जाती है, कल उसकी भी दयाजनक दशा होनेवाली है, यह निश्चित है। परन्तु मूत्रकी यह स्थिति नहीं है। यह तो सनातन तथा सत्य वस्तु है। मूत्र ईश्वरकी अद्भुत और संपूर्ण देन है, जो मानवके शारीरिक स्वास्थ्यके लिए अमूल्य तथा अचूक साधन है।

मुझे तो मूत्रमें गुण ही गुण दिखायी दिये हैं, एक भी दोष नज़र नहीं आया। इसलिए दोष कैसे बताऊँ? रसायनशास्त्री तो इसके गुण और दोष दोनों बताते हैं; यद्यपि वे भी इस बारेमें एकमत

नहीं हैं। सभी अपनी-अपनी बुद्धिमत्ताके गीत गाते हैं। दुनियाको नयी खोजका उपहार देकर मनुष्यजातिकी श्रेष्ठ सेवा करनेके बदलेमें पुरस्कार प्राप्त करते हैं। परन्तु थोड़े ही समयके बाद वह खोज पुरानी और महत्त्वशून्य हो जाती है, जैसे नाइट्रोजन बम अब हाइड्रोजन बमके सामने महत्त्वहीन हो गया है। परन्तु जो वस्तु सत्य है वह कभी पुरानी तथा महत्त्वशून्य नहीं हो जाती। सत्य पुराना नहीं होता, प्रेम तत्त्व पुराना नहीं होता, श्रद्धा तत्त्व पुराना नहीं होता और आत्म तत्त्व पुराना नहीं होता; क्योंकि वह खोजने या वर्णन करनेकी वस्तु नहीं है, अपितु स्वानुभव करनेकी वस्तु है। और तत्त्वकी श्रद्धाके बिना स्वानुभव हो नहीं सकता। श्रद्धाको अन्धश्रद्धा या अज्ञानता कहकर बदनाम करना ठीक नहीं है। श्रद्धा तो आखिर श्रद्धा ही है। उसका मर्म तो अनुभवसे ही समझमें आता है। इसलिए मूत्रके गुणोंके प्रति मेरी जो श्रद्धा और प्रीति है वह तर्कसिद्ध, अनुभवसिद्ध और बुद्धिगम्य है। मूत्रके असरमें कुछ कमी मालूम हो तो वह उसकी कमी नहीं है, परन्तु उसके अयोग्य या अशास्त्रीय उपयोगकी है, ऐसा मैं मानने लगा हूँ।

अब हमें यह जानना चाहिये कि वैज्ञानिक दृष्टिसे मूत्रमें कौन-कौनसे तत्त्व हैं। डाक्टर फ़ॅरनने अपनी विश्व-विख्यात पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टू बायोकॅमिस्ट्री' (जीव-रसायनशास्त्रका परिचय) में बताया है कि स्वस्थ मनुष्यके मूत्रमें स्वभावतः कितने द्रव्य हैं और उनका परिमाण क्या है। वे लिखते हैं कि १०० सी० सी० अर्थात् चार औंस मूत्रमें निम्नलिखित द्रव्य इस परिमाणमें होते हैं:—

द्रव्य	मिलिग्राम
(१) यूरिया एन० (नाइट्रोजन)	६८२.००
(२) यूरिया	१४५९.००
(३) क्रिएटीनीन एन०	३६.००
(४) क्रिएटीनीन	९७.२०

(५) यूरिक एसिड एन०	१२.३०
(६) यूरिक एसिड	३६.९०
(७) एमिनो एन०	९.७०
(८) एमोनिया एन०	५७.००
(९) सोडियम	२१२.००
(१०) पोटाशियम	१३७.००
(११) केल्शियम	१९.५०
(१२) मेग्नेशियम	११.३०
(१३) क्लोराइड	३१४.००
(१४) टोटल सल्फ़ेट	९१.००
(१५) इनऑर्गेनिक सल्फ़ेट	८३.००
(१६) इनऑर्गेनिक फ़ॉस्फ़ेट	१२७.००
(१७) P^H	६.४०
(१८) टोटल एसिडिटी एज़ सी० सी०	
(१९) एन/१० एसिड	२७.८०

उपर्युक्त विश्लेषणसे यह पता चलता है कि स्वस्थ मनुष्यके मूत्रमें पाये जानेवाले सभी क्षार मानव-शरीरके स्वास्थ्यके लिए बड़े महत्त्वके हैं। पर यह ध्यान रहे कि स्वस्थ मनुष्यके मूत्रमें क्षारोंका परिमाण सदा एक-सा नहीं रहता। विविध आहारसे क्षारोंका परिमाण न्यूनाधिक हो जाता है। 'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' के लेखक जॉन आर्मस्ट्रॉङ्गने स्वानुभवसे यह सिद्ध किया है कि कई बार किसी मनुष्यके मूत्रमें खाँडकी मात्रा अधिक होती है, फिर भी उसे मधुमेहका रोग नहीं होता। उन्होंने खुद एक दिन खाँडकी बनी हुई चीज़ें खायीं और साथ ही अनेक मधुर शीतल पेय भी पिये। चौदह घंटे बाद उनके पेशाबमें खाँड ही खाँड मालूम हुई और डाक्टरने कहा कि उन्हें मधुप्रमेहका रोग है। परन्तु वस्तुतः उन्हें वह रोग न था। ऐसा अनेक बार होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि जिसके

पेशाबमें खाँड अधिक हो उसे मधुप्रमेहका रोग है, यह मान्यता मिथ्या है। उपर्युक्त दृष्टांत देकर लेखक यह बताना चाहता है कि मनुष्यके भोजन पर मूत्रके तत्त्वोंका बहुत आधार है। मीठा या मिठाई खानेकी और शरबत या अन्य मधुर पेय पीनेकी आदत जिसे ज्यादा होती है उसके पेशाबमें खाँड इतनी रहती है कि वह जल्दी मधुप्रमेहका शिकार हो जाये और रोग बना रहे। कुछ रोगियोंके खूनमें खाँड घुल-मिल जाती है और पेशाबमें मालूम नहीं होती। विविध आहारसे मूत्रके द्रव्योंमें जो तात्कालिक परिवर्तन होता है वह अनेक बार डाक्टरोंको भी भ्रममें डाल देता है। और मेरा यह निजी अनुभव है कि ऋतुके परिवर्तनसे भी मूत्रके द्रव्योंका परिमाण न्यूनाधिक हो जाता है।

कुछ डाक्टरोंकी ऐसी मान्यता है कि मूत्रमें शरीरमें से जो द्रव्य बाहर निकलते हैं वे निकम्मे और शरीरके लिए हानिकर होते हैं। मूत्रके द्रव्योंका जो विश्लेषण ऊपर दिया गया है उससे यह भलीभाँति समझमें आ जायेगा कि डाक्टरी मान्यतामें कितनी अज्ञानता है। वे सभी द्रव्य शरीरके लिए अत्यन्त हितकर हैं। यदि ऐसा न हो तो डाक्टर उन्हीं द्रव्योंको दवामें मिलाकर फिरसे शरीरमें क्यों दाखिल करते हैं? रासायनिक क्रियासे तैयार किये हुए खनिज द्रव्योंको शरीर-स्वास्थ्यके लिए उत्तम मानकर डाक्टर दवाके साथ रोगीको देते हैं। कुदरतने वैसे द्रव्योंको ही मानव-शरीरमें पैदा किया है। उन द्रव्योंको शरीरके लिए हानिकर समझने और कहनेमें बुद्धिमत्ता नहीं है। दूसरे शब्दोंमें यह कहना होगा कि डाक्टर अपने डाक्टरी प्रमाणपत्रके बल पर किसी भी प्रकारका सच्चा-झूठा निवेदन अथवा खरी-खोटी दलील जनताके सामने प्रस्तुत करनेका दुःसाहस कर सकते हैं। सच बात तो यह है कि चिकित्साशास्त्रकी दृष्टिसे भी मूत्र निर्जीव वस्तु नहीं है, किन्तु सजीव रस (लिविंग सॉल्यूशन) है। यह सिद्ध हो चुका है कि मूत्रमें ऐसे तत्त्व हैं जो मांस, रुधिर और क्षीण तथा निर्जीव कोष-तन्तुजाल (टिश्यूज़)को बनाते हैं, बढ़ाते हैं और सजीवन करते हैं।

मूत्रमें यह एक विशेष दोष बताया जाता है कि उसका स्वाद इतना विचित्र है कि मुँहके पास ले जाते ही नाक-भौं सिकुड़ने लगते हैं और शरीर थरथराने लगता है। ऐसा तर्क प्रायः वही लोग करते हैं जिन्होंने मूत्रके उपयोगका प्रयत्न कभी न किया हो। मुझे तो यह निजी अनुभव है कि मैंने दवाख़ानेमें कितनी ही ऐसी दवाएँ पी थीं कि जिनके पीनेसे कंपकंपी होने लगती थी। विटाज़ाइम एक पाचक औषधि है। वह खाना खानेके बाद तुरन्त मुझे दी जाती थी। वह इतनी ख़राब, बेस्वाद और बदबूदार थी कि उसकी दुर्गन्धसे दवा देनेवालेका जी भी मतलाने लग जाता था। भला, मेरी क्या दशा होती होगी? फिर भी नियमित रूपसे दिनमें दो बार पीनेसे वह मुझे सध गयी। मूत्रका स्वाद कोई ख़ास विचित्र नहीं है। विलायती नमक पीनेवालेको मूत्र ज़रा भी बेस्वाद नहीं लगेगा। स्वस्थ शरीरके मूत्रका स्वरूप वर्षाके ताज़ा पानी जैसा होता है और वह ज़रा खारा होता है। गरमीकी स्थितिमें मूत्रका परिमाण कम हो जाता है, तब उसके तत्त्वोंमें सघनता आ जानेसे उसका रंग कुछ अधिक लाल-पीला हो जाता है और वह मूत्र स्वादमें कुछ अरुचिकर-सा भी लगता है। वह खारा, खट्टा, कसैला और कड़वा होता है, जिसे पीनेमें हिचक ज़रूर होती है। हम बहुत-सी दवाइयाँ खाते और पीते हैं, जो मूत्रसे भी अधिक बेस्वाद और दुर्गंधवाली होती हैं। आख़िर स्वाद तो जीभका विषय है। इस छोटी-सी जीभके बहकावेमें आकर हम अपने शरीरके नाशको निमंत्रण दे रहे हैं। हमें अपने हितके लिए जीभकी गुलामी छोड़नी होगी। जीभको क्षणभर समझाकर पी हुई वस्तु शरीरके लिए गुणकारी हो तो उस वस्तुकी अवहेलना करनेसे हम अपने शरीरका द्रोह करते हैं। मूत्रकी गंधके बारेमें भी ऐसी ही दलील है। पहली बात तो यह है कि जो नियम जीभके लिए तय किया है वही नियम नाकके लिए होना चाहिये। गंध व्यक्तिगत घ्राणेन्द्रियका विषय है। किसी चीनीको मल-मूत्रकी गंध नहीं आती,

क्योंकि उसका खेतीमें निरंतर सदुपयोग करनेसे वह मल-मूत्रकी गंधसे अभ्यस्त हो गया है। मैं खुद गुलाबके फूलकी गधको परख नहीं सकता, परन्तु मोगरे या चंपेकी सुगन्धको खूब पहचान सकता हूँ। निथरे हुए घीकी सुगन्ध हमें कितनी अच्छी लगती है, परन्तु दक्षिण अफ्रीकाकी जूलु स्त्री घीको सूँघकर 'नुगागाबी'–दुर्गंध मारता है, ऐसा कहकर नाक-भौं चढ़ाती है। किन्तु वही जूलु स्त्री एरंडीके तेलमें तराबोर कपड़े या चमड़ेका घाघरा दिन-रात पहनती है, जो गरमीमें पसीना आनेसे ऐसी गंध मारता है कि उस स्त्रीके पास खड़ा भी न रहा जा सके। अब आप ही बताइये कि सुगंध और दुर्गंधकी परख क्या है? इसलिए गंध भी घ्राणेन्द्रियकी रोज़-ब-रोज़की आदतका विषय है। घ्राणेन्द्रियसे भी हम कह सकते हैं कि सारे शरीरके श्रेयके लिए तू अपनी अच्छी या बुरी आदतको तिलांजलि दे दे।

यदि मूत्र स्वास्थ्यके लिए क़ुदरती बख़्शिश है, तो फिर मनुष्यमें जन्मसे ही मूत्रका उपयोग करनेकी क़ुदरती प्रेरणा क्यों नहीं है? इसका उत्तर यह है कि जीवमात्रमें ऐसी प्रेरणा है ही। पशु इसी प्रेरणासे प्रेरित होकर अपने रोगके लिए उसका उपयोग करते हैं। पशुओंमें एक और प्रेरणा भी है कि बीमार होते ही वे अपना खाना छोड़ देते हैं। चाहे जैसी अच्छी चीज़ उनके मुँहके सामने रखी जाये, वे उसे छूते तक नहीं। अपनी बीमारी मिटने पर ही वे खाते हैं। क़ुदरतने मनुष्यको अच्छे-बुरेका विवेक करनेकी बुद्धि तो दी है, परंतु खेद है कि मनुष्य अपनी सहज विवेकबुद्धिका यथोचित उपयोग नहीं करता। इंद्रियाधीन मन और विकृत बुद्धि उसे कई बार पथभ्रष्ट कर देते हैं। परिणामतः वह क़ुदरतसे दूर हटता जाता है। कोई व्यक्ति जब शराब पीनेको तैयार होता है, तब वह सहज अरुचि एवं हिचक तो महसूस करता है, परंतु अविवेक, कमज़ोरी, परिस्थिति आदिके कारण शराब पी डालता है। फिर धीरे-धीरे सहज अरुचि

एवं हिचकका महसूस होना बंद हो जाता है और वह शराबका व्यसनी हो जाता है। जड़ी-बूटियोंको अपनानेमें मनुष्यने कुछ ऐसा ही किया होगा। शुरूमें वे उसे स्वादु एवं रुचिकर प्रतीत हुई होंगी, फिर उनका उपयोग कुछ सरल और लाभकारी लगा होगा। समय बीतने पर उनका उपयोग करनेमें इतना अभ्यस्त हो गया कि उसने क़ुदरती देन स्वमूत्रकी सर्वथा उपेक्षा कर दी। फिर तो वह जड़ी-बूटियोंका विज्ञान खड़ा करनेकी झंझटमें पड़ गया, और अब तो मनुष्यजाति औषध-विज्ञानके चंगुलमें बुरी तरह फँस गयी है।

डाक्टरोंका मूत्रको शरीर-विकार, निःसार तथा हानिकर कहना वैज्ञानिक दृष्टिसे कितना विवेकहीन एवं हास्यास्पद है! तथाकथित औषधविज्ञानके प्रलोभनमें आकर हम अपने शारीरिक स्वास्थ्यके बारेमें क़ुदरतके नियमोंका जिस हद तक अनादर करते हैं, उस हद तक उसके कड़वे फल हमें चखने ही पड़ेंगे।

स्वर्गस्थ जॉन आर्मस्ट्रॉङ्गने भी खूब अनुभव किया है और मुझे भी वैसा ही अनुभव हुआ है कि मूत्र पीनेसे वह शरीरके सभी पाचक अवयवोंमें से गुज़र कर छनता जाता है और जैसे-जैसे अधिक छनता है वैसे-वैसे अधिक स्वच्छ होता है। पानी और मूत्रके साथ एक दिनका उपवास करनेसे भी प्रत्येक व्यक्ति ऐसा अनुभव कर सकता है। मूत्र पहले शरीरको स्वच्छ करता है और फिर शरीरमें जहाँ तहाँ जमे हुए विजातीय द्रव्योंको दूर करता है। और अन्तमें रोगसे जीर्ण-शीर्ण होनेवाले अंगोंको पुनर्जीवन प्रदान करता है। सच बात तो यह है कि मूत्र केवल फेफड़ों, पित्ताशय, जठर, मस्तिष्क, हृदय आदिको ही ठीक नहीं करता, किन्तु अनेक असाध्य रोगोंको भी मिटाता है। संक्षेपमें मूत्र और उसके साथ उपवास करनेसे हम श्रेष्ठ लाभ उठा सकते हैं।

८

अनेक रोगोंकी एक दवा ?

इस पुस्तकमें मैंने इस बातका ज़िक्र बार बार किया है कि मूत्र किसी रोगकी दवा नहीं है, परन्तु बिगड़े हुए स्वास्थ्यको ठीक करनेके लिए प्राकृतिक साधन है, इसीलिए तो पुस्तकका नाम 'अनेक रोगोंकी एक दवा', ऐसा नहीं रखा गया है। परन्तु पूर्वग्रहमें फँसे हुए कुछ लोग यह प्रश्न पूछते हैं --- 'सभी बीमारियोंकी कहीं एक दवा होती होगी? रोग तो विपरीत गुणदोषवाले होते हैं। वात, पित्त और कफके रोग उन्हींके नाशक द्रव्योंसे मिटते हैं, और मूत्रमें इन तीनों दोषोंको मिटानेवाले तत्त्व कैसे हो सकते हैं? इसमें परस्पर घर्षण हो जाये तो शारीरिक प्रकृतिको लेनेके देने पड़ जायं।' साधारण मनुष्य, जो चिकित्साशास्त्रका सामान्य ज्ञान भी नहीं रखते हैं, वे ऐसा प्रश्न करें तो कुछ समझा जा सकता है। परन्तु वैद्यकका व्यवसाय करनेवाले और डिग्री लेकर बड़े डाक्टर होनेका दावा करनेवाले ऐसा प्रश्न उठायें, तो यह आभास होना स्वाभाविक है कि वे जानबूझकर मूत्रोपचारका विरोध करनेके लिए और लोगोंके दिलमें वहम पैदा करके उसके प्रचारमें बाधा डालनेके लिए झूठा प्रचार करते हैं, अथवा वैद्यराज और बड़े डाक्टर होने पर भी उन्हें वस्तुस्थितिका ज्ञान नहीं है, और उन्होंने इस बातको समझनेका ही प्रयत्न नहीं किया है।

अनेक रोगोंकी एक दवा नहीं हो सकती। गायके मूत्रसे कई रोग मिटते हैं और वैद्य उसका उपयोग करते हैं। इसी प्रकार आयुर्वेदमें आठ या नौ प्राणियोंके मूत्रका औषधके रूपमें उपयोग बताया है। भले उसका उपयोग किया जाये और जितना लाभ उठाया जा सके

उठाया जाये, परन्तु उसे शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। किसी भी प्राणीका मूत्र उसके लिए श्रेयस्कर होनेसे उसका उपयोग वैज्ञानिक है। परन्तु चाहे जैसे स्वस्थ प्राणीके मूत्रके बारेमें छाती ठोककर यह नहीं कहा जा सकता कि वह दूसरे रोगी पशु या मनुष्यके लिए कल्याणकारी है। वैद्यराज श्री बापालालने 'मनुष्य-मूत्र' नामके अपने लेखमें (पुस्तकके चौथे खंडमें दिया है) लिखा है कि उन्होंने अपनी घोड़ीकी गरदनके बड़े ज़ख्मको घरके मनुष्योंके मूत्रमें राख मिलाकर उस पर बार-बार छींटनेसे ठीक किया था।

जैसे गाय, बकरी या ऊँटके मूत्रसे मनुष्यके अमुक रोग मिटते हैं, उसी प्रकार मनुष्यके मूत्रसे घोड़ीका ज़ख्म भर गया। क्योंकि मनुष्यों और पशुओंका आहार काफी हद तक समान होनेसे उनके मूत्रमें समान तत्त्व रहते हैं; अतः कुछ हालतोंमें वह लाभदायक होता है। और साथ ही मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि यदि श्री बापालाल वैद्यने घोड़ीका अपना ही मूत्र उपयोगमें लिया होता तो बहुत जल्दी आराम हो जाता। परन्तु उसी घोड़ीका मूत्र वे एकदम कैसे प्राप्त करते? इसलिए उन्होंने मानव-मूत्रका उपयोग किया। बहुत से वैद्य मानव-मूत्रकी उपयोगिता समझते हैं। परन्तु समाजमें मूत्रके प्रति जो घृणा पैदा हो गयी है उसका विरोध वे नहीं कर सकते और खुले आम यह नहीं कह सकते कि मानव-मूत्र लाभदायक है। वे अभी तक यह भी नहीं समझते कि रोगीके निजी मूत्रके उपयोगकी बात है। आयुर्वेदमें आठ पशुओंके मूत्रके गुणदोष बताये हैं, जिससे मनुष्यके किसी रोगके लिए उसका अनुकूल उपयोग किया जा सकता है। परन्तु इसे कौन बता सकता है कि किस पशुका मूत्र उसके स्वास्थ्यके लिए कैसा है? सच्ची बातका पता तो तभी चले जब वह पशु ही अपना अनुभव कहे। वे बेचारे चुपचाप अपनी बीमारीके वक्त भूखे रहकर, अपना मूत्र चाटकर स्वस्थ हो जाते हैं। परन्तु मैंने कहीं भी यह नहीं कहा है कि उन

पशुओंका या मनुष्यका मूत्र किसी दूसरेके लिए श्रेयस्कर है। मानव-मूत्रका यह सिद्धान्त है कि रोगीका निजी मूत्र ही उसके स्वास्थ्यके लिए उपयोगमें लिया जा सकता है। दूसरे किसी भी स्वस्थ मनुष्यका मूत्र उसे पिलानेका निषेध है। यही बात पशुके मूत्रमें लागू हो सकती है।

इतनी स्पष्टताके बाद अब हम समझ सकेंगे कि मूत्र सब रोगोंकी दवा नहीं है, परन्तु रोगीका अपना मूत्र उसके रोगकी दवा है। वह उसके सभी रोगोंका अचूक इलाज है। प्रत्येक मनुष्यके मूत्रमें उसकी शारीरिक प्रकृतिके अनुसार द्रव्य होते हैं, जो उसीके लिए उपयुक्त हैं, दूसरेके लिए नहीं। शायद दूसरेके लिए हानिकर भी हों। वैसा करनेसे दूसरेका रोग उसमें दाखिल होनेका खतरा है। इसलिए रोगीका अपना मूत्र ही उसके लिए श्रेयस्कर है और वैज्ञानिक भी।

उपर्युक्त चर्चाके बाद यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या मूत्र अनेक रोगोंकी एक दवा है? यह बात नहीं है। तथ्य तो यह है कि प्रत्येक प्राणीके मूत्रके गुणमें अंतर है। इसलिए यही कहना उचित है कि जितने प्राणी हैं उतनी ही दवाएँ हैं। और प्रत्येक प्राणीके पास अपने उपचारका साधन—मूत्र तैयार ही है। इसका उपयोग करनेकी विधि ही काल-प्रवाहमें लुप्त हो गयी है। उसका अन्वेषण करके अनेक रोगियोंके अनुभवसे उसे निश्चित करनेका काम हमें करना है। जिन वैद्यों या डाक्टरोंके दिलमें यह बात घर कर गयी हो कि उनका पवित्र कर्त्तव्य रोगीका स्वास्थ्य सुधारना है, वे सद्भाव और सेवाभावसे इस कामको हाथमें लें और संसारकी सेवाका श्रेय उठायें।

अन्तमें निवेदन है कि उपर्युक्त स्पष्टता करनेके बाद और उसे पढ़ लेनेके बाद कृपया कोई व्यक्ति मूत्रोपचारके बारेमें झूठा प्रचार न करे।

९

मूत्रोपचारकी विधि

मूत्रके महत्त्वके बारेमें और अधिक लिखनेकी जरूरत नहीं है। आज तक मूत्रके प्रति लोगोंके मनमें पूर्वग्रहकी जो जड़ जम चुकी है, उसे तर्कके फावड़ेसे उखाड़ फेंकनेका मैंने भरसक प्रयत्न किया है। परन्तु मूत्रोपचार हमारे लिए कितना कल्याणकारी है, इसका ठीक पता तो आगे दिये जानेवाले अनुभव-सिद्ध दृष्टांतोंसे ही चलेगा। मुझे विश्वास है कि उन दृष्टांतोंको जानकर चाहे जैसे वहमों या पूर्वग्रहोंके पहाड़ चूर-चूर हो जायेंगे, क्योंकि लाखों मन दलीलोंकी अपेक्षा एक रत्ती भर अनुभव अत्यधिक महत्व रखता है।

अंग्रेजी पुस्तक —'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़'के लेखक तथा कुशल अनुभवी स्व० जॉन आर्मस्ट्रॉङ्गने अपनी पुस्तकमें भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर मूत्रोपचारकी जो स्पष्टता की है, उसे मैंने प्रायः एकत्रित कर दिया है; और साथ ही अपने तथा दूसरोंके अनुभव भी दे दिये हैं। अब मैं मूत्रोपचारकी विधि विस्तारसे लिखता हूँ। रोगी अपनी परिस्थितिके अनुसार उपचारके क्रममें परिवर्तन कर सकता है।

मूत्रोपचारके पाँच प्रकार

(१) मूत्रसे सारे शरीरकी मालिश करना।

(२) मूत्र पीना।

(३) केवल मूत्र और पानीके साथ उपवास करना।

(४) मूत्रकी पट्टी रखना।

(५) मूत्रके साथ अन्य प्राकृतिक तत्त्वोंका उपयोग करना।

(१) **मूत्र-मालिशकी विधि** — बड़े फोड़े, चमड़ीकी सूजन, चीरे, ज़ख्म, फफोले और आगके घाव आदिको छोड़कर शेष सभी रोगोंके

उपचारका आरंभ मूत्र-मालिशसे करना चाहिये। मालिशके लिए पुराना मूत्र अधिक कारगर होता है। 'शिवाम्बुकल्प' में ३६ घंटेके पुराने मूत्रका उपयोग बताया है, परन्तु आर्मस्ट्रॉङ्गने पाँच-सात दिनके पुराने पेशाबके उपयोगकी सलाह दी है, जिसे मैं अधिक लाभदायक समझता हूँ। क्योंकि पाँच-सात दिनके पेशाबमें एमोनिया नामका द्रव्य अधिक परिमाणमें पैदा होता है, उसकी गंध तीव्र होती है और वह विशेष गुणकारी भी होता है। तात्पर्य यह कि एमोनियाके कारण पेशाब शरीरके छिद्रोंमें जल्दीसे और अधिक परिमाणमें दाखिल हो जाता है। साधारण क़दके मनुष्यको मालिशके लिए हर रोज़ आठ-दस औंस पेशाबकी ज़रूरत है। सात बड़ी शीशियोंमें सात दिनके पुराने पेशाबका संग्रह रखा जाये। शीशियोंका मुँह बन्द रखें, ताकि कोई जीव-जन्तु अन्दर जाकर मर न जाये। मूत्र स्वयं जन्तुनाशक है। इसलिए उसमें जीव-जन्तु उत्पन्न नहीं होते हैं। उपयोगकी सुविधाके लिए शीशियाँ क्रमसे रखी जायें। चौड़े मुँहकी शीशियाँ रहें, ताकि पेशाब सीधा उन्हींमें किया जा सके। रोज़ाना मालिशसे जो शीशी ख़ाली हो उसे साफ़ करके उसी दिनके पेशाबसे भरकर रख दी जाये। मालिश शुरू करनेसे पहले पेशाबको थोड़ा गरम कर लेना चाहिये——ख़ास करके सरदीकी ऋतुमें। किसी काचके प्यालेमें या बड़ी कटोरीमें आधा पेशाब लेकर आधे शरीरकी मालिश करें अर्थात् पाओंके तलवोंसे या सिरसे शुरू करके कमर तक मालिश करें। जो पेशाब बच जाये उसे गिरा देना चाहिये, क्योंकि मालिशके दौरान वह मैला हो जाता है। फिर बाक़ीके साफ़ पेशाबसे शरीरके शेष आधे भागकी मालिश करें। मालिश ज़ोर देकर नहीं करनी चाहिये, किन्तु हलके हाथसे करनी चाहिये। मालिश इस ढंगसे की जाये कि बीमारको तकलीफ़ न हो। मालिश करते समय हाथ या हाथोंको ऊपर-नीचे ले जाना चाहिये। एक बारकी मालिशमें दो घंटे लगाये जायें; दो बार मालिश करें तो एक मालिशमें सवा घंटा लगायें।

तलवे, सिर, गला और मुँह — इन अंगोंकी मालिशमें अधिक समय लगायें। दो घंटेकी मालिश हो तो १५ मिनट पाओंके तलवों पर और ३० मिनट सिर, मुँह और गले पर मालिश करें। मालिशके लिए किसी कारणसे अपना मूत्र पर्याप्त न हो, तो दूसरे स्वस्थ व्यक्तिका मूत्र उपयोगमें लिया जा मकता है।

किसी भी रोगमें मूत्रप्रयोगका श्रीगणेश मालिशसे किया जाये तो पहले सप्ताहमें ही उसका फ़ायदा मालूम होगा। यह संभव है कि चार-पाँच दिनकी मालिशके बाद शरीरकी गरमी बाहर आने लगे अर्थात् शरीरमें खाज होने लगे या सफ़ेद मुँहकी फुंसियाँ निकलने लगें; परन्तु इससे न तो घबरायें और न ही कोई अन्य उपचार करें। पेशाबसे ही ज़रा ज़ोरसे फुंसियों पर मालिश करें। मालिशसे शरीरके छिद्रों द्वारा पेशाब अन्दर जानेसे छोटे-छोटे रोग भागने लगते हैं, जिसकी यह पहली प्रतिक्रिया है। खुजली, दाद, गीली चंबल (एक्ज़ीमा) आदि और शरीरके अंदरके सामान्य रोग केवल दस-पन्द्रह दिनकी मालिशसे ही दूर होने लगते हैं। परन्तु गंभीर रोग हो, अनेक दिनोंसे घर करके बैठा हो और दवाकी पुड़ियाँ खा खाकर या दवाकी घूंटें पी पीकर या अनेक प्रकारकी सूइयाँ लगवा लगवाकर कोमल शरीरको विषैले द्रव्योंसे भर दिया हो तो उस जीर्ण रोगको मिटानेके लिए पेशाब और निर्मल पानीके साथ उपवास करना ही होगा। मालिशके सम्बन्धमें एक महत्वकी सूचना यह है कि मालिश करनेके दो-एक घंटे बाद नहाना चाहिये। नहाते समय किसी प्रकारके साबुनका उपयोग न करें। रोगी अपनी प्रकृति और स्थितिके अनुसार ठंडे या गुनगुने पानीसे स्नान करे।

स्व० आर्मस्ट्रॉङ्गने मूत्र-मालिश पर बहुत ज़ोर दिया है। उन्होंने इस प्रयोगको अत्यन्त महत्वका माना है। पेशाब और पानीके साथ चाहे जितने उपवास किये हों, उपवासमें यदि पेशाबसे नियमित मालिश न की जाये तो उपवासका असर नहीं होता है और अभीष्ट

लाभ नहीं होता। किन्हीं दो वस्तुओंके संघर्षणसे गरमी पैदा होती है। और मालिश करनेसे जो गरमी पैदा होती है उससे शरीरकी त्वचाके छिद्र खुल जाते हैं। यदि कोई यह प्रश्न उठाये कि पानीसे भी शरीरकी मालिश करनेसे गरमी पैदा होती है और त्वचाके छिद्र भी खुलते हैं, तो फिर पेशाबसे मालिश करनेकी क्या ज़रूरत है? इसका उत्तर अति स्पष्ट है। मूत्रपानके साथ उपवास करनेमें पेशाब पीनेके बाद हृदय और गुरदेको अधिक काम करना पड़ता है, जिससे हृदयकी धड़कन बढ़ती है। आर्मस्ट्रॉङ्गने अपने पहले उपवासमें हृदयकी धड़कन बढ़नेका अनुभव किया था, क्योंकि उन्होंने मालिश नहीं की थी। उनकी धड़कन लगभग दुगनी हो गयी थी। मूत्रको आत्मसात् करनेके लिए हृदयको ज़्यादा काम करना चाहिये और ज़्यादा काम करनेसे रुधिरकी गति बढ़नी चाहिये। रुधिरकी गति न बढ़े तो जैसे पम्पमें पानी न आता हो और इन्जिनकी गति बढ़ जाये तो ख़ाली पाइप अधिक आवाज़ करता है, वैसे ही हृदयकी धड़कन बढ़ जाती है। उस अवसर पर आर्मस्ट्रॉङ्गको बाइबलका यह सूत्र याद आया — "जब तू उपवास करे तब अपने सिरको मसल और मुँहको धो।" (नयी बाइबल, मेथ्यू, ६, १७) इस सूत्रका अर्थ उन्होंने यह लगाया कि अपने सिर, मुँह और गलेपर पेशाबसे मालिश करनी चाहिये। यह कहा जा सकता है कि उन्होंने तोड़-मरोड़कर ऐसा अर्थ लगाया, फिर भी परिणाममें वह अर्थ सच्चा निकला। पेशाबसे सिर, मुँह और गलेपर तथा सारे शरीर पर मालिश करनेसे ख़ूनकी गति बढ़ी और परिणामस्वरूप हृदयकी धड़कन कम हुई। इतना ही नहीं, अपितु उनमें इतनी शक्ति रही कि उपवासके दिनोंमें भी वे अपना दैनिक कार्यक्रम नियमित रूपसे कर सकते थे। साथ ही मालिशसे यह भी लाभ हुआ कि त्वचाको यथेष्ट पोषण मिलनेसे वह रोगहीन, कोमल और तेजस्वी हो गयी।

(२) **मूत्रपानकी विधि** — लोग प्रायः मूत्रसे घृणा करते हैं और उसके स्वाद तथा गंधके बारेमें उनके मनमें व्यर्थका पूर्वग्रह घुस

गया है। इसलिए वे मूत्र पीनेसे हिचकते हैं। यह स्थिति सन्त कबीरकी उक्तिकी याद दिलाती है :—

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
बग बिचारा क्या करे, जो रहा किनारे बैठ ।।

जो व्यक्ति हिम्मतसे, समभावसे श्रेय समझकर मूत्रपान शुरू कर देता है वह बाज़ी मार लेता है और जो व्यक्ति दूर बैठे-बैठे नाक-भौं चढ़ाता है तथा थरथराता है वह आरोग्यकी प्राप्तिसे वंचित रहता है। यदि स्वास्थ्य प्राप्त करना हो तो मूत्रोपचारसे बढ़कर सरल, सस्ता और अचूक उपाय दूसरा नहीं है : यह अच्छा होगा कि मालिशके दिनोंमें ही मूत्रपानका अभ्यास कर लिया जाये। शुरू शुरूमें मूत्रसे दाँत साफ़ कीजिये और गरारे कीजिये, जिससे घृणा दूर हो जायेगी और यह लाभ होगा कि अगर दाँत हिलते होंगे तो उनका हिलना बन्द हो जायेगा और वे मज़बूत हो जायेंगे। फिर दिनमें एक बार सुबह उठकर मुँह साफ़ करके और आँखें बन्द करके आध पाव मूत्र पी डालें अर्थात् गटक जायें। फिर तो दूसरी बार पीनेमें कठिनाई नहीं होगी।

मूत्रपानमें इस बातका ख़ास ध्यान रखें कि अपना ही मूत्र पिया जाये, चाहे उसका रंग कैसा ही हो, स्वाद कैसा ही हो और गंध कैसी ही हो; चाहे वह गाढ़ा हो या गंदला हो। उसके बाहरी रूपरंगको देखकर झिझकना नहीं चाहिये, क्योंकि वह गुणकारी होता है। और इसकी स्पष्टता इसी पुस्तकमें दिये हुए अनुभव-सिद्ध दृष्टांतोंसे हो जायेगी।

परन्तु विशेष परिस्थितिमें रोगीको दूसरेका मूत्र पिलाना आपद्धर्म बन जाता है। यदि कोई रोगी मूर्च्छित अवस्थामें हो, किसी व्यक्तिको सर्प या अन्य ज़हरी जन्तुने काट लिया हो और वह अपना मूत्र पीनेकी स्थितिमें न हो तथा किसीको पेशाब न आता हो, तब उसे दूसरे स्वस्थ मनुष्यका मूत्र पिलाया जा सकता है, जैसे आर्मस्टॉङ्गके

पास एक ऐसा गंभीर रोगी आया था जिसे अपना पेशाब होता ही न था, वैसी स्थितिमें उन्होंने उस रोगीको शुरूमें अपना ही मूत्र पिलाया था, ताकि उसे पेशाब आने लगे।

(३) **उपवासकी विधि**--गंभीर और पुराने रोगोंके लिए मूत्रके साथ उपवास करना बहुत ज़रूरी है। स्व० आर्मस्ट्रॉङ्ग ऐसे रोगोंके उपचारका श्रीगणेश उपवाससे ही करते थे। रोगीकी स्थितिके अनुसार उपवासकी संख्याका निर्णय किया जाये। उपवासमें मुख्यतः अपना मूत्र पीना होता है अर्थात् दिन-रातका सारा मूत्र पी डालना चाहिये। परन्तु जो व्यक्ति केवल दिनका मूत्र पीना चाहता है उसे उपवासकी अवधि बढ़ानी होगी अर्थात् अधिक दिन तक उपवास करने होंगे, ताकि रातको न पीनेकी कमी पूरी हो सके। ऐसी दशामें रातका मूत्र मालिशके उपयोगमें लिया जाये। आवश्यकताके अनुसार उपवासमें पानी भी पिया जा सकता है। पानी निर्दोष तथा निर्मल होना चाहिये। संभव है कि मूत्र पीते समय जी मतलाने लगे। उस समय दो-चार क्षणके लिए मूत्र पीना बन्द कर दिया जाये। चित्त स्वस्थ हो जाने पर बाकीका मूत्र पी लिया जाये। उपवासके दौरान मालिश नियमित होनी चाहिये। मालिशके बिना उपवास यथेष्ट लाभकारी नहीं होता। मालिशके लिए अपना मूत्र न बचे या कम हो, तो किसी स्वस्थ मनुष्यके मूत्रका उपयोग करनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

मूत्र पीकर उपवास करनेसे हृदयकी धड़कन बढ़ती है और नाड़ी तेज़ चलने लगती है। ऐसी स्थितिमें बिल्कुल घबराना नहीं चाहिये। हृदय और नाड़ीकी गति अपने आप ठीक हो जायेगी। मालिश करनेमें दोष या कमी न आये तो हृदयकी धड़कन बढ़ेगी नहीं। मूत्रके साथ उपवास करनेसे रोगीको बहुत कमज़ोरी महसूस नहीं होती; क्योंकि आहारमें रहे हुए जिन क्षारोंसे हमारे शरीरका पोषण होता है, वे क्षार अपने असली स्वरूपमें मूत्रमें होते हैं, जिनसे बीमारको पोषण मिलता रहता है और उसे अशक्ति मालूम नहीं होती। रोगी जितना अधिक मूत्र लेगा उसे उतनी ही अधिक खुराक मिलेगी।

परन्तु इस उपवासमें रोगीको ख़ूब सावधान और धीर बने रहना चाहिये। शरीरमें जमा हुआ कचरा या हानिकारक द्रव्योंके पटल या आँतोंमें चिपके हुए हानिकर पदार्थ—छाती, फेफड़े, पेट आदि अंगोंमें जमा हुआ कफ और अन्य जमाव—इन सबको खोज खोजकर बाहर निकालनेका कार्य मूत्र करता है। इसलिए उपवासमें दस्त, क़ै आदिकी प्रतिक्रिया होने लगे तो बिल्कुल न घबरायें। यही समझें कि शरीरका विकार निकल रहा है और उसकी सफ़ाई हो रही है। उस समय स्थितप्रज्ञ-से बनकर सभी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ देखते रहें। क़ुदरतको अपना काम करने दें। अधीर तथा व्याकुल होकर किसी प्रकारका आन्तरिक या बाह्य उपचार करनेकी धृष्टता न करें। उसे दबाने या मिटानेके लिए न तो किसी प्रकारकी दवा लें और न ही कोई ऐसी-वैसी चीज़ पेटमें डालें। दृढ़ता खो बैठें, विश्वास उठ जाये, तो प्रयोग बन्द करके ही मनमाना करें।

लंबे उपवासमें जितनी सावधानता रखनी होती है, उससे कहीं अधिक सावधानता उसे छोड़नेके बाद एक सप्ताह तक तो अवश्य रखनी चाहिये। आठ, दस या बीस उपवासके पारणेमें अति सावधान रहना चाहिये। जितने अधिक दिनोंका उपवास हो उतने अधिक दिनों तक आहार-विहारमें संयम रखनेकी ज़रूरत है। सामान्यत: मोसंबी या संतरेका रस पीकर उपवास छोड़नेकी प्रणाली है। यदि मोसंबी बे-मौसिमकी हो और ज़रा भी खट्टी हो तो उसका रस न लें। उसके बदले पाँच-सात खजूरोंको या छटांक भर काली द्राक्षको बीजरहित करके रातको काच या चीनीके बरतनमें एक पाव पानीमें भिगो रखें और पारणेके समय उन्हें अच्छी तरह मसलकर साफ कपड़ेसे छानकर रोगीको पिला दें। परन्तु मधुमेहके रोगीको यह रस न दिया जाय। दोपहरमें फलोंका रस और शामको पपीता, चीकू आदि रसदार फल दिये जायें। दूसरे रोज सुबह वही रस कुछ अधिक मात्रामें दिया जाये। दोपहर और शामके समय भी फलोंका रस

और रसदार फल दिये जायें। तीसरे दिन प्रातः मोसंबी या संतरेका रस, दोपहरमें बहुत कम नमकवाला मूँगका पानी और शामको गायका दूध दिया जाय। इस प्रकार रुचि और शक्तिके अनुसार आहार बढ़ाते जायें। संभव है कि दस या अधिक दिनके अलोने आहारके बाद नमक खानेसे मुँह पर सूजन आ जाये, परन्तु घबरायें नहीं, अपने आप ही वह दूर हो जायेगी।

(४) **मूत्रकी पट्टी रखनेकी विधि**—शरीरके किसी भागमें बड़ा फोड़ा हो, छुरी आदिका ज़ख्म हो, फफोला हो या चमड़ी जल गयी हो, सूजन हो, ददोरे या अन्य उभार हो, आँख दुखती हो, तब मूत्रसे तर की हुई दो-चार तहवाली पट्टी उस भाग पर रखनी चाहिये; क्योंकि पीड़ाके कारण मालिश तो हो नहीं सकती। उस पट्टी पर पेशाब डालते रहें, ताकि वह सूख न जाये। आवश्यकताके अनुसार कई घंटों तक पट्टी रखी जा सकती है। उपवासमें भी पट्टी रख सकते हैं। इस क्रियासे मूत्रके रोगनाशक तत्त्व रोगीके शरीरमें दाखिल होकर भीतर और बाहरसे लाभकारी होंगे। इस प्रयोगके लिए रोगीका अपना मूत्र कम हो तो किसी स्वस्थ तथा नीरोग व्यक्तिका मूत्र उपयोगमें लिया जा सकता है। परन्तु यह ध्यान रखें कि रोगी पुरुषके लिए स्वस्थ पुरुषका और रोगी स्त्रीके लिए स्वस्थ स्त्रीका मूत्र ही काममें लिया जाये।

(५) **मूत्रके साथ अन्य प्राकृतिक तत्त्वोंका उपयोग करना**—स्वानुभवके आधार पर मुझे यह सूझा है कि मूत्रके साथ अन्य प्राकृतिक तत्त्वों—पृथ्वी, जल आदिका उपयोग हो सकता है। पाँच तत्त्वोंसे बना हुआ यह शरीर अस्वस्थ हो जाये तो उसे स्वस्थ बनानेके लिए उन्हीं तत्त्वोंकी सहायता लेना स्वाभाविक हो सकता है। उन मर्यादाका उल्लंघन करें तो प्राकृतिक क्षेत्रसे निकलकर अप्राकृतिक क्षेत्रमें दाखिल हो जायें। इसका जो कटु परिणाम आज हम भोग रहे हैं उसमें वृद्धि हो जाये। अब मूत्रके साथ अन्य प्राकृतिक तत्त्वोंके उपयोगकी बात लिखी जाती है।

१. कंकरसे रहित चिकनी मिट्टी मूत्रमें भिगोकर पेट, पेड़ू, सिर आदि पर रखना।

२. मूत्रमें पानी मिलाकर एनिमा लेना।

३. मूत्रको गरम करके उपयोग करना।

४. मूत्रसे सेंक करना।

५. जल-मिश्रित मूत्रकी भापसे स्नान करना।

६. शीशीमें रखे हुए मूत्रको और रोगीको सूर्यकी किरणें देना।

७. आधी भरी शीशीमें मूत्रको अनेक बार हिला-हिलाकर उसकी शक्ति बढ़ाना और उपयोग करना।

८. मूत्रकी नसवार लेना अर्थात् उसे नाकसे सूँघना।

रोगीकी प्रकृति, आयु, शारीरिक रचना, रोग आदिको ध्यानमें रखकर उपर्युक्त उपायोंका उपयोग करें। अन्य उपाय भी हो सकते हैं। परन्तु उपर्युक्त मूल मर्यादाको न छोड़ें।

मूत्रप्रयोगमें ख़तरे और चेतावनियाँ

मूत्रप्रयोगमें जो क्रिया-प्रतिक्रियाएँ होती हैं उनका उल्लेख रोगीके उपचारके विवरणमें जहाँ-तहाँ आयेगा ही, फिर भी सरलता और सुविधाकी दृष्टिसे खास-खास खतरों और चेतावनियोंको एक अलग प्रकरणमें देना ठीक समझता हूँ। इसलिए प्रयोग करनेवालोंसे निवेदन है कि प्रयोग शुरू करनेसे पहले इस प्रकरणको बहुत एकाग्रता और सावधानीसे पढ़ लें और सदा ध्यानमें रखें।

ख़तरे

(१) मूत्रसे पाँच-सात दिन तक मालिश करनेके बाद रोगीके शरीरमें खाज होने लगे, तो वह घबराये नहीं। वह मालिशसे ही मिट जायेगी।

(२) कई बार गरमी बाहर आती है और सफ़ेद मुँहवाली लाल फुंसियाँ शरीर पर फूट निकलती हैं। खूनमें जो ज़्यादा गरमी होती है वह पेशाबकी मालिशसे न्यूनाधिक मात्रामें बाहर आ जाती है। यह मूत्रप्रयोगसे शरीर-शुद्धि होनेका चिह्न है, जिससे घबरानेकी ज़रूरत नहीं है। इस स्थितिमें मालिश इतने जोरसे की जाये कि फुंसियाँ फूट जायें और उनमें पेशाब दाखिल हो जाये। फिर एक-दो घंटेके बाद साबुन आदि लगाये बिना ही गुनगुने पानीसे नहा लें।

(३) जिस विकारसे शरीरमें रोग पैदा हुआ है उसके बाहर निकल जानेसे ही रोग निर्मूल होता है। वह विकार तीन रास्तोंसे बाहर निकलता है। मुँह द्वारा उलटीसे, गुदा द्वारा दस्तसे और शरीरके छिद्रों द्वारा गरमी अर्थात् फोड़े-फुंसी आदिसे बाहर आता है। मूत्रप्रयोगमें इन तीन प्रतिक्रियाओंकी संभावना है। खाँसीसे कफ धीरे-

धीरे अलग होकर बाहर निकले तो उलटियाँ न भी हों। बार-बार टट्टी आनेसे अन्दरका विकार निकल जाये तो दस्त न भी लगें। अगर वह न निकले तो प्रयोगके उपवासके दिनोंमें दस्त लगने और उलटी आनेकी पूरी-पूरी संभावना है। ऐसा हो तो बिल्कुल न घबरायें। क़ुदरतको अपना काम करने दें। उसमें कल्याण ही है। किसीकी सलाहसे उसे बन्द करनेके लिए किसी भी प्रकारकी दवाई या इंजेक्शन न लें। वैसा करनेसे हानि होगी। इस प्रयोगसे ही वह प्रतिक्रिया अपने आप शान्त हो जायेगी। किसीके शरीरकी विशेष रचना या प्रकृतिके कारण वैसी प्रतिक्रिया न हो तो भी चिन्ता न करें।

(४) कई बार मुख्य रोग छिपा रहता है और दूसरा रोग उभर आता है, जिससे रोगी मुख्य रोगको गौण समझकर ज़रूरी परहेज़ नहीं रखता। इसका परिणाम यह आता है कि छिपा हुआ मुख्य रोग भयंकर बन जाता है। ऐसी स्थितिमें विवेक तथा सावधानता रखनेकी बेहद ज़रूरत है। इसकी स्पष्टताके लिए 'गुदाके रोग' प्रकरणमें बवासीरके रोगी श्री कान्तिलाल शाहका विवरण देखें।

(५) रोगीको पर्याप्त मूत्र न होता हो तो प्रायः उसके शरीर पर सूजन आ जाती है। तब उसके पेड़ू पर यथाविधि मूत्र-पट्टी सतत रखी जाये तो मूत्र बढ़नेकी पूरी संभावना है।

चेतावनियाँ

(१) मूत्र एक दिव्य साधन है। मूत्र किसी रोगकी दवाई नहीं है, किन्तु अपने शारीरिक स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए और खोये हुए स्वास्थ्यको पुनः प्राप्त करनेके लिए प्राकृतिक साधन है।

(२) जो व्यक्ति पुस्तकमें बतायी हुई सूचनाओं और उदाहरणोंको ध्यानमें रखकर या किसी अनुभवीकी सलाह लेकर नियमित रूपसे, उचित मात्रामें, अनुभवसे निश्चित की हुई पद्धतिके अनुसार और श्रद्धाके साथ पूरा परहेज़ रखकर मूत्रप्रयोग करेगा उसे अवश्य ही

लाभ होगा। यदि कोई व्यक्ति अश्रद्धासे, असावधानीसे, बद-परहेज़ी से और 'तीर नहीं तो तुक्का ही सही,' ऐसी अधकचरी मनोदशासे यह प्रयोग करेगा तो उसे फ़ायदा नहीं होगा, शायद नुकसान भी हो जाये; जिससे कल्याणकारी प्रयोग बदनाम होगा और मनुष्य-जातिकी कुसेवा होगी। अतः कृपा करके कोई व्यक्ति इस प्रकार मानवजातिकी कुसेवा करनेका दुःसाहस न करे।

(३) इस साधनका उपयोग करनेवालेको अपने शरीरका चिकित्सक स्वयं ही बनना चाहिये। अपने शरीरकी आदत, क्षमता, प्रकृति और प्राकृतिक जलवायुके विषयमें उसे अच्छी जानकारी होनी चाहिये। जिसे इन सब बातोंकी जानकारी नहीं होगी वह इस प्रयोगसे पूरा लाभ नहीं उठा सकता। ऐसी दशामें साधनमें दोष निकालनेकी धृष्टता न की जाये।

(४) कोई रोगी अत्यन्त उत्साहमें आकर एकाएक पूरा प्रयोग करने न लग जाये। आज तक आपने रोगको मिटानेके लिए जो अनेक प्रकारके अच्छे या बुरे तत्त्वोंवाले द्रव्य दवा या इंजेक्शन द्वारा अपने शरीरमें डाले हैं, उनका भी विचार करें। वे सब आपके शरीरमें छिपे बैठे हैं और उनके कारण आपका शरीर अमुक प्रकारकी आदत-वाला बन गया है। उन सब दुष्ट द्रव्योंको धैर्यके साथ निकालना चाहिये तथा अपने शरीर अर्थात् अपनी प्रकृतिको साधना चाहिये। अति विवेक और धैर्यके साथ इस प्रयोगको शुरू करें, ताकि आपका मन और शरीर नये प्रयोगका विद्रोह न करें, और यदि करें तो आप दृढ़तासे उसका सामना कर सकें। आपमें यह श्रद्धा होनी चाहिये कि मेरा मूत्र मेरे शरीरका पोषक है, अतः मेरा हितकारी है और इससे कभी भी मेरा अहित नहीं होगा।

(५) मूत्रप्रयोग शुरू करनेसे पहले दूसरी दवा या इलाज छोड़ देना चाहिये और कमसे कम चार दिनके बाद उसे शुरू किया जाये; क्योंकि मूत्र एक रसायन है। दूसरे अप्राकृतिक तथा विजातीय तत्त्वोंके

साथ इसका मेल नहीं बैठ सकता, प्रत्युत हानिकर सिद्ध होगा। मूत्रप्रयोगके समय किसी भी प्रकारकी दवा न ली जाये। यदि दूसरी दवा लेनी हो तो मूत्रप्रयोग बन्द करके चार दिनके बाद ही लें।

(६) कुछ लोग यह समझते हैं कि उपवास अर्थात् अन्न न खाना परन्तु फल खाना। उनकी यह समझ मिथ्या है। उपवासमें अन्न, फल या फलका रस कुछ भी न लेना चाहिये। इस प्रयोगके उपवासमें तो दिनभरका मूत्र पीना होता है और आवश्यकता तथा इच्छाके अनुसार पानी पिया जा सकता है। परन्तु और कुछ भी नहीं लिया जा सकता।

(७) जिस रोगीके ख़ूनका दबाव (ब्लड प्रेशर) कम हो और जिसका हृदय दुर्बल हो अर्थात् ठीक काम न करता हो, उसे उपवास नहीं करना चाहिये, क्योंकि इसमें ख़तरा है। यदि वैसा रोगी उपवास करता है तो उसके ख़ूनका दबाव और कम हो जाता है। जैसे-जैसे ख़ूनका दबाव कम होता है, वैसे-वैसे उस रोगीकी अशक्ति बढ़ती है। उसके हृदय पर ख़राब असर होता है और उसके जिगर तथा गुरदे पर भी असर पड़ता है। इसलिए वह भूल कर भी उपवास न करे। परन्तु मालिश करे, जितना मूत्र पचा सके उतना पिये और एक बार हलका खाना खाकर अपनी शक्ति बनाये रखे। यह ज़रूर है कि ऐसा करनेसे रोगीको अधिक समय तक यह उपचार करना पड़ेगा। उपवासके साथ उपचार करनेसे यदि पन्द्रह दिनमें आराम हो सकता है, तो उपवासके बिना प्रयोग चालू रखनेसे दो तीन मासमें पूरा आराम हो सकेगा। तब तक उसे धीरज रखनी ही होगी।

(८) प्रचलित चिकित्सा-पद्धतिने हमारी संयम-वृत्तिका नाश किया है, जिससे चिकित्साके व्यवसायको तो क़ाफ़ी लाभ पहुँचा है, परन्तु हमारे शारीरिक स्वास्थ्यकी ख़ूब हानि हुई है। इस प्रयोगमें संयमकी किसी भी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करना चाहिये। जो व्यक्ति पूरा संयम रखकर परहेज़का पालन नहीं कर सकता और

प्रयोगको पूरी श्रद्धा तथा निष्ठाके साथ चालू नहीं रख सकता, उसे कृपा करके इस प्रयोगको बन्द कर देना चाहिये और फिर वह मनचाहा कर सकता है।

(९) इस प्रयोगमें किसी भी रोगीको सफलता मिल जाने पर वह यह न मान बैठे कि अब उसे स्वच्छन्दतासे मनमाना आहार-विहार करनेका परवाना मिल गया है। उसका स्वास्थ्य जिस कारणसे बिगड़ा था, उस बिगड़े हुए स्वास्थ्यको सुधार लेने पर भी अपथ्य, अयुक्त और अति आहार करनेसे पुनः शरीर अस्वस्थ हो जायेगा। इसलिए शारीरिक स्वास्थ्यके सामान्य नियमोंका पालन तो उसे सदा करते ही रहना चाहिये। भगवान भी किसीको स्वास्थ्यके नियमोंसे मुक्त नहीं कर सकता।

(१०) इस पुस्तककी पहली आवृत्तिमें मैंने मूत्रप्रयोगके विषयमें जो आशंका व्यक्त की थी वह सच निकली। मुझे यह निश्चित रूपसे मालूम हुआ है कि कई वैद्य-डाक्टर रोगीके ही मूत्रसे उसका रोग मिटाकर धन और यश कमाने लग गये हैं ऐसी कुछ बातें मेरे पास आयी हैं। यह तो पाप कर्म है। वे अपने बुद्धिदाता परमेश्वरके द्रोही हैं। भगवान उनका भला करे और उन्हें सद्बुद्धि दे! पर ख़बरदार! कोई भी रोगी ऐसे ठग वैद्यों या डाक्टरोंकी बातोंमें न आये। एक वैद्यराजने आमवातके एक रोगीको उसके अपने मूत्रके साथ लेनेके लिए भस्मकी पुड़ियाएँ दीं और कहा, 'यह रत्नकी भस्म है, जिसके एक तोलेका मूल्य ७००–८०० रुपये हैं।' रोजाना एक पुड़िया स्वमूत्रके साथ लेनेके लिए कहा गया और उस एक पुड़ियाकी क़ीमत चार रुपये ली गयी। वह रोगी लगभग ठीक होने लगा कि इस अरसेमें उसने 'जन्मभूमि' के साप्ताहिक अंकमें 'मानव-मूत्र' से लिये हुए कुछ अवतरण पढ़े और उसे रहस्यका पता चला। फिर वह मेरे पास आया और मुझे सारी आपबीती सुनायी। वह भस्मकी पुड़िया भी दिखायी। वास्तवमें वह भस्म किस चीज़की थी, इसे

तो वैद्य जानें। परन्तु उस रोगीने सच्ची वस्तुस्थितिको जानकर बाक़ी सब पुड़ियाएँ मेरे सामने ही फेंक दीं और फिर शुद्ध मूत्रप्रयोग करके वह स्वस्थ तथा सशक्त हो गया। मेरी नम्र विनय है कि कोई भी व्यवसायी चिकित्सक पवित्र सेवाके इस यज्ञको इस प्रकार धनप्राप्तिका साधन बनाकर दूषित न करे, कोई भी व्यक्ति धन कमानेकी दृष्टिसे प्रकृतिकी इस पवित्र देनका उपयोग न करे और दरिद्र तथा रोग-पीड़ित जनताको धोखेमें डालकर इस शुद्ध कार्यको अशुद्ध न करे।

(११)* इस संस्करणमें एक और चेतावनी बढ़ानेकी ज़रूरत उपस्थित हुई है। मूत्रप्रयोगके बारेमें यदि कोई उलटी-सीधी बात करे या उलटी पट्टी पढ़ाये तो उस पर ज़रा भी ध्यान न दें और निःसंशय तथा निर्भय होकर यह प्रयोग करते रहें। इसकी स्पष्टताके लिए एक घटनाका वर्णन भी यहाँ किये देता हूँ।

श्री रमणलाल ए० कोठारी बी० एससी० (इंग्लैंड) बड़ौदामें रहते हैं। मूत्रप्रयोगसे उनकी टाँगोंका दर्द, जठरकी जलन और शारीरिक अशक्ति दूर हो गयी, जिसका ज़िक्र उन्होंने एक वैद्यराजसे किया। तब वैद्यराजने उनसे कहा, "यह वस्तु तो अच्छी है, पर इसका उपयोग उपवासके साथ किया जाये। यदि आहारके साथ मूत्रपान करेंगे तो बादमें ख़ून ख़राब हो जायेगा। शायद यह बात अभी समझमें न आये, परन्तु पिछली उमरमें इसकी प्रतिक्रिया पीप, पांडुरोग आदिके रूपमें दिखायी देगी।" कोठारीजी वैद्यराजकी भविष्यवाणी सुनकर घबरा गये और दुविधामें पड़ गये। उन्होंने सारी बात मुझे लिख भेजी और मेरा मार्गदर्शन माँगा।

मैंने उन्हें विस्तारपूर्वक पत्र लिख दिया, जिसका सारांश इस प्रकार है:—

* 'मानवमूत्र' की छठी आवृत्तिमें प्रकाशित लेख – 'वैदराजे उटांग मूक्यु' का सार।

आपका प्रयोग तो सफल हुआ, परन्तु वैद्यराजने भय दिखाकर आपके हृदयमें बुद्धि-भ्रम खड़ा कर दिया। मुझे लगता है कि वैद्य-राजने आपको उलटी पट्टी पढ़ा दी। वे यदि अपने कथनके समर्थनमें कोई प्रत्यक्ष उदाहरण या शास्त्रीय उल्लेख प्रस्तुत कर सकें तो उनकी बात विचारणीय हो सकती है, नहीं तो यही समझें कि उन्होंने सफ़ेद झूठ बोला है।

इस बातका तो ध्यान रखना ही चाहिये कि प्रत्येक वस्तुका उपयोग विवेक तथा मर्यादासे किया जाये। अमृतका उपयोग भी मर्यादापूर्वक हो तो वह श्रेयस्कर है। मैं तो यह मानता और कहता आया हूँ कि मूत्र आहार या आहारका साधन नहीं है, किन्तु स्वास्थ्यका साधन है। इसलिए अपनी प्रकृति और परिस्थितिके अनुरूप इसका उपयोग किया जाये।

भगवान सुश्रुतने स्पष्ट कहा है कि मानव-मूत्र विषघ्न तथा रसायन है। 'विषघ्न' अर्थात् विष, चाहे वह अन्दरका हो या बाहरका, मूत्रपानसे उसका नाश होता है। 'रसायन' अर्थात् शरीरकी वृद्धावस्थाको दूर करता है और युवावस्था बनाये रखता है। सुश्रुतका यह विधान गागरमें सागर भरने जैसा है।

अपने आपको एक अनधिकारी व्यक्ति मानते-समझते हुए भी मैं इस नग्न सत्यको दृढ़तासे मानता हूँ कि रोगीका अपना मूत्र अपने रोगका उन्मूलन करनेके लिए प्रकृतिका दिया हुआ सर्वोत्तम साधन है अर्थात् प्रकृतिकी श्रेष्ठ देन है।

आवश्यक सूचनाएँ

१. निर्दिष्ट पद्धतिके अनुसार अर्थात् शास्त्रीय ढंगसे प्रयोग करें।

२. प्रयोगके दौरान किसी भी प्रकारकी दवाका उपयोग न करें, चाहे वह दवा वैद्य या डाक्टरकी दी हुई क्यों न हो।

३. तम्बाकू, शराब या ऐसा कोई व्यसन हो तो उसे तिलांजलि देकर ही यह प्रयोग शुरू करें।
४. मिर्च-मसालेदार और तली हुई चीज़ न खायें।
५. दानेदार खाँड, जो 'रिफ़ाइन्ड शूगर' कहलाती है उसका और सेक्रीनका परित्याग करें, शहद और गुड़ या खंडसारीका उपयोग करें।
६. मैदेकी बनी हुई चीज़ न खायें।
७. मशीनसे साफ़ किये हुए चावल न खायें। कोदों या हाथकुटे चावलोंका उपयोग करें।
८. टीनके डब्बोंमें या बोतलोंमें बन्द करके रखे हुए फल या अन्य खाद्य उपयोगमें न लायें।
९. पेश्च्यूराईज़्ड दूध और उससे बनी हुई चीज़ न खायें।
१०. डालडा घी (वनस्पति घी)का उपयोग न करें।
११. अधिक खट्टे, खारे और तीखे पदार्थ -- अचार आदि न खायें।
१२. नहानेमें साबुनका उपयोग न करें।

विनती

अन्तमें मेरी विनती है कि जिन्होंने अपने किसी भी गम्भीर तथा भयंकर रोगको मूत्रोपचारसे नष्ट किया हो, वे अपने रोगका निदान, पहले किये हुए आयुर्वेदिक, डाक्टरी या अन्य इलाजका स्पष्ट विवरण और मूत्रप्रयोगके दौरान होनेवाली क्रिया-प्रतिक्रिया आदिका विस्तृत विवरण मुझे अवश्य लिख भेजें। हमें इस प्रयोगकी जो वैज्ञानिक पद्धति तैयार करनी है वह अनेक लोगोंके अनुभवसे ही निश्चित की जा सकती है। इसके लिए ऐसे विवरण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे और लोक-कल्याणमें सहायक होंगे। इसलिए वे अपने विवरण भेजकर मानव-सेवामें सहयोग देकर मुझे आभारी करें।

अनुभव तो ऐसा है कि जिस घरमें दवाकी शीशी दाखिल हुई कि वहाँसे फिर निकलती ही नहीं। असंख्य मनुष्य जीवनभर किसी न किसी रोगसे पीड़ित रहते हैं, रोग मिटानेवाले वैद्य या डाक्टरकी खोजमें भटकते रहते हैं; और अन्तमें खूब परेशान होकर, दूसरोंको परेशान करके बेचैनीसे मर जाते हैं।

— गांधीजी

आरोग्यका अमूल्य साधन
शिवाम्बु — स्वमूत्र

द्वितीय खंड

पुनरुद्धारकके अनुभव

The Urine-therapy is a Nature-cure in the most literal sense of the word, and to employ measures which are contrary to Nature at the same time, would not only be quite illogical but even dangerous.

—John W. Armstrong

मूत्रचिकित्सा बिल्कुल सच्चे अर्थमें प्राकृतिक उपचार है। इस चिकित्सामें प्रकृति-विरुद्ध उपायोंका उपयोग करना केवल असंगत ही नहीं होगा, अपितु ख़तरनाक भी।

—जॉन डब्ल्यू० आर्मस्ट्रॉङ्ग

१

अन्तिम कोटिका क्षय

(पुनरुद्धारकका मूत्रप्रयोग)

आधुनिक कालमें मूत्रचिकित्साके पुनरुद्धारक स्व० जॉन० डब्ल्यू० आर्मस्ट्रॉङ्गका जीवनचरित्र मिलना मुश्किल है। जैसे दूसरे लेखक अपने आपको प्रकाशमें लानेकी स्वाभाविक इच्छा रखते हैं, वैसी इच्छा उन्हें न थी। उन्हें जो वस्तु हितकर मालूम हुई उसे पहले खुद आज़माया और फिर उसीसे हज़ारों रोगियोंको रोगमुक्त किया। फिर भी उन्हें अपने अनोखे अनुभवको पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करनेकी लालसा न थी। परन्तु अनेक मित्रोंके अनुरोधसे उन्होंने पुस्तक तैयार की। पुस्तक पढ़नेसे पता चलता है कि उन्होंने गंभीर-से-गंभीर बातको कम-से-कम शब्दोंमें बताया है। इसलिए मूत्रोपचारके साहित्यमें उनकी पुस्तक--दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़--सूत्रात्मक है। इसलिए उनकी बातको भली प्रकारसे समझनेके लिए उसे अनेक बार पढ़ना चाहिये। उन्होंने मूत्रोपचारसे हज़ारों बीमारोंको तन्दुरुस्त किया है। कुष्ठरोग प्राय: इंग्लैंड में नहीं होता है। इसलिए किसी कुष्ठ रोगीके उपचारका अवसर उन्हें नहीं मिला। अन्य सब प्रकारके रोगी उनके पास आये, जिन्हें मूत्रोपचारसे ही आराम हुआ। उनके माता-पिता साधारण स्थितिके थे। उनकी पुस्तकसे पता चलता है कि उनके पिता अनेक बार गाय, घोड़ा, कुत्ता आदि जानवरोंके रोग उन्हीं जानवरोंके पेशाबसे मिटाते थे। उनका यह पेशा न था, परन्तु शग़ल था। गाय या घोड़ेको उसका पेशाब पिलानेके लिए हम बाँसकी नलीका उपयोग करते हैं, परन्तु वे सींगसे काम लेते थे। आर्मस्ट्रॉङ्गने अपने पिताकी इस प्रवृत्तिकी

स्मृतिके आधार पर पशु-पक्षियोंके रोगोंको दूर करनेका वर्णन भी अपनी पुस्तकमें दिया है।

जब हम यह सोचते हैं कि आर्मस्ट्रॉङ्ग जैसे साधारण व्यक्तिने किस परिस्थितिमें मूत्रोपचार शुरू किया और उसमें कितनी सफलता प्राप्त की, तब हमें उनके धार्मिक विश्वास, नैतिक साहस, धैर्य, समभाव, प्रकृतिमें अटल श्रद्धा, धन या प्रतिष्ठाकी निःस्पृहा, परोपकारकी भावना आदि सात्त्विक गुणोंका परिचय मिलता है। इन्हीं गुणोंके आधार पर हमें यह स्पष्ट पता चल जाता है कि उनमें एक साधु तथा योगी जैसी अद्‌भुत शक्ति थी। इसके अतिरिक्त उनके सामान्य ज्ञानकी समृद्धिका परिचय पुस्तकके पन्ने-पन्ने पर होता है। मैं मानता हूँ कि यदि उनके जीवन-संस्मरण प्राप्त हों तो किसी भी समाजके लिए हितकर होंगे। परन्तु अभी तो इतनेसे ही सन्तोष मानना होगा।

आर्मस्ट्रॉङ्गने मूत्रप्रयोगकी प्रथम कसौटी अपना ही शरीर बनाया, जिससे उनका अन्तिम कोटिका क्षय नष्ट हुआ। उन्होंने अपने प्रयोगका जो वर्णन किया है उसका हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जाता है :—

"यद्यपि इस पुस्तकमें सर्वनामके उत्तम पुरुषके उपयोगको मैं टालना चाहता हूँ। परन्तु यदि मुझे अपनी बातको दूसरोंके हृदय-पटल पर अंकित करना है तो उत्तम पुरुषका उपयोग करना ही होगा; क्योंकि मेरी सैकड़ों दलीलोंकी अपेक्षा स्वानुभवका एक दृष्टांत अधिक प्रभावशाली होगा।

"मेरा प्रथम रोगी मैं खुद बना। बात यह हुई कि प्रथम युद्धके समय अर्थात् सन् १९१४में मेरी आयु ३४ बरसकी थी। मैं फ़ौजमें भरती होना चाहता था। भरती सम्बन्धी डरबी योजनाके अनुसार मैं अपनी शारीरिक योग्यताकी परीक्षाके लिए परीक्षक डाक्टरोंकी सेवामें उपस्थित हुआ। चार डाक्टरोंने मेरे शरीरकी जाँच करके फ़तवा दिया कि मैं क्षय रोगका शिकार हुआ हूँ, इसलिए मैं भरतीके अयोग्य हूँ। साथ ही मुझे सूचित किया गया कि मैं किसी कुशल डाक्टरसे

अपना इलाज कराऊँ। तदनुसार मैंने क्षयके एक विशेषज्ञकी सलाह ली। उन्हें मेरी स्थिति कोई विशेष चिन्ताजनक नहीं लगी और मुझे कहा कि क्षय जैसी कोई बात नहीं है; परन्तु जुकामकी बीमारी है। इसलिए उन्होंने मुझे अपनी नेक सलाह दी कि मैं ऐसी जगहमें रहूँ कि जहाँ खूब ताज़ा हवा हो, यथेष्ट सूर्य-प्रकाश हो और पौष्टिक आहारकी सुविधा हो। मैंने उनकी सूचना पर अमल किया। एक बरसमें मेरा वज़न २८ पौंड बढ़ा, फिर भी मुझे अपनी शारीरिक स्थितिसे सन्तोष न हुआ। इसलिए मैंने क्षयके अन्य विशेषज्ञकी सलाह ली। उन्होंने यह बताया कि मेरे दोनों फेफड़े क्षयके शिकार हो गये हैं और पहले डाक्टरकी बातको दिमागसे निकाल कर क्षयका उपचार करनेके लिए सावधान किया। साथ ही यह सूचना दी कि खाँड और स्टार्चसे परिपूर्ण आहार लेकर मुझे अपने शरीरकी शक्तिको सुरक्षित रखना चाहिये। वैसा आहार लेनेका परिणाम यह आया कि मधुमेहने मुझे आ घेरा। उससे मुक्ति पानेके लिए मुझे एक कठिन प्रयोगका आश्रय लेना पड़ा। उस प्रयोगमें सप्ताहमें चार दिन हर रोज़ दस औंस ठंडे पानीके छः गिलास मुझे चुसकी लेकर पीने पड़ते थे और बाक़ीके तीन दिन नियत मात्रामें थोड़ा भोजन दिया जाता था, ताकि जठराग्नि ज़रा प्रदीप्त हो सके। और हिदायतके अनुसार मुझे हर कौरको खूब चबा-चबाकर खाना पड़ता था, जिसका परिणाम यह हुआ कि मुँहमें छाले पड़ गये, दाँतोंमें दर्द होने लगा, मसूड़े सूज गये और जीभ पर भी सूजन आ गयी। इस दुःखमें और वृद्धि यह हुई कि मुझे अनिद्रा और बेचैनीने आ घेरा, मेरे ज्ञानतन्तु क्षीण हुए और स्वभाव खूब चिड़चिड़ा हो गया। यह प्रयोग सोलह सप्ताह तक चला। यद्यपि मेरी खाँसी, दुःखदायी पाओंकी नसकी सूजन, ये सब तकलीफें तो मिट गयीं, तथापि नामालूम यह आराम मुझे रोगसे भी बुरा लगने लगा। दो बरसके डाक्टरी उपचारका अन्तिम परिणाम यह आया कि डाक्टरोंमें मेरी श्रद्धा उठ गयी और उनकी सलाह तथा चेतावनीकी अवहेलना करके मैं अपने आप पर प्रयोग करने लगा।

"अब मैं इस विषयकी छोटी-छोटी बातोंका विवरण देकर अपने वक्तव्यको लम्बा करना नहीं चाहता। इतना ही कहना काफी होगा कि जब मैं बहुत बीमार और कमज़ोर हो गया तब मुझे पवित्र बाइबलके पाँचवें अध्यायकी इस आज्ञाका स्मरण हो आया — 'तू अपने शरीरसे निकले हुए पानीको पी।' इस आज्ञाकी याद आते ही मुझे एक केस याद आया कि एक छोटी लड़की गलेमें श्वासनलीकी सूजनसे पीड़ित हो रही थी, तब पिताने उसे उसीका पेशाब पिलाया था और तीन दिनमें वह रोगमुक्त हो गयी थी। इसी प्रकार एक व्यक्तिका पांडुरोग इसी उपायसे मिटा था। फिर तो मुझे अपनी बात भी याद आ गयी। कुछ बरस पहले मेरे डाक्टरने मेरे पेशाबकी जाँच की थी। जाँचके बाद उन्होंने बताया कि मेरे फेफड़े और जिगरके नीचेकी पाचकग्रन्थि ख़राब हो गये हैं और वे दिन-प्रतिदिन क्षीण हो रहे हैं। डाक्टरके इस निदानको सुनकर उस वक्त मैंने अज्ञानतासे प्रश्न किया कि यदि मैं अपने शरीरके महत्त्वपूर्ण रस और खाँडके तत्त्वको पेशाब द्वारा बाहर निकालता हूँ तो मुझे अपना पेशाब पीकर उन्हीं तत्त्वोंको वापस शरीरमें क्यों नहीं डालना चाहिये? मेरे इस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा, 'शरीर ऐसे मृत द्रव्योंको आत्मसात् नहीं कर सकता।' डाक्टरका यह उत्तर केवल कपोल-कल्पित और सत्यशून्य था। सच पूछें तो उन्होंने ऐसा उत्तर देकर कोरी गप ही मारी थी।

"अब हम मूल बात पर आते हैं। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि धर्मपुस्तक बाइबलका जो सूत्र ऊपर उद्धृत किया है उसका अमुक अर्थ ही होना चाहिये, ऐसा दावा करनेमें बुद्धिमत्ता नहीं है; क्योंकि अनेक मनुष्योंको बाइबलमें अपनी भावनाके अनुसार अभीष्ट अर्थ भी मिल जाता है। फिर भी मैं मानता था और अब भी मानता हूँ कि मेरे द्वारा उद्धृत सूत्र तथा अन्य अनेक सूत्रोंका उल्लेख हमारे शरीर से निकलनेवाले प्राण-रक्षक रसको लक्षमें रखकर ही किया है, ऐसी

दृढ़ मान्यताके साथ मैंने वैसा किया और अन्तमें मुझे विश्वास हुआ कि वही रस मेरे शरीरको रोगमुक्त करनेवाला सिद्ध हुआ। इस प्रकार धर्मपुस्तकके सूत्रोंका मेरा अर्थ सच्चा ही है, ऐसी श्रद्धाके दुर्गमें सुरक्षित रहकर मैंने केवल मूत्र और नलके पानीके साथ पैंतालीस दिनका लम्बा उपवास किया। यद्यपि डाक्टरोंका यह स्पष्ट अभिप्राय था कि भोजनके बिना मनुष्यका शरीर ग्यारह दिनसे अधिक नहीं टिक सकता, फिर भी मैंने उनके अभिप्रायकी अवगणना करके वह उपवास किया। साथ ही मैंने अपने मूत्रसे शरीर पर मालिश की। इस प्रयोगमें यह क्रिया भी अति महत्त्वकी है। मैंने कच्चा मांस खाकर उपवास छोड़ा, जिससे मुझे कड़ी भूखके सिवा और कोई बेचैनी महसूस नहीं हुई। मैं कुछ समय तक आहारमें सावधान रहा और अपना मूत्र पीता रहा। मूत्रपानके दौरान मूत्रके परिमाण, स्वाद, रंग आदिके परिवर्तनका मुझे अच्छा अनुभव हुआ। मैं जो खाना खाता था, जो पेय पीता था और जितना श्रम करता था, उसके अनुसार मुख्यतः मूत्रमें परिवर्तन होता था।

"इस प्रयोगके अन्तमें मुझे लगा कि मानो मुझे नवजीवन प्राप्त हुआ है। मेरा वज़न १४० पौंड हो गया था। मैं चेतना तथा स्फूर्तिसे भरपूर था। मैं अपनी असली उमरसे ११ बरस छोटा मालूम होता था। मेरी चमड़ी छोटी लड़कीकी चमड़ी जैसी कोमल और तेजस्वी हो गयी थी। उस समय मेरी अवस्था ३६ बरसकी थी और इस प्रकरणको लिखते समय मेरी आयु साठ बरससे अधिक है। मैं यह महसूस करता हूँ कि अपने मूत्रकी बूँद-बूँद पीनेसे, युक्त आहारसे और ज़रूरतसे ज्यादा कभी न खानेसे मैं समान आयुवालोंकी तुलनामें बहुत छोटी आयुका दिखायी देता हूँ और मैं छोटी-बड़ी शारीरिक व्याधिसे अपने-आपको मुक्त रख सकता हूँ।

"मैंने क्षय रोगसे मुक्ति पानेका और उस मुक्तिको सुरक्षित रखनेका सच्चा हाल बता दिया है। उसके बाद मुझे जो भान हुआ

उसे भी बता देना चाहता हूँ। वह भान यह था कि हमें अपने ज्ञानको स्वार्थवृत्तिके तालेमें बन्द नहीं रखना चाहिये, अपितु मनुष्य जातिके कल्याणके लिए दूसरोंको भी उसमें भागीदार बनाना चाहिये। इसलिए स्वानुभवके आधार पर मैं दूसरोंको यह सलाह देने लगा कि वे भी अपने रोगोंसे मुक्ति पानेके लिए मेरी तरह मूत्रप्रयोग करें। इतना ही नहीं, अपितु उनके प्रयोगकी आवश्यक देख-भाल भी करने लगा। अतः इस पुस्तकके बाक़ीके भागमें यह वर्णन है कि मूत्रप्रयोगने किन किन रोगियोंको किस किस रोगसे मुक्ति दिलायी है और साथ ही किसी अंगका बेकार हो जाना या मर जाना, कैन्सर जैसे रोग, जो आजकी चिकित्सा-पद्धतिमें असाध्य माने जाते हैं, उन रोगोंके मिट जानेका विवरण भी दे दिया है।"

२

गेन्ग्रीन* (अंगका मर जाना)

गेन्ग्रीन चिकित्साशास्त्रकी दृष्टिसे एक असाध्य रोग माना जाता है। शरीरकी जठराग्नि मंद हो जानेसे शरीरके किसी दूरके अंगको रुधिरका पोषण न मिलनेसे वह अंग रक्त-हीन मृत – निर्जीव होकर सूख जाता है या सड़ने लगता है। ऐसे रोगको 'गेन्ग्रीन' कहा जाता है। इसका रोगी शायद ही बचता है। इस रोगकी जड़ गहरी होती है। पैरका अँगूठा निर्जीव हो गया हो तो उसे काट डालनेसे ही काम नहीं बनता। उसे काटने पर भी पैरकी निर्जीवता बढ़ती जाती है और अन्तमें असाध्य हो जाती है। इस भयंकर रोगके मूल कारण अनेक रोग होते हैं।

---

*रोगोंके उपयुक्त देशी नाम न मिलनेसे अथवा प्रचलित न होनेसे इस पुस्तकमें मूल अंग्रेज़ी नाम भी रखने पड़े हैं।

(१) शीतलाका टीका लगवानेके बाद पक्षाघातके रोगसे गेन्ग्रीन रोग होता है।

(२) मधुमेहसे यह रोग हो जाता है।

(३) शरीरका कोई भाग भारी वज़नसे ज़ख्मी हो जाये, तो उससे भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

(४) किसी मनुष्यके ख़ूनका पानी बननेसे 'एनीमिक' दशा हो जाती है, जिससे यह रोग लागू हो जाता है।

(५) हाथ-पैरका कोई भाग कट जानेके बाद शरीरके किसी आन्तरिक रोगके कारण वह भाग गेन्ग्रीनका शिकार हो जाता है।

(६) क्षयके रोगीको कई बार ग्रीन हो जाता है।

(७) अत्यन्त गरम तरल पदार्थसे जला हुआ भाग भी गेन्ग्रीनसे आक्रान्त हो जाता है।

यह रोग डाक्टरोंकी दुनियामें असाध्य माना जाता है। परन्तु स्व० आर्मस्ट्रॉङ्गके अनुभवके अनुसार मूत्रप्रयोगसे इसके रोगी शीघ्र स्वस्थ हो गये हैं, जिसका विवरण मूल अंग्रेजी पुस्तकके आधार पर यहाँ दिया जाता है:—

आर्मस्ट्रॉङ्गके पास गेन्ग्रीनका प्रथम रोगी सन् १९२०में आया। वह ५३ बरसकी स्त्री थी। वह ब्रेडफ़ोर्डके एक प्रसिद्ध डाक्टरसे इलाज कराती थी। वे डाक्टर उपवास और युक्त आहारके विशेषज्ञ माने जाते थे। वह स्त्री एनीमियाका शिकार हो चुकी थी। उसके फेफड़ोंकी स्थिति गंभीर थी। उसका एक पैर सूखकर निर्जीव हो गया था और दोनों टाँगों पर विविध आकारके चकते उठ आये थे। पांडुरोगसे उसकी आँखें पीली हो गयी थीं और चेहरेका रंग युरेज़ियन स्त्री जैसा लगता था। उसके डाक्टर चाहते थे कि कम-से-कम एक मास तक उसे मूत्रप्रयोग पर रखा जाये। परन्तु आर्मस्ट्रॉङ्ग

उसका उपचार करनेसे झिझकते थे; क्योंकि वे उसे नीरोग बनानेके लिए दो-ढाई मासके मूत्रप्रयोगकी ज़रूरत समझते थे। आख़िर वे उपचार करनेके लिए तैयार हो ही गये। मूत्रप्रयोगका तुरन्त इतना अच्छा असर हुआ कि आर्मस्ट्रॉङ्ग चकित हो गये और उन्हें पहली बार यह मालूम हुआ कि गेन्ग्रीन इतना निराशाजनक रोग नहीं है जितना कि लोग और डाक्टर समझते हैं। रोगीको उपवास पर रखा गया। दिनभरका सारा मूत्र वह पीता था और प्यास लगने पर नलका पानी पी लेता। साथ ही साथ उसके शरीर पर मूत्रसे मालिश की जाती थी और पीड़ावाले स्थान पर मूत्रसे भीगी हुई पट्टियाँ रखी जाती थीं। दस दिनके बाद आँतें और गुरदे अच्छी तरह काम करने लगे। आरंभमें चकते कुछ अधिक निकले, परन्तु उनकी पीड़ा कम होने लगी। श्वासोच्छ्वास सरल तथा नियमित हो गया, नींद सुधरी और मृत पैरमें कुछ चेतनाकी झाँकी होने लगी। अठारह दिनके उपवासके अनंतर पैरकी स्थिति स्वाभाविक हो गयी। मूत्रने चमड़ी नयी कर दी और पैरमें रोगका कोई दाग़ तक न रहने दिया।

उपर्युक्त रोगी ठीक होकर गया कि गेन्ग्रीनका दूसरा रोगी आ पहुँचा। वह क़रीब ४० बरसकी स्त्री थी। उसकी दायीं टाँग इतनी ज़्यादा सड़ गयी थी कि डाक्टरोंने उसे कटवा डालनेकी सलाह दी थी। क़रीब दो बरस पहले टखनेकी सूजनसे यह रोग उत्पन्न हुआ था। उस स्त्रीको अपना धन्धा पत्थरकी सख़्त ज़मीन पर घुटने टेककर करना पड़ता था, जिससे वह इस बीमारीका शिकार हो गयी थी। उसने सभी प्रकारके चिकित्सकोंसे अपना उपचार कराया, परन्तु 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।' वह कड़ा क़ब्ज़, बवासीर, एक्ज़ीमा, एनीमिया, अनिद्रा आदि अनेक व्याधियोंसे पीड़ित थी। इसके अतिरिक्त निर्जीव टाँग कई जगहसे खोखली हो गयी थी। इतनी तकलीफ़ोंके होते हुए भी वह स्त्री हिम्मतवाली थी और मूत्र पीकर उपवास करनेके लिए वह एकदम तैयार हो गयी। दिनभरका सब मूत्र वह

पी लेनी और रोजाना तीन पिन्ट अर्थात् क़रीब चार पौंड पानी चुसकी लेते हुए पीती थी। पाँच दिनके तपसे उसकी टाँगके घाव मिटने लगे और शरीरके सभी अंगोंकी चमड़ी हर तरहसे अच्छी मालूम होने लगी। मुँहकी पीड़ा तो दूसरे दिन ही शान्त हो गयी। अनेक सप्ताहोंकी अनिद्राके बाद तीसरी रातको वह गहरी नींद सोयी। एक सप्ताहके अनंतर उसकी आँतें और गुरदे अच्छी तरह काम करने लगे। उसकी बवासीर मिट गयी। दो सप्ताहके अनंतर तो गेन्ग्रीनका नाम-निशान भी न रहा और ज़ख्मोंके गढ़े भर जानेसे नयी चमड़ी आ गयी। पीड़ावाली टाँग दूसरी अच्छी टाँगसे दुगनी मोटी हो गयी थी। अब वह पूर्ण रूपसे अपनी स्वाभाविक स्थितिमें आ गयी थी और भयंकर रोगकी एक भी निशानी न रही थी। पन्द्रह दिनके उपवासके बाद पहले सप्ताहमें रोगीको अंगूर, केले और कच्चे टमाटरके परिमित आहार पर रखा गया, दूसरे सप्ताहमें फलोंके साथ ताजा दूध (पेश्च्यूराईज़्ड नहीं) दिया गया और तीसरे सप्ताहमें सामान्य भोजन लेनेकी इजाज़त दी गयी।

आर्मस्ट्रोङ्गने अपने अनुभवसे यह सिद्ध कर दिखाया कि भयंकर तथा असाध्य माने जानेवाले गेन्ग्रीन रोग पर मूत्रप्रयोग अत्यन्त सफल हुआ और वह भी निर्धारित समयकी अपेक्षा थोड़े समयमें। इसका कारण चिकित्साशास्त्रकी दृष्टिसे यह है कि मूत्र निर्जीव द्रव्य नहीं है, किन्तु सजीव रस (लिविंग सॉल्यूशन) है, जिसमें मांस, रुधिर और मृत कोश-तंतुजालको सजीव बनाकर विकसित करनेका तत्त्व है। उन्होंने ऐसे अनेक रोगियोंका उपचार किया है, जिन्हें डाक्टरोंने रोगग्रस्त अंग कटवा देनेकी सलाह दी थी। भिन्न-भिन्न कारणोंसे जिन्हें गेन्ग्रीन रोग हुआ था उनमेंसे कुछका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

श्रीमती ई० को शीतलाका टीका लगवानेके बाद पक्षाघातका रोग हुआ और फिर दोनों पैर गेन्ग्रीनके शिकार हो गये। पेशाब और पानीके साथ ४८ दिनका उपवास करनेसे बिल्कुल आराम हो गया।

श्रीयुत डी० को मधुप्रमेहका रोग था, जिससे उसकी बायीं भुजा कुहनीसे कलाई तक गेन्ग्रीनसे ग्रस्त हो गई। मधुमेहके लिए ४८ दिनका उपवास करना पड़ा। फिर १८ दिनमें वह भुजा बिल्कुल ठीक हो गयी और रोगका कोई निशान भी न रहा।

श्रीयुत जे० डब्ल्यू० बी० नामके व्यक्तिकी आयु ६० बरसकी थी। लुहारका काम करते हुए अँगूठे पर हथोड़ा लगनेसे अँगूठेका पहला और दूसरा जोड़ गेन्ग्रीनसे आक्रान्त हो गया था। १८ सप्ताह अन्य उपचार किया, परन्तु दशा सुधरनेके बजाए बिगड़ गयी। पहले जोड़ तक हड्डी निकाल देनी पड़ी। कलाई तक चमड़ीका रंग बदल गया। उसने विधिपूर्वक मूत्र पीकर उपवास किया और हाथ तथा भुजा पर मूत्रकी पट्टियाँ रखीं। एक सप्ताहमें आराम हो गया।

कुमारी सी० ए०—आयु १० बरस। उसे एनीमिया था। सोराइसिस (चमड़ीकी सूजनका रोग) के दमनकारी उपचारसे दोनों टाँगें गेन्ग्रीनसे ग्रस्त हो गयीं। पिंडलियाँ सूज गयी थीं। मूत्र पीकर अठारह दिनका उपवास करनेसे बिल्कुल आराम हो गया। एनीमिया और सोराइसिस भी मिट गया। किसी प्रकारका दाग़ न रहा। उपवासके दिनोंमें उस लड़कीकी ऊँचाई डेढ़ इंच बढ़ी।

श्रीयुत ज़े० आई०—अवस्था ५४ बरस। मछलीकी हड्डीसे अँगूठा कट गया था। उसी समय डाक्टरने जाँच की थी। परिणामस्वरूप गेन्ग्रीन हो गया था। अँगूठा कटवा डालनेकी डाक्टरी सलाहको उसने नहीं माना। १४ दिन मूत्रके साथ उपवास किया, मूत्रसे शरीर पर मालिश की और अँगूठेपर बहुत तेज़ पुराने पेशाबकी पट्टी रखी। तीन दिनके बाद कुछ सुधार हुआ और बारह दिनमें बिल्कुल आराम हो गया।

श्रीयुत एन०—आयु ५५ बरस। क्षयग्रस्त दोनों टाँगें गेन्ग्रीनसे आक्रान्त हुईं। डाक्टर उन्हें कटवा देना चाहते थे। परन्तु उसकी पत्नीने विरोध किया। रोगीकी स्थिति बहुत कमज़ोर थी। दवाएँ खा

खा कर निराश हो गया था। विधिपूर्वक ४२ दिनका उपवास करनेसे वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। स्वस्थ पुरुषकी भाँति चलने लगा और व्यायामका मज़ा लेने लगा।

श्रीमती एल० —— उमर ४८ बरस। उसकी टाँगें खौलती हुई चरबी गिरनेसे जल गयी थीं। डाक्टरोंने तीन सप्ताह तक प्लास्टर लगाये और मरहमपट्टी की, परन्तु हालत ज़्यादा ख़राब हो गयी। आख़िर दोनों टाँगें गेन्ग्रीनसे आक्रान्त हो गईं। सविधि २८ दिनका उपवास किया। दस दिनमें काफ़ी सुधार हुआ और पन्द्रह दिनमें पूरा आराम हो गया।

इसी प्रकार गेन्ग्रीनके अन्य अनेक रोगी भी मूत्रप्रयोगसे स्वस्थ हुए हैं। उन सबका विवरण देनेकी ज़रूरत नहीं है।

३

ग्रोथ और कैन्सर

(बाहरी और भीतरी ज़हरी गाँठ)

कैन्सरके अनेक प्रकार हैं। यह शरीरके भिन्न भिन्न भागोंमें होता है। कैन्सर एक भयंकर तथा असाध्य रोग माना जाता है। इसकी गाँठ शरीरके अन्दर होती है। शरीरके बाहर उभरी हुई वैसी गाँठ 'ग्रोथ' कहलाती है। परन्तु शरीर पर उठी हुई ऐसी सभी गाँठें विषैली या असाध्य नहीं होती हैं, जैसे रसौली। उपर्युक्त दोनों प्रकारकी गाँठोंसे अर्थात् ग्रोथ और कैन्सरसे आजकी मानवजाति त्रस्त हो गयी है। कैन्सरसे आक्रान्त होनेका अर्थ यह माना जाता है कि 'राम नाम सत्य है।' डाक्टरोंकी यह मान्यता है कि आहारमें क़ुदरती क्षार न रहने से कैन्सर या ग्रोथ जैसे रोग हो जाते हैं। लंदनके एक प्रसिद्ध

डाक्टर एफ़० फ़ॉर्ब्स रॉसने 'कैन्सर — इसकी उत्पत्ति और चिकित्सा' (Cancer — Its Genesis and Treatment) नामकी पुस्तक लिखी है, जिसमें वे अपने पच्चीस बरसके अनुभवके आधार पर यह दावा करते हैं कि सहज तथा सुपाच्य पोटाश–क्षारवाले आहारसे कैन्सरका रोग नष्ट हो जाता है। उसी पुस्तकमें यह विवरण भी है कि उन्होंने आहारमें उचित परिवर्तन करके अनेक रोगियोंके विविध कैन्सर मिटाये हैं। परन्तु रूढ़िप्रिय और कट्टरपंथी डाक्टर तथा निहित स्वार्थवाले उक्त तथ्यको प्रकाशमें नहीं आने देते हैं और कहते रहते हैं कि कैन्सरके लिए चीरफाड़ तथा रेडियम किरण, यही दो उपाय हैं। ऑपरेशन करनेसे और रेडियम किरण देनेसे कम-से-कम ३० प्रतिशत कैन्सरके रोगी ठीक होते हों तो भी किसी हद तक संतोष माना जा सकता है। परन्तु ब्रेडफ़ोर्डके स्वर्गस्थ डाक्टर राबाग्लिआटीका अनुभव उतना सन्तोष भी नहीं मानने देता। उन्होंने ग्रोथ और कैन्सर के ५०० रोगियोंका ऑपरेशन करनेके बाद यह स्वीकार किया है कि "कैन्सर और ग्रोथका ऑपरेशन करनेके बाद शायद ही कोई रोगी जीवित रहा होगा।"

आर्मस्टॉङ्गकी पुस्तकमें एक अनुभवी नर्सका ज़िक्र आता है। उस नर्सने ग्रोथ और कैन्सरके ५० रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा की थी। वह ख़ुद ज़हरीली गाँठका शिकार हो गयी। डाक्टरने ऑपरेशन करना चाहा, परन्तु उसने साफ़ इनकार कर दिया; क्योंकि उसने अपनी आँखोंसे यह देखा था कि ग्रोथ और कैन्सरके रोगमें ऑपरेशनसे पहले जो पीड़ा होती है, ऑपरेशनके बाद वह पीड़ा बहुत ज्यादा बढ़ जाती है, जिससे रोगी और अधिक बेचैन हो जाता है। ऑपरेशनके बाद कैन्सरकी गाँठ फिरसे उभर आती है, तब अधिक पीड़ा होती है। ऐसे अनेक दृष्टांत हैं कि कैन्सरका ऑपरेशन करनेके बाद कुछ ही दिनोंमें उसी रोगीके दूसरे भागमें कैन्सरकी गाँठ निकल आयी और उसका ऑपरेशन करनेके बाद तीसरे स्थानमें गाँठ उठ आयी। इस तरह

रोगीकी पीड़ा बढ़ती ही जाती है। कैन्सरका प्रचलित उपचार सर्वथा निष्फल सिद्ध हो चुका है, फिर भी डाक्टरोंकी वैज्ञानिक दुनियामें अन्य कोई उपचार मान्य नहीं होता है, यह अत्यंत खेदजनक बात है। कैन्सर संबंधी अन्वेषण-केन्द्र अपने मण्डलके बाहरके किसी अन्वेषक चिकित्सकके नये प्रभावशाली उपायको माननेके लिए तैयार नहीं हैं और कुछ अंग्रेज़ी चिकित्साके विशारद इस स्थितिसे असंतुष्ट हैं। विषैली गाँठ और कैन्सर जैसे भयंकर रोगके विषयमें प्रचलित उपचार की स्थितिका दिग्दर्शन करानेके लिए ही इसका उल्लेख किया गया है।

आर्मस्ट्रॉङ्ग लिखते हैं कि सरकारी क़ानूनके अनुसार कोई अप्रमाणित चिकित्सक कैन्सरके रोगीका उपचार नहीं कर सकता है। मूत्रप्रयोगसे कैन्सरकी व्याधि नष्ट हुई हो तो भी वे ऐसा नहीं कह सकते कि उन्होंने कैन्सरकी बीमारीका इलाज किया था। मूत्रके उपचारमें किसी रोगका निदान करनेकी ज़रूरत ही नहीं है। क्योंकि मूत्र किसी रोगका उपचार नहीं है, किन्तु आरोग्य प्राप्त करनेका साधन है। प्रमाणित डाक्टर जिन व्यक्तियोंके लिए कैन्सरके रोगी होनेका फ़तवा दे देते थे, वे रोगी सर्वथा निराश होकर आर्मस्ट्रॉङ्गके पास आते थे, तब सामान्य रोगीकी भाँति उनसे मूत्रप्रयोग करवाया जाता था, जिससे वे पूर्ण स्वस्थ हो जाते थे। जो व्यक्ति सचमुच कैन्सरका रोगी होता, परन्तु यदि डाक्टरने उस पर कैन्सरका रोगी होनेकी मुहर नहीं लगा दी तो यही समझा जाता कि वह सामान्य गाँठका रोगी होगा। ऐसी स्थितिमें आर्मस्ट्रॉङ्गने मूत्रोपचारसे असाध्य माने जानेवाले कैन्सर या गाँठके जिन रोगियोंको ठीक किया उनमें से कुछका हाल यहाँ लिखा जाता है :—

श्रीमती आर० — आयु ४० बरस (सन् १९२३)। उसका शरीर क्षीण तथा कान्तिहीन था। उसकी ऊँचाई और वज़न उमरकी दृष्टिसे कम थे। उसकी छाती पर मुरगी के अंडे जितनी गाँठ उठ आयी थी। कैन्सरके विशेषज्ञ डा० राबार्लिआटीने उस गाँठको कैन्सर बताया

और शीघ्र ऑपरेशन करानेकी सूचना दी। रोगीने दृढ़तासे ऑपरे-शनका विरोध किया। उसने मूत्रके साथ उपवास किया और हर रोज़ लगभग पौने चार सेर पानी पिया। उसके पतिने अपने पेशाबसे हर रोज़ दो घंटे तलवोंसे सिर तक मालिश की और छातीके दोनों भागों पर पेशाबकी पट्टियाँ दिन-रात रखी गयीं। दस दिनमें आराम हुआ। बारहवें दिन वह स्त्री डा० राबाग्लिआटीके पास गयी। डाक्टरने अपने पुराने रोगीकी जाँच की और उसकी छाती पर गाँठका कोई दाग़ तक भी न देखा। एनीमिया भी जाता रहा और वह स्त्री संपूर्ण स्वस्थ हो गयी।

सन् १९२५ में मझली उमरकी एक स्त्री उनके पास आयी। उसकी बग़लमें गाँठ निकली थी। दो सर्जनोंने चीरफाड़ करानेकी सलाह दी। परन्तु उसकी पुत्रीने उनसे यह प्रार्थना की कि उसकी माताको कुछ दिन तक आराम करनेका अवसर दिया जाये, ताकि पोषक आहारसे उसमें ऑपरेशन करानेकी शक्ति आ जाये। प्रार्थना मंज़ूर हुई। एक सप्ताहके बाद ऑपरेशनकी व्यवस्था एक अस्पतालमें की गयी। उस लड़कीको मूत्रप्रयोगका ख़ूब अच्छा अनुभव हो चुका था, इसलिए उसने अपनी माँको समझा कर तुरन्त मूत्रप्रयोग शुरू करा दिया। पाँच ही दिनोंमें उठी हुई गाँठका नामनिशान न रहा। दो दिनके अनन्तर रोगीको ऑपरेशनके लिए अस्पतालमें दाख़िल होना था। परिवारके डाक्टरने उसे बुलाया और अपनी सलाह और व्यव-स्थाकी उपेक्षा करके मनमाना बरताव करनेके लिए उस पर बहुत गुस्से हुए। परन्तु जब अपने रोगीकी अच्छी तरहसे जाँच करने पर उसकी शारीरिक स्थिति बहुत अच्छी मालूम हुई, [illegible] उसे कुछ कहने-सुननेकी बात न थी। इतना ही नहीं, परन्तु अ[illegible]न करने-वाले साथी डाक्टरोंको बुला कर उसे दिखाया। वे रो[illegible] देखकर चकित हो गये। लेखकने अपनी पुस्तक सन् १९४४ में [illegible] थी। उस वक्त अर्थात् २७ बरस तक वह स्त्री बिल्कुल तन्दुरुस्त हालतमें ज़िन्दा थी।

लेखकने एक और रोगिणी स्त्रीका उल्लेख इसलिए किया है कि ऑपरेशनसे रोगका बाहरी रूप नष्ट होता है, परन्तु रोगका मूल दूर नहीं होता है और रोगका कारण भी नष्ट नहीं होता है। वह स्त्री सन् १९२७ में उनके पास आयी थी। उसकी अवस्था ४५ बरसकी थी और उसका शरीर खूब मज़बूत था। उसकी छातीकी बायीं ओर गाँठ निकल आयी थी। ऐसी गाँठ दो बरस पहले दायीं ओर उभरी थी, जिसे ऑपरेशनसे निकाल डाला था। उस स्त्रीने दूसरी बार ऑपरेशन कराना ठीक नहीं समझा और मूत्रप्रयोग शुरू किया। १९ दिनके उपवास और मालिशसे वह गाँठ बिल्कुल नष्ट हो गयी। परन्तु उसका मोटापा दूर न हुआ, इसलिए उपवास चलता रहा। २८ दिनके बाद उसकी जाँच की गयी तो गाँठका दाग़ तक दिखायी न दिया। स्थूलता दूर होकर उसका शरीर सुन्दर दीखने लगा और वह स्वयं युवती-सी मालूम होने लगी।

एक और रोगीका वृत्तान्त भी उल्लेखनीय है। क्योंकि इससे यह पता चलता है कि मूत्रोपचारसे एक ही व्यक्तिके अनेक रोग, जिनका एक-दूसरेसे कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता है, वे सभी एकसाथ दूर हो जाते हैं। एक युवतीके दायें स्तन पर सूजन थी और बीचमें एक ख़राब और शंकाजनक गाँठ थी। साथ ही उसकी बग़लमें दो बड़े फोड़े थे। परिवारके डाक्टरने उसे अस्पतालमें जाकर शास्त्रीय जाँच करवानेके लिए सूचित किया, परन्तु उसने इनकार कर दिया; क्योंकि उसी डाक्टरने उसकी माताकी ऐसी ही गाँठका ऑपरेशन किया था और उसे मिट्टीमें दफ़नाना पड़ा था। वह स्त्री पुराने उदरगुहा-शोथ (क्रॉनिक पेरिटोनाइटिस)के रोगसे पीड़ित थी। उसने उपांत्र (एपेन्डिक्स)का ऑपरेशन भी करवाया था, परन्तु दर्दमें कुछ फरक नहीं हुआ था। उस स्त्रीने मूत्रके साथ उपवास शुरू किया। परन्तु स्वजनोंके आग्रहसे उसे उपवास तोड़ना पड़ा। वह पक्के इरादेकी थी। अपने रिश्तेदारोंको समझाकर तीन दिनके बाद उसने फिरसे

उपवास शुरू किया और वह उन्नीस दिन तक चला। दस दिनके उपवासमें ही स्पष्ट सुधार मालूम हुआ और उन्नीस दिनके उपवासके बाद न तो स्तनकी गाँठ रही और न ही बग़लमें फोड़े। उनका दाग़ तक भी न रहा। परन्तु एपेन्डिक्सके ऑपरेशनकी किसी कमीके कारण उदरगुहा-शोथकी पीड़ा ज्यों-की-त्यों बनी रही। इसलिए उस साहसी स्त्रीने और पैंतीस उपवास कर डाले, जिससे वह संपूर्ण नीरोग हो गयी।

उपर्युक्त रोगियोंके वृत्तान्तसे यह सिद्ध होता है कि तथाकथित वैज्ञानिक साधनोंकी अपेक्षा क़ुदरत रोग मिटानेमें अधिक प्रभावशाली और निपुण है। लेखककी यह सामान्य सूचना है कि किसी भी मनुष्यके शरीरके किसी भी भागमें शंकाजनक फोड़ा, गाँठ या सूजन हुई हो तो तनिक भी विलम्ब न करके तुरन्त मूत्रके नैसर्गिक उपचारको अपना लिया जाये। फिर क़ुदरत उसको मिटानेमें निष्फल नहीं होगी। परन्तु अन्तिम क्षण तक राह देखनेके बाद मूत्रप्रयोगकी शरण ली जायेगी तो अधिक समय तक प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

एक युवक — आयु २८ बरस। उसकी स्थितिके बारेमें डाक्टरी निदान यह था कि वह अन्न-नलीके कैन्सरसे अथवा गरमीकी बीमारीसे पीड़ित है और तीन दिन जियेगा। मूत्रप्रयोगसे वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया और बरसों तक जिया।

एक वृद्ध महिला — उमर ६२ बरस। आँतका कैन्सर। डाक्टरोंने ऑपरेशनकी सलाह दी थी। परन्तु उसने मानी नहीं। उसका वजन ८४ पौंडसे कम था और दिन-प्रति-दिन घटता जा रहा था। तीन हफ़्तेमें आराम हो गया और ८४ बरससे भी अधिक जीवित रही।

एक अधेड़ स्त्री—अवस्था ४२ बरस। छातीका कैन्सर। डाक्टरोंने ऑपरेशनके लिए उसे कड़ी चेतावनी दी, परन्तु आरामकी कोई निश्चित आशा नहीं दिखायी। वह चीरफाड़के लिए तैयार न हुई। पेशाबके साथ उपवास करनेसे वह पूर्ण स्वस्थ हो गयी। उसके बाद २१ बरस तक ज़िन्दा रही।

एक दूसरी अधेड़ स्त्री—सन् १९३५में वह रोप कैन्सरका शिकार हो गयी। सर्जनोंने तात्कालिक ऑपरेशन करानेके लिए उस पर ज़ोर डाला, परन्तु रोगके उन्मूलनका विश्वास वे न दिला सके। इतना ही नहीं, किन्तु यह कहा गया कि ऑपरेशनके अनन्तर फिरसे कैन्सरका होना और गाँठका बढ़ना सामान्यतः अनिवार्य समझा जाता है। उस रोगीने ऑपरेशन नहीं कराया, परन्तु मूत्रप्रयोगसे तेईस दिनमें वह संपूर्ण स्वस्थ हो गयी। इतना ही नहीं कि वह बरसों तक स्वस्थ बनी रही, किन्तु युवती-सी और सुन्दर दीखने लगी।

डाक्टर राबाग्लिआटीका ज़िक्र इसी प्रकरणमें आ चुका है। आर्मस्ट्रॉङ्गने उन्हें एक सरल, तेजस्वी और उदार हृदय चिकित्सक बताया है। उन्होंने जब अपनी आँखोंसे यह देखा कि मूत्रप्रयोग द्वारा ग्रोथ और कैन्सरके अनेक रोगी शीघ्रतासे संपूर्ण स्वस्थ हो गये हैं, तब खुले आम उन्होंने जो इक़रार किया उसका सारांश इस प्रकार है:—

"मैंने ऐसी अनेक स्त्रियोंकी जाँच की है जिनके प्रचलित डाक्टरी उपचारके अनुसार तो एक या दोनों स्तनोंको निकाल दिया होता। इन भली और भाग्यशाली स्त्रियोंने मेरी सलाहको ठुकरानेका साहस किया और मूत्रचिकित्साकी शरण ली। फिर जब वे मेरे पास आयीं तब मैंने देखा कि जहाँ असाध्य विषैली गाँठें थीं वहाँ एक दाग़ सरीखा भी न था। कुछ स्त्रियोंकी गाँठें दो सप्ताहमें ही नष्ट हो गयी थीं और किन्हीं की गाँठें तो केवल चार ही दिनमें ग़ायब हो गयी थीं। इसलिए मुझे श्री आर्मस्ट्रॉङ्गके इस कथनमें सचाईकी पूरी संभावना लगती है कि जो ग्रोथ्स या गाँठें निकल आती हैं उनमेंसे अधिकांश गाँठें तभी विषैली और असाध्य बनती हैं कि जब उन्हें जैसी-तैसी दवाओंसे दबाने या फोड़नेकी कोशिश की जाती है और उनमें नश्तर भोंका जाता है। और यदि प्राथमिक दशामें ही सजग होकर तात्कालिक योग्य उपचार किया जाये, तो तथाकथित भयंकर और असाध्य रोगोंके इस राजाको गद्दीसे उतार फेंकनेमें कोई कठिनाई

न आये। वह योग्य उपचार यही है कि सूजन, फोड़ा, गिल्टी, गाँठ जैसे शारीरिक उभारको पिघलाकर ख़ूनके प्रवाहमें बहा दिया जाये।

"यदि कोई सामान्य अनुभवी व्यक्ति अपने उपचारसे हज़ारों रोगियोंको ठीक करनेके प्रमाण प्रस्तुत करता है, तो मेरे साथी डाक्टर उनसे तनिक भी प्रभावित नहीं होते और अगर वही व्यक्ति यह दावा करे कि उसने कैन्सरके रोगियोंको ठीक किया है, तो उसके दावेकी खुले आम खिल्ली उड़ा दी जाती है या अवहेलना कर दी जाती है। हमारे व्यवसायके लिए यह एक दुःखद कलंक है कि वह रोग और अधिकार-युक्त तथा भयजनक अमानुषिक प्रचारके बलपर प्रगति करता है तथा आशा-निराशाके भुलावेमें डालकर रोगियोंका शोषण करता है।"

४

गुरदेके रोग

गुरदेके रोग अंग्रेज़ीमें "ब्राईट्'स डिज़ीज़" कहलाते हैं और गुरदेमें विकृति आ जानेसे उत्पन्न होते हैं। जलोदर जैसा रोग भी उसी विकृतिका परिणाम है। नशीले पदार्थ, उत्तेजक द्रव्य, स्कारलेट फ़ीवर जैसे विषैले बुख़ार, नमी और सरदीके कारण भी ये रोग हो जाते हैं। आहारमें खनिज क्षारोंकी कमी आनेसे ऐसे रोग पैदा होते हैं।

जिन रोगियोंको डाक्टरोंने जवाब दे दिया था और यह चेतावनी दे दी थी कि वे जल्दी ही चल बसेंगे, उनका हाल आर्मस्ट्रॉङ्गने अपनी पुस्तकमें लिखा है, जिसका सार इस प्रकार है:—

श्रीमती सी० — आयु ४० बरस। दो ही दिन जीनेवाली थी। वह सरलतासे साँस न ले सकती थी। उसका पेशाब थोड़ा, गाढ़ा

और खून व पीपसे मिश्रित था। एक बरस पहले उसकी सेहत अच्छी थी और देखाव सुन्दर था। ऊँचाईके अनुसार उसका वज़न १४४ पौंड होना चाहिये था, परन्तु बीमारीके बाद लगभग २८० पौंड हो गया था। डाक्टर तो उसकी आशा छोड़ बैठे थे। यद्यपि उसकी शारीरिक स्थिति अत्यन्त गम्भीर तथा दुःखजनक थी, तो भी आर्मस्ट्रॉङ्ग हताश नहीं हुए। उन्होंने उसका उपचार शुरू कर ही दिया। पहली बारका पेशाब दो औंस था। वह तेज़ गंधवाला, गरम, गाढ़ा, गंदला और खून-पीपवाला था। फिर भी उसको पीनेसे शरीरमें इतना असर हुआ कि चौबीस घंटेमें उस स्त्रीने दो सौ औंस पेशाब किया। यह एक आश्चर्यकी बात है और सच्ची बात है कि मूत्रमें ऐसी अपूर्व शक्ति है कि उसे पीनेसे शरीरके किसी भी भागमें हानिकर द्रव्योंके जमे हुए थरोंको उखाड़कर वह बाहर निकाल देता है। फिर तो जैसे-जैसे मूत्रका परिमाण बढ़ता गया, वैसे-वैसे वह स्वादरहित, गंध-रहित और वर्षाजल-सा स्वच्छ होता गया।

मूत्रके अतिरिक्त वह स्त्री चुसकी ले लेकर नलका पानी भी पीती थी। चौबीस घंटेमें उसने १०८ औंस पानी पिया था। तीन दिनके बाद उसकी प्यास लगभग मिट गयी थी। चार दिनके बाद उसके लिए चिन्ता करनेकी भी ज़रूरत न रही। उपवासके तेईसवें दिन एक परिचारिकाके अनुरोधसे उस रोगीको गाजरका रस नीबूके रसमें मिलाकर दिया गया, जिसकी बड़ी प्रतिक्रिया हुई। दो ही घंटेमें उसकी दोनों भुजाओं पर चकते निकल आये और खूब खुजली होने लगी। साथ ही पेशाब बन्द हुआ और पेड़ू पर सूजन दिखायी दी। फ़ौरन ही एक नर्सके पेशाबसे तर पट्टियाँ पेड़ू पर रखी गयीं और दोनों भुजाओं पर हलके हाथसे मूत्र-मालिश की गयी। पेड़ूने चार घंटे तक मूत्रपट्टियोंकी नमीको चूसा और पेशाब जारी हो गया। फिर धीरे-धीरे रोगी अपनी मूल स्थितिमें आ गया।

श्रीमती सी० की मालिश एक नर्स अपने पेशाबसे प्रतिदिन दो बार करती थी। ४८ दिनके उपवासके बाद उस रोगी स्त्रीकी स्थिति

इतनी अच्छी हो गयी कि अगले रोज संतरेके रससे उसने पारणा किया। एक सप्ताहके बाद उसका वजन ११९ पौंड हो गया और वह अपने कमरेमें घूमने भी लगी। वह नीरोग हो गयी, फिर भी उसने मूत्रपान और मूत्र-मालिशको चालू रखा, जिससे उसकी चमड़ी, बाल, रंग और आकृतिमें अद्भुत परिवर्तन हो गया।

श्रीमती सी० की नीरोगताने जनसाधारणका ध्यान बहुत आकर्षित किया। लोग प्रायः अपने विचारमें अस्थिर हुआ करते हैं। यदि कोई विचारशील व्यक्ति किसी जीर्ण रोगसे पीड़ित रोगीसे कहता है कि वह मूत्रप्रयोगसे रोगमुक्त हो सकता है, तो वह तत्काल यह बात मान लेता है और फिर तुरंत डाक्टरके पास जाकर उसकी सलाह पूछता है। भला डाक्टर मूत्रप्रयोगकी सलाह कैसे दे सकता है? ऐसी मनोदशाके कारण लोग न तो गंभीर प्रश्नोंको समझ सकते हैं और न ही मूत्रोपचारको अपना सकते हैं। इसलिए अमूल्य मूत्रोपचार जैसे विस्मृत विज्ञानके पुनरुद्धारके लिए अनेक निःस्वार्थी सेवक चाहिये जो रोगियोंमें इस अमूल्य और अचूक उपचारका सक्रिय प्रचार कर सकें, तभी जनसाधारण इसे अपना सकेगा।

श्रीमती सी० का केस इतना प्रसिद्ध हुआ कि वैसे अनेक रोगी आर्मस्ट्रॉङ्गके पास आये। उनमेंसे दो एकका संक्षिप्त विवरण देना ठीक मालूम होता है :—

श्रीयुत बी० गुरदेके रोगसे पीड़ित था। वह बरसोंसे मिर्च-मसालेदार, पोषक तत्त्वोंसे रहित और चटपटे भोजन करनेका बेहद शौकीन था। वह पेटू न था, पर पियक्कड़ अवश्य था। वह दिन भरमें चायके आठ दस प्याले पी डालता था और रोज़ाना पच्चीस सिगरेटका धुआँ उड़ा देता था। वह बीमार होकर आर्मस्ट्रॉङ्गके पास सन् १९२० में आया। वह दो डाक्टरोंसे उपचार करवा चुका था। उनके इलाजके दौरान उसका वज़न २८० पौंडसे बढ़कर ४२० पौंड हो गया था और डाक्टरोंने यह फ़तवा दे दिया था कि दो दिनमें

वह रामशरण हो जायेगा। सन् १९२० के जूनमें उसने ४९ दिनका उपवास शुरू किया। चौथे ही दिन उसका मूत्र स्वादरहित और वर्षाके जल जैसा स्वच्छ होने लगा। शरीरकी सूजन आश्चर्यकारिणी शीघ्रतासे उतरने लगी। सात हफ़्तेके बाद उसका एनीमिया काफ़ूर हो गया। उपवासके अनन्तर उसका वज़न ४२० पौंडसे कम होकर १०५ पौंड हो गया। बीमारी दूर हो जानेसे वह हर तरहसे बीस बरस पहले जैसा तन्दुरुस्त और जवान दीखने लगा। श्रीमती सी० की भाँति वह भी मूत्रचिकित्साका अनन्य भक्त बन गया। खानेकी अपनी बुरी आदतोंको छोड़कर अब वह परिमित, उपयुक्त और संतुलित आहार लेने लगा। उसने अपने व्यसनोंको भी तिलांजलि दे दी। वह सदा मूत्रपान करता रहा, जिससे वह जीवनभर सुखी तथा स्वस्थ बना रहा।

साठ बरसके एक व्यक्तिने लगातार दो बरस तक डाक्टरी उपचार कराया, परन्तु उसका हृदय-रोग तो मिटा नहीं और उसने गुरदेके भयंकर रोगको पैदा कर दिया। जब उसके दोनों डाक्टरोंने जवाब दे दिया तब उसने एक विशेषज्ञकी शरण ली। तब उसकी स्थिति बहुत गंभीर थी। उसकी आँखें बाहर निकल आयी थीं। जीभ भयंकर सूज गयी थी और मुँहसे बाहर निकल आयी थी। होंठ इतने फूल गये थे कि सामान्य आकारसे तिगुने बड़े लगते थे। विशेषज्ञने उसके रोगको असाध्य बताते हुए कहा कि अब कुछ करनेकी ज़रूरत नहीं है। ऐसी स्थितिमें आर्मस्ट्रॉङ्गने उसे अपने हाथमें लिया। उस रोगीको पाँच दिनमें चालीस पिंट अर्थात् पचास पौंड पेशाब हुआ। वह बिलकुल स्वस्थ हो गया और छः सप्ताहमें अपने व्यवसायमें लग गया।

५

हृदय-रोग

सामान्यतः डाक्टरोंकी यह मान्यता है कि हृदय-रोगसे पीड़ित व्यक्ति सावधान रहे और सन्तुलित आहार करता रहे तो नव्वे बरस तक जी सकता है, परन्तु रोग-मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि हृदय-रोग असाध्य है। किन्तु आर्मस्टॉङ्गने अपने अनुभवसे सिद्ध कर दिखाया कि मूत्रचिकित्सासे हृदय-रोग भी बिल्कुल ठीक हो जाता है।

श्रीयुत पी० मझली उमरका था वह एक बरससे अपने हृदय-रोगका डाक्टरी उपचार कर रहा था और 'सोलर प्लॅक्सस' (नाभिचक्र)का ऑपरेशन करानेवाला था। उसकी स्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी कि नामालूम बीमारीका दौरा उसे कब बेहोश कर दे। फिर तो बीमारीका दौरा बार-बार होने लगा, जिसके कारण वह आसपासके प्रदेशमें 'बिचारा मिस्टर पी०' के नामसे प्रसिद्ध हो गया।

ऐसी स्थितिमें वह आर्मस्ट्रॉङ्गके पास आया। उसे पहली सूचना यह दी गयी कि वह दिनभरका सारा पेशाब पिया करे। शुरूमें तो उसे मूत्रपान अप्रिय तथा हिचकभरा लगा, परन्तु जल्दी ही उसकी झिझक जाती रही। साथ ही उसे मालिशकी विधि भी बतायी गयी और आर्मस्ट्रॉङ्गने खुद अपने पेशाबसे दो घंटे तक उसकी मालिश भी कर डाली। फिर उसे गरम पानीसे नहलाया गया। दूसरे दिन भी यही उपचार चला। उसे इतना आराम हो गया कि उसने नर्सिंग होममें जाकर ऑपरेशन करवानेका विचार छोड़ दिया। उसे दिनमें एक बार सादा और हलका भोजन भी दिया जाने लगा। एक मासके उपचारके अनन्तर वह इतना अच्छा हो गया कि अपने व्यवसायमें लग गया। बारह हफ़्तेमें वह संपूर्ण स्वस्थ हो गया। न तो हृदय-रोगका और न ही 'सोलर प्लेक्सस'में निकली हुई शंकाजनक गाँठका कोई निशान बाकी रहा। भूतपूर्व डाक्टरने भी अपने रोगीकी रोग-

मुक्तिको सन्तोष तथा हर्षके साथ स्वीकार कर लिया। मूत्रोपचार शुरू करनेके बाद उस पर कभी हृदय-रोगका आक्रमण नहीं हुआ। वह इतना निश्चिन्त हो गया कि उसने अपनी सुरक्षित गोलियोंको आगके हवाले कर दिया।

मूत्रोपचारसे एक और हृदय-रोगीको आराम हुआ, जिसका वृत्तांत भी जानने योग्य है। उस रोगीका उपचार आर्मस्ट्रॉङ्गने नहीं किया था, किन्तु प्राकृतिक चिकित्सकने किया था। उस रोगीका नाम श्रीयुत आर० था। वह जलोदर रोगसे भी पीड़ित था। उसकी टाँगें और पेड़ू खूब सूज गये थे। हृदय बढ़ गया था। डाक्टरको उसकी स्थिति अति गंभीर मालूम हुई और उसे चेता दिया कि एक मासका ही जीवन बाकी है। उसे एक प्रसिद्ध नैसर्गिक उपचार केन्द्रमें दाखिल होकर इलाज करानेके लिए प्रेरित किया गया। वहाँका इलाज कराकर उसे लेनेके देने पड़ गये अर्थात् उसकी स्थिति इतनी विषम तथा गंभीर हो गयी कि उसे केन्द्र छोड़नेके लिए विनती की गयी; क्योंकि यह आशंका थी कि वह दो सप्ताहमें ही रामशरण न हो जाये। उसके बाद रोगी श्रीयुत आर० हॅरो शहरके साहसी नैसर्गिक चिकित्सक ऑलिवर वॉरनोक फ़ील्डनके पास गया। उन्होंने मूत्रोपचारसे उस रोगीको छः हफ़्तेमें स्वस्थ कर दिया। उसका वज़न पहले १६८ पौंड था, जो उपवासके दौरान घटकर लगभग ११० पौंड हो गया। श्रीयुत आर० बहुत ज़्यादा धूम्रपान करनेवाला था। उपवासके दिनोंमें भी सूचनाके विरुद्ध कुछ हद तक धूम्रपान करता रहा, जिससे आराम होनेमें देर लगी। उसके नीरोग होने पर पहलेका डाक्टर तो दंग रह गया।

आज स्थिति ऐसी है कि बहुतसे लोग रूढ़ परंपराकी उपेक्षा करके मूत्रपानका साहस इसलिए नहीं कर पाते कि समाज उनकी आलोचना करेगा। उनका यह भय समझमें तो आता है, परन्तु पीड़ित मानवजातिके लिए कल्याणकारी मूत्रचिकित्साके प्रचारमें बाधक है। इस प्रकरणके अन्तमें आर्मस्ट्रॉङ्ग लिखते हैं कि ज़हरीले इंजेक्शन और शीतलाके टीके अनेक चिरस्थायी रोगोंको पैदा करते हैं, जिनमेंसे एक हृदयरोग भी है।

६

विविध ज्वर

ज्वरके अनेक प्रकार हैं। ज्वर आये तो प्रायः उसे 'स्वागतम्' कहना चाहिये। शरीरमें संचित ज़हरको बाहर निकालनेके लिए बुख़ार आता है। शरीरके ज़हरको दूर करनेकी यह एक कुदरती प्रक्रिया है। उस बुख़ारको कुदरती उपायसे दूर करना चाहिये। इसीलिए आयुर्वेदमें ज्वरके लिए लंघन अर्थात् उपवासका उपाय बताया है। बुख़ार तो हमारा सेवक बनकर आता है, क्योंकि वह हमारे घरकी सफ़ाई करना चाहता है। इसलिए उसे तत्काल दवाका चाबुक लगाकर भगाने की ज़रूरत नहीं है। उसे अपना काम करने दें। जब उसका काम पूरा हो जाये तो किसी उचित उपायसे दूर करें। वह उपाय है उपवास।

डाक्टर साधारण ज्वरको उपवास जैसे सरल और सस्ते उपायसे दूर करनेकी कोशिश नहीं करते हैं, परन्तु उग्र तथा हानिकर दवाइयाँ देते हैं और सूइयाँ लगाते हैं, जिनसे थोड़ी देरके लिए ज्वरकी पीड़ा शान्त हो जाती है और रोगी तत्काल आराम महसूस करता है। परन्तु कुछ ही समयके अनन्तर वैज्ञानिक ज़हरीली दवाओंके असरसे वही बुख़ार किसी भयंकर रोगका चोला पहनकर सामने आता है। ऐसा अनुभव अनेक बार हुआ है कि साधारण ज्वर इंजेक्शन या कुनैनके डोज़ोंके बिना दो-एक उपवासें करनेसे मिट गया है, जबकि उग्र दवाइयोंने उसे विषम बना दिया है। ऐसे अनेक आश्चर्यकारी दृष्टान्त मिलते हैं कि अमुक अद्भुत औषधिसे नमोनियाका बुख़ार तुरन्त उतर गया है। परन्तु नामालूम उसी बुख़ारके कितने रोगी उसी दवाके असरसे हृदयरोगसे पीड़ित होकर इस दुनियासे चल बसे हैं!

आर्मस्ट्रॉङ्गने अनेक ज्वरपीड़ित रोगियोंको मूत्रोपचारसे ठीक किया था। कुछ रोगियोंका विवरण यहाँ दिया गया है।

एक युवती, उमर १७ बरस। विचित्र रूपसे बुखारका शिकार हो गयी। बहुत कमज़ोर थी। टेम्प्रेचर १०५ डिग्री था। एक एम० डी० को बुलाया गया। उसने कहा कि संयोगवश वह स्वस्थ हो गयी तो भी छः महीने तक बीमार रहेगी ही और फिर नौ महीने रोगी-सी बनी रहेगी। रोगीका पिता मूत्रचिकित्सामें श्रद्धा रखता था। उसने आर्मस्ट्रॉङ्गको बुला भेजा। पहले तो उन्हें लगा कि रोगीसे काम लेना मुश्किल होगा। आख़िर उस युवतीने पेशाब और पानीके साथ उपवास करना मंज़ूर किया। उसे बुख़ार आये छः दिन हो गये थे, परन्तु टेम्प्रेचर १०५ डिग्री ही रहा और दिन-प्रति-दिन वह क्षीण होती जाती थी। उसका पेशाब गाढ़ा, गंदा और सघन था। परन्तु मूत्रप्रयोग शुरू करनेके चौबीस घंटे बाद उसका बुखार १०५ डिग्री से १०१ डिग्री हो गया और पेशाब भी साफ़ होने लगा। तीन दिनमें टेम्प्रेचर ९७ डिग्री और पाँच दिनमें ९५ डिग्री हुआ। रोगीके चेहरे पर कान्ति और शरीरमें स्फूर्ति दिखायी दी। डाक्टर तो हक्का-बक्का हो गया। अठारह दिनके बाद उपवास छोड़ा गया। रोगीकी त्वचा तो छोटे बालककी त्वचा जैसी कोमल हो गयी। उपवास छोड़नेके कुछ ही दिन बाद वह दौड़धूप करने लगी और अपने आपको संपूर्ण स्वस्थ महसूस करने लगी। वह अपना पेशाब पीती रही और स्वस्थ बनी रही। कुछ बरसोंके बाद उसने शादी कर ली और बच्चोंकी माता बनी।

मलेरिया

यह एक संक्रामक रोग है। बोलचालमें यह जड़ैया बुख़ार है। इसमें तापमान (टेम्प्रेचर) निरन्तर एकसा नहीं रहता। ख़ूनमें पाये जानेवाले परजीवी कीटाणु ही सभी प्रकारके मलेरियाके कारण माने गये है। मच्छर इसके दलाल हैं। वे रोगीको काटते हैं और रोगीके कीटाणुओंसे स्वयं आक्रान्त हो जाते हैं। फिर वे दूसरेको काटकर उन कीटाणुओंको उसके ख़ूनमें मिला देते हैं, जिससे वह बीमार हो जाता

है। इस तरह कीटाणुओंके आदान-प्रदानसे मलेरिया फैल जाता है। आजकल कुनैनको ही इस बुखारका एकमात्र उपाय माना जाता है। परन्तु अनुभवसे मालूम होता है कि कुनैनसे मलेरिया सो जाता है और मौका पाकर जाग उठता है अर्थात् जड़मूलसे नष्ट नहीं होता। आर्मस्ट्रॉङ्ग बताते हैं कि मूत्रोपचारसे मलेरियाका उन्मूलन हो जाता है। वे तो यहाँ तक दावा करते हैं कि उनके पास मलेरियाका एक भी केस ऐसा नहीं आया जो दस दिनमें ठीक न हो गया हो। उन्होंने अपनी पुस्तकमें मलेरियाके एक रोगीका विवरण इस प्रकार दिया है :—

श्रीयुत क्यू० पहलवान-से लगते थे। अत्यन्त संयमी और मिताहारी थे। दूर पूर्वमें वे मलेरियासे आक्रान्त हुए थे। तीन बरस तक वे मलेरियासे पीड़ित रहे। सन् १९२०में वे आर्मस्ट्रॉङ्गके पास आये। तब तक मलेरियाके छत्तीस आक्रमण हो चुके थे। वे कुनैनकी खुराकें नियमित खाते थे। आखिर पेशाब और पानीके साथ दस दिनका उपवास करनेसे वे संपूर्ण नीरोग हो गये। फिर न तो कुनैन खानेका अवसर आया और न ही मलेरियाका आक्रमण हुआ। पूर्ववत् खान-पानमें संयम रखनेसे और नियमित 'जीवनजल' पीनेसे वे जीवनभर सुन्दर आरोग्य भोग सके।

ब्लैकवॉटर फ़ीवर

एक मेजर—दक्षिण अफ्रीकाके किसी जंगलमें एक फ़ौजी अफ़सर ब्लैकवॉटर फ़ीवर (एक बुखार जिसमें काले रंगका पेशाब आता है) से पीड़ित होकर बेहोशीकी हालतमें बड़बड़ाते हुए पड़े थे। वहाँके देशवासियोंने उन्हें समझाकर पेशाबसे तर पट्टियाँ उनके शरीर पर रखीं और पेशाब तथा पानीके साथ दस दिनका उपवास करवाया, जिससे वे स्वस्थ हो गये। यह घटना आर्मस्ट्रॉङ्गसे पहलेकी है। अपनी पुस्तकमें इसका उल्लेख करके वे कहते हैं कि मूत्रचिकित्साकी खोज उनकी नहीं है। यह चिकित्सा तो प्राचीनकालसे चली आयी है।

आर्मस्ट्रॉङ्ग अपने अनुभवके आधार पर यह दावा करते हैं कि चाहे उनके पास किसी भी प्रकारके बुखारका रोगी आया हो और चाहे उसके बुखारका टम्प्रेचर कितना ही क्यों न रहा हो, तो भी विधिपूर्वक मूत्रोपचार द्वारा ३६ से ७२ घंटेमें उसके टेम्प्रेचरको कम करनेमें और कुछ ही दिनोंमें उसे नीरोग बनानेमें वे कभी निष्फल नहीं हुए हैं। मलेरियाके दुष्परिणामोंसे बचनेके लिए विधिवत् मूत्र-प्रयोग ही अचूक उपाय है; क्योंकि वह क्षीण कोश-तंतुजाल (टिश्यूज़) को फिरसे बनाता है। श्वासनलीकी सूजन (डिप्थीरिया), छोटी शीतला —चेचक, स्कारलॅट फ़ीवर (एक भयानक संक्रामक ज्वर जिसमें शरीर पर लाल लाल दाने हो जाते हैं), इन्फ़्लूएन्ज़ा (संक्रामक शीत-ज्वर), गठियेका बुखार और तेज़ बुखारवाले अन्य तीव्र रोग—इन सब रोगोंमें मूत्रोपचार सफल सिद्ध हुआ है।

७

अंडकोश-वृद्धि

अंडकोश-वृद्धि एक अत्यन्त पीड़ाकारी व्याधि है। इसमें अंडकोश फूल जाते हैं और कई बार उन पर फोड़े भी निकल आते हैं। चोटसे या सूज़ाक या कंठमालाके रोगसे अंडकोश बढ़ जाते हैं।

उन्नीस बरसका एक नौजवान इस बीमारीका शिकार हो गया था। वह अपने इलाजके लिए एक डाक्टरके पास गया। डाक्टरको उसकी बीमारी खतरनाक लगी और उसने फ़तवा दे दिया कि वह कुछ दिनका ही मेहमान है। फिर वह युवक आर्मस्ट्रॉङ्गके पास आया। उसकी आँतें एक सप्ताहसे काम नहीं करती थीं और गुरदे ७२ घंटेसे निष्क्रिय थे। उसके शरीरमें एक तरफ़ इतनी अधिक सूजन थी कि मानो चमड़ीके नीचे आधा फ़ुटबाल रख दिया हो। उसके

दोनों अंडकोश फूलकर गेंद जैसे हो गये थे। उसका लिंग पेन्सिल जैसा कठिन और लम्बाईमें चौदह इंच, कॉर्क-स्क्रू जैसा टेढ़ा तथा काला हो गया था। उसकी कराह दिलको दहला देनेवाली थी। उसने तीन दिनसे कुछ भी न खाया था, केवल पानी ही पिया था; तो भी सूजन और लिंगकी वक्रता बढ़ी थी। उसे पेशाब नहीं आता था। इसलिए आर्मस्ट्रॉङ्गको उसे अपना पेशाब पिलाना पड़ा।

पहले मूत्रपानके दो घंटे बाद उसका लिंग तनिक स्वाभाविक स्थितिमें आया और पेशाबकी कुछ बूँदें निकलीं। लगभग दो एक औंस पेशाब हुआ। वह गाढ़ा, गंदला और लपसी जैसा सघन था। तो भी वह मुँह बनाये बिना और चूँचरा किये विना उसे पी गया। चार घंटे बाद उसी रूपरंगका और वैसी दुर्गंधवाला पेशाब लगभग दस छटाँक हुआ, जिसे वह नाक-भौं चढ़ाये बिना पी गया। उपवासके दौरान पेटके एसिड जीभ पर इतने जम गये थे कि रोगीको बेस्वाद मूत्रका कुछ पता ही नहीं चला। दो घंटे बाद उसे सड़ाँधवाली बहुत ही ज़्यादा टट्टी हुई, जिसे देखकर आर्मस्ट्रॉङ्ग भी तोबा-तोबा पुकार उठे। क्योंकि उन्होंने सत्ताईस बरसमें ऐसी टट्टी कभी नहीं देखी थी। मलोत्सर्गके समय जो मूत्र आया था उसे बादमें वह पी गया। वापस बिस्तरे पर उसे लिटाया गया तो वह आरामसे टाँगें पसार कर लेट गया। पहले वह उदर-गुहा-शोथ (पेरिटोनाइटिस) या आँत वृद्धि (एपेन्डिसाइटिस)के रोगीकी तरह अपने घुटने पेटके साथ लगाकर लेटता था। प्रथम मूत्रपानके आठ घंटे बाद उसका दर्द लगभग मिट चुका था। उसकी छाती, पेड़ू और सिर पर पुराने पेशाबकी पट्टियाँ रखी गयीं और हाथों तथा पैरों पर वैसी पट्टियाँ बाँध दी गयीं। उसे बहुत ज़्यादा पेशाब आने लगा और वह सब पी जाता था। उसकी आँतोंने भी कुदरती उपचारका अच्छा साथ दिया अर्थात् पीड़ाके बिना स्वतन्त्रतासे काम करने लगीं और टट्टी साफ़ आने लगी। चौथे दिन चौबीस घंटेमें बाईस पिन्ट अर्थात् करीब १४ सेर पेशाब हुआ। वह सब पी गया।

इस तरह अच्छी प्रगति हुई थी। इतनेमें एक मुश्किल खड़ी हुई। आर्मस्ट्रॉङ्गको बाहर जाना पड़ा। उनकी अनुपस्थितिमें एक मित्र डाक्टरने चम्मचभर गेहूँके आटेकी पतली लपसी लेनेके लिए उसे प्रोत्साहित किया, जिसका परिणाम भयंकर आया। मूत्रका सारा प्रवाह बन्द हो गया और सोलह घंटेमें रोगके सभी पुराने चिह्न फिरसे प्रगट हो गये, परन्तु पहलेकी अपेक्षा कम पीड़ाकारी थे। निरुपाय हो फ़िरसे वही सारा उपचार शुरू करना पड़ा। रोगीने सोलह दिनके उपवासका पारणा संतरेका रस लेकर किया। एक हफ़्ते तक उसे सादे, हलके और सुपाच्य भोजन पर रखा गया। फिर वह पूर्ण स्वस्थ होकर अपने काममें लग गया।

आर्मस्ट्रॉङ्गने जब अपनी पुस्तक लिखी तब उस युवककी आयु चालीस बरसकी थी। वह सन्तुलित आहार करता रहा, अपना 'जीवन-जल' रोज पीता रहा और सम्पूर्ण स्वास्थ्यका आनन्द भोगता रहा।

उपर्युक्त केसके बारेमें एक बात विशेष उल्लेखनीय है। स्वर्गस्थ प्रसिद्ध डाक्टर राबाग्लिआटी उस युवककी चमत्कारपूर्ण रोगमुक्तिसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसका विस्तृत विवरण लिखकर इंग्लैंड और अमरीकाके चार मेडिकल जर्नलोंको भेज दिया था। परन्तु एक भी जर्नलने उसे प्रकाशित करनेकी उदारता नहीं दिखायी। अत्यन्त खेद! कौवे सभी जगह काले होते हैं। निहित स्वार्थ प्रत्येक क्षेत्रमें सर्वत्र इसी मनोवृत्तिका प्रदर्शन करते हैं। इस मनोवृत्तिके बदलने पर ही संसार नये प्रकाशका दर्शन कर सकता है।

८

घाव और जलनेके ज़ख़्म

क़ुदरत यह चाहती थी कि आर्मस्ट्रॉङ्ग यह भी सिद्ध कर दिखायें कि मूत्रचिकित्सासे गहरे घाव भी ठीक हो जाते हैं। कुछ बरस पहले एक दुर्घटनासे आर्मस्ट्रॉङ्गके पैरों पर इतनी चोट लगी कि टख़ने और उँगलियोंमें चीरे पड़ गये, उँगलियाँ पैरोंमें धँस गयीं और उनके नाख़ून उखड़ गये। उन्हें बड़ा आघात पहुँचा और तीव्र पीड़ाका अनुभव हुआ। परन्तु उन्होंने मित्र डाक्टरकी मदद लेनेसे इनकार कर दिया, क्योंकि वे ज़ख़्मों पर भी मूत्रप्रयोगकी सफलता सिद्ध करनेके लिए कटिबद्ध थे। उन्होंने किसी हड्डी बैठानेवालेसे अपने पैरोंकी मोड़-मचक ठीक करवाकर पेशाब और पानीके साथ चार दिनका उपवास किया और ज़ख़्मी भागों पर पुराने पेशाबमें तर की हुई पट्टियाँ बाँध दीं। उन पट्टियोंको वे पेशाबसे बार बार सींचते रहे। पाँच दिनके बाद जब पट्टियाँ छोड़ी गयीं, तो वे पैरोंकी हालत देखकर दंग रह गये। ज़ख़्मोंके दाग़ तक भी दिखायी न दिये और पैर पहले जैसे स्वस्थ और लचीले हो गये। साथ ही पैरोंका दुःखदायी घट्ठा भी साफ़ हो गया।

दुर्घटनासे या अन्य प्रकारसे घायल हुए अनेक व्यक्तियोंके जो घाव डाक्टरी और अन्य उपचारसे ठीक नहीं हुए थे, उन्हें भी आर्मस्ट्रॉङ्गने मूत्रोपचारसे ठीक कर दिया और जिन ज़ख़्मी अंगोंके बारेमें डाक्टरोंकी यह राय थी कि उन्हें काट दिया जाये, मूत्रोपचारसे वे अंग भी ठीक हो गये। इस सिलसिलेमें आर्मस्ट्रॉङ्गने अपनी पुस्तक में एक ख़ास केसका विवरण दिया है जो इस प्रकार है :—

सन् १९१८में एक नौजवान उनके पास आया। उसकी भुजामें एक साल पहले बंदूककी गोली लगी थी। उसका ज़ख़्म दस इंच

लम्बा और करीब आधा इंच चौड़ा था। वह प्रति सप्ताह स्थानिक दवाख़ानेमें जाता था, परन्तु कुछ सुधार मालूम न हुआ। कभी उस पर फोड़े निकल आते थे और कभी उसमें पीप पड़ जाती थी। उसके डाक्टरोंको भय लगने लगा कि कहीं वह भुजा गेन्ग्रीनसे आक्रान्त न हो जाये। उस भयको दूर करनेके लिए ज़हरीली मरहम-पट्टी की जाने लगी। आखिर उस उपचारसे तंग आकर उसने अन्य उपचारोंकी शरण ली। उनसे थोड़ा-सा आराम तो ज़रूर हुआ, किन्तु ज़ख्म भरा नहीं। अपनी पत्नीके विरोधके बावजूद वह आर्मस्ट्रॉङ्गके पास गया। पहले तो उसकी सब मरहम-पट्टी निकाल दी। फिर दिनमें तीन बार ज़ख्मी भुजाको पुराने पेशाबसे धोया जाने लगा। साथ ही सारे शरीर पर हलके हाथसे कई बार अधिक समय तक पुराने मूत्रसे मालिश की जाने लगी। उसे पेशाब और पानीके साथ तीन दिन तक उपवास पर रखा गया और थोड़ी-थोड़ी देरके लिए सूर्यस्नान भी कराया जाता रहा। सात दिन बीतने पर लम्बे घावके स्थान पर सोनेके पतले तार जैसा निशान रह गया। संक्षेपमें, एक वर्षके बाधक (मरहम-पट्टी आदिके) उपचारके बाद दस दिनके नैसर्गिक उपचारसे वह रोगी स्वस्थ हो गया।

उपर्युक्त घायल व्यक्तिके ठीक होनेके बाद बीसियों घायल व्यक्ति आर्मस्ट्रॉङ्गके पास आये और वे सभी जादूकी तरह इस उपचारसे ठीक हो गये। आर्मस्ट्रॉङ्गका यह अनुभव है कि यदि सादे और ज़हरीले ज़ख्मोंका तत्काल मूत्रोपचार किया जाये तो वे चार छः दिनमें ही ठीक हो जाते हैं। परन्तु डाक्टरी या अन्य उपचारसे बिगड़े हुए और गेन्ग्रीनकी स्थिति तक पहुँचे हुए ज़ख्म दससे बीस दिन में ठीक हो जाते हैं।

अग्नि तथा गरम तरल पदार्थसे जले हुए अमरीकी रोगियोंका इतिहास जानने योग्य है। किसी एक बरसमें लगभग आठ हज़ार व्यक्ति जलनेसे मर गये। उनमें क़रीब आधे तो पाँच बरससे छोटी

उम्रके बच्चे थे। जलनेके बाद जो हज़ारों अमेरिकन जिन्दा रह सके उनके शरीर पर विचित्र प्रकारके भद्दे दाग़-धब्बे थे। बरसों तक शरीरके जले हुए भागका इलाज उबाले हुए चायके पत्तोंसे होता रहा। फिर १९२५में एक डाक्टर ने चायके पत्तोंसे टेनिक एसिड तैयार किया और जले हुए भागके उपचारमें उसीका उपयोग होने लगा। इस तरह उपचार कुछ वैज्ञानिक तो बना, परन्तु भद्दे दाग़-धब्बोंकी समस्या पूरी तरह हल नहीं हुई। फिर टेनिक एसिडके स्थान पर पिकरिक एसिड आया। बादमें शस्त्रवैद्य शल्यचिकित्सा आज़माने लगे। जले हुए व्यक्तिके शरीरके किसी अन्य भाग -- विशेषतः नितंबकी स्वस्थ चमड़ीको काटकर उसे जले हुए भाग पर लगाया जाने लगा। परन्तु दुर्भाग्यसे इस नये उपचारका कई बार यह परिणाम आता कि शरीरके स्वस्थ भागकी चमड़ी निकाल लेनेसे जो ज़ख्म बनता वह सड़ने लग जाता, जिससे रोगीको लेनेके देने पड़ जाते अर्थात् उसकी पीड़ा और बढ़ जाती। प्रसंगात् आर्मस्ट्रॉङ्गको मजबूर होकर यह कहना पड़ा कि शल्यचिकित्सा (सर्जरी) का ख़ूब दुरुपयोग हुआ है और होता रहेगा। ऐसे हज़ारों अंगोंके अनपेक्षित ऑपरेशन हुए हैं जो प्राकृतिक उपचारसे ठीक हो सकते थे।

आर्मस्ट्रॉङ्गने इस प्रकरणके अन्तमें अमरीकाके एक प्रसिद्ध डाक्टर जॉर्ज एस० कॉटनके पत्रका सार दिया है, जो इस प्रकार है :--

"आपका भेजा हुआ मूत्रोपचार सम्बन्धी साहित्य प्राप्त हुआ, जिसे पढ़कर मैंने अनेक रोगों पर मूत्रचिकित्साको आज़माया और आश्चर्यजनक परिणाम आया। घाव आदिके उपचारमें अन्य कोई चिकित्सा मूत्रचिकित्साको पछाड़ नहीं सकती। मुझे लगता है कि आप एक महान् सत्यको प्रकाशमें ला रहे हैं और पीड़ित मानवजातिमें इसका बहुत प्रसार करना चाहिये।"

९

अन्य छोटे-बड़े रोग

शरीरके किसी रोगको छोटा समझना अपने आपको धोखा देना है। कोई भी रोग छोटा नहीं है। यदि रोगका तत्काल योग्य उपचार न किया जाये तो वह जल्दी या देरसे गंभीर एवं भयंकर बन जाता है और कभी घातक भी। मूत्रोपचारमें साधारण तथा गंभीर रोगोंको दूर करनेकी एकसी क्षमता है। आर्मस्ट्रॉङ्गने अपनी पुस्तकके चौदहवें प्रकरण-में छोटे-बड़े रोगोंके रोगियोंको मूत्रोपचारसे ठीक कर देनेका विस्तृत वर्णन किया है। उनमेंसे कुछ रोगियोंका विवरण इस प्रकार है :—

१. मासिक धर्मकी पीड़ा— एक स्त्रीका मासिक धर्म बहुत लंबा चलता था और अनेक बार आता था। उसने पहले डाक्टरी उपचार किया, परन्तु कुछ भी फ़ायदा नहीं हुआ। फिर वनस्पति-चिकित्सा (हरबेलिज़्म) की, जिससे थोड़ा लाभ तो हुआ, पर उसका शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जाता था और मानसिक सन्तुलन भी कम होने लगा था। एक बार उसका मासिक रजस्राव दो सप्ताह तक चलने पर भी बन्द न हुआ, तभी उसने मूत्रचिकित्साको आज़मानेका संकल्प किया। यद्यपि शुरूमें उसका मूत्र मासिक स्रावके ख़ूनसे ख़ूब मिला हुआ था, फिर भी उसे पीकर उसने अपनी निष्ठा और हिम्मत-का परिचय दिया। उपवासके दौरान वह रोज़ाना दो तीन पिन्ट (लगभग ५० तोला) ठंडा पानी चुसकी ले लेकर पीती थी। तीन दिनमें उसका मूत्र सामान्य हो गया। उसने २८ दिन तक उपवास चालू रखा। उपवासके दौरान किसी स्वस्थ मनुष्यके मूत्रसे उसकी मालिश भी रोज़ानाँ कई घंटे होती रही। उसे पूरा आराम हो गया। केवल उसके मासिक धर्मकी व्याधि ही नष्ट नहीं हुई, अपितु पुराना ज़ुकाम और बढ़ता हुआ बहरापन भी मिट गया।

२. **गुरदेकी सूजन** — एक युवतीके गुरदेमें सूजन थी और साथ ही कुछ और पीड़ा भी थी। वह कई हफ़्तों तक दो डाक्टरोंसे अपना इलाज कराती रही। आख़िर एक विशेषज्ञकी सलाह ली गयी। उस विशेषज्ञने उस युवतीकी मातासे कह दिया कि उसका रोग असाध्य है और वह आगामी क्रिसमसका पर्व नहीं देख सकेगी। तब उस रोगीको आर्मस्ट्रॉङ्गके पास ले जाया गया। उसे मूत्रपानके लिए प्रोत्साहित तथा प्रेरित करनेकी ख़ातिर आर्मस्ट्रॉङ्ग उसीके घिनौने मूत्रमें से थोड़ा-सा मूत्र ख़ुद पी गये। मूत्र और ठंडे पानीके साथ तीस दिनके उपवास और मूत्र-मालिशसे वह युवती सर्वथा रोगमुक्त हो गयी और फिर वह किसी बीमारीका शिकार नहीं हुई। जब वह आर्मस्ट्रॉङ्गके पास आयी थी तब उसका वज़न १०६ पौंड था। स्वस्थ होनेके बाद चार महीने लगातार वह मूत्रपान तथा मूत्र-मालिश करती रही और दोनों समय सन्तुलित पथ्य आहार लेती रही, जिसका परिणाम यह आया कि उसकी ऊँचाई और शारीरिक गठनके अनुरूप उसका वज़न १३६ पौंड हो गया।

३. **मोटापा** — ३० बरसकी एक विवाहित स्त्रीका वज़न १७४ पौंड था। उसके कोई सन्तान न थी। सामान्यतः वह अयुक्त आहार करती थी, परन्तु पेटू न थी। वह भोजन चबा चबा कर खाती थी और भोजनसे पहले या बीचमें पानी पीती थी। उसने अपना वज़न कम करनेके लिए आहारमें अनेक परिवर्तन किये थे, पर सभी व्यर्थ सिद्ध हुए। उसने केवल पानी पीकर उपवास भी किया था, परन्तु जैसे ही वह खाना शुरू करती, उसका वज़न पहलेकी अपेक्षा जल्दीसे बढ़ जाता था। आख़िर उसने आर्मस्ट्रॉङ्गकी सलाह ली। उसने मूत्र और जलके साथ १४ दिनका उपवास किया और रोज़ाना मूत्र-मालिश की, जिससे उसका वज़न १४० पौंड हो गया। फिर वह सन्तुलित तथा पथ्य आहार करने लगी और दिनमें दो बार ही भोजन करती थी। उसने मूत्रपान भी जारी रखा। उसका वज़न १४० पौंडके

आसपास रहा। तब उसकी आयु पचास बरससे अधिक थी, पर वह तैंतीस बरसकी लगती थी।

४. एक रहस्यपूर्ण केस—५८ बरसका एक पुरुष निरीक्षण तथा उपचारके लिए कई सप्ताहसे अस्पतालमें था। परन्तु उसकी अवधि पूरी होने पर उसे बताया गया कि रोग असाध्य है और मौत का शिकार होनेके लिए उसे घर भेज दिया गया। साथ ही उसे यह हिदायत की गयी कि वह स्थानिक डाक्टरसे सम्पर्क रखे। उसे एक खास दवा दी गयी जो उसके चाहे जैसे आहारको पचा दे। अपने एक सहृदय रोगीकी प्रार्थनासे आर्मस्ट्रॉङ्गने उसका इलाज करना मंज़ूर किया। उस रोगीको देखते ही उन्होंने समझ लिया कि यदि उसकी मृत्यु निश्चित ही है तो वह रोगके कारण नहीं, परन्तु उसे जो उग्र और ज़हरी दवा दी गयी है, उसके कारण होगी। उसके डेले बढ़ गये थे। उसका शरीर पतला ज़रूर था, पर क्षीण न था। वह खानपानमें सावधान था। वह बहुत परिश्रमी और नियमित था। उसे कभी सर्दी नहीं हुई थी। उसे न तो कब्ज़ था और न ही अतिसार। उसे एक ही व्यसन था और वह था सुंघनीका। परन्तु एक सालसे उसने नसवारका उपयोग छोड़ रखा था। आर्मस्ट्रॉङ्गने जब उसे पहली बार देखा तब वे कुछ ही मिनट उसके पास ठहरे थे और उसे मूत्र और जलके साथ उपवास करनेकी सूचना दी गयी थी। उसे और उसकी पत्नीको यह कहा गया कि प्रयोगके दौरान यदि कोई क्रिया-प्रतिक्रिया हो तो उससे तनिक भी न घबरायें और जाँचके लिए टट्टी और उलटीको सुरक्षित रखें।

रोगीने मूत्रप्रयोग शुरू कर दिया। पहली बारके मूत्रपानके चौबीस घंटे बाद उलटियाँ होने लगीं और इतनी हुईं कि गन्दे मलसे दो बालटियाँ भर गयीं। उसकी आँतोंमें से भी खूब मल निकला और नाकमें से चिकना कफ। उसे नाक साफ़ करनेमें एक दर्जन रूमाल बिगाड़ने पड़े। वे सब रूमाल केवल चिपचिपे कफसे ही खराब नहीं हुए थे, अपितु

सुँघनीसे भी मलिन हुए थे। उपवास चलता रहा और एक सप्ताहमें सभी मलोंका निकलना बन्द हो गया। दस दिनके बाद उपवास छोड़ा गया और रोगी नीरोग हो गया। सन् १९४४ में (पुस्तकका लेखन-काल) उसकी उमर ७० बरससे भी अधिक थी।

यह केस बहुत दिलचस्प है, क्योंकि इससे यह पता चलता है कि मूत्रचिकित्सामें रोगके निदानकी ज़रूरत नहीं है, और इससे महत्त्वपूर्ण ज्ञान तो यह होता है कि अनेक मास पूर्व लिया हुआ विजातीय द्रव्य —— प्रस्तुत केसमें सुंघनी —— शरीरके कोश-तन्तुजाल (टिश्यूज़)में पड़ा रहता है और हानि पहुँचाता रहता है। जब उपवाससे शरीर-शुद्धिकी क्रिया होती है तब वह द्रव्य बाहर आता है।

५. **पीलिया** —— यह कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है, परन्तु जिगरकी चिरकालिक या तात्कालिक विकृतिका परिणाम है। पीलियेका प्रथम तथा दुःसाध्य केस आर्मस्ट्रॉङ्गके पास सन् १९१९ में आया। उस समय उन्होंने मूत्रचिकित्साका श्रीगणेश ही किया था। मूत्र और पानीके साथ दस दिनका उपवास करनेसे वह केस ठीक हो गया था। पीलियेके बहुतसे रोगियोंके उपचारका अवसर तो उन्हें नहीं मिला, परन्तु जिन रोगियोंका उन्होंने उपचार किया उनके इलाजके दौरान उन्हें एक अनूठी बात यह मालूम हुई कि उपवासके पहले दो तीन दिनोंमें ही रोगीके शरीरका रंग बदलने लगा और उपवास पूरा होने पर उसका रंग स्वस्थ तथा सुन्दर गोपकन्याके वर्ण जैसा तेजस्वी हो गया। यदि पीलियेके रोगीका जिगर कैन्सरसे पीड़ित न हो तो उसका पीलिया आठ दस दिनमें ही मिट जाता है।

६. **मोतिया** —— इंग्लैंडमें तो ऐसा कानून है कि प्रमाणित डाक्टर ही आँखका मोतिया निकाल सकता है और अगर कोई दूसरा व्यक्ति मोतिया निकालता है तो उसे अपराधी समझा जाता है।

आर्मस्ट्रॉङ्ग तो प्रमाणित डाक्टर नहीं थे। ऐसी स्थितिमें वे मोतियेके रोगीका इलाज कैसे कर सकते? परन्तु उन्हें कहाँ ऑपरेशन

करना था ? उनकी मूत्रचिकित्सामें तो ऑपरेशन किये बिना ही आँखका मोतिया दूर करनेकी अपूर्व शक्ति थी। इस चिकित्सामें तो आँखको छूने की भी ज़रूरत नहीं रहती; क्योंकि आँख शरीरका एक अंग है। अतः आँखकी सूजन, उसकी दृष्टिका क्षीण होना, उसमें मोतिया आना आदि आँखकी सभी पीड़ाएँ समस्त शरीरकी अस्वस्थ दशाके परिणाम हैं। आर्मस्ट्रॉङ्ग अपने अनुभवके आधार पर यह दावा करते हैं कि आँखकी पुतली पर जो मोतियाकी झिल्ली आ जाती है वह पेशाब और पानीके साथ दस दिनका उपवास करनेसे घुलकर साफ़ हो जाती है और ज़िद्दी मोतिया २८ दिनके उपवाससे दूर हो जाता है।

७. **बीमार गुरदा** -- श्री जी० डी० का दायाँ गुरदा ख़राब हो गया था और उन्हें अत्यन्त पीड़ा सहन करनी पड़ती थी। उनके पेशाबका रंग लाल था। एक्सरेसे पता चला कि उनके गुरदेमें एक बड़ी पथरी है। सर्जनकी यह राय थी कि बिगड़े हुए गुरदेको न निकाला गया तो उनकी जान पर आ बनेगी। ऐसी स्थितिमें सन् १९४४ में उन्हें अस्पतालमें दाखिल तो कर दिया गया, परन्तु उन्होंने ऑपरेशन करानेसे इनकार कर दिया। आख़िर वे आर्मस्ट्रॉङ्गके पास गये और उनकी सूचनाके अनुसार पेशाब और पानीके साथ उपवास करने लगे। कुछ ही हफ़्तोंमें उनकी हालत सुधरने लगी, उनकी पीड़ा दूर हो गयी और पेशाबका रंग सामान्य हो गया। तीन मासके बाद वे जाँचके लिए अस्पताल गये। विधिपूर्वक जाँच करनेके बाद उन्हीं डाक्टरोंने फ़ैसला दिया कि गुरदा अब बिल्कुल ठीक हो गया है और उसी एक्सरेने यह बताया कि पथरीका नाम-निशान भी नहीं है।

आर्मस्ट्रॉङ्गने विविध भयंकर एवं असाध्य रोगोंसे पीड़ित अनेक व्यक्तियोंकी रोगमुक्तिका विस्तृत विवरण अपनी पुस्तकमें दिया है। मैंने उसे संक्षेपमें प्रस्तुत किया है। आशा है कि साधारण पाठकोंके लिए यह पर्याप्त होगा। सहृदय पाठकोंसे मेरा अनुरोध है कि वे उनकी पुस्तक अवश्य पढ़ें।

मूत्रसे घृणा कैसी ?

"अभी हमने 'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' नामक पुस्तक पढ़ी थी। उसमें लेखकने मनुष्यके मूत्रको ही वॉटर ऑफ़ लाइफ़ कहा है। वैसे तो जानवरोंका मूत्र भी वॉटर ऑफ़ लाइफ़ ही है। जीवनके द्वारा उत्पन्न किया गया पानी (? –सं०) मूत्रोपचार नामक नयी पद्धतिमें बताया गया है कि मानवके मूत्रसे बहुत सारे रोग दूर किये जा सकते हैं। वैष्णवोंको यह सुनकर धक्का लगेगा और वे पूछ बैठेंगे कि मानवका मूत्र भी क्या कोई पीनेकी चीज है? परन्तु उस लेखकने लिखा है कि मनुष्य एक ओर तो दवाके लिए लाखों रुपये खर्च करते हैं और दूसरी ओर सर्वोत्तम दवासे कोई लाभ नहीं उठाते। अपने मूत्रको पीना चाहिये। भिन्न भिन्न रोगोंके लिए वही एक रामबाण दवा है। जो भाई उस पुस्तकको देखना चाहें वे मेरे पास आकर देख सकते हैं। रावजीभाई पटेलने, जो कि गांधीजीके साथ दक्षिण अफ्रीकामें थे, उस पुस्तकके आधार पर गुजरातीमें 'मानव-मूत्र' नामकी पुस्तक लिखी है। Index (इंडेक्स) की भाँति यह विषय भी अब विज्ञानका विषय हो गया है। इसलिए कमसे कम आगेके लिए लोगोंको अब मल-मूत्रसे घृणा नहीं करनी चाहिये।"

—— विनोबा

(विनोबा-प्रवचन, ४–४–'५९)

आरोग्यका अमूल्यः साधन
शिवाम्बु — स्वमूत्र

ततीय खण्ड

सर्वानुभवकी कसौटी पर

मूत्रका मूल सिद्धान्त

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, ये पाँच महाभूत हैं, जिनसे यह सृष्टि बनी हुई है। मानव-देह भी इन्हीं पाँच तत्त्वोंसे बनी हुई है। ईश्वरने प्रत्येक मनुष्यको एक जैसी देह दी है और प्रत्येक स्वस्थ देहमें समुचित परिमाणमें ये पाँच तत्त्व होते हैं। मनुष्यके अपने दोषसे जब उस परिमाणमें कमी-बेशी होती है तब उसका स्वास्थ्य बिगड़ता है। उस बिगड़े हुए स्वास्थ्यको फिरसे ठीक करनेके लिए पाँच तत्त्वोंके परिमाणकी कमी-बेशीको ठीक कर लेना चाहिये। यह कार्य करनेकी शक्ति केवल स्वमूत्रमें है। पृथ्वीको जितना समुद्रका आधार है उतना ही आधार मानव-देहको स्वमूत्रका है। पृथ्वीके निर्माण तथा जीवनमें समुद्रका जो स्थान है, मानव-देहमें वही स्थान स्वमूत्रका है। और जैसे सभी महाभूतोंको आत्मसात् करनेकी शक्ति जलमें है वैसे शरीरमें रहे हुए सभी तत्त्वोंको आत्मसात् करनेकी शक्ति उसके मूत्रमें है।

— रावजीभाई म० पटेल

१

हृदयके रोग

१. हृदयका दमा

(मेरा मूत्रप्रयोग)

मूत्रचिकित्साका पता मुझे अपनी बीमारीके वक़्त लगा था। मैंने उसकी पुस्तक पढ़ी और मनन किया। परन्तु मुझे यह प्रतीत हुआ कि केवल पढ़ना या लिखना या उपदेश देना कुछ महत्त्व नहीं रखता। इसलिए मैंने मूत्रोपचारका अनुभव करनेका निश्चय किया। मेरे मूत्रप्रयोगका विवरण इस प्रकार है :—

मैं सन् १९५४ की गरमीमें आरामके लिए आबू गया था। वहाँ मुझ पर हृदयरोगका पहला आक्रमण हुआ। हृदय निर्बल हो जानेसे वह यथेष्ट गतिसे काम नहीं कर सकता, जिससे श्वासकी नलियोंमें पानी भर जाता है और हाँफते हुए इंजिनकी भाँति उसकी गति तेज़ हो जाती है और अन्तमें उसका ज़ोर कम हो जाता है। प्रकृतिने मनुष्यके शरीरमें हृदयकी रचना ऐसी की है कि उसे तो चौबीस घंटे ही काम करना पड़ता है। हृदयकी गति रुक जाये तो जीवन ही समाप्त हो जाये। अनेक बुरी आदतोंसे, असंयमी जीवनसे या खाने-पीनेके अविवेकसे पेटके जो रोग हो जाते हैं उनका असर हृदय पर होता है, जिससे उसकी शक्ति क्षीण होती है। मेरा ऐसा मानना है कि ऐसे किसी दोषके कारण मैं तीव्र अम्लपित्त (हाईपर एसिडिटी)के रोगका शिकार हुआ और उसका असर हृदय पर हुआ। अम्लपित्तकी व्याधि तो मैंने दूर कर दी, परन्तु हृदयकी निर्बलता बनी रही।

सन् १९५८ में फ़रवरीके मासमें इस हृदयरोगका आक्रमण इतना अधिक तीव्र हुआ कि डाक्टरों और स्वजनोंने तो मेरी आशा ही छोड़ दी थी। परन्तु "जाको राखे साइयाँ मार सके न कोय" की उक्तिसे मैं जीवित रहा। फिर भी दिलकी कमज़ोरीके कारण श्वास, कफ और खाँसी तो चलती ही रही। डाक्टर इसे हृदयका दमा कहते हैं। इसमें अधिक श्रम करनेसे, खानपानमें संयम न रखनेसे और भावावेशमें आ जानेसे एकाएक हृदयकी गति बढ़ जाती है और एकदम बन्द हो जाती है। इसलिए डाक्टर मुझे चेतावनी देते थे कि अब मुझे किसी सार्वजनिक प्रवृत्तिमें भाग नहीं लेना चाहिये। मैं उनकी सूचनाके अनुसार सावधानता रखता था, परन्तु कफ और खाँसीने मेरा नाकमें दम कर दिया।

ता० ८ फ़रवरी, १९५८ के रोज़ मैंने अपने डाक्टर श्री जसुभाई भट्टको फ़ोन किया और अपनी स्थिति जतायी।

मैं ता० ९ फ़रवरीके दिन सेठ लल्लुभाई गोरधनदास अस्पतालमें गया। डाक्टरने मेरी जाँच की। मेरे हृदय और फेफड़ोंका स्क्रीनिंग करके कहा, "दायीं ओरके फेफड़ेमें नमी है, जिससे खाँसी और कफका जोर हैं। स्थिति चिन्ताजनक नहीं है। इसलिए आप नेप्थोलका एक इंजेक्शन ले लें, ताकि शरीरमेंसे ६०-७० औंस पानी पेशाबके रास्तेसे निकल जायें तो फेफड़े साफ़ हो जायें और खाँसी व कफ न हों। हृदयकी स्थिति चिन्ताजनक नहीं है।" ता० १० फ़रवरीको मैंने नेप्थोलका इंजेक्शन लिया और उसके बाद सचमुच चौबीस घंटेमें ८० औंस पानी पेशाबके रास्तेसे निकल गया, परन्तु मेरी खाँसी और कफमें कुछ अन्तर न आया।

इतनेमें एक आकस्मिक घटना घटी। हरिजन आश्रम, साबरमतीमें रहनेवाले श्री जूठाभाई अमरशी शाह मुझे मिलने आये। बातचीतके दौरान उन्होंने मूत्रप्रयोगकी बात की। गत फ़रवरीमें जब मैं अस्पतालमें बीमार पड़ा था तब मेरे एक मित्रने मुझे पत्र लिखकर सूचित

किया था कि यदि मैं मूत्रप्रयोग करूँ तो मैं स्वस्थ हो जाऊँ। परन्तु उस वक़्त मैं लाचार था। उसके दस महीने बाद फिर वही बात सामने आयी और मूत्रोपचारकी अंग्रेज़ी पुस्तक--'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' श्री जूठाभाईने मुझे दी और साथ ही मूत्रप्रयोगकी सफलताका स्वानुभव सुनाया। मैंने उस पुस्तकको पढ़ना शुरू किया। ज्यों ज्यों पढ़ता गया त्यों त्यों मेरी दिलचस्पी बढ़ती गयी। मुझे ऐसा लगा कि मानो मैं उसमें अपने दिलकी बातें ही पढ़ रहा हूँ। मूत्र-सम्बन्धी मेरी स्मृति ताज़ा हो आयी। गोमूत्रसे हमारे अनेक रोग मिटते हैं, ऐसा आयुर्वेद कहता है और आधुनिक डाक्टर भी इसे मानते हैं। हमारे योगी हठ योगके अभ्यासमें शरीरको नीरोग तथा स्वस्थ रखनेके लिए मूत्रका उपयोग करते थे, ऐसी अनेक बातें याद आयीं और मनमें ठस गया कि सचमुच मूत्रमें ऐसी क्षमता होनी चाहिये। सामाजिक तथा मानसिक प्रतिबन्धोंके होने पर भी मैंने मूत्रप्रयोग करनेका निश्चय किया। मैं उसे वैज्ञानिक ढंगसे करना चाहता था। इसलिए मैंने एक डाक्टरको, जिनकी साफ़दिलीमें मुझे विश्वास था, बुलाया और उनसे मूत्रप्रयोगके बारेमें सलाह ली।

मैंने मूत्र और पानी लेकर उपवास करनेका प्रयोग शुरू नहीं किया। किसी अनुभवीके मार्गदर्शनके बिना एकदम ऐसे प्रयोगका जोखिम उठाना ठीक नहीं समझा। परन्तु १८ फ़रवरी, १९५८से मैंने पाँच सात दिनके पुराने मूत्रसे शरीर पर मालिश कराना शुरू कर दिया। मेरा पुत्र चि० शशीकान्त बड़े चाव और उत्साहके साथ रोज़ाना डेढ़ घंटा मालिश करता था। उसकी प्रसन्नताको देखकर ऐसा लगता था कि वह मानो चंदनके तेलसे मालिश न करता हो! भिन्न भिन्न अंगोंकी मालिशमें जो समय लगता था उसका विवरण इस प्रकार है :--

(१) पाँवोंके तलवोंके लिए १० मिनट, (२) दोनों टाँगोंके लिए २० मिनट, (३) दोनों भुजाओंके लिए १२ मिनट, हाथके पंजोंमें अधिक समय लगता था, (४) छाती, पेट और पेडूके लिए १५ मिनट,

(५) पीठ, कमर और दोनों बग़लोंके लिए १३ मिनट, (६) सिर, गले और मुंहके लिए २० मिनट। इस तरह कुल ९० मिनट मालिश चलती थी। अनुभवसे मुझे मालूम हुआ कि प्रेमसे की हुई मालिश बहुत लाभकारी होती है। मालिशका कार्यक्रम सुबह ७–३० से ९ बजे तक चलता था। बासी मूत्रमें दुर्गंध तो अधिक होती है, परन्तु वह अधिक गुणकारी होता है।

इस मूत्र-मालिशसे मेरे शरीर पर इस प्रकार असर हुआ :—

(१) ता० २० फ़रवरीसे खुलकर पेशाब होने लगा, जिसके लिए पहले डायमोक्सकी टिकिया लेनी पड़ती थी और उसका असर दो ही दिन रहता था। इंजेक्शन शरीरके कोश-तन्तुजाल (टिश्यूज़) मेंसे सारे पानीको खींचकर मूत्रके रूपमें बाहर निकाल देता था, जिससे कमज़ोरी आ जाती थी और उन टिश्यूज़को ठीक होनेमें कुछ समय लग जाता था। उसके बदले केवल पेशाबकी मालिशसे पेशाबके रास्तेसे उतना ही पानी निकलने लगा जितना आरोग्यकी दृष्टिसे आवश्यक था।

(२) सात दिनमें एक और परिवर्तन मालूम हुआ। पहले मेरी कमरमें इतना दर्द था कि सहारा लेकर धीरे-धीरे उठकर बैठ सकता था। कमर पर दो चार मुक्के मारकर सीधा खड़ा हो सकता था और फिर धीरे-धीरे कदम उठाकर चलता था। अब सहारेके बिना एकदम उठकर चलने लगा।

(३) इस प्रकार पीठका दर्द भी जाता रहा। अब कमर या पीठ दबवाकर आराम लेनेकी ज़रूरत न रही।

(४) नवें दिन एक और आश्चर्यकारी परिणाम मालूम हुआ। मेरी दोनों टाँगोंके ऊपरके अमुक-अमुक भागमें खुजली होती थी, चसक उठती थी, धीरे-धीरे अंगार-सी जलन होने लगती थी और उतनी जगहकी चमड़ी सुन्न हो जाती थी। मुझे डर था कि कहीं सारे शरीरका रुधिर-विकार वहाँ जमा होकर चंबल (एक्ज़ीमा) या ऐसी

व्याधिको पैदा न कर दे। वह सब खाज, चसक, अंगार-सी जलन मिट गयी और चमड़ीमें चमक आ गयी।

(५) बारह-चौदह दिनमें बड़ा चमत्कार हुआ। मेरी खाँसी मिट गयी और कफ आना बन्द हो गया। मूत्र नियमित हो जानेसे फेफड़े अपने आप साफ़ रहने लगे। सारा दिन मुंह चिकने थूकवाला रहता था, गला भी कफ-मिश्रित थूकवाला रहता था, जिसके कारण बार-बार थूकना पड़ता, खाँसी आती रहती, कफ निकालना पड़ता। यह सब तत्काल दूर हुआ और मुँह साफ़ व सूखा रहने लगा। मेरे लिए तो यह परिवर्तन चमत्कार ही था। तकिये पर मज़ेसे छः आठ घंटे सोने लगा।

(६) इसके अतिरिक्त मेरे शरीरकी चमड़ी पर जो चमक आयी, कोमलता आयी और शरीरमें जो स्फूर्ति आयी, मुंह पर जो तेज दिखायी दिया, उससे सभी दंग रह गये। डाक्टर भी चकित हुए। इस प्रकार मेरे हृदय-रोगके जो जो सहायक रोग थे वह सब नष्ट हुए। मुझे अपना शरीर हलका मालूम हुआ।

ता० ७ मार्चको मैं फिर उसी अस्पतालमें डाक्टरसे मिला। मूत्रप्रयोग शुरू करनेके बाद मैंने वह अंग्रेज़ी पुस्तक -- 'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' पढ़नेके लिए उन्हें भेज दी थी और उन्होंने उसे पढ़ भी लिया था। उन्होंने मेरे शरीरकी जाँच की, जिसका विवरण यह था -- (१) हृदय पहले कुछ बढ़ा हुआ था, वह कुछ सिकुड़ा हुआ मालूम दिया, (२) फेफड़े सूखे और साफ़ थे, (३) कफ या खाँसी बिल्कुल न थी, (४) हृदयकी धड़कन ८० थी, (५) नाड़ीकी धड़कन ७२ मालूम हुई, (६) खूनका दबाव १४० था, (७) टेम्प्रेचर नॉर्मल था।

हृदयकी धड़कन ८० थी, परन्तु वह अनियमित थी। यह हृदय-रोगका सूचक था। और काम करते हुए मेरे श्वासका चलना भी हृदय-रोगका चिह्न था। इस जाँचसे डाक्टरको सन्तोष हुआ। उन्होंने

मुझे बताया कि शारीरिक स्थिति काफ़ी अच्छी है। हृदयकी कमज़ोरी तो अभी है, फिर भी निरन्तर कफ और खाँसीके कारण हृदयको जो तकलीफ़ होती थी वह अब नहीं होगी। इसलिए हृदयको आराम मिलेगा और लाभ भी।

ऐसा अभिप्राय सुनकर मैंने अपने दिलकी बात डाक्टर साहबको कह सुनायी। अपने प्रयोगका हाल सुनाकर उनसे कहा कि करीब पन्द्रह दिनकी मालिशका यह परिणाम आया है। अब मैं आगे बढ़ना चाहता हूँ; हृदय-रोगसे मुक्ति पानेके लिए मुझे मूत्र और पानीके साथ पाँच उपवास करने हैं। परन्तु आपकी अनुमतिके बिना अभीष्ट उपवास करना नहीं चाहता। आखिर उन्होंने केवल दो उपवास करनेकी सम्मति दी और वह भी इस शर्त पर कि मुझे पहले दिनकी परिस्थितिका परिचय उन्हें रातके नौ बजे कराना होगा और उस परिस्थितिके सन्तोषजनक होने पर ही वे मुझे दूसरे दिनके उपवासकी अनुमति देंगे। मैंने उनकी शर्त मान ली।

मैंने अगले रोज़ सवेरे डाक्टर पुष्पेन्द्र भट्टकी जाँचके बाद उपवास शुरू किया। सात बजे पहली बारका पेशाब करीब तीन औंस हुआ, जिसे मैं पी गया। उसके बाद जिस समय जितना पेशाब हुआ वह सब पी गया। रातको दस बजे फिर उसी डाक्टरने मेरी जाँच की और मेरा हाल डाक्टर जसुभाई भट्टके पास भेज दिया। उपवासके पहले दिन मेरा ब्लडप्रेशर १३० से १२० हो गया, फिर भी उन्होंने दूसरे दिन उपवास रखनेकी इजाज़त दे दी। दूसरे दिन सुबह सात बजे पेशाबकी हाजत न हुई, परन्तु प्यास लगी; इसलिए पानी पीकर उपवास शुरू किया। उसके बाद जो पेशाब हुआ वह मैंने पी लिया और आवश्यकताके अनुसार पानी भी पिया। रातको डाक्टरने जाँच की और विवरण डा० जसुभाई भट्टको भेज दिया। दूसरे उपवासके बाद मेरा ब्लडप्रेशर १२० से १०८ हो गया। मैंने तीसरे उपवासके लिए अनुमति माँगी, परन्तु उन्होंने इजाज़त नहीं दी और तीसरे दिन

सुबह मूंगके पानीसे पारणा किया। तबसे मूत्र-मालिश भी बन्द कर दी। केवल सुबह उठते ही जो तीन चार औंस पेशाब होता था उसे चार दिन तक पीता रहा।

उपवासके चार पाँच दिन बाद मैं फिर अस्पतालमें गया। दो दिनके उपवासके असरको जाननेके लिए मैं और श्री जसुभाई भट्ट उत्सुक थे। उनके कमरेमें मैं दाखिल ही हुआ था कि वे मुझे देखते ही बोल उठे, "आपकी जाँच करनेसे पहले ही मैं कह सकता हूँ कि आपके प्रयोगसे आपके शरीरकी कान्ति बदल गयी है और त्वचा ऐसी तेजस्वी हुई है कि उसे देखकर मैं तो आश्चर्य-मुग्ध हो गया हूँ। मैं यह प्रमाणपत्र देनेके लिए तैयार हूँ कि आपका प्रयोग सफल हुआ है।" मैंने कहा कि अभी तो प्रयोग पूरा नहीं हुआ है। मेरा हृदय-रोग निर्मूल हो जाये तभी मैं अपने प्रयोगको सफल मानूंगा। आप पूरा प्रयोग करने देते तो काम बन जाता।

उन्होंने फिर मेरी जाँच की। कार्डियोग्राम लिया तो हृदयमें थोड़ा परिवर्तन मालूम हुआ। मैंने चार पाँच दिनके लिए बाहर जानेकी उनसे इजाज़त माँगी और उन्होंने खुशीसे इजाजत दे दी। गाँव जाने-आनेमें मुझे बिल्कुल थकान महसूस न हुई।

मेरे प्रयोगका यह प्रथम दौर है। मैं इसे पूरा प्रयोग नहीं मानता हूँ। परन्तु इतना तो अवश्य कह सकता हूँ कि जितना प्रयोग किया उतना सफल सिद्ध हुआ। इतना तो दृढ़ता और निश्चयके साथ कहता हूँ कि जो व्यक्ति यह प्रयोग करना चाहता हो उसे शास्त्रीय ढंगसे करना चाहिये। मुझे जो जल्दी फ़ायदा हुआ उसका कारण मैं यह समझता हूँ कि मैंने अपने स्वास्थ्यके लिए हानिकर सभी वस्तुएँ छोड़ दी थीं।

मेरे मर्यादित मूत्रप्रयोगको आज (१९५९ में) आठ मास हो चुके हैं, परन्तु शुभ परिणाम ज्योंका त्यों कायम है अर्थात् उसमें कुछ फ़र्क

नहीं आया है। मेरी अभिलाषा तो हृदय-रोगका उन्मूलन करनेकी है और उसके लिए एक मास तक पेशाब व पानीके साथ उपवास करना चाहिये। परन्तु मेरी आयु सत्तर बरससे भी अधिक है, गत चार पाँच बरसकी बीमारीसे शरीर क्षीण हो गया है, ख़ूनका दबाव कम है, वज़नमें ६० पौंडकी कमी आ गयी है। ऐसी स्थितिमें मेरे प्रयोगके प्रति सहानुभूति रखनेवाले डाक्टरोंकी सलाह यही है कि मेरे लिए चार पाँच दिनसे अधिक उपवास करना ख़तरा मोल लेना है; क्योंकि कमज़ोरीके कारण ख़ूनका दबाव बहुत कम हो जाये तो भयंकर स्थिति खड़ी हो जाये। मुझे भी वैसा अनुभव हुआ है। इसलिए स्वजन जोखिम उठानेका घोर विरोध करते हैं। मुझे उनका अनुरोध मानना ही पड़ा है।

तो भी आज मैं मूत्रपान करता हूँ और आवश्यकताके अनुसार मूत्रसे मालिश भी करवा लेता हूँ, जिससे मेरा दिल और गुरदे इतनी अच्छी तरहसे काम करते हैं कि वर्षाके पानी-सा निर्मल व स्वादहीन मूत्र खुलकर होता है। शरीरमें न तो किसी प्रकारकी बेचैनी है और न ही पीड़ा, अपितु शरीरमें स्फूर्ति और ताज़गी रहती है। टट्टी साफ़ आती है और कब्ज़ मालूम हो तो मूत्रमें पानी मिलाकर एनिमा लेता हूँ, जिससे पेट बिल्कुल साफ़ हो जाता है। भूख नियमित लगती है। रात-दिनमें कुल मिलाकर सात घंटे सोता हूँ और लिखने-पढ़नेका काम अच्छी तरहसे करता हूँ। आजकल दिनमें दो बार पेशाब पीता हूँ—सुबह पाँच छः औंस और उतना ही शामको। बीच बीचमें कुछ दिन मालिश करवाता हूँ। आहार सात्त्विक तथा पौष्टिक लेता हूँ। एक दिन नमकीन खाना खाता हूँ और दूसरे दिन अलोना। ऐसी अभिलाषा है कि काम करते करते ही रामशरणमें जाऊँ और 'जिस विध राखे राम उस विध रहिये' को चरितार्थ करूँ।

तथापि मैं अभी यह नहीं कह सकता हूँ कि मेरा हृदय-रोग नष्ट हो गया है। मैंने कभी ऐसा दावा भी नहीं किया। परन्तु मुझे

श्रद्धा है कि इस प्रयोगसे मेरा हृदय-रोग मिट जायेगा। इसके लिए ख़तरा उठाकर मैंने दो बार जी-जानसे कोशिश की, पर सफल न हुआ; उलटे जान ख़तरेमें आ गयी। फिर स्वस्थ हुआ। मेरे मित्र डाक्टरोंने मुझे मूर्ख, मिथ्या प्रचारक आदि विशेषणोंसे विभूषित किया। परन्तु मैंने जिस सत्यका अनुभव किया है उसे निःसंकोच एवं निर्भय होकर अवश्य प्रगट करना ही चाहिये। मैं ऐसा महसूस करता था कि सच्चे साधनके उपयोगमें कुछ कमी हो सकती है, परन्तु साधनमें नहीं। इसलिए मैं अपने शरीर पर प्रयोग करने लगा। मैंने अन्तिम प्रयोग सन् १९५९के आरम्भमें किया। दिन और रातका पेशाब पीकर तीन दिनका उपवास किया, जिसमें मेरे ख़ूनका दबाव १३५ से घटकर १०८ तक आ गया। मैं बहुत कमज़ोर हो गया। हृदयकी गति इतनी मन्द हो गयी कि जिगरमें सूजन आ गयी और वह चार अंगुल बढ़ गया। उसका असर गुरदों पर भी हुआ। उन्होंने भी ठीक तरहसे काम न दिया, जिसका परिणाम यह आया कि पेशाब घटने लगा और कमरसे नीचेका भाग सूज गया। मैंने अपना प्रयोग बन्द किया। मृत्यु तो भगवानके हाथमें है। मौत तो नहीं आयी, पर तकलीफ़ ज़रूर उठायी और पुराने डाक्टरी उपचारसे पहले जैसी स्थितिमें आ गया। लगभग बीमारकी तरह बिस्तर पर लेटे लेटे ज़िन्दगीकी साँस लेता रहा। यह दशा मुझे असह्य लगी। ऐसी दशामें चैन कहाँ? लाचारीसे ग़म खाना पड़ा।

मैं अपनी आख़िरी बीमारी पर ग़ौर करता ही रहा। आख़िर एकदम मुझे अपनी भूलका पता चला। मेरा हृदय कमज़ोर है, इसलिए उपवास करके उसे अधिक कमज़ोर नहीं बनाना चाहिये। मुझे अपनी शक्तिको बनाये रखना चाहिये। फिर तो मुझे याद भी आ गया कि स्व० श्री आर्मस्ट्रॉङ्गने भी हृदय-रोगसे पीड़ित एक व्यक्तिको दिन-रातका पेशाब पिलाकर और उसकी मूत्र-मालिश करवाकर बारह सप्ताहमें उसे रोगमुक्त कर दिया था; परन्तु उसे उपवास पर न

रखकर एक बार खाना दिया जाता था। हृदय-रोगके कारण ही उन्होंने ऐसा अपवाद किया था। उपर्युक्त बात याद आ जानेसे मुझे तसल्ली हो गयी और तदनुसार करनेका फ़ैसला किया। मैं हर रोज़ डिजॉक्सिन (डिजिटेलिस)की दो टिकिया लेकर अपने हृदयकी चालू स्थिति टिकाये रखता था। अब मैं धैर्यसे लम्बा प्रयोग शुरू करने लगा। उपवास करनेका विचार छोड़ दिया। आरम्भमें दिनमें दो बार टिकिया लेता था——एक सुबह और एक शामको। अब सुबहकी टिकिया लेना बन्द करके नियमित मूत्रपान करने लगा और शामको टिकिया खाने लगा। लगातार दो मासके अनुभवसे पता चला कि मेरे हृदयकी स्थिति स्थिर रही अर्थात् उसकी गति नियमित होती रही। एक टिकियाका स्थान पेशाबने लिया, फिर भी हृदयकी कार्यशक्तिमें कुछ अन्तर नहीं आया। इस तरह दो मासके अनुभवसे मैंने शामकी टिकिया भी छोड़ दी और पेशाब पीने लगा, जिसे अब चार मास हो गये हैं। फिर भी मेरा शरीर अच्छा रहा है। वैद्य या डाक्टरकी कोई भी दवा नहीं लेता हूँ, फिर भी मेरे हृदयकी स्थिति ठीक चल रही है। डिजॉक्सिन हृदयको चालू स्थितिमें रखनेके लिए एक प्रभावशाली दवा है, ऐसा डाक्टर लोग मानते हैं। उसे बिल्कुल छोड़कर मैंने मूत्रपान किया, जिससे मेरा हृदय पहलेकी अपेक्षा अच्छा काम दे रहा है, ऐसा मैं महसूस कर रहा हूँ। इस चौमासेमें तीन मास खूब वर्षा और सरदी रही, जिससे भले-चंगे व्यक्ति भी सरदीका शिकार हो गये, परन्तु मुझे सरदीने छुआ तक नहीं। इतना ही नहीं कि मेरे हृदयकी शक्ति बनी रही, बल्कि पिछले तीन बरसोंकी अपेक्षा मेरेमें अधिक स्फूर्ति तथा शक्ति है, इसे केवल मैं ही महसूस नहीं करता हूँ, किन्तु सभी महसूस करते हैं। फिर भी मैं यह नहीं कहता हूँ कि मेरा प्रयोग पूरा हो गया है। अभी तक मेरे हृदय-रोगका उन्मूलन नहीं हुआ है। परन्तु पिछले चार छः मासके अनुभवसे मेरा यह विश्वास बढ़ा है कि इस प्रयोगसे मेरा हृदय-रोग नष्ट हो जायेगा, और इतना

तो दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि मेरे रोगकी वर्तमान स्थिति मेरी प्रवृत्तिमें बाधा नहीं डालती है। धीरे धीरे मैं अपनी शारीरिक स्थितिकी रक्षा करते हुए अपनी प्रवृत्तिको बढ़ाता जा रहा हूँ।

इतना विवेचन इसीलिए किया है कि जिसे हृदय-रोग हो अर्थात् जिसका हृदय कमज़ोर हो, उसे मूत्रोपचारमें उपवास नहीं करना चाहिये और शारीरिक शक्तिको सुरक्षित रखकर यह प्रयोग करना चाहिये। दूसरी बात यह सिद्ध हुई कि डिजिटेलिस या डिजॉक्सिनका काम मूत्रने भी उतनी ही सफलतासे किया, जिसके बारेमें डाक्टरोंकी यह मान्यता है कि यह दवा हृदयकी कमज़ोरीको बढ़ने नहीं देती। यह शुद्ध वनस्पति द्रव्य है और इसका उपयोग सर्वत्र होता है। मुझे भी यह अनुभव हुआ है कि हृदय-रोगमें यह बहुत आराम पहुँचाती है। अब मूत्रके विशेष प्रयोगसे कैसी सिद्धि प्राप्त होती है, इसका पता तो भविष्यमें चलेगा।

२. हृदयकी कमज़ोरी

श्री प्राणलाल नथुभाई मोदी बम्बईमें रहते हैं। उनकी आयु ३६ बरसकी है। 'संसार' मासिकमें मूत्रचिकित्साके बारेमें मेरे अनुभव-वाला लेख पढ़कर उन्होंने मुझे पत्र लिखा, जिसमें वे लिखते हैं:—

"आपका लेख पढ़कर मुझे बहुत आनन्द हुआ, क्योंकि मुझे आशा हुई कि अब मेरे दुःखका अन्त आ जायेगा। आपने रोगके जो चिह्न बताये हैं वे लगभग सभी प्रकारसे मुझे लागू होते हैं और शुरूमें आपको डाक्टरने जो दवा बतायी थी वैसी दवा मुझे भी दी गयी थी। मुझ पर इस रोगका पहला आक्रमण सन् १९५५में हुआ था। अब दूसरे आक्रमणके कारण सवा महीनेसे चारपाई पर पड़ा हूँ। इस बार तो ईश्वरने मुझे बचाया है, क्योंकि ता० २–६–'५८ को मैं बहुत बीमार हो गया था।

"डाक्टर मेरे रोगको असाध्य बताते हैं और मैं इससे तंग आ गया हूँ। मैं भी आपकी तरह मूत्रप्रयोग करना चाहता हूँ। परन्तु डाक्टर यह प्रयोग करनेकी इजाज़त नहीं देते हैं। इसलिए आपसे पूछता हूँ कि क्या मैं मूत्रप्रयोग कर सकता हूँ? यदि कोई अनिष्ट परिणाम आयेगा तो उसके लिए आपको उत्तरदायी नहीं समझूँगा। आप मार्ग-दर्शन देकर मुझे अनुगृहीत करें।"

मैंने अपने ज्ञान और अनुभवके आधार पर उन्हें सारी बातें लिख दीं और साथमें आवश्यक सूचनाएँ भी दे दीं। उन्होंने मूत्रप्रयोग का श्रीगणेश मालिशसे किया। फिर पेशाब पीने लगे और उपवास भी कर डाला। वे रोगमुक्त हो गये। कुछ ही दिनमें वे इतने स्वस्थ एवं सशक्त हो गये कि रोज़ाना ऑफ़िसमें जाने लगे। रोगमुक्तिके लिए उन्हें अभिनन्दन देते हुए मैंने लिखा कि वे अधिक परिश्रम न करें और शिवाम्बुका पान करते रहें।

इस चिकित्सामें जिन नियमोंका कड़ाईसे पालन करना चाहिये, मेरी कड़ी सूचनाओंके होते हुए भी उनका पूरा पालन अभी तक किसीने नहीं किया है। सावधानता तथा निष्ठासे यह प्रयोग किया जाये तो थोड़े ही समयमें रोग सर्वथा नष्ट हो जाये, ऐसी प्रतीति मुझे अनेकोंके अनुभवसे हुई है। पिछली दो पीढ़ियोंसे हमें जैसे-तैसे ज़िन्दगी गुज़ारनेकी आदत पड़ गयी है और यही ख़राब आदत रोगकी परिचर्या करनेमें भी है। आजकी चिकित्सा-पद्धतिमें डाक्टर या वैद्य अपने रोगीको प्रजातंत्रके सिद्धान्तोंके अनुसार पूरी-पूरी स्वतंत्रता अर्थात् स्वच्छन्द आचरणकी आज़ादी दे देते हैं, जिससे हमारी संयमशक्ति घट गयी है। इस चिकित्साका उपयोग जिन जिन लोगोंने किया है, प्रायः उन सबने मुझसे यही कहा कि आपके मना करने पर भी हम बीड़ी पीते रहे, श्रीखंड खाते रहे और मालिश या उपवासमें भी अपनी सुविधा से आचरण करते रहे, फिर भी हमें पूरा लाभ हुआ है। यह इस बातका प्रबल प्रमाण है कि मूत्रमें रोग-निवारणकी कितनी अमोघ

शक्ति है तथा गीतामें कही हुई श्रीकृष्ण भगवानकी बातका स्मरण हो आया—'थोड़ा धर्म अर्थात् कर्तव्य-पालन भी हमें बड़े भयसे बचाता है,' तो फिर पूरे कर्तव्य-पालनसे हमारा कल्याण क्यों न हो? धर्म जैसी स्थिति मूत्रकी है।

श्री एन० सी० चश्मावाला (सूरत), श्री धीरूभाई एच० वखारिया (वलसाड), श्री सम्पतकुमार शेठ (बैरिस्टर, हाईकोर्ट, बम्बई) इत्यादि अनेक रोगियोंने भी मूत्रोपचारसे अपने-अपने हृदय-रोगको मिटाया है।

३. हाई ब्लडप्रेशर

श्रीमती सरलाबहन र० देसाई सूरतसे डा० परागजी देसाईको अपनी रोगमुक्तिका हाल इस तरह लिखती हैं:—

"मुझे अपनी गर्भावस्थामें २०० से अधिक हाई ब्लडप्रेशर की तकलीफ़ हुई थी। गर्भावस्थामें यह रोग घातक माना जाता है। स्थानीय डाक्टरोंकी दवासे कुछ भी फ़ायदा नहीं हुआ। सन् १९६८ की जनवरीमें मूत्रप्रयोग शुरू किया। प्रतिदिन एक बार ४ औंस पेशाब पीती थी। मालिश और उपवास नहीं किये थे। थोड़े ही दिनोंमें आराम होने लगा और दो मासमें रोगमुक्त हो गयी। मेरी प्रसूति भी आसानीसे हुई।

"सभी बहनोंसे मेरा अनुरोध है कि परिवारमें कोई भी व्यक्ति किसी भी व्याधिसे आक्रान्त हो जाये तो शुरूसे ही मूत्रोपचार करना चाहिये।"

४. लो ब्लडप्रेशर

नड़ियादके श्री देवदास पंड्या (नड़ियाद कलामंदिरवाले) के ख़ूनका दबाव कम था, जिससे उन्हें कमज़ोरी और बेचैनी महसूस होती थी। उनके एक रिश्तेदार वैद्य हैं, जो पंड्याजीसे मूत्रप्रयोग करवाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने हिकमतसे काम लिया। वे रोज़ाना

जाँचके बहाने पंड्याजीका पेशाब मँगवाते और गोमूत्रके नामसे वापस भेजकर पीनेके लिए सूचित कर देते। पंड्याजी उसे गोमूत्र समझकर पी जाते थे। परिणामस्वरूप उनके खूनका दबाव ११० से बढ़कर १२२ हो गया और कमज़ोरी व बेचैनी भी दूर हो गयी।

जब मुझे पंड्याजीके खूनके दबावके बढ़नेका हाल मालूम हुआ तब मुझे लगा कि दालमें कुछ काला है। मैंने उन्हें लिखा कि मैं तो समझता हूँ कि वैद्यने गोमूत्रके नामसे आपको अपना ही मूत्र पिलाया है। आप ज़रा जाँच करके मुझे सूचित करें।

पंड्याजीने उत्तर लिखा—"आपका समझना बिल्कुल ठीक है। मुझे अपना मूत्र पीनेको कहा होता तो मैं नहीं पीता। इसलिए गोमूत्र कहकर पिलाया। फिर तो मेरी घृणा भी दूर हो गयी। अब मैं अनेक प्रवृत्तियोंमें सहयोग देता हूँ, पर थकता नहीं हूँ।"

५. हाई ब्लडप्रेशर और छातीका दर्द

मेजर के० एस० बीलीमोवित्रा (बम्बई २०) उपर्युक्त रोगोंसे सन् १९७०में आक्रान्त हुए। होमियोपैथीसे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। वे सन् १९७३ से मूत्रप्रयोग करने लगे। सुबह एक कप जितना शिवाम्बु लेते थे। हाथ और मुँह पर मूत्र-मालिश करते थे। जब कानमें दर्द हो जाता तो पेशाबकी बूँदें डालते थे। गला बैठ जाता तो नाकसे शिवाम्बु चढ़ाते थे। उससे दाँत भी साफ़ करते और कुल्ले करते थे। बुख़ार और सर्दी हो जाने पर तो दिनभरका सारा पेशाब पी जाते थे। उन्होंने १४ मूत्रोपवास भी किये थे। उनके सभी रोग दूर हो गये हैं। उनका शरीर हलका हो गया है और काम करनेमें वे अधिक शक्तिशाली हो गये हैं। —संपा०

२

क्षय-रोग

१. फेफड़ोंका क्षय

सन् १९६० के मार्च मासकी १२, १३ तारीख़को हरिजन आश्रम, अहमदाबादमें आयुर्वेदिक अनुसंधान विभाग, जामनगर (सौराष्ट्र)के डिरेक्टर डाक्टर प्राणजीवनदास मेहता, एम० डी०, एम० एस० की अध्यक्षतामें मानव-मूत्रके बारेमें विचारगोष्ठी हुई थी, जिसमें कई डाक्टर और वैद्य भी सम्मिलित हुए थे। उसमें लगभग चालीस व्यक्तियोंने मूत्रप्रयोगके बारेमें अपने विचार तथा अनुभव सुनाये थे। श्री रामभाई हीमाभाई पटेलने, जो नवागाम (अहमदाबाद)के किसान हैं, मूत्रप्रयोग द्वारा अपने फेफड़ोंके क्षयसे मुक्ति पानेका हाल सुनाया था, जिसे सुनकर अध्यक्ष महोदय भी आश्चर्यचकित हो गये। उन्हींकी सूचनासे रामभाई पटेलने अपनी क्षयरोगमुक्तिका लिखित विवरण दो दिन बाद भेज दिया, जिसे मैं शब्दशः प्रस्तुत कर रहा हूँ :—

(१) "मैं पिछले चार बरससे फेफड़ोंके टी० बी० से पीड़ित था। पहले साल खाँसी और बुख़ार शुरू हुए। शरीरकी हड्डियाँ निकल आयीं। तीन चार मास तक डाक्टरकी दवा लेनेसे आराम मालूम हुआ। ऐसी स्थिति सात आठ महीने तक रही। फिर उसी माघ मासमें खाँसी और बुख़ारने आ घेरा। तीन चार महीने तक दूसरे डाक्टरकी दवा लेनेसे आराम मालूम होने लगा। डाक्टरने भी कहा कि अब आपकी बीमारी करीब बारह आने मिट चुकी है। परन्तु चार ही दिनोंमें फिर वही बीमारी खड़ी हो गयी। फिर तो उसी डाक्टरने सलाह दी कि अब तो आपको ऑपरेशन करवाकर पसलियाँ निकलवा देनी पड़ेंगी।

"परन्तु ईश्वरेच्छा कुछ और ही थी। ऑपरेशनकी व्यवस्थाके सिलसिलेमें मुझे अपने एक रिश्तेदारके घर पर जाना पड़ा। उन्होंने मुझे ऑपरेशनसे पहले मूत्रप्रयोग करनेके लिए प्रोत्साहित किया और मैंने यह प्रयोग शुरू कर दिया।

"चैत्र वदी ७के शुभ दिन मैंने मूत्रकी मालिशका श्रीगणेश किया। एक सप्ताहके बाद मूत्र भी पीने लगा। लगभग पन्द्रह दिनके बाद रावजीकाकासे मिला और अपने प्रयोगका हाल सुनाया। उन्होंने मेरा हाल बड़ी दिलचस्पीसे सुनकर कुछ सूचनाएँ दीं और इस बात पर खास जोर देकर कहा कि प्रयोग विधिके अनुसार ही करना चाहिये। पूरे तीन मास प्रयोग करनेके बाद मेरी हालत बहुत सुधर गयी। आज प्रयोगको ग्यारह महीने हो रहे हैं, परन्तु इस अरसेमें न तो मुझे डाक्टरके पास जाना पड़ा और न ही कोई दवाई लेनी पड़ी। मेरी भूख बढ़ी है और पाचनशक्ति भी। शौच नियमित होता है। खेतमें काम करते हुए दो तीन बार मैं भीग गया था, फिर भी मेरे शरीर पर उसका कोई खास बुरा असर मालूम नहीं हुआ। किसी समय थोड़ी खाँसी शुरू हो जाती है, पर वह इसी प्रयोगसे तीन चार दिनमें मिट जाती है। मूत्रके प्रतापसे अब दवाई और चारपाई-की शरण नहीं लेनी पड़ती। सचमुच यह प्रयोग प्रभावक एवं उत्साह-वर्धक है।"

डा० गुणनिधि भट्ट अहमदाबादके एक होमियोपैथ हैं। उनका दवाखाना गांधीमार्ग पर फर्नान्डीज़ ब्रिजके पास है। उन्होंने असाध्य समझे जानेवाले क्षयके दो रोगियोंको मूत्रोपचारसे रोगमुक्त किया है, जिसका लिखित विवरण (पत्ररूपमें) उन्होंने मुझे ता० १३–११–'५८ को हाथोंहाथ दिया।

(२) "**पहला केस**—श्री ध० न० मेहता, उमर २५ बरस, साँकड़ी शेरी, अहमदाबाद। वह कुँवारा युवक है। क़रीब एक दर्जन

डाक्टर क्षयका रोगी समझकर उस जवानका इलाज कर चुके थे और उन्होंने इस केसको असाध्य-सा समझ लिया था।

"उस बीमारको ख़ूनकी उलटियाँ होती थीं और कभी-कभी दस्त लग जाते थे। खाँसीके साथ-साथ उसे १०० से १०१ डिग्री तक बुख़ार रहा करता था। किसी भी प्रकारका आहार अनुकूल न आता था और खाया हुआ पचता भी न था। शरीर हड्डियोंका ढाँचा बन गया था। थोड़ा-सा चलने-फिरनेसे ही साँस चढ़ जाती थी।

"ऐसी स्थितिमें पहले तो मैंने लगभग चार महीने होमियोपैथिक इलाज किया, जिससे काफ़ी आराम हुआ। फिर दो महीने बाद रोगीने मुझे बुलाया। देखा तो मालूम हुआ कि बीमारी तो कायम ही है। मैंने उसे दिनमें तीन बार एक एक औंस अपना पेशाब पीनेको कहा। साथ ही उसे यह सूचित किया गया कि सोनेसे पहले रोज़ाना रातको मूत्र-मालिश कर लेना और सुबह उठकर गरम पानीसे नहा लेना। इस प्रकार उपचार करनेसे पहले दिनसे ही दस्त, बुख़ार, पाचनशक्ति, ख़ूनकी कै तथा कमज़ोरीमें धीरे-धीरे किन्तु सतत एक-सरीखा फ़ायदा होने लगा। पहले बहुत दस्त आनेसे रोगीका वज़न ८० पौंड तक घट गया था, जो दो महीनेके उपचारसे १०० पौंड हो गया। जो रोगी पहले इतना अशक्त था कि घरमें भी बड़ी मुश्किलसे चल-फिर सकता था, वह अब तीन मासकी मूत्रचिकित्सासे एक मील बिना रुके चल सकता था। आकृति, स्फूर्ति, रूप, रंग, स्वभाव आदि सबमें गज़बका परिवर्तन तथा सुधार हुआ। अब कोई भी उसे देखकर सहसा यों नहीं कह सकता था कि वह खतरनाक बीमारी भोग चुका होगा। पहलेसे ही मैंने उसे सुपाच्य, सादा और पथ्य आहार लेनेकी इजाज़त दे दी थी, क्योंकि उस रोगीको उपवास करानेमें मुझे बड़ा ख़तरा मालूम होता था।"

२. हड्डीका क्षय

"**दूसरा केस** —— कुमारी क० र० शाह, उमर १७ बरस, माणेक चौक, अहमदाबाद। यह लड़की इतनी बीमार थी कि चारपाईसे उठ नहीं सकती थी और करवट तक बदल नहीं सकती थी। चायका एक कप भी पीनेसे इनकार करती थी। इसकी बायीं जाँध पर बड़े अमरूदसा एक फोड़ा पक गया था। दूसरे डाक्टरोंने इस केसको मेरे पास भेज दिया था। मैंने होमियोपैथिक दवा देकर उस फोड़ेको एक ही दिनमें फोड़ डाला था, जिसमेंसे आध सेर मवाद निकला। इतनी ज्यादा पीप निकल जानेसे अनेक दिनोंकी पीड़ा तथा अनिद्राका दुःख भोगनेवाली लड़की उस दिन आरामसे सोयी। मैंने कुछ दिन तक होमियोपैथिक इलाज किया, परन्तु रोगीको यथेष्ट आराम नहीं हुआ। बुख़ार, खाँसी और कमज़ोरी आदिमें कोई ख़ास फ़र्क नहीं आया और कितने ही दिनों तक पीप निकलती रही। ऐसी हालत थी कि वह शायद ही एक हफ़्ता जी सके। इसलिए मुझे मूत्रचिकित्साका आश्रय लेना पड़ा।

"दिनमें तीन बार उसको अपना पेशाब एक-एक औंस पिलाया जाता था। सादा, सुपाच्च तथा पथ्य आहार लेनेकी उसे इजाज़त दे रखी थी। फोड़े पर पेशाबकी पट्टी रखी जाती थी। तीसरे दिन पीप बन्द हो गयी। बीमारने कुछ खानेकी रुचि प्रकट की। छठे दिन उस लड़कीने दो बार खाना माँगना शुरू किया और उठने-बैठने लगी। नवें दिन तो उसने तीन बार खानेका आग्रह किया। घरके चबूतरे तक उसने घूमना शुरू कर दिया। बारहवें दिन ख़ानेकी माँग और बढ़ी, परन्तु नामंजूर करनी पड़ी। पन्द्रह दिनके बाद पेशाब पिलाना बन्द किया। वह इतनी स्वस्थ हो गयी थी कि बाहर घूम-फिर सकती थी। इस तरह पन्द्रह दिनमें मूत्रोपचारसे यह लड़की तन्दुरुस्त हो गयी। उसने अपनी उम्रके अनुसार खोये हुए रूप, रंग, आकृति, भूख, प्यास,

वृद्धि, स्वभाव, वज़न, शक्ति आदि फिरसे प्राप्त किये। आज छः महीनेके बाद यह लड़की चाहे जितना श्रम करती है, फिर भी कोई बाधा नहीं आती।

"मैंने कष्टसाध्य तथा गंभीर समझे जानेवाले दोनों केसोंका विवरण सरल ढंगसे प्रस्तुत किया है, ताकि सामान्य जनता समझ सके। मैंने इन दोनों केसोंका इलाज सन् १९५८ की गरमी और चौमासेके संधिकालमें किया था।

"अपना ज़हर यदि ख़ुदको वापस दिया जाये तो विषसे विषका शमन होता है, इस होमियोपैथिक सिद्धान्तके अनुसार मूत्र काम करता है। शरीरके उपयोगमें न आये हुए कीमती द्रव्य मूत्र द्वारा निकलते रहते हैं, जिससे शरीरको यथेष्ट पोषण नहीं मिल पाता और वह आसानीसे रोगका शिकार हो जाता है। इसलिए वे कीमती द्रव्य उसी शरीरको वापस दिये जायें, तो उस शरीरको बहुत ही अच्छा पोषण मिलता है, जिसका परिणाम यह आता है कि प्रत्येक अवयव अपना काम नियमित तथा व्यवस्थित करता रहता है और शरीरका स्वास्थ्य बना रहता है। इस प्रकार पोषणका अभाव दूर करनेके बायोकैमिक सिद्धान्तके अनुसार काम होता रहनेसे मूत्रचिकित्सा बायोकैमिक और होमियोपैथिक दोनों सिद्धान्तोंके अनुसार काम करती हुई कष्टसाध्य रोगोंको भी नष्ट करती है और असाध्य समझे जानेवाले अनेक रोगोंको साध्य बना देती है। मुझे जो अनुभव हुआ है उसीके आधार पर मेरी ऐसी मान्यता है।

"रोगीको किसी अनुभवीकी देखरेखमें मूत्रोपचार करना चाहिये, जिससे रोगीकी रक्षा होती है और अयोग्य रूपसे तथा अनुभव-हीन लोगोंके हाथोंसे होनेवाली हानि रुक जाती है, जिससे मूत्रचिकित्सा व्यर्थकी बदनामी और निंदासे बच जाती है और बहुतसे लोग बिना किसी खर्चके अपनी खोयी हुई तन्दुरुस्ती फिरसे प्राप्त कर सकते हैं।

"रोगीकी आर्थिक स्थिति, शक्ति, अशक्ति, ऋतु, खानपान, रहनसहन, स्वभाव आदिको ध्यानमें रखते हुए अच्छे अनुभवीकी देख-रेखमें किसी भी असाध्य समझे जानेवाले रोगका इस पद्धतिसे उपचार किया जाये तो १०० में से ९५ रोगियोंके रोग अधिकसे अधिक दो तीन महीनेमें निःशंक नष्ट हो जाते हैं, ऐसा मेरा अनुभव है।"

३. टी० बी० की केविटी (क्षयका उरुक्षत)

सूरतमें ता० १५-६-'६१ को मूत्रोपचार सम्बन्धी विचारगोष्ठी हुई थी, जिसमें श्री बचुभाई गिरधरलाल शाह (गंगासदन, विट्ठलवाड़ी, मारवे रोड, मलाड वेस्ट, बम्बई)की रोगमुक्तिका लिखित विवरण पढ़ा गया था, जो इस प्रकार है :—

"मुझ पर नवम्बर १९५९ में टी० बी० का हमला हुआ। फ़ेमिली डाक्टर उसका निदान न कर सका और फेफड़ेकी बायीं ओर 'केविटी' (उरुक्षत) हो गयी। दायीं ओर भी असर होने लगा। आखिर मैंने ख़ुद ही 'एक्सरे' करवाया और रोगका पता चला। घाटकोपरके सर्वोदय अस्पतालमें दाख़िल हुआ। इस अरसेमें मलाड़के कुँवरजीभाई वि० मेहताने मुझे मूत्रोपचार करनेके लिए सूचित किया। उनके द्वारा मैंने आपकी पुस्तक – मानवमूत्र – मँगवायी और अस्पतालसे छुट्टी पाकर मूत्रप्रयोग शुरू किया, जिससे मेरी 'केविटी' एकदम मिट गयी। अभी एक मास पहले मैंने दूसरी बार एक्सरे करवाया और ख़ूनकी जाँच करवायी, जिसकी रिपोर्ट सर्वथा 'नेगेटिव' है।"

४. क्षयग्रस्त फेफड़ा

श्रीकृष्ण एक मनचले व्यक्ति लगते हैं। बचपनमें उन्हें ग़रीबीकी बीसियों मुसीबतोंमें से गुज़रना पड़ा। जवानीमें कदम रखते ही वे भोग-विलासमें फँस गये और परिणाम-स्वरूप वे अनेक व्यसनों और रोगोंके शिकार हो गये। उनकी प्राणशक्ति इतनी क्षीण हो गयी कि

वे भयंकर क्षयरोगसे आक्रान्त हो गये। उन्होंने दिल्लीके कई बड़े बड़े डाक्टरोंसे अपना इलाज करवाया; ख़ून, थूक, पेशाब आदिकी अनेक बार जाँच करवायी और महीनों तक स्ट्रेप्टोमाइसिनके इंजेक्शन लगवाये तथा आइसोनैक्सकी गोलियाँ खायीं, फिर भी रोग दूर न हुआ। दिल्लीके सुप्रसिद्ध टी० बी० सेंटरके मुख्य डाक्टर सिकन्दने, जो भारतके एक अग्रगण्य टी० बी० विशेषज्ञ माने जाते हैं, फेफड़ेके ऑपरेशनके लिए बहुत आग्रह किया, किन्तु वे तैयार न हुए।

आखिर डाक्टरी उपचारसे तंग आकर वे अहमदाबादके मूत्र-चिकित्सा केन्द्रमें पहुँच गये, जहाँ डा० मगनलाल सलारियाकी देख-रेखमें विधिपूर्वक मूत्रप्रयोग करके वे अपनी घातक व्याधिसे सदाके लिए मुक्त हो गये।

सिद्धपुर (गुजरात)की श्रीमती मधुबहन ठाकर, भोपोली (जि० नैनीताल, उत्तर प्रदेश)के श्री गोपाल शाह, दारेस्सलाम (ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका)के श्री जशभाई एम० पटेल इत्यादि अनेक व्यक्ति मूत्रोपचार द्वारा अपने-अपने क्षयरोगसे मुक्त हुए हैं। ——सपा०

३

सर्दी-खाँसी

१. इयोसिनोफ़ीलिया

मैं चाहता था कि मुझे किसी आयुर्वेद-विशारद तथा अनुभवी वैद्य द्वारा किये गये मूत्रोपचारके स्वानुभवका अधिकारपूर्ण लिखा हुआ विवरण प्राप्त हो जाये तो मैं अपने इस पुरुषार्थको संपूर्ण समझूं। इसलिए मैंने सूरतके आयुर्वेदिक महाविद्यालयके आचार्य श्री बापालाल वैद्यसे मूत्रचिकित्साके सम्बन्धमें अपने अनुभव लिख भेजनेकी विनती की। उन्होंने समाज-सेवकके नाते यह निर्णय किया कि मूत्रप्रयोगकी प्रथम कसौटी वे खुद ही बनें और जो परिणाम आये उसे वे मुझे लिख भेजें। तदनुसार उन्होंने अपने प्रयोगका विवरण ता० २०-११-'५८ को मुझे लिख भेजा, जिसे शब्दशः यहाँ प्रस्तुत करता हूँ:—

"अपने पर प्रयोग"

"आज तो अनेक लोगोंकी ज़बान पर 'इयोसिनोफ़ीलिया' रोग का नाम चढ़ गया है। इस रोगमें रक्तकण कम हो जाते हैं, श्वेत-कण बढ़ जाते हैं। सर्दी, खाँसी, अशक्ति, अजीर्ण आदि लक्षणोंसे इसका पता चलता है। अनेक बार तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो दमा न हो। खूनकी जाँच करते ही इस रोगका पता चल जाता है और इसके लिए सोमलके इंजेक्शन या सोमलसे बनी हुई कोई खानेकी दवा अक्सीर समझी जाती है। यह रोग मुझे हुआ था और इसी रोगका थोड़ा-बहुत असर अभी तक मुझे तंग करता रहा है। देखते ही देखते नाकमें से पानी टपकना, उसमें से कफ होना और गिरना, भूखका मर जाना, फीकापन आ जाना, यह सब एकाएक मेरे शरीरमें

दिखायी देने लगते हैं। सर्दीके मौसिममें ख़ास तौरसे इसका भय रहता है। इसलिए मुझे सूझा कि क्यों न मैं ख़ुद मूत्रप्रयोगको आज़मा देखूँ। मैंने ता० १५ अक्तूबर, १९५८ से यह प्रयोग शुरू किया और इस विवरणको लिखते समय भी प्रयोग चालू ही है। इस प्रयोगको आज एक मास और पाँच दिन होने आये हैं।

"प्रातःकाल शौचके समय जो पेशाब आता है, शुरूका थोड़ा छोड़कर बाकीका सारा पेशाब काचके एक स्वच्छ गिलासमें ले लेता हूँ और बाहर आकर हाथ-पैर, मुँह साफ़ करके करीब १२-१५ तोला पेशाब पी जाता हूँ, जो थोड़ा बचता है, उसे मुँह पर मसलता हूँ, क्योंकि मेरे मुखपर अमुक प्रकारकी कालिमा मुझे मालूम देती है। इसके बाद दातुन आदि करता हूँ। इससे न तो किसी प्रकारकी डकार आती है और न ही अरुचि होती है। हमने गोमूत्रका तो दवाइयोंमें ख़ूब उपयोग किया है और अब भी उपयोग करते हैं। गोमूत्र पीनेकी अपेक्षा मनुष्य-मूत्र पीना हज़ारगुना अच्छा है। गोमूत्रमें अमुक दुर्गंध होती है, ताज़ा गोमूत्र मुश्किलसे मिलता है, अनेक बार तो गड्ढेमें भरा हुआ ही हाथ लगता है। ऐसे गोमूत्रकी अपेक्षा सदा सर्वत्र सुलभ और स्वच्छ स्वमूत्र बहुत ही अच्छा है, जिसे पीनेमें तनिक भी ग्लानि तथा अरुचि नहीं होती।

"यह प्रयोग इतना सफल हुआ कि तबसे आज तक मुझे कभी सर्दी नहीं हुई, खाँसी भी नहीं हुई, दस्त साफ़ आता है और शरीरमें स्फूर्ति तथा उत्साह ख़ूब रहता है। पहले भूख बिल्कुल नहीं लगती थी, वह अब कुछ ठीक लगती है। सर्दीका मौसिम मेरे लिए बहुत ख़राब रहता था, किन्तु अभी तक अच्छा रहा है। इतने समयके प्रयोगके बाद मुझे अपने शरीरमें अच्छी शक्ति प्रतीत होती है। सर्दी नहीं हुई, यह एक बड़ेसे बड़ा फ़ायदा हुआ है।

"इसलिए मैं तो सर्दी और कफके रोगीसे इस प्रयोगको आज़मानेकी ख़ास सिफ़ारिश करता हूँ।

"मानवमूत्रके प्रति लोगोंके मनमें एक प्रकारकी घृणा और भड़क पैदा हो गयी है। वे गोमूत्र पी लेंगे, पर स्वमूत्र नहीं पियेंगे। इस घृणा-भड़कको निकालनेकी ज़रूरत है।-सुश्रुतका यह कथन कि 'मानवमूत्र विषघ्न तथा रसायन है' सचमुच यथार्थ है।

"आज गुजरातमें सर्दी और कफ ख़ूब दिखायी देते हैं। धनवान् भले ही बहुमूल्य दवाइयों पर हज़ारों रुपये खर्च करें, परन्तु ग़रीब चाहें तो इस अमूल्य औषधसे अपनी ख़ाँसी, सर्दी, दमा, वातरोग आदि मिटा सकते हैं।

"मूल लेखकने तो लंघनके साथ यह प्रयोग बताया है। अजीर्ण मालूम हो, शरीर भारी लगता हो, भूख न लगती हो, तब उपवास करना अच्छा है। उपवास न किया जा सके तो आहार कम करके भी मूत्रपान करें। इससे अवश्य बड़ा लाभ होगा। यथार्थ मूत्रप्रयोग तो दिनरात केवल मूत्र पीनेमें है। इसलिए अत्यन्त जीर्ण और असाध्य रोगोंमें तो उपवासके साथ मूत्रप्रयोग करना आवश्यक है। बीमारी बहुत पुरानी न हो तो सवेरे एक दो बार पेशाब पीकर और हलका भोजन लेकर भी रोगी यह प्रयोग चालू रखेगा तो उसे अवश्य लाभ होगा। कैन्सर आदि रोगोंमें लंघन न करके अल्प आहारके साथ यह प्रयोग किया जाये तो भी कुछ हर्ज नहीं है। ऐसे भयंकर रोग पूर्ण रूपसे न मिटें और कुछ आराम मिले तो भी यह कम फ़ायदा नहीं है।

"मुझे तो लगता है कि यह मूत्रप्रयोग सभी कर सकते हैं। इससे किसी भी प्रकारकी हानि नहीं है, इतना विश्वास मैं दिलाता हूँ। यह लिखनेवाला कोई प्रचारक नहीं है, किन्तु एक चिकित्सक अपनी पूरी ज़िम्मेदारी समझकर लिख रहा है।"

२. जन्मकी सर्दी-खाँसी

मेरा पौत्र चि० प्रशान्त जब पैदा हुआ तब उसका वज़न साढ़े चार पौंड था। बच्चेका औसत वज़न सात पौंड होता है। जन्मसे

ही उसे सर्दी और खाँसी थी। ऐसा कहा जा सकता है कि डाक्टर अंकलेश्वरियाने बहुत सावधानीसे इंजेक्शन दे कर उसे ज़िन्दा रखा। उसके बाद तीन बरस तक शीत, ग्रीष्म और वर्षा, इन तीन ऋतुओंमें उसकी सर्दी और खाँसी चलती ही रही। दो चार हफ्तेमें उसे दवा और इंजेक्शन देने पड़ते, सेंक करना पड़ता और गरम कपड़ोंमें लपेटकर रखना पड़ता। दवा और इंजेक्शनके बदलेमें मूत्र पीनेसे आराम होगा ही, ऐसा विश्वास होने पर भी वह मूत्र पीता ही न था। "यह 'भू'* कहीं पिया जाता है," ऐसा कहकर मुँह फेर लेता। मैंने यह सलाह दी कि उसकी इच्छाके विरुद्ध उसे मूत्र न पिलाया जाये, परन्तु मैंने उसकी माताको यह सूचना दी कि उसके शरीर पर मूत्रसे मालिश की जाये। उसकी माताने नियमित मालिश शुरू कर दी जिसका परिणाम यह आया कि पिछले चार छः माससे न तो वर्षा ऋतुमें — अति वर्षा होने पर भी, और न ही चालू शीत ऋतुमें वह सर्दी, खाँसी या बुखारका शिकार हुआ। उसका शरीर भी अच्छा हुआ है। मैंने उसे कहा, "देख, तेरे शरीर पर इन्दुमती भू मसलती है, जिससे तुझे सर्दी और खाँसी नहीं होती है। यदि भू पिये तो तुझे कोई रोग न हो।" तब उसने कहा, "अपने साथियोंसे कहता हूँ कि भू पीनेसे चाहे जैसा रोग ठीक हो जाता है, ऐसा मेरे दादाजी कहते हैं।"

मैं हँसा और पूछा, "तब तू खुद क्यों नहीं पीता?"

उसने हँसते हँसते जवाब दिया, "यह तो दूसरेसे कहा जा सकता है, पर खुद नहीं पिया जा सकता।"

मैंने कहा, "नहीं, जो बात दूसरेसे कही जाये उसे पहले खुद ही करना चाहिये। देख, मैं खुद पीता हूँ और फिर तुझे कहता हूँ। देख, इस गिलासमें क्या है?" उसने देखा और कहा, "यह तो भू है।"

* बालककी भाषामें 'पानी'।

"देख, इसे मैं पी जाता हूँ, इसमें कुछ बुराई नहीं है। जो दवा तुझे पिलायी जाती है, उसकी अपेक्षा इसका स्वाद अच्छा है और गंध भी अच्छी है।" ऐसा कहकर उसके देखते-देखते मैंने करीब चार औंस पेशाब पी डाला। वह तुरंत गया। अपनी माँसे लुटिया ली, उसमें पेशाब किया और उसमें से एक घूंट पी गया। उसकी झिझक दूर हुई। मैं मानता हूँ कि अब उसने अपने स्वास्थ्यका साधन पा लिया है।

३. काली खाँसी

अहमदाबादके श्री चन्द्रकांत उपाध्याय अपनी बीमार पत्नीके लिए मूत्रोपचार संबंधी सूचनाएँ प्राप्त करनेके ख्यालसे स्थानीय प्राचीन चिकित्सा केन्द्रमें आये थे। उन्होंने केन्द्रके संचालकको बताया कि उनके बच्चेकी काली खाँसी मूत्रप्रयोगसे ही मिट गयी थी और ता० ३१-५-'६१ को निम्नलिखित विवरण केन्द्रके संचालकको लिख भेजा :—

"निवेदन है कि जब मैं सूरतमें नौकरी करता था तब मेरे बच्चेको दूसरे सालमें काली खाँसी हो गयी थी। डाक्टरों और वैद्योंकी दवाएँ दी जा रही थीं। इस अरसेमें मेरी माताजी वहाँ आयीं और वे बच्चेका ताज़ा पेशाब तत्काल उसे पिला दिया करती थीं। इससे पहले जब कभी उसे साधारण खाँसी हो जाती तो हम उसे मूत्र पिला दिया करते और उसकी खाँसी दूर हो जाया करती थी। कितने ही इंजेक्शन लगवानेसे और गोलियाँ खिलानेसे जो काली खाँसी नहीं मिटी थी वह स्वमूत्र पिलानेसे मिट गयी थी।"

४. जुकाम-खाँसी

श्री भोजराज संचेतीजीके साथ ता० २०-१-'७७ को राजलदेसरमें विदुषी साध्वी यशोधराजीसे मैं मिला था। उनकी अध्ययनशीलता एवं स्वास्थ्यप्रियतासे प्रसन्नता हुई। प्रसंगात् उनसे अनुरोध किया कि

शरीरको स्वस्थ एवं सशक्त बनाये रखनेके लिए रोज शिवाम्बुपान करना बहुत ज़रूरी है।

उनकी अवस्था ३० वर्षकी है। उनकी रोगमुक्तिका विवरण उन्हींके शब्दोंमें निम्नलिखित है: ——संपा०

(१) "लगभग बारह वर्षसे मैं जुकामकी शिकार थी। धीरे-धीरे वह बहुत बढ़ गया और डॉक्टरोंने टी० बी० का निदान किया। नौ महीने निरन्तर एलोपैथिक कोर्स चलता रहा। सैकड़ों इंजेक्शन, टैब्लेट्स, केप्सूल्स और अनेक पीनेकी दवाओंका सेवन किया। शरीर स्थूल अवश्य हुआ, पर बीमारी कृश नहीं हुई। आयुर्वेदिक औषधियाँ और प्राकृतिक चिकित्साकी विधियाँ बेकार साबित हुईं। गलेसे कभी-कभी रक्तस्राव और कफका सर्वथा शमन नहीं हो पाया।

"युगप्रधानं आचार्य श्री तुलसीजीने हमें सहज सुलभ स्वमूत्र चिकित्सा करानेके लिए वि. सं. २०२८ में मोमासर भेज दिया। श्री भोजराज संचेतीकी देख-रेखमें २५ दिनोंका लम्बा मूत्रोपवास बड़ी निष्ठाके साथ चलता रहा। अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे। पर "करिष्यामि वा मरिष्यामि" के दृढ़ संकल्पसे मैं सब कुछ सहती रही।

"पन्द्रह उपवास तक घंटों खाँसीका प्रकोप एवं भयंकर दर्द होने पर भी उपवास तोड़नेका मन तक नहीं हुआ। खाँसी जमे हुए कफको उखाड़ निकालनेके लिए प्रकृतिका एक अमोघ साधन है।

"२६ वें दिन पारणा किया। कुछ दिन रसाहार, कुछ दिन तक्रपान और कुछ दिन दूध पर रहकर सात्त्विक आहार आरंभ किया। कुंजलका प्रयोग कई दिन चलता रहा। कभी-कभी वमनमें ख़ूनके कतरे-से निकलते थे।

"दो महीनेके बाद पुनः उपवास शुरू कर दिया गया, जो इक्कीस दिन तक चला। दोनों समय एनिमा लेनेसे न जानें जमी हुई आँवकी कितनी परतें उखड़ती और निकलती गईं। कफ और आँवके प्रचुर मात्रामें निकल जानेके बाद पुनः धीरे-धीरे आहार दिया गया।

"गुरुदेवका शुभाशीर्वाद, सहयोगी साध्वियोंकी मनोयोगपूर्वक की गई परिचर्या और चिकित्सककी दृढ़ निष्ठाने ऐसे वातावरणका निर्माण किया कि कठिनाइयोंसे जूझनेकी क्षमता बढ़ती ही गई। लम्बे समयसे संगृहीत विजातीय तत्त्व एक-एक कर विसर्जित होते गये और मैं स्वास्थ्य-लाभ करती रही।

"अब मुझे पूर्ण स्वस्थता और हल्कापनका अनुभव होने लगा। तबसे अब तक मैंने विशेष दवाका उपयोग नहीं किया है। जुकाम अब भी कई बार हो जाता है, पर खाने-पीनेमें सावधानी रखने और प्राकृतिक प्रयोग करनेसे मैं उसे ठीक कर लेती हूँ।

"गुरुदेवकी अनुकम्पासे ऐसी चिकित्सा हाथ लगी है कि अब डाक्टरों और दवाइयोंकी शरणमें नहीं जाना पड़ता। लम्बे समयसे चली आ रही बीमारीसे पिण्ड छूट गया। ऐसे तो साधुके लिए कहा जाता है—"सव्वं से जाइयं होइ नत्थि किंचि अजाइयं।" सब कुछ उसे याचित ही प्राप्त होता है, अयाचित कुछ भी नहीं। पर यही एक औषध ऐसी है जो न कहींसे माँगनी पड़ती है और न पुनः लौटानी पड़ती है।"

(२) साध्वी सिद्ध प्रज्ञाजीकी रोगमुक्तिका विवरण :—

"आचार्य श्री तुलसीजी द्वारा लाडनूँ (राज०)में हाल ही में स्थापित शिक्षा केन्द्रके प्रारंभमें ही मैं जुकामसे अत्यधिक पीड़ित हो गई थी। खाँसीका प्रकोप इतना बढ़ा कि स्थिति गम्भीर हो गई। शरीर सूख कर काँटा हो गया। रात्रिकालीन वेदना तो और भी हृदयद्रावक होती थी। होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक और एलोपैथिक चिकित्सा निष्फल रही।

"आखिर वि. सं. २०२८ में श्रद्धा एवं निष्ठाके साथ मैंने श्री संचेतीजीसे शिवाम्बु चिकित्सा करानेका साहस कर ही डाला। तीन दिनके मूत्रोपवासमें ही मेरी खाँसी विलीन हो गई। अत्यन्त दुर्बलताके कारण उपवास आगे नहीं बढ़ाया गया। कई दिनों तक स्वल्प रसाहार एवं छन्नेके पानीके साथ चिकित्सा चलती रही।

"उभार ऐसा आया कि सिरसे पैर तक सारा शरीर मानो फुंसियोंसे भर गया। सोना-बैठना कठिन हो गया। फिर भी मैंने धीरता एवं सहिष्णुता बनाये रखी। मेरे सन्तोषजनक स्वास्थ्य-लाभसे अन्य साध्वियाँ भी प्रभावित हो गईं।

"अब शिक्षा केन्द्रमें खाँसीके लिए तो यह चिकित्सा अचूक समझी जाती है। शिक्षार्थिनी साध्वियोंने अनेक बार इसे अपनाकर स्वास्थ्य-लाभ किया है।"

५. सूखी खाँसी व दूसरी तकलीफ़ें

श्री मानिकचंद बरडिया हैं तो श्री डूँगरगढ़ (राजस्थान)के, पर रहते थे बलुवा-कालियागंज (जि० पूर्णिया, बिहार) में। वे अपने बचपनकी बुरी आदतों और सोहबतके कारण किसी न किसी बीमारीका शिकार हो जाते थे। अंग्रेजी दवाई खानेसे उनकी बीमारी दब जाती और फिर उभर आती थी। और कभी नई बीमारी भी उन्हें घेर लेती थी। एक बार उन्हें खाँसी हो गई जो तीन साल तक चली और डाक्टरी परीक्षाओं एवं अंग्रेजी दवाइयोंमें सैकड़ों रुपये खर्च भी हो गये।

उनकी पत्नी स्वमूत्र चिकित्सासे नीरोग एवं स्वस्थ हो चुकी थी। उसीकी प्रेरणासे वे मूत्रोपचार करनेके लिए रजामंद हो गये और अपनी पत्नीके साथ सन् '७२ में मोमासर पहुँच गये। उस समय वे कई बीमारियोंसे पीड़ित थे। साँस फूलती थी, सूखी खाँसी आती थी, कब्ज रहती थी, भूख अधिक और प्यास कम लगती थी, नींद बहुत कम आती थी, पेट हर वक़्त गैससे भरा रहता था और ५-१० कदम चलनेमें भी बहुत कष्ट होता था।

चिकित्साका श्रीगणेश उपवाससे हुआ। रोजाना दो घंटे मालिश होती थी। उपवासके दिनोंमें कई तरहकी तकलीफ़ें — दिलकी धड़कन

बढ़ना, सारे शरीर में लाल-लाल फुंसियाँ हो जाना, टट्टियाँ लगना और उलटियाँ होना इत्यादि खड़ी हुईं। तब संचेतीजीने यह बताकर हिम्मत दिलाई कि अंग्रेज़ी दवाइयोंकी ज़हरी जड़ें उखड़ रही हैं। आख़िर सभी तकलीफ़ें शान्त हो गईं और १५ वें दिन मोसंबीके रससे पारणा करवा दिया। लगभग दो मासमें वे पूर्ण स्वस्थ एवं सशक्त हो गये।

४

दमा

१. बारह बरसी दमा

मैंने स्वानुभव तो किया, पर इतना काफ़ी न था। मेरी उत्कट अभिलाषा तो यह है कि प्रत्येक परिवार मेरे अनुभवसे लाभ उठाये। हर घरमें बूढ़ी दादियाँ और माताएँ अपने छोटे-बड़े बालकोंके स्वास्थ्य-की रक्षाके लिए इसी अमूल्य साधनका उपयोग करने लग जायें। ईश्वरने सभी शरीरोंको एक ही जैसे तत्त्वोंसे बनाया है और उनके स्वास्थ्यके लिए प्रकृतिने उनमें एक ही द्रव्यकी रचना की है। तो फिर वह द्रव्य सभी शरीरोंके सभी दोषोंको दूर करनेके लिए शक्ति-शाली क्यों न हो? इसलिए मैंने यह महसूस किया कि मूत्रप्रयोगका मेरे जैसा अनुभव सभीको होना चाहिये। परन्तु प्रकृतिकी भिन्नतासे या विकारकी गंभीरतामें कमी-बेशी होनेसे, मूत्रप्रयोगकी विधिमें, उसकी अवधिमें और उससे होनेवाली क्रिया-प्रतिक्रियामें अन्तर हो सकता है; किन्तु परिणाम तो एक ही होगा। फिर भी एक बात विचारणीय है कि किसी एक व्यक्तिने एक सत्य वस्तुका अनुभव किया और उसी सत्य वस्तुका वैसा सर्वानुभव न भी हो, तो फिर यह कहना ठीक नहीं कि सत्य वस्तुका सर्वानुभव न होनेसे सत्य वस्तु ही मिथ्या

है। संसारमें कितने ही कार्य ऐसे होते हैं जो श्रद्धासे ही सिद्ध हो सकते हैं; तो भी मैं यह मान लेता हूँ कि विज्ञानकी सहायतासे वे कार्य शायद जल्दी सिद्ध हो जायें।

मैं श्रद्धाके बल पर ही मूत्रको शारीरिक स्वास्थ्यका एक संपूर्ण साधन मानता हूँ। श्रद्धाकी ठोस बुनियाद पर ही मेरी मूत्र विषयक विचारधाराका और उसके प्रयोगका महल खड़ा है। अंग्रेज़ लेखक स्व० जॉन आर्मस्ट्रॉङ्गकी अपनी धर्मपुस्तकके प्रति जो श्रद्धा थी उसीका आश्रय लेकर उन्होंने मूत्रप्रयोग और उसी श्रद्धाके बल पर हज़ारों रोगियोंको स्वस्थ बनाया तथा मूत्रप्रयोगकी क्षमताके दृष्टांत प्रस्तुत किये। दो किश्तियोंमें पैर रखनेवाले, अर्ध श्रद्धालु, धैर्यहीन तथा असंयमी मनुष्योंके लिए यह प्रयोग नहीं है। ऐसे व्यक्तियोंसे मेरा बारंबार निवेदन है कि वे ऐसा प्रयोग करनेकी धृष्टता न करें। पाठकोंसे मेरी विनय है कि वे इस भ्रांत विचारको अपने दिलसे सदाके लिए निकाल दें कि जिसका सर्वानुभव हुआ हो वही सच्चा है।

अपना प्रयोग करनेके बाद मैं यह सोचने लगा कि दूसरा प्रयोग किस पर किया जाये। आप मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता। यह ठीक न था कि घरके रोगीको छोड़कर मैं बाहरके रोगीकी खोज करता। ईशकृपासे मुझे ऐसा अवसर मिल ही गया और दूसरे प्रयोगके लिए अपनी पुत्रवधूको पसन्द किया। वह पिछले बारह वर्षोंसे दमेसे पीड़ित थी। चौमासा आता और बादल मँडराने लगते तो उसकी दुर्दशा हो जाती। बरसात और सरदीमें उसकी पीड़ा हमसे देखी न जाती। घरके सभी व्यक्ति पारी-पारीसे उसकी परिचर्या करते। जब साँस फूलती और छाती बोलने लगती तो पीड़ाकी हद आ जाती। अनेक दवाएँ कीं। सोमलके बीसियों इंजेक्शन लगवाये, अन्य इंजेक्शन भी लगवाये गये, विविध गोलियाँ खिलायी गयीं और नामालूम दवाकी कितनी शीशियाँ खाली की गयीं। डेढ़ वर्ष तक होमियोपैथिक इलाज भी किया। आयुर्वेद भी आजमाया। परन्तु उसकी व्याधि नष्ट न हुई।

गत मई महीनेमें वह बम्बई गयी। नमीवाली हवाके कारण कड़ी गरमीमें भी दमेके चिह्न दिखायी दिये। ता० ७ जून, १९५८ के रोज़ वह वापस अहमदाबाद आयी। उस वक्त अहमदाबादमें १११-११२ डिग्रीकी गरमी थी। वैसी गरमीके दिनोंमें यहाँ उसे दमेका असह्य दौरा हुआ। ता० ९ जूनकी दोपहरमें उसे खूब बेचैनी रही। मुझे सूझ आया और चि० शशिकांतसे उसकी छाती पर मूत्रमालिश करवायी। आध घंटेकी मालिशसे बेचैनी दूर हो गयी। मैंने तुरन्त निश्चय किया कि १० जूनसे ही वह प्रयोग शुरू कर दे। घरमें मेरा प्रयोग चला था और वह भी मेरी परिचर्यामें बारंबार उपस्थित रहती थी, इसलिए उसके दिलसे मूत्रकी घृणा जाती रही थी। १० जूनसे उसका प्रयोग शुरू हुआ। यहाँ एक बातकी स्पष्टता कर देना चाहता हूँ। मूत्रमालिश पैसे लेनेवालेसे न करवाकर किसी संबंधी या स्नेहीसे करवानी चाहिये। इसमें रहस्य यह है कि जैसे मालिश करनेवालेकी शक्तिका संचार मालिश करानेवालेके शरीरमें होता है वैसे उसके प्रेम तथा उत्साहका संचार रोगीके दिलमें होता है, जिससे परिणाम अद्भुत आता है। इसी आशयसे मैंने चि० शशिकान्तसे कहा कि वह अपने व्यवसायमें से समय निकालकर अपनी पत्नीकी परिचर्यामें रहे और उसने मेरी बात सहर्ष मान ली।

कुमुदबहनको मूत्रसे घृणा न थी। इसलिए उसने १० जूनसे हर रोज़ सुबह एक बार मूत्रपान शुरू किया और १४ जूनसे उपवासका श्रीगणेश कर दिया, फिर भी उसकी शक्तिको बनाये रखनेके लिए शुरूके दो दिन सुबह-शाम मैंने उसे आठ-आठ औंस खजूरका पानी दिया। ता० १६ और १७ दो दिन रोज़ाना उसे सात आठ दस्त हुए और पेट, पेड़ू और आँतोंमें रहा हुआ कफ-मिश्रित मल निकल गया। ता० १७ को दस्त अपने आप बन्द हो गये। ता० १८ की सुबहसे उलटियाँ होने लगीं। उनमें कफ और चिकना पदार्थ निकला। ज्यों ज्यों उलटियाँ हुई त्यों त्यों चैन पड़ने लगा। ता० १९ की शामको

उलटियाँ भी अपने आप बन्द हो गयीं। इस तरह दो दिनकी उलटियोंसे छाती, फेफड़ों और बग़लोंका कफ साफ़ हो गया। अब क्या होगा, इसका क्या पता? ता० २० की सुबह छींकें शुरू हो गयीं। दिन भर छींकें आती रहीं, शामको वे भी अपने आप बन्द हो गयीं। ता० २१ की दोपहरको कुमुदने कहा, "पिताजी, मुझे लगता है कि अब मेरा शरीर ठीक हो गया है और दमेकी जड़ कट गयी है। आप कहें तो कल सुबह उपवास छोड़ूँ। उपवासके अनन्तर भी मैं दीर्घ काल तक रोज़ाना सुबह मूत्रपान करूँगी और सप्ताहमें एक दिन उपवास रखूँगी, ताकि रोगकी आशंका न रहे।" मैंने अनुमति दे दी। ता० २२ जूनकी सुबह उसने आठ दिनका उपवास छोड़ा। सुबह खजूरका पानी, दोपहरमें चीकू और अनारका रस तथा पपीता और शामको मूँगका पानी लिया। इस तरह दो दिन और उसने फल तथा तरल आहार लिया। २६ जूनसे वह सादा और पथ्य आहार लेने लगी।

इस तरह उसका दमा मिट गया। उसका वज़न १४० पौंडसे १२० पौंड हो गया, जिससे उसके शरीरमें स्फूर्ति और शक्ति बढ़ी। उसकी चमड़ी मुलायम और चमकीली हुई। उपवासके बाद दो चौमासे और दो जाड़े बीत गये, फिर भी उस पर दमेका आक्रमण नहीं हुआ। अब तो वह निर्भय हो गयी है। फिर भी बीमारीका मुकाबला करनेके लिए वह अपने शस्त्रसे सुसज्जित रहती है।

कुदरतमें बेहद शक्ति है। दुनिया भरकी फ़ार्मेसियोंकी दवाएँ उसके आगे पानी भरती हैं। विश्व भरके डाक्टर उसके भेदको समझ नहीं सकते। पिछले दस-बारह वर्षमें सैकड़ों रुपये ख़र्च हुए और हज़ारों रुपये खर्च हो जाते, फिर भी कोई उसकी तकलीफ़को कम न कर सकता। पेशाबने उसे दस दिनमें दूर कर दिया। यह है कुदरतका प्रताप! उसके सहयोगसे संसार सुखी तथा गुलज़ार बनता है। उसका विरोध करनेसे विश्व दुःखी और स्मशान बनता है।

२. पन्द्रह बरसी दमा

डा० नटवरलाल बी० शाह, एम० बी० बी० एस० ठासरा (जि० खेड़ा, गुजरात) के हैं। उन्होंने मूत्रप्रयोग द्वारा १५ वर्षके पुराने दमेसे मुक्ति पायी, जिसका विस्तृत विवरण मानवमूत्र चिकित्सा मंडल, अहमदाबादके अध्यक्षको पत्रमें लिख भेजा, जिसका सार इस प्रकार है :—

"इस समय मेरी उमर ४७ बरसकी है। पिछले पन्द्रह वर्षसे हर साल केवल चतुर्मासमें ही दमा हो जाता है। हवामें नमी आती है कि यह बीमारी मुझे आ घेरती है और चौमासा भर कमोबेश रहती है। कई बार दिनों तक चारपाईसे पीठ लग जाती है और बरसातमें बिल्कुल बाहर नहीं निकला जा सकता। इस बीमारीके लिए मैंने अनेक एलोपैथिक तथा आयुर्वेदिक दवाएँ और इंजेक्शन लिये, परन्तु स्थायी लाभ नहीं हुआ।

"आपकी पुस्तक 'मानवमूत्र' पढ़ कर मैंने ता० २१-१२-'६० को मूत्रप्रयोगका श्रीगणेश किया। शुरूके नौ दिन तो केवल पानी और पेशाब पीकर ही गुज़ारे। उसके बाद दो दिन सुबह द्राक्ष तथा खजूरका पानी, दोपहर और शामके वक्त गायका दूध और पपीता लिया। फिर हलका भोजन करने लगा और पूरा परहेज रखा। प्रतिदिन दो-तीन बार मूत्रपान करता और दो घंटे मालिश करवाता था। प्रयोगके दौरान फोड़े आदिकी कुछ तकलीफ़ें भी हुईं, जिनके लिए किसी भी प्रकारकी दवा नहीं ली। एक मासमें ही मेरा दमा नामशेष हो गया।

"मैं अपने अनुभवसे कह सकता हूँ कि दमेके लिए मूत्रोपचार निःसन्देह अत्यन्त लाभदायक है। फिर भी यह आवश्यक है कि रोगी की प्रकृतिके अनुरूप आहार दिया जाय।"

ख़ास सूचना

दमेके अनेक प्रयोग हुए हैं। उनमें यह एक नया अनुभव हुआ है कि उपवासोंके अंतमें रोगीकी जठराग्नि मंद हो जाती है। उसे धीरे-धीरे तेज़ करना चाहिये। परंतु अनेक दिनोंका उपवासी रोगी खानेके लिए आतुर हो उठता है और फलका रस या मूँगका पानी अधिक परिमाणमें ले लेता है। वह पूरा हज़म नहीं हो पाता है। इसलिए उसका तथा ऐसे अन्य आहारका कफ बनता है, जिससे खाँसी और साँस शुरू हो जाती है। रोगी उसके कारणको तो समझता नहीं है और प्रयोगको निष्फल मान लेता है। अतः पहले दिन तो एक चम्मच नीबूका रस, दो चम्मच शहद और तीन औंस गरम पानी, इन तीनोंको मिलाकर चम्मचसे पीना चाहिये। चार घंटेके बाद दो औंस मूँगके पानीमें दो चम्मच अदरकका रस और थोड़ा नमक मिलाकर लेना चाहिये। फिर चार घंटेके बाद पाँच तोला मीठे संतरे-का रस लिया जाये। इस तरह धीरे-धीरे आहार बढ़ाना चाहिये और कड़ी भूख लगने पर ही खाना चाहिये। हर रोज़ सुबह दो औंस पेशाब पीते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे जठराग्नि प्रदीप्त होगी और किसी प्रकारकी बेचैनी महसूस नहीं होगी।

३. दमा और जिगरकी सूजन

श्रीमती आशा मेहता पंजाब रेडक्रॉस सोसायटीकी सहायक (अब उपमंत्री) हैं और चंडीगढ़में रहती हैं। वे अपने जीवनको उन्नत बनानेके लिए सदा उत्सुक एवं तत्पर रहती हैं। अस्वस्थताके कटु अनुभवोंने उन्हें अपने स्वास्थ्यके प्रति अति जागरूक, सावधान और प्रयत्नशील कर दिया है। वे अपने ज्ञान और अनुभवके आधार पर दूसरोंको नीरोग बनाने और स्वस्थ रखनेका भी प्रयत्न करती रहती हैं। मूत्रोपचारमें उनकी पूर्ण श्रद्धा है और उन्होंने अनेक व्यक्तियोंमें भी वैसी श्रद्धा जागृत की

है। परिवारके सभी सदस्योंने मूत्रप्रयोगसे लाभ उठाया है। वे अपनी भयंकर व्याधिसे मुक्ति पानेका विवरण इस प्रकार लिखती हैं :—

—संपा०

"पिछले पन्द्रह बरसोंमें मैंने जो दुःख उठाया है, उसके स्मरण-मात्रसे शरीर और मन काँप उठते हैं। आज भगवानकी कृपासे मैं स्वस्थ हूँ और पंजाब रेडक्रॉसमें सहायक मंत्रीकी हैसियतसे काम कर रही हूँ।

"मैं गत पन्द्रह वर्षसे वायुके रोगसे पीड़ित थी। सरदीके तीन चार महीने मुझे बिस्तर पर ही गुजारने पड़ते और तीन-चार हीटर मेरी शय्याके आसपास रखे जाते थे। कमर और सिरमें ऐसा दर्द होता मानो कमर टूट जायेगी और सिर फट जायेगा। मैंने दो वर्ष तक एलोपैथिक, होमियोपैथिक और आयुर्वेदिक दवाएँ खायीं। जब तक दवा चलती तब तक थोड़ा आराम हो जाता और दवा छोड़ने पर फिर वही हालत हो जाती। गरमीके दिनोंमें भी मुझे उबलते हुए पानीसे स्नान करना पड़ता था और सरदीमें १५ दिन ही स्नान कर पाती थी।

"१९६३ में स्वास्थ्य एकदम बहुत ही बिगड़ने लगा और साथ ही शरीर भारी होने लगा। थोड़ा-सा सफ़र करती कि बुख़ारका शिकार हो जाती थी। दिनभर पेटमें दर्द रहता था। डाक्टरोंकी सलाहसे शक्तिके लिए मैं मांस, मछली और अंडा भी लेने लग गयी थी। छः मासमें पेट तो इतना बढ़ गया कि छूने मात्रसे दर्द महसूस होता था। हाथ-पाँवों पर भी सूजन आ गयी। जिगर भी इतना बढ़ गया कि लाल फोड़ेकी भाँति दिखायी देता था और मैं उसे छू नहीं पाती थी। भलीभाँति बैठनेमें कष्ट होता था। चंडीगढ़के बड़े और प्रसिद्ध डाक्टरोंने निदान किया कि मेरे जिगरमें बहुत सूजन है और दमेकी बीमारी शुरू हो गयी है। उन्होंने इन दोनों रोगोंको असाध्य बताया और कहा कि मुझे जिन्दगीभर दवाइयाँ खानी पड़ेंगी। किसी

कारणसे मुझे बम्बई जाना पड़ा। वहाँके डाक्टरोंका निदान भी वही था। बम्बईके सफ़रके दौरान हाथ-पैर और मुँह सूज गये और तेज बुखार भी आ गया।

"मैं जब ऑफ़िसमें गयी तो मेरे अधिकारी श्री आर० आई० साहनी साहब मेरी हालत देखकर घबरा गये। उन्होंने उसी समय अमरीकाके एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डा० रॅन्डोल्फ़ स्टोनको, जो उन दिनों ब्यास (अमृतसर) में थे, मेरी हालतके बारेमें लिखा और मेरी चिकित्सा करनेके लिए निवेदन किया। तीसरे दिन ही मैं ब्यास चली गयी।

"डा० स्टोनने मांस आदिका भोजन, चाय, घी-दूध आदि सब बंद कर दिये। केवल फल, अंकुरित अन्न, उबली हुई शाक-सब्ज़ी तथा उसका पानी और नीबूके रस पर मुझे रखा गया। ठंडे पानीका एनिमा दिया जाता और ठंडे पानीसे स्नान करवाया जाता था। उन्होंने कहा, "बेटी, अपनी छाती और जिगर पर पेशाबकी मालिश करो।" मुझे लगा कि मेरे कानोंने उनकी बात सुननेमें कहीं धोखा तो नहीं खाया। हैरान होकर मैंने पूछा, "किसकी मालिश?" उत्तर मिला, "पेशाबकी।" फिर मैंने ज़रा घबराकर कहा, "पेशाबकी?" डाक्टर स्टोन हँस कर कहने लगे, "**मूर्ख लड़की यह तो अमृत है। तुम लोग अपनी पुरानी संस्कृतिको भूल गये हो, इसीलिए दुःख उठा रहे हो। अपने यूरिन (पेशाब) से तुम्हें घृणा है पर 'ब्यूटीलोशन्स' में दूसरोंका पेशाब अपने मुँह पर लगाती हो। यह तो एक अति उत्तम 'ड्रिंक' (पेय) है और जीवनके लिए अमृत है।**" दो-तीन दिनके उनके उपचारसे मेरी दशामें जो सुधार हुआ, उससे मेरा उन पर बड़ा विश्वास हो गया। फिर तो मैं बड़े चावसे मूत्रमालिश करने लगी और नाक द्वारा मूत्रकी नसवार भी लेने लगी।

"तीन मासके बाद जब डाक्टरोंसे जाँच करवायी तो दमा नामशेष हो चुका था और जिगर अपनी साधारण स्थितिमें था।

परन्तु मुझे कमज़ोरी महसूस होती थी और बाल गिरने लगे थे। डाक्टर स्टोन अमरीका जा चुके थे। उन्हें पत्र लिखा। उन्होंने आर्मस्ट्रॉङ्गकी पुस्तक --'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' भेज दी और तदनुसार मूत्रप्रयोग करनेकी सलाह दी। पुस्तकको शीघ्र पढ़कर और मूत्र-प्रयोगको अपनाकर मैं नीरोग एवं स्वस्थ रहती हूँ।

"मूत्र सचमुच ही अमृत है और स्वास्थ्यका अमूल्य साधन है। मैं चाहती हूँ कि सभी इस अमृतका पान करते हुए अपने आरोग्यकी रक्षा करें।"

४. दमा और दूरदृष्टि

श्री राधारमण शर्मा (झुनाठी, जि० गया, बिहार) ता० ८-३-'७२ के पत्रमें लिखते हैं :—

"मैं लगभग दस वर्षकी उमरमें दमेका शिकार हो गया था। एक और आफ़त यह खड़ी हो गयी कि मेरी दूर देखनेकी दृष्टि बहुत कम हो गयी थी। जवानीमें भी बुढ़ापा लगता था। मैं १९६८ से १९७१ तक मूत्रप्रयोग करता रहा हूँ। इस प्रयोगसे मेरा एकदम कायाकल्प हो गया है। अब बुढ़ापेकी झुर्रियाँ नहीं रहीं और दूर देखनेके लिए चश्मेकी जरूरत नहीं है। मेरी प्रेरणासे और लोगोंने भी मूत्रप्रयोगसे लाभ उठाया है।"

बम्बईवासी श्री मधुकर गोपाल दाते, श्री शेषराव गणेश पंत पांडे (आंतर गाँव, जि० वर्धा, महाराष्ट्र), श्री अमृतलाल एन० वाडिया, (बलसाड), श्री राधाशरण शर्मा (भागलपुर, बिहार) इत्यादि अनेक व्यक्तियोंने मूत्रप्रयोगको अपनाकर दमेसे मुक्ति पायी है।

दमा और खाँसी

श्री निरंजनदेव जैन (भूतपूर्व तेरापंथी साधु नथमलजी चारभुजा) जैनेन्द्र गुरुकुल पंचकूला (हरियाणा) में रसोईघरके व्यवस्थापक हैं। ता. २९-११-'७६ को उन्होंने अपनी रोगमुक्तिका हाल मुझे इस तरह सुनाया —

— संपा०

"इस समय मेरी अवस्था ६० बरसकी है। मैं सन् १९६२ में दमे और खाँसीका शिकार हो गया था। बढ़ते-बढ़ते मेरा रोग इतना भयंकर हो गया कि पासमें सोनेवालोंकी नींदमें बाधा पड़ती थी। करीब दो सौ ग्राम कफ दिनभरमें निकलता था। खाँसी इतना परेशान करती कि छातीमें दर्द हो जाता था और रात बड़ी बेचैनीसे निकलती थी। एलोपैथी और आयुर्वेदिक चिकित्सा करनेसे मुझे कुछ भी आराम नहीं हुआ था।

"बिहारमें श्री चतुरभाई पटेलके आग्रह एवं अनुरोधसे मैंने मूत्र-चिकित्साको अपना लिया। मेरे रोगकी भयंकरताको देखकर लोग तो यही समझते थे कि मेरा जिन्दा रहना असंभव-सा है। मैं दिनमें चार-पाँच बार मूत्र पीता था। न तो मैंने मालिश की और न ही उपवास किया। हाँ, तेल, मिर्च, खटाई आदि नहीं खाता था। दूधमें थोड़ी खाँड और थोड़े चावल लेता था। एक महीनेमें तिहाई आराम हो गया, जिससे मेरी हिम्मत बढ़ी और निष्ठा भी। दो-तीन मासमें तो मैं नीरोग एवं स्वस्थ हो गया। मालिश और उपवास भी किये होते तो बहुत शीघ्र ही मैं रोगमुक्त हो जाता। अब शरीर इतना शक्तिशाली है कि अपने भयंकर रोगकी याद भी नहीं है। गत १३ वर्षसे सोनेके पूर्व रोज दो बार मूत्रपान करता हूँ, जिससे टट्टी एकदम साफ आती है।"

आनुवंशिक दमा

श्री छगनभाई सोलंकीसे ग्रामोद्योग मन्दिर पेडक, राजकोटमें ता. १७–२–'७७ को मैं अनायास मिला। वे बरसोंसे वहाँके चर्मालयमें काम करते हैं। उमर ६० वर्ष। प्रसंगसे उन्होंने बताया कि वे किशोरावस्थामें ही आनुवंशिक दमेके शिकार हो गये थे। सर्दीके मौसममें उनकी बीमारी बढ़ जाती थी। वे 'चेनस्मोकर' थे और तम्बाकू खाते भी थे। लगभग दस बरस पहले मेरे सुझावसे बीड़ी आदिको तिलांजलि देकर वे दिनमें दो-तीन बार मूत्रपान करने लग और ६-८ मासमें ही बरसोंका दमा नामशेष हो गया। —संपा०

५

कैन्सर

१. पेटका कैन्सर

कैन्सराका यह पहला रोगी है जिसका मूत्रोपचार मेरी देख-रेखमें हुआ है। मुझे इस बातसे खुशी है कि इस रोगीके उपचारमें यथेष्ट सावधानता रखी गयी है।

श्री मफतलाल चन्दुलाल शाह पालनपुर (गुजरात) म्युनिसिपैलिटीके सदस्य हैं। उनका तीन बरसका छोटा बालक सुभाष कैन्सरका शिकार हो गया। आख़िर मूत्रोपचारोंसे उन्होंने अपने प्रिय पुत्रको मौतके मुँहसे बचा लिया, जिसका विवरण वे ता० २२–४–'६१ के पत्रमें इस प्रकार लिखते हैं :—

"मेरा छोटा लड़का सुभाष गत वर्ष बीमार हो गया। उसके पेटमें गाँठ थी और अंडकोशमें पीप पड़ गयी थी। पीपको ऑपरेशनसे निकलवाना पड़ा था। ऑपरेशनका ज़ख्म भरता न था, इसलिए डाक्टरकी सलाहसे मैं उसे बम्बई ले गया और कई अनुभवी डाक्टरोंको दिखाया और अन्तमें परेल स्थित टाटा मेमोरियलमें, जहाँ कैन्सरका उपचार होता है, वहाँ दिखाया। टाटा मेमोरियलके डॉक्टर बोरजीने उसकी जाँच की और एक्सरे लेकर बताया कि उसके पेटमें कैन्सरकी गाँठ है और सूचित किया कि पेट तथा अंडकोश पर गहरी किरणें (डीप एक्सरेज़) लेनी पड़ेंगी, जिससे मैं और मेरे साथी चिन्तातुर और व्याकुल हुए और अन्य अनेक डाक्टरोंकी सलाह ली, परन्तु किसीने कोई आशा न दिलायी।

"मैंने समाचारपत्रोंमें मानवमूत्रके बारेमें पढ़ा था। उसका प्रयोग करनेका निश्चय किया। उसे दो दिन ही उपवास पर रखा, क्योंकि वह तीन बरसका बालक था। उपवासमें उसे केवल उबाला हुआ पानी और उसीका मूत्र पिलाया गया और सुबह-शाम अपने पेशाबसे उसके सारे शरीर पर मालिश की जाने लगी। शामकी मालिशका असर रातभर होने देते और सुबह गरम पानीसे साबुनके बिना उसे नहलाया जाता। चार दिन बाद उसके शरीर और सिर पर भी फोड़े निकल आये और उनमें से पीप निकलने लगी। फोड़ों पर मूत्रपट्टियाँ रखी जाती थीं। आख़िर सात दिन बाद उन्हीं पट्टियों से फोड़ोंके ज़ख़्म ठीक हो गये। उसे खानेके लिए बहुत ही हलका भोजन दिया जाता था। रोज़ाना मूत्रपान और मूत्रमालिश चलती थी, जिससे अंडकोशका ज़ख़्म कम होता गया। इसलिए आरामकी आशा बँधी और उसे अपनी माँके साथ दक्षिणमें अपने मामाके यहाँ भेज दिया। एक मास तक यह प्रयोग चला और वह पूर्ण स्वस्थ हो गया, ज़ख़्म भर गया और गाँठका तो निशान तक भी न रहा।"

२. गलेका कैन्सर

(१) श्री छबीलदास हरिभाई चांपानेरिया बलसाड़के वासी हैं। उनकी उमर ६२ वर्ष की है और वे एक व्यापारी हैं। जब वे सन् १९६२ में अफ्रीकामें थे तब उनके गलेमें कैन्सरकी गाँठ निकल आयी और मुंहमें छाले पड़ गये। उन्हें कैन्सरकी गाँठ पर क़िरणें लेनेकी सलाह दी गयी। परन्तु उन्होंने किरणें लेनेका दुःसाहस नहीं किया, क्योंकि वे जानते-समझते थे कि किरणें लेनेसे तत्काल तो आराम हो जाता है, परन्तु बादमें अधिक पीड़ा और जलन होने लगती है और किरणें लेनेके बाद फिर मूत्रोपचार भी कारगर नहीं हो पाता।

स्व० डॉ० परागजीभाई देसाईकी सलाहसे ता० २२–९–'६२ से मूत्रप्रयोग शुरू किया। वे हर रोज़ तीन बार लगभग एक पाव अपना पेशाब पीते थे और पुराने पेशाबसे एक बार एक घंटा मालिश

करते थे। वे दिनभरमें गलेकी गाँठ पर चार बार मूत्रपट्टी भी रखते थे और मुँहके छालोंके लिए रोज़ाना चार-पाँच बार कुल्ले किया करते थे। वे कानोंमें पेशाबकी बूँदें डालते थे। उन्होंने उपवास नहीं किया। इस तरह एक मासके मूत्रोपचारसे वे कैन्सरके घातक रोगसे मुक्त हो गये। अब उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है। —सम्पादक

४५ वर्षके एक जैन मुनिने बम्बईके टाटा अस्पतालमें जानेकी डाक्टरी सलाहको न मानकर मूत्रोपचारसे ही अपने गलेके कैन्सरको मिटाया है।

कविराज रामस्वरूप कौशिक ज़ीरा (जि० फीरोजपुर, पंजाब) में रहते हैं। वे एक अनुभवी, मधुरभाषी और लोकप्रिय वैद्य हैं। 'आरोग्यका अमूल्य साधन—स्वमूत्र' के प्रथम संस्करणकी एक प्रति उन्होंने मुझसे खरीद ली थी। तभीसे वे मूत्रप्रयोगमें बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं। वे मूत्रको कैन्सर और कोढ़के लिए रामबाण मानते हैं। उन्होंने मूत्रोपचारसे विविध कैन्सरोंको मिटाया भी है।

उन्होंने ७५ वर्षके सन्त कालासिंहजी और झण्डो नामकी एक हरिजन स्त्रीके गलेके कैन्सरको मूत्रप्रयोगसे ठीक किया है। —संपा०

(२) श्री मांगीलाल शर्मा प्रतापगढ़ (राज०) में मेकेनिक हैं। उमर ३५ वर्ष। वे सन् १९७६ में गलेके कैन्सरसे पीड़ित हुए और किरणें लेनेके लिए कई बार अहमदाबाद आये। बीसियों गोलियाँ खाईं और टीके भी लगवाये। 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।' दो मासके बाद जबड़ेकी हड्डीमें दर्द होने लगा। फिर जबानमें भी दर्द हो गया और खाने-पीनेमें तकलीफ होने लगी। डाक्टर तो ठीक हो जानेका ही आश्वासन देते रहे। इस डाक्टरी इलाजमें ६ हजार रुपये खर्च हो गये।

आखिर उन्होंने मूत्रप्रयोगको अपनाया। अंग्रेजी दवाओंके ज़हरको दूर करनेके लिए मूत्रोपवास भी किया। १० दिनके पुराने मूत्रसे मालिश

करते और मूत्रपट्टी रखते थे। १५ दिनमें जबड़े और जबानका दर्द बिलकुल जाता रहा। फिर एक मासके बाद गलेका दर्द भी दूर हो गया। इस उपचारमें उन्हें एक पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ा।

——संपा०

कविराज रामस्वरूप कौशिक द्वारा मिटाये गये अन्य कैन्सरोंका संक्षिप्त विवरण उन्हींके शब्दोंमें इस प्रकार है——

३. गर्भाशयका कैन्सर

"श्रीमती सुरजीत कौर लौंगोदेवा (ज़ीरा, जि. फिरोजपुर, पंजाब) में रहती है। आयु ३ बरस। लुधियानाके डॉक्टरोंने कैन्सरको असाध्य समझकर इलाज छोड़ दिया। फिर वह अपने पिताके साथ ता. ३–३–'७४ को मेरे पास आयी। भलीभाँति जाँच करनेके बाद मैंने उसे कहा——'यदि निष्ठा और धैर्यसे उपचार करोगी तो ठीक हो जाओगी।' उसे रसाहार पर रखा गया। रोजाना तीन बार मूत्र पिलाया जाता था और एक घंटा मूत्रमालिश की जाती थी। तीन मासके मूत्रप्रयोगसे वह पूर्ण स्वस्थ हो गयी।"

"ज़ीराके इलाकेमें परिवार नियोजनके सिलसिलेमें लेडी डाक्टरोंने जिन स्त्रियोंको लूप लगाये थे उनमें से कई स्त्रियाँ प्रदरसे पीड़ित थीं। उसका परिणाम यह आया कि उन्हें गर्भाशयका कैन्सर हो गया और कुछको गर्भाशय-शोथ भी। दर्द बहुत होने लगा। उठना-बैठना भी दूभर हो गया। वे अन्दरसे बदबू महसूस करने लगीं। मैंने उनके लूप निकलवा दिये। उनसे उन्हींके मूत्रका प्रयोग रंग बदलकर करवाया गया। मूत्रका ही डूश दिलाया गया। यह प्रयोग एक मास तक चला। चार रोगी बिल्कुल ठीक हो गये और उनका प्रदर भी मिट गया।"

४. जिगरका कैन्सर

"श्रीमती चम्पादेवी जीराकी एक विधवा है। आयु ५७ वर्ष। यकृतशोथ, मधुमेह और रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) की स्थितिमें

ता० ११–५–७४ को वह मेरे पास आयी। पूरी तरह जाँच करनेसे पता चला कि उसका जिगर कैंसरसे आक्रान्त हो चुका है। वह पटियालाके राजेन्द्र अस्पतालमें पाँच महीने रहकर इलाज करा चुकी थी। डॉक्टरोंने उसे असाध्य समझकर डिस्चार्ज कर दिया था। लगभग दो मास विधिपूर्वक मूत्रप्रयोग करानेसे उसकी सभी तकलीफ़ें दूर हो गयीं। जिगरके कैन्सरके कारण उसकी आँखें पीली हो गयी थीं और सूज भी गयी थीं। मूत्र द्वारा आँखें धोनेसे वह जल्दी ही ठीक हो गयी। अब वह पूर्ण स्वस्थ है।"

५. योनिका कैन्सर

"श्रीमती मायादेवी लाला तीर्थरामजीकी धर्मपत्नी है, जिसकी आयु ३५ वर्ष है। तीर्थरामजीने मोगा (पंजाब) में एक बहुत बड़ा अस्पताल बनाया है, जिसका उद्घाटन सत्यसाईं बाबाने किया था।

"मायादेवीके पेटमें हर समय दर्द रहता था। डाक्टरोंने बताया कि मासिक धर्म कष्टसे आनेके कारण दर्द है। उपचार करने पर भी दर्द बढ़ गया। एक्सरे लेनेसे मालूम हुआ कि उसकी योनिमें रसौली है। आखिर लुधियानाके मिशन अस्पतालमें ऑपरेशन करवाने पर पता चला कि योनिमें कैन्सर है और उसकी जिन्दगी खतरेमें है। उसे फिर अपने ही अस्पतालमें ले आये।

"मैंने जाकर रोगीको देखा और सारा हाल सुनकर विधिपूर्वक शिबाम्बु उपचार शुरू कर दिया। ऑपरेशनके जख्म पर मूत्रपट्टी रखी गयी। थोड़े ही दिनोंमें वह नीरोग हो गयी। अब वह भली-भाँति चलती-फिरती और सैर करती है।"

६. गुरदेका कैन्सर

श्री नवीनचन्द्र शान्तिलाल मेहता सायन, बम्बईमें रहते हैं। उमर ४१ वर्ष। पाँच वर्ष पहले उन्हें पेशाबमें खून आता था।

निदान करानेसे मालूम हुआ कि गुरदेमें कैन्सर है। टाटा हॉस्पिटल-में ऑपरेशन कराने पर भी खून आना बन्द नहीं हुआ। सन् १९७३ में शिवाम्बु प्रयोग शुरू किया। वे रोज तीन बार शिवाम्बु पीते और रातको पुराने पेशाबसे सारे शरीरकी मालिश करते थे। एक भी उपवास नहीं किया। लगभग छः मासमें वे रोगमुक्त हो गये। इस प्रयोगसे उनकी स्थायी सर्दी-खाँसी भी दूर हो गयी।

उपचार संबंधी आवश्यक सूचनाएँ

कैन्सरके रोगीके शरीरकी प्रकृति, उसकी पेशाब पचानेकी शक्ति आदि देखकर ही उपचारका सुझाव दिया जाना चाहिये। दूसरे रोगोंमें मूत्रप्रयोग धीरे-धीरे भी शुरू किया जा सकता है, परन्तु कैन्सरके रोगमें उसे तत्काल ही शुरू करना चाहिये। क्योंकि यह रोग अति तीव्र गतिसे बढ़ता है। इसके अतिरिक्त कैन्सरके रोगीके कानमें बहुत बार पीड़ा हो जाती है, कान पक जाते हैं और सिरमें तीव्र तथा असह्य टीस उठती है। प्रयोगके दौरान भी रोगी उस तीव्र पीड़ासे क्षणिक छुटकारा पानेके लिए ज़हरीली गोली या अन्य कोई विषैली वस्तु लेनेके लिए ललचाता है, जिससे वह तीव्र पीड़ा थोड़ी देरके लिए दब जाती है, किन्तु प्रयोग निष्फल हो जाता है। इसलिए अति दृढ़ता तथा धीरताके साथ उस पीड़ाको सह लेना चाहिये। परन्तु जिन ज़हरी दवाओंके खानेसे दर्द केवल थोड़ी देरके लिए शान्त हो जाता है और फिर उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है, उन दवाओंका उपयोग करके अधिक दुःखको न्यौता देनेका दुःसाहस न किया जाये और इस प्रयोगको निष्फल बनानेकी धृष्टता न की जाये। कैन्सरका रोगी मूत्रपान और मूत्रमालिशके अतिरिक्त निम्नलिखित उपचार भी करे :—

(१) कानमें पिचकारी द्वारा धीरेसे गर्म पेशाब डालकर उसे साफ़ करना और फिर उसी पेशाबकी बूँदें डालकर रूईका फाहा दबा देना। इस तरह दिनमें दो बार करना।

(२) पेशाबसे भीगी हुई कपड़ेकी पट्टियाँ अपने सिर पर (सिरके बाल बारीक कटवा लेना) लगातार रखना।

(३) ताज़े पेशाबके कुल्ले दिनमें तीन बार करना। पेशाबको मुँहमें ख़ूब हिलाकर कुल्ले करना चाहिये।

(४) जीभ पर कैन्सर हो तो पेशाबसे तर की हुई रूईकी बत्तीसे बार-बार जीभ घिसते रहना।

(५) जहाँ गाँठ और सूजन हो वहाँ पर पेशाबकी पट्टियाँ रखकर गर्म पेशाबसे सेंक करते रहना।

(६) उपवासके दिनोंमें दिनरातका सारा पेशाब पी जाना। कुछ भी आहार, फल या फलका रस भी न लेना। ऐसे उपवासमें रोगीको उसकी प्रकृतिके अनुसार दस्त लगें या उलटियाँ हों तो घबरानेकी ज़रूरत नहीं है। शरीरमें जो विकार अर्थात् कैन्सरकी सामग्री होगी वह निकलने लगेगी। दस्त या कै में जो कुछ निकले उसे ध्यानसे देखें और नोट कर लें, परन्तु घबरायें नहीं; विकार निकल जायेगा तो दस्त या उलटियाँ अपने आप कम होने लग जायेंगी। जिस दिन दस्त या कै बिल्कुल न हो उस दिन समझ लें कि शरीरमें जमा हुआ हानिकारक पदार्थ अब निकल गया है। फिर दूसरे दिन उपवास छोड़ें और उस दिन मूत्रपान बन्द रखें। उपवास छोड़नेके दिन लगभग आध पाव गर्म पानीमें एक चम्मच नीबूका रस और दो चम्मच शहद मिलाकर उसे चम्मचसे पियें। फिर धीरे-धीरे जितने उपवास किये हों, उतने दिन तक फलका रस, मूँगका झोल, दूध और पानी मिलाकर तुलसीका काढ़ा आदि पेय लेते रहें। जैसे जैसे मंद जठराग्नि प्रदीप्त होती जाये वैसे वैसे आहारका परिमाण

बढ़ाते जायें और धीरे-धीरे असली खुराक पर आयें। ठूंस ठूंस कर खानेकी ढिठाई न करें। चाहे जैसी हलकी चीज़ भी अधिक मात्रामें खायी जाये तो वह हज़म नहीं होती और दस्त आने लगते हैं। इसलिए खूब सावधान रहें और खानेके लिए अधीर बनकर सारी मेहनत पर पानी न फेर दें।

उपवास छोड़नेके बाद जब तक पूर्ण स्वस्थ न हो जायें, तब तक दिनमें एक-दो बार तीन-तीन औंस पेशाब पीते रहें, मालिश करते रहें, परहेज़ पालते रहें और अन्य आवश्यक उपचार करते रहें। कैन्सरके रोगीको नमक बिल्कुल छोड़ देना चाहिये।

६

गलेके रोग

१. गलेकी गाँठें

छोटी या बड़ी उम्रमें बहुतसे व्यक्तियोंके गलेमें गाँठें निकल आती हैं। ये गाँठें कभी क्षयकी होती हैं, कभी कैन्सरकी और कभी साधारण होती हैं। इनसे सूजन आ जानेसे खानेमें कठिनाई होती है। इनसे मुंह और आँखें भी सूज जाती हैं। ऐसी गाँठोंके साथ यदि सूइयों या नश्तरोंसे छेड़-छाड़ की जाती है और तत्काल किसी सरल उपायसे इन्हें नहीं मिटाया जाता है तो ये कैन्सरका रूप धारण कर लेती हैं, ऐसा अनेकोंका अनुभव है।

(१) स्व० श्री जूठाभाई अमरशी शाहके पुत्र भरतके गलेमें दोनों तरफ गाँठें निकल आयीं और मुँह पर सूजन आ जानेसे पानी पीनेमें भी तकलीफ होती थी। बापके समझानेसे बेटा मूत्रप्रयोगके लिए

तैयार हो गया। भगत अपने पेशाबको एक ही घूंटमें मुँह बनाकर पी गया। परन्तु मानी हुई घृणाके कारण तुरन्त उलटी हो गयी, जिससे कुछ पेशाब बाहर निकल गया। फिर भी उस दिन उसे कुछ पीड़ा नहीं हुई और पिता मूत्रपानके लिए बार-बार समझाते रहे। दूसरे दिन उसने ज़्यादा पेशाब पिया। उसे कै न हुई और दर्दमें काफ़ी आराम मिला। अब तो उसे विश्वास हो गया कि वह ठीक हो जायेगा। तीसरे दिन तो वह छः से आठ औंस पेशाब आँखें बन्द करके गटगट पी गया। तीन ही दिनमें उसका दर्द दूर हो गया। पाँच छः दिन और प्रयोग चला और छठे दिन गलेकी दोनों गाँठें घुल गयीं।

(२) कु० अंजना बहन लंदनसे ता० ११–४–'७७ के पत्रमें लिखती हैं —

"मेरी माता लगभग ४२ बरसकी हैं। उनके गलेकी दोनों ओर गाँठें हो गयी हैं। तीन मास पहले भी ऐसी गाँठें निकली थीं। तब डाक्टरने उसे टी. बी. का आरंभ कहा था। गलेकी दायीं ओर ऑपरेशन भी कराया था, परन्तु उससे कुछ भी आराम नहीं हुआ।"

फिर वे ता० १३–५–'७७ के पत्रमें लिखती हैं कि आपके द्वारा सूचित मूत्रप्रयोग करनेसे गलेकी गाँठें पिघलने लगी हैं और तबीयत भी अच्छी हो रही है। परहेजके साथ प्रयोग तो चालू ही है।

२. कंठमाला

श्रीमती राजरानी एक विधवा स्त्री हैं और धारीवाल (पंजाब) में दाईका काम करती हैं। उनकी एक लड़की चंचल कुमारी है, जिसकी उम्र ११ सालकी है और जिसके गलेमें चार गाँठें थीं, जिनमें-से पीप निकलती थी। उसके रोगको संक्रामक समझकर शिक्षिकाने उसका स्कूल आना बन्द कर दिया था।

११ अक्तूबर, १९६७ को अमृतसरसे पठानकोट जाते हुए राजरानीसे मेरा अनायास परिचय हो गया। वे अपनी पुत्रीके रोगसे चिन्तित एवं निराश मालूम होती थीं। मैंने उन्हें मूत्रप्रयोग सुझाया और समझाया। फिर मैंने उन्हें 'आरोग्यका अमूल्य साधन -- स्वमूत्र' पुस्तक भी भेज दी।

माताके समझाने पर चंचलने मूत्रप्रयोग शुरू कर दिया। उसे दो बार मूत्र पिलाया जाता और दिनमें एक बार मालिश की जाती थी। माता स्वयं उसकी मालिश करती थी। राजरानीने परहेज़का भी खूब ध्यान रखा। घरमें तो डालडाका उपयोग होता है, परन्तु आर्थिक कठिनाईके होते हुए भी उन्होंने चंचलके लिए शुद्ध घीका ही उपयोग किया। लगभग दो मासमें कंठमाला नामशेष हो गयी और नीरोग हो चंचल फिरसे स्कूल जाने लगी। -- संपा०

३. टॉन्सिल और जीभके छाले

श्री दिनुभाई र० जोशी बम्बई हाईकोर्टके एडवोकेट हैं। उनके भाईके गलेमें टॉन्सिल था और जीभ पर छाले पड़ गये थे, जिससे कैन्सर होनेकी संभावना लगती थी। जब दूसरे इलाज व्यर्थ सिद्ध हुए तब उन्होंने मूत्रप्रयोगकी शरण ली। एक मासमें ही रोग दूर हो गया। असाध्य मानी जानेवाली व्याधि इतनी जल्दी दूर हो जाने पर डाक्टर भी दंग रह गये।

प्रयोगके दौरान रोगीसे पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करवाया गया तथा तेज मिर्चमसाले और नमकका उपयोग छुड़वा दिया था।

बारंबार अधिक बोलनेसे उनके अपने गलेमें ख़राश हो जाती थी, गला सूख जाता था और बोलनेमें तकलीफ़ होती थी। मूत्रप्रयोगसे उनकी तकलीफ़ दूर हो गयी है।

उन्होंने यह भी लिखा है कि अनेक सुशिक्षित एवं उच्च पदाधिकारी व्यक्ति भी गुपचुप 'मानवमूत्र' पढ़ते हैं और मूत्रप्रयोगसे लाभ उठाते हैं, परन्तु उसे प्रगट करनेसे झिझकते हैं। बम्बई हाईकोर्टके एक जजने भी इस प्रयोगसे लाभ उठाया है।

७

पेटके रोग

१. अम्लपित्त और अन्य पीड़ाएँ

श्रीमती कमलादेवी बोहरा लाडनूं (राजस्थान) में रहती हैं। उमर २० साल। वे लिखती हैं:—

"मुझे दो सालसे अम्लपित्तकी बीमारी थी। जो भी खाना खाती थी वह वमन द्वारा निकल जाता था। पानीकी एक बूंद भी पेटमें नहीं ठहरती थी। दिन-रात सिरमें दर्द रहता, सारे शरीरमें जलन होती, पेशाब बहुत कम होता, श्वेत प्रदर ज्यादा हो गया और मैं बहुत कमज़ोर हो गई। वैद्य और डाक्टरके इलाज व्यर्थ सिद्ध हुए। आखिर दादाजीने सन् १९७२ में श्री भोजराज संचेतीके पास रहकर स्वमूत्र-चिकित्सा करानेके लिए मुझे भेज दिया।

"उन्होंने मुझे चार दिनका उपवास करवाया। दूसरे दिनसे मुझे काफी उलटियाँ होने लगीं, जिससे जमे हुए कफ़ और पित्त निकलने लगे। उलटियाँ चौथे दिन अपने आप बंद हो गईं। पाँचवें दिन मोसंबीके रससे मुझे पारणा करवाया। धीरे-धीरे मैं साधारण भोजन करने लग गई। इस अरसेमें मूत्रपान और मूत्रमालिश तो चलते ही रहे। तीन सप्ताहमें मेरी सभी बीमारियाँ दूर हो गईं। अब मैं अपने-आपको बिलकुल स्वस्थ समझ रही हूँ। मैं चाहती हूँ कि हर आदमी अपनी हर बीमारीके लिए यही अमूल्य चिकित्सा करे।"

२. अम्लपित्त

श्री मुकुन्दचन्द प्रह्लादजी ठाकर (कडियादरा, जि० साबरकाँठा, गुजरात) ता०. २६–९–'७७ के पत्रमें लिखते हैं:—

"मेरी उमर ४२ सालकी है। १५ बरसकी उमरसे मैं कड़ी मेहनतसे खेती कर रहा हूँ। अति शारीरिक श्रम और ट्रेक्टर चलानेसे मैं अम्लपित्तकी बीमारीसे ग्रस्त हो गया। पाचनशक्ति इतनी मंद हो गयी कि दिनमें तीन चार बार टट्टी जाना पड़ता था। डॉक्टरी इलाज छोड़कर मैंने ६ जून, '७७ से मूत्रप्रयोग शुरू कर दिया। मैंने लाल मिर्च और खाँड छोड़ रखी है। दूध ज्यादा लेता हूँ और खुराक कम। मैं मालिश तो नियमित नहीं कर सका हूँ, फिर भी मुझे लगभग ६०% लाभ हुआ है। मेरा वजन दो-तीन किलो घटा है, लेकिन शारीरिक क्षमता कम नहीं हुई है। अन्ननलीकी जलन ८०% कम हो गयी है। अब सुबह दो बार ही टट्टी जाता हूँ। मुझे उम्मीद है कि मैं दो-चार माहमें ही नीरोग एवं पूर्ण स्वस्थ हो जाऊँगा।"

३. बरसोंका कब्ज

अहमदाबादके श्री मगनलाल के० परीखको बरसोंसे कब्जकी शिकायत थी। उनके सारे शरीरमें खाज भी होने लगी थी। उन्होंने २१ दिन तक डॉक्टरोंके यहाँ चक्कर लगाये और अनेक इन्जेक्शन लिये, परन्तु तकलीफ दूर न हुई। एक दिन रात ही में उनके सारे शरीर पर सूजन आ गयी और मुँह तो रावण जैसा भारी-भरकम हो गया। उन्होंने रणजीतभाईकी सलाहसे मूत्रप्रयोग शुरू कर दिया। वे अपना पेशाब पीने लगे और अपने लड़केके पेशाबसे मालिश करवाने लगे, क्योंकि उन्हें दिनमें एक बार प्रातःकाल ही पेशाब आता था।

पहले तो उन्हें ऐसी आदत थी कि चायके तीन प्याले पेटमें डालते और चार बीड़ियाँ फूंकते तब कहीं बड़ी मुश्किलसे बकरीकी लेंडी जैसी टट्टी आती थी। सारे शरीर पर मालिश करते-करते जब पेड़ू पर मालिश की जाने लगी, तब तुरन्त ही टट्टीके लिए उठना पड़ा और तेजीसे मल निकल गया। दोपहर और शामको भी खुलकर टट्टी हुई। कुछ ही दिनोंमें वे पूर्ण स्वस्थ हो गये।

४. मन्दाग्नि, गैस और कब्ज़

अहमदाबादमें रहनेवाले श्री लालजीभाई हीराभाई पटेलने समाचारपत्रोंमें मूत्रचिकित्सा सम्बन्धी मेरे स्वानुभवकी बातें पढ़कर अपनी सूझ-बूझके अनुसार मूत्रप्रयोग शुरू किया और डेढ़ महीनेमें वे पूर्ण स्वस्थ हो गये।

उन्होंने ता० १५-१०-५८ को जो लिखित विवरण मेरे पास भेजा उसका विशेष उपयोगी अंश इस प्रकार है :—

"अपने मनकी कमजोरीके कारण मैं बीड़ी और चीनी नहीं छोड़ सका। अगर मैं इन दोनों वस्तुओंको छोड़ देता तो मुझे अवश्य ही शीघ्र लाभ हो जाता।

"मूत्रपानसे गैसका दर्द और कब्ज़ दूर हो गये। जठराग्नि तीव्र हो गयी। मूत्रमालिशसे मेरी चमड़ी कोमल हो गयी, तलवोंमें पसीना आना बिल्कुल बन्द हो गया। मुँह पर जो गर्मीकी फुंसियाँ थीं वे भी मिट गयीं। कमरकी पीड़ा भी जाती रही। दमेकी साधारण तकलीफ़ भी दूर हो गयी। शरीरमें स्फूर्ति एवं शक्ति इतनी आ गयी है कि अब मैं प्रतिदिन १४ घंटे काम कर लेता हूँ।"

श्री लालजीभाई स्वस्थ होकर मुझे मिलने आये और अपने अनुभव सुनाने लगे। तब मैंने उन्हें स्वाभाविक प्रश्न पूछा — "क्या आपको पेशाव पीते समय घृणा नहीं आयी?" मेरा प्रश्न सुनकर उन्होंने अपने बचपनकी आपबीती कह सुनायी। उन्होंने बताया — "जब मैं करीब दस वर्षका था तब मेरे सारे शरीर पर ददोरे जैसे बड़े-बड़े छाले उठ आये थे। मुझे बहुत पीड़ा होती थी। तब पिताजीने दवाके नामसे गधेका पेशाब चायके प्यालेमें डालकर चारेक दिन मुझे पिलाया और मेरी पीड़ा नामशेष हो गयी। अब बताइये, मैंने अनजाने गधेका पेशाब भी पिया है; जानबूझकर अपना पेशाब पीनेमें भला घृणा कैसी? मैंने तो इससे भी अधिक बदबूदार और बेस्वाद अनेक दवाइयाँ पी हैं।"

५. गैस और कब्ज़

अहमदाबादके रायपुर विभागमें शामलाकी पोलमें रहनेवाले श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाहने अपनी रोगमुक्तिका विवरण ता० २४-९-'५९ को मुझे लिख भेजा था, जिसे यहाँ देता हूँ :—

"मुझे बहुत समयसे पेटमें वायु और कब्ज़का रोग था, जिसके कारण पेटमें बायीं ओर कभी कभी पीड़ा होती थी, शरीरमें बेचैनी रहती थी और ज़ुकाम आदिकी तकलीफ़ भी हो जाती थी। मैंने सबसे पहले प्रातः एक गिलास मूत्र पीना शुरू किया। पहले दिन स्वभावतः थोड़ी-सी घृणा हुई, परन्तु दूसरे दिनसे मूत्रका परिमाण और समय बढ़ा दिया। दिनभरमें दो तीन बार एक एक गिलास यानी १२ से १४ औंस पेशाब पीने लगा। दूसरे दिन ही शामको दो तीन दस्त हुए और पेटमें से बहुत-सा मल वायुके साथ निकल गया। यही क्रम पाँच दिन तक चलता रहा। फिर सुबह नियमित शौच होने लगा। केवल सात दिनके मूत्रप्रयोगसे मेरे पेटकी गैस, कब्ज और पीड़ा बिल्कुल मिट गयी।

"कानकी टीस और पीड़ाके लिए अपनी पत्नीके कानमें पेशाबकी बूँदें दिनमें तीन-चार बार डालते रहनेसे उसकी पुरानी पीड़ा मिट गयी। इसलिए अपने अनुभवके बल पर मैं यह दृढ़तासे कहता हूँ कि शिक्षित तथा अशिक्षित लोगोंमें यह प्रयोग प्रचलित हो जाये तो मानव-जीवनका कल्याण हो जाये। मैं यथाशक्ति इसका प्रचार भी करता रहता हूँ।"

६. जलोदर

श्री ईश्वरलाल नागजी देसाई बिलीमोरामें रहते हैं। वे अपने ढाई बरसके पुत्र सतीशकी बीमारीसे तंग आ गये थे। आखिर मूत्रप्रयोगसे वे अपने चिरंजीवको रोगमुक्त कर सके, जिसका विवरण निम्नलिखित है :—

"मेरा पुत्र सतीश ढाई बरसका है। वह जन्मसे ही थोड़े-थोड़े दिनोंके बाद बीमार हो जाता था। उसे बुख़ार हो आता, दस्त आते और उलटियाँ होतीं। ता० २८–६–'६० को उसे बुख़ार शुरू हुआ, जो १०४ से १०५ डिग्री तक था। बुख़ार बिल्कुल उतरा नहीं। डाक्टरने साढ़े चार मास तक बुख़ार उतारनेकी बहुत कोशिश की। बालकके नये-पुराने रोगका सभी प्रकारसे उपचार किया, परन्तु बुख़ारने पिंड नहीं छोड़ा।

"उसके बाद ता० १५–११–'६० को सारे शरीर पर सूजन आ गयी, जो पाँच-छः दिन रही। तभी डाक्टरको पता चला कि यह जलोदरका रोग है। डाक्टरसे और दो वैद्योंसे इलाज करवाया जिससे कुछ आराम तो हुआ, पर रोग दूर नहीं हुआ। आख़िर दवा बन्द कर दी। उसके बाद बालकके दस्त व पेशाबमें ख़ून और पीप आने लगे।

"ता० ५–१२–'६० से मूत्रप्रयोग शुरू किया। उसे ताज़ा पेशाब पिलाया जाता था और सारे शरीर पर मूत्रमालिश की जाती थी। उसे खानेमें थोड़ा चावल और दालका पानी एक ही बार दिया जाता था। इस प्रयोगने जादूका असर किया। जो बुख़ार साढ़े चार मासमें भी नहीं उतरा था वह मात्र छः दिनमें उतर गया। दूसरे सप्ताह वह घुटनेके बल चलने लग गया और तीसरे सप्ताह चलने लगा। यह प्रयोग ता० ३–२–'६१ तक चलता रहा। उसके बाद दिनमें दो-तीन बार उसे मूत्र पिला दिया जाता था।

"प्रयोगसे वह रोगमुक्त हुआ और नया ख़ून आया। शरीरके सभी अंग बढ़े। जिस बालकके सिरहाने दिनरात मौत खड़ी रहती थी, वह बालक मूत्रोपचारसे एकदम अच्छा हो गया।"

उपसंहारमें वे लिखते हैं–"स्वमूत्र प्रत्येक रोगके लिए राम-बाण है, और मेरे जैसे दरिद्र व्यक्तिके लिए तो वरदान है।"

७. असह्य पेट-दर्द

(१) श्रीमती कला जैनने जम्मूके युवक कीमतीलाल जैनके पुराने पेटदर्दको मूत्रोपचारसे मिटाया है, जिसका विवरण उन्हींके शब्दोंमें यहाँ दिया जाता है :—

"कीमतीलालको बरसोंसे पेटदर्दने परेशान कर रखा था। सैंकड़ों उपचार करवाते हुए भी उसका शरीर सूखता जा रहा था। बीसियों डाक्टर बदले होंगे। तीन-चार बार वह अस्पतालमें भी रहा। अमृतसर-के बड़े अस्पतालमें भी काफी दिन रहा। पैसा बहुत खर्च हुआ, पर लाभ कुछ भी नहीं हुआ। बहुत तड़पता था वह। उसे न नींद आती और न भूख लगती। सभी ओरसे निराश हो चुका था।

अक्तूबर १९७१ में दीवालीसे चार दिन पूर्व असह्य दर्दके समय उसने रात्रिको मूत्रपान किया। प्रथम पानने ही जादूका-सा असर दिखाया। वह दर्द पुनः उठा ही नहीं। २५ दिन नियमित विधिपूर्वक पूरे परहेजके साथ मूत्रप्रयोग चला। अब तो वह अच्छा हृष्टपुष्ट है। कभी दर्द हुआ ही नहीं।"

(२) श्री लल्लुभाई एन. टंडेल कोलम्बो (सिलोन) से ता. ५-३-'७२ के पत्रमें लिखते हैं :—

"मुझे लगभग दस बरससे पेट-दर्दकी बीमारी थी। इंग्लैण्ड, अमरीका, जर्मनी और अपने देशके डाक्टरों और वैद्योंकी दवामें पैसा बरबाद किया, पर कुछ आराम न हुआ। सद्भाग्यसे 'मानवमूत्र' पुस्तक पढ़नेका अवसर मिला। पूर्ण विश्वासके साथ रामनाम लेकर मूत्रपानका श्रीगणेश कर दिया। स्टीमरकी नौकरीके कारण परहेज तो नहीं रख सका। सुविधानुसार मालिश भी करता रहा। लम्बे अरसे तक यह प्रयोग करनेसे मेरा पेट-दर्द मिट गया। अतिरिक्त बड़ा लाभ यह हुआ कि मेरी जननेन्द्रियकी गाँठें भी नामशेष हो गईं। स्वयं मूत्रपान करता हूँ और बच्चोंको भी इसकी आदत डाल दी है।"

(३) श्रीसाधुराम जैनेन्द्र गुरुकुल, पंचकूला (हरियाणा) में माली है। उमर ३५ बरस। सन् १९७५ में उनके पेटमें अचानक इतना दर्द हुआ कि होश भी नहीं रहा। आखिर भंडारी निरंजनदेवके कहनेसे वे मूत्रपान करने लगे। पहले ही दिन कुछ आराम हो गया और तीन हफ्तेके बाद दर्द जाता रहा। टट्टी खुलकर आती रही।

८. पेटकी गुड़गुड़

श्रीराम सेवक श्रीवास्तव बिलासपुरसे ता० ८-१२-७३ के पत्रमें लिखते हैं :—

"मुझे अक्सर यह शिकायत रहती थी कि मैं जब भी रातको खाना खाता तब गुड़गुड़ होने लगती। ठीकसे नींद नहीं आती। यदि मध्य रात्रिके बाद आँख खुल जाती तो जागते-जागते ही सुबह हो जाती थी। मैंने दीवालीसे कुछ दिन पहले स्वमूत्र पीना शुरू किया। आरम्भमें तो कुछ हिचकिचाहट हुई, पर एक सप्ताहके बाद मुझे कुछ भी घृणा नहीं हुई। उसी समयसे मुझे अपनी पुरानी शिकायतने परेशान नहीं किया। भूख खूब लगने लगी है। सुबह शौच भी साफ हो जाता है और अब रातमें अच्छी नींद आती है। पहले सुबह-शाम दोनों वक्त गिलास भरकर पीता था, पर अब तो आरामसे दोनों हाथोंके चुल्लूमें भरकर पीता हूँ। चाहता हूँ कि सभी इस अमृतसे लाभ उठायें।"

९. मुँहसे टट्टी होना

श्री नत्थासिंघ (जीरा, पंजाब) ५२ वर्षके हैं। गत दोएक वर्षसे उनके पेटमें दर्द रहता था और कुछ अफारा भी हो जाता था। वे जो खाना खाते थे वह मुख द्वारा वापिस निकल जाता था और गुदासे शौच नहीं होता था। वैद्य रामस्वरूपजीकी सलाहसे वे दिनभरका सारा पेशाब पीने लगे। १५ दिनके बाद मलद्वारसे टट्टी आने लग गयी और वे नीरोग एवं स्वस्थ हो गये। मूत्रोपचारका कितना चमत्कार!

— संपा०

१०. नाभिके दोनों तरफ दर्द

श्री के० बी० मिश्र गाजियाबाद (उ० प्र०) से ता०. २४-६-'७७ के पत्रमें लिखते हैं :—

"मेरी पत्नी सुषमाकी नाभिके दोनों तरफका दर्द रातको इतना बढ़ गया कि वह कराहने लगी। मैंने पिताजीकी देख-रेखमें पेशाबसे तर की हुई पट्टियाँ रखना शुरू किया और यह क्रम तीन बजे तक चलता रहा। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों पीड़ा शान्त होती गयी। धीरे-धीरे पेशाबसे मालिश भी जारी रखी और आखिरमें उसे पूरा आराम हो गया और वह सो गयी।

"उसके पैरका चार साला एक्ज़ीमा एक दिनके पुराने पेशाबसे तर की हुई रूई अथवा कपड़ा रखते रहनेसे लगभग एक मासमें समूल नष्ट हो गया तथा पैर चिकना एवं सुन्दर हो गया।

"मेरे पैरमें बड़ा-सा फोड़ा हो गया था और मूत्रसे ही उसे ठीक किया।"

८

आँतके रोग

१. एपेन्डिसाइटिस (उपान्त्रशोथ)

आजकल एपेन्डिसाइटिस (उपान्त्रशोथ)की बीमारी आम हो गयी है। उपांत्र या आंत्रपुच्छ, जिसे अंग्रेजीमें 'एपेन्डिक्स' कहते हैं, बड़ी आँतका शुरूका भाग है, जो पेटकी दायीं ओर होता है और एंजिनके गवर्नर-सा काम करता है। उसमें भरा हुआ मल बहुत दिनके बाद सड़ने लगता है, जिससे आंत्रपुच्छ पर सूजन आ जाती है, दर्द होने लग जाता है और बुखार भी आ जाता है। दर्दके

असह्य हो जाने पर डाक्टरकी शरण लेनी पड़ती है। डाक्टर तो तत्काल यही सलाह देता है कि सूजे हुए और पीड़ाकारी उपांत्र अर्थात् एपेन्डिक्सको कटवा दिया जाये, ताकि रोगी भयंकर आपत्तिसे, मौतके मुँहसे बच जाये।

अब ज़रा सोचनेकी बात है कि प्रत्येक मानव-शरीरमें आंत्रपुच्छ (एपेन्डिक्स) तो पाया जाता है। क्या इसे कुदरतकी गलती समझा जाये कि जो उसने मनुष्यकी शरीर-रचनामें आंत्रपुच्छको रहने दिया? शरीरशास्त्री तो मानते हैं कि आंत्रपुच्छ भी शरीर-यंत्रका एक उपयोगी पुर्ज़ा है और वह आँतके लिए एंजिनके गवर्नर जैसा काम करता है। ज़रूरत तो इस बातकी है कि मनुष्य खाने-पीनेमें संयम तथा विवेक रखे, ताकि उपांत्र अपने कार्यको भलीभाँति करता रहे और सूजन, दर्द आदिका शिकार न बने। यदि आहार आदिके दोषसे वह रोग-ग्रस्त हो जाये तो सरल नैसर्गिक उपाय अपनाकर उसे नीरोग बनाया जाये। यह एक सामान्य नियम है कि भोजनसे शरीरको पोषण मिलता है और उसके रोगको भी, तथा उपवाससे शरीर कमजोर होता है और उसका रोग भी। इसलिए आंत्रपुच्छके प्रकोपको शान्त करनेके लिए मूत्रोपचार सहज, सरल और श्रेष्ठ उपाय है। मूत्र एक ऐसा द्रव्य है जो जन्तुनाशक होते हुए भी शरीरके भीतरी भागमें निर्दोष है; क्योंकि शरीर जिन पाँच तत्त्वोंसे बना है उन्हींमें से वह एक आवश्यक तत्त्व है। मूत्र अद्वितीय तथा निर्दोष रेचक भी है, इसलिए वह गन्दे और सड़े हुए मलको शरीरसे बाहर निकाल फेंकता है। मूत्रकी इस प्रक्रियासे उपांत्रका गन्दा और सड़ा मल बाहर आ जाता है, जिससे उसकी सूजन व पीड़ा दूर हो जाती है। यदि आवश्यकता हो तो मूत्रका एनिमा भी लिया जा सकता है।

डाक्टर मगनलाल सलारिया अहमदाबादके एक प्रामाणिक डाक्टर तथा वैद्य हैं और मुख्यतः आयुर्वेदिक पद्धतिसे ऑपरेशन करते हैं। उनका औषधालय सरसपुरके चौराहे पर है, जिसमें रोगियोंको रखनेकी

भी व्यवस्था है। उन्हें मूत्रचिकित्सामें बहुत श्रद्धा है। इस समय उनकी आयु ६५ सालसे भी अधिक है। वे स्वस्थ हैं, फिर भी मूत्रको अपने लिए एक निर्दोष द्रव्य मानते हैं। रोगसे दूषित वातावरणमें मूत्र शारीरिक स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए एक फ़ौलादी बख़्तर है, इस तथ्यकी जाँच करनेके लिए उन्होंने चार मास तक अपना पेशाब पिया और दिनमें एक बार पथ्य आहार किया। तीन मासमें ही उनके शरीरमें अधिक स्फूर्ति आ गयी और शरीर लाल-सुर्ख़ हो गया। बुढ़ापेके कारण मुँह पर जो झुर्रियाँ पड़ गयी थीं वे मिट गयीं और वज़न भी १४ पौंड बढ़ गया। फिर तो वे नियमित मूत्रपान करने लग गये।* उनमें अति स्फूर्ति तथा शक्ति है। इतनी बड़ी अवस्थामें भी करीब १४ घंटे काम करते हैं, पर थकते नहीं हैं। उनके पास जो रोगी आते हैं, उन्हें मूत्रोपचारके लिए प्रेरित करते हैं और यथासम्भव इसी उपचारसे ठीक करते हैं। साथ ही मूत्रोपचारका प्रचार भी ख़ूब करते हैं।

डाक्टर सलारियाने एपेन्डिसाइटिसके एक रोगीको मूत्रोपचारसे ठीक किया है, जिसका विवरण इस प्रकार है :—

"श्री रमणलाल त्रिवेदी ३० बरसके एक जवान हैं। अनेक वर्षोंसे उन्हें कब्ज़ था और वे पहले संग्रहणीसे पीड़ित रह चुके थे। उनके पेटके दायें भागके कोनेमें तीव्र वेदना होने लगी और बुख़ार भी हो गया। किसी डाक्टरने निदान किया कि उन्हें एपेन्डिसाइटिस है, इसलिए ऑपरेशन कराना पड़ेगा। फिर सर्जनके तौर पर डा० सलारियाको बुलाया गया। उन्होंने रोगीको अपने दवाख़ानेमें दाख़िल

* इस समय डा० सलारियाकी अवस्था लगभग ८४ वर्षकी है। उनका मूत्रपान नियमित चल रहा है। अब वे मूत्रपानके लिए करपात्री हो गये हैं। दिनभरका मूत्र वे पी जाते हैं और रातके मूत्रसे मालिश करते हैं। 'मानव-मूत्र विषघ्न एवं रसायन है'—इस आयुर्वेदिक विधानको वे चरितार्थ करते मालूम होते हैं। —संपा०

होनेकी सलाह दी और कहा कि यदि ज़रूरत होगी तो ऑपरेशन भी किया जायेगा। वह रोगी ५ अक्तूबर, १९५८ को उनके चिकित्सालयमें दाखिल हुआ। उन्होंने ऑपरेशन तो नहीं किया, किन्तु उसे समझाकर मूत्रप्रयोग शुरू करवा दिया। उसे दिनमें तीन बार -- सुबह, दोपहर और शामको अपना पेशाब पिलाया गया और दो पिंट अर्थात् ढाई पौंड पेशाबका एनिमा दिया गया जिससे खूब मल निकल गया। दूसरे और तीसरे दिन भी यही उपचार किया गया, जिसका परिणाम यह आया कि पेट और आँतोंमें जमा हुआ पुराना सूखा मल बाहर निकल गया और रोगी नीरोग हो गया।"

डा० सलारियाने उपर्युक्त विवरण मुझे नूतन वर्षके अभिनन्दनके साथ दिया जो मेरे लिए नये बरसका शुभ शकुन था।

२. कोलाइटिस (बड़ी आँतकी सूजन और सड़न)

श्री योगेन्द्र परीख खादी ग्रामोद्योग अन्वेषण समिति, हरिजन आश्रम, अहमदाबादमें काम करते हैं। वे सन् १९५९ के जूनमें दुःखदायक कोलाइटिसकी बीमारीके शिकार हो गये। उनकी टट्टीमें खून भी आने लगा था। जब एलोपैथी और होमियोपैथीसे उनकी बीमारी दूर न हुई तब बम्बईके अपने परिचित डा० अदल बहराम एम० डी०, जो स्वयं मूत्रप्रयोग करते थे और अनुकूलताके अनुसार दूसरे रोगियोंसे करवाते थे, की सलाहसे विधिपूर्वक मूत्रोपचार करके वे रोगमुक्त एवं स्वस्थ हो गये।

३. संग्रहणी

(१) श्री भीखालाल नाथालाल कोठारी अहमदाबाद (नाड़ावाड़ाकी पोल, घर नं०・२५०/ २, मदन गोपालकी हवेली, आस्टोडिया) में रहते हैं। वे अपनी रोगमुक्तिका विवरण ता० १४–३–'६१ के पत्रमें इस तरह लिखते हैं:--

"पिछले दस वर्षोंसे मैं पेटके दर्दसे पीड़ित था। दर्द ख़ूब बढ़ गया। बड़े बड़े सब डाक्टरोंको दिखाया, समय-समय पर सैकड़ों इंजे-क्शन लिये, गोलियाँ और दवाओंका तो कोई पार ही नहीं। अपनी शक्तिसे बढ़कर पैसे भी ख़ूब ख़र्च किये। अन्तमें तो तबीयत बहुत ही बिगड़ गयी।

"खाना पचे बिना निकल जाता था। मुझे लगा कि संग्रहणी हो गयी है। १७५ पौंड वज़न था, जो घट कर १२६ पौंड तक पहुँच गया।

"ज़िन्दा रहनेके लिए रोज़ाना एक रुपयेकी दवा खानी पड़ती। मेरी नाकमें दम आ गया। इस अरसेमें एक संबंधीने मुझे 'मानव-मूत्र' की पुस्तक पढ़नेके लिए दी। मैंने पुस्तकको ध्यानपूर्वक पढ़ा।

"ता० १–५–'६० से मूत्रप्रयोग शुरू किया। एक मास मालिश की। बूंद-बूंद पेशाब पीकर दो दिनका उपवास किया, जिसका असर बहुत अच्छा हुआ। आज इस बातको दस महीने हो गये हैं। १७० पौंड वज़न हो गया है। दवाका दर्शन भी नहीं किया है। अब दिनमें तीन बार लगभग ४० औंस पेशाब पीता हूँ। अब मैं ठीक रहता हूँ। ज़रा भी कोई तकलीफ़ हुई कि मूत्र और उपवाससे उस पर काबू पा लेता हूँ।

"प्रयोगसे आर्थिक लाभ भी बहुत हुआ। मैंने बीड़ी पीना और पान खाना छोड़ दिया। इस तरह बारह महीनेमें २५० रुपये बचे और लगभग ४०० रुपये दवाके बचे। डाक्टरके पास जानेका समय भी बचा।"

उपर्युक्त विवरणमें मूत्रप्रयोग करनेके बाद वज़न बढ़नेका जो उल्लेख है उसकी सत्यताकी तसल्ली करनेके लिए उन्हें रूबरूमें बुलाया और मालूम हुआ कि उनके लिखनेके अनुसार ही वज़न बढ़ा था और शरीर स्वस्थ था। उन्हें सूचित किया गया कि सारा पेशाब न लेकर कुछ कम लें।

(२) श्रीमती शान्ताबहन के० पटेल (हबीबी टेरेस, लालबाग, बम्बई) पिछले १२ वर्षसे संग्रहणीसे पीड़ित थीं। उन्होंने दवाओं पर दस हज़ार रुपये ख़र्च कर डाले, परन्तु आराम नहीं हुआ। आख़िर उन्होंने शिवाम्बु चिकित्सा शुरू कर दी। तीन दिनका मूत्रोपवास किया। फिर वे थोड़े दिन फलाहार पर रहीं और रोज़ाना तीन बार शिवाम्बुपान करती थीं। १५ दिनमें वे रोगमुक्त हो गयीं। दो वर्ष हो गये, फिर भी यह रोग नहीं हुआ।

४. आँतका व्रण (अल्सर)

श्री एम० ए० नूराणी (१९४, नागदेवी स्ट्रीट, बम्बई-३) एक मुस्लिम सज्जन हैं। ता. १५-६-६१ को सूरतमें स्वमूत्र विचार-विनिमय सभा हुई थी, जिसमें उन्होंने स्वमूत्रके बारेमें अपना अनुभव विस्तारसे सुनाया था। उसे संक्षेपमें यहाँ दिया है :–

"पच्चीस बरस पहले मेरे पेटमें ड्युडेनल अल्सर हुआ था। मैंने उसकी तकलीफ़ पन्द्रह साल तक बर्दाश्त की। अनेक डाक्टरोंसे उसका इलाज करवाया और परहेज़ रखा। इसमें रोज़ाना तीन रुपये ख़र्च होते थे, फिर भी बीमारी काबूमें नहीं आयी। आख़िर लाचार होकर सन् १९४६ में ऑपरेशन कराया। पेटमें दर्द, दस्तमें ख़ून आना, जी मतलाना, कमज़ोरी, सीढ़ी चढ़ते वक्त साँस फूलना वग़ैरह शिकायतें खड़ी हुईं। इसलिए ज़िन्दगी मुझे एक मुसीबत लगती थी। तब एक दोस्तके कहनेसे मैंने 'मानव-मूत्र' पुस्तक दो दिनमें ही पूरी पढ़ डाली।

"पेशाबको इस्लाम धर्ममें 'नापाक' माना गया है। उसके छूनेसे शरीर अपवित्र हो जाता है, जिससे बन्दगी भी नहीं हो सकती। ऐसी स्थितिमें पेशाबका इस्तेमाल कैसे हो? उसे क्योंकर पिया जा सके? ऐसे अनेक सवाल मेरे दिलमें खड़े हुए, जिनके जवाब मुझे ख्वाबमें मिले।

"एक रात मुझे ख्वाबमें यह प्रेरणा मिली कि तू इस 'आयत' का मतलब समझ ले तो पेशाब पी सकता है।

"सुरतुल् बकरा, आयत नं. १७३ का भावार्थ — खुदा-तालाने तुम्हारे लिए मुरदार, हादिसासे मरे हुएका खून, सूअरका माँस और जो खुदाके नाम पर ज़िबह न किया गया हो, इन सबको हराम कहा है यानी इन्हें खाना नहीं चाहिए। ख़ुदाके क़ानूनको न तोड़ते हुए लाचारीकी हालतमें कोई इन्सान इन्हें खा ले तो वह गुनाह नहीं समझा जायेगा, क्योंकि ख़ुदा मुआफ़ी देनेवाला बड़ा रहीम है।

"फिर दूसरी आयत (सुरतुल् माइदा, आयत नं. ६) सुझायी। इसमें बताया है कि 'तुम्हारे पास पानी न हो तो साफ मिट्टीसे वुजू करके बन्दगी कर सकते हो।'

"उस प्रेरणाके बल पर प्रभुकी अद्भुत गुणकारी दवा (पेशाब) सुबह-शाम पीने लगा और आठ दिनके पुराने पेशाबसे मालिश भी करने लगा। परहेज भी पूरा रखा। चालीस दिनके बाद मेरी बीमारी दूर हो गयी और शरीरमें ताक़त आयी।

"इस्लाम धर्मके पैगम्बर हजरत मुहम्मदके जमाई अली इब्ने अबीतालिब एक बैतमें फरमाते हैं:—

'तेरी दवा तेरेमें है और तू उसे जानता नहीं है। तेरा रोग तेरेमें है, जिसे तू देख नहीं सकता।'

"एक मुस्लिमके नाते मैं आप सबको यकीन दिलाता हूँ कि इस दवासे नुकसान तो होता ही नहीं है। मेरा यह निवेदन इसलिए है कि मैं अपने गरीब दुःखी भाइयोंकी इस तरह कुछ सेवा कर सकूँ।"

५. निष्क्रिय आँतें

श्री भोजराज संचेती मोमासर (जि. चूरू, राजस्थान) में रहते हैं। उमर ५८ वर्ष। लगभग १५ सालसे इन्होंने अपने घरका भोजन

सादा एवं सात्त्विक बना रखा है — मिर्च-मसाले, चाय आदिका उपयोग नहीं होता है। करीब दस वर्षसे जनकल्याण और समाजसेवा कर रहे हैं। इन्होंने निजी अनुभवके आधार पर सैकड़ों रोगियोंको मूत्रोपचार एवं प्राकृतिक उपचारसे नीरोग तथा स्वस्थ किया है। इन्होंने मूत्र-प्रयोगका स्वानुभव ता. १९-१-'७७ को मुझे इस प्रकार सुनाया :—

"४७ वर्षकी अवस्थामें मेरी जठराग्नि मंद और आँतें निष्क्रिय हो गयीं। अनेक प्रचलित उपचार करने पर भी कुछ लाभ नहीं होता था। निराशाकी स्थितिमें सहसा योगकी ओर मेरा ध्यान गया। यौगिक क्रियाओंसे काफी फायदा हुआ, जिससे मेरी निष्ठा दृढ़ होती गयी। पूर्ण स्वस्थ होनेके लिए मैंने रानीपत्रा, जि. पूर्णिया (बिहार)में डॉ० रवीन्द्र चौधरीकी देख-रेखमें प्राकृतिक चिकित्साका श्रीगणेश कर दिया। लगभग साढ़े तीन मासके उपचारसे अनेक लाभ हुए, पर यथेष्ट स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हुआ। इस अरसेमें मुझे प्राकृतिक चिकित्सा सीखनेका सुयोग प्राप्त हुआ।

"सन् १९७० में मेरा बम्बई जाना हुआ। वहाँ जैन मुनियों और दूसरोंसे मूत्रचिकित्साकी जानकारी प्राप्त हुई और उसका प्रयोग करनेकी अभिरुचि भी हो आयी। कलकत्ता वापस आने पर 'आरोग्यका अमूल्य साधन — स्वमूत्र' का दो बार पारायण किया, जिससे इस चिकित्सामें दृढ़ निष्ठा हो गयी और मैंने उसका प्रयोग करनेका निर्णय कर लिया। उन्हीं दिनों फ्लूका प्रकोप था, जिसका शिकार मैं भी हो गया। चार-पाँच दिनके मूत्रपानसे मेरा बुखार काफूर हो गया। फिर मोमासर आ जाने पर मुझे मीयादी बुखार (टायफाईड) ने आ घेरा, जो विधिपूर्वक मूत्रप्रयोग करनेसे २१ दिनमें जाता रहा।

"फिर स्वानुभवके आधार पर विविध रोगोंसे पीड़ित सैकड़ों रोगियोंको मैंने इस सरल एवं अमूल्य उपचारसे नीरोग एवं स्वस्थ बनाया है जिसका रिकार्ड रखा होता तो एक उपयोगी एवं हितकारी

पुस्तक तैयार हो सकती थी। सैकड़ों रोगियोंके उपचारके दौरान यह खास अनुभव हुआ कि एक भी रोगीको इस उपचारसे किसी भी प्रकारकी हानि नहीं हुई है।

मेरे घरमें देशी व अंग्रेजी दवाका उपयोग नहीं होता है। प्राय परिवारके सभी सदस्योंने इस चिकित्सासे लाभ उठाया है।"

९

गुरदेके रोग

१. नेफ्राइटिस (गुरदेकी सूजन)

श्री अंबालाल के० पटेल, बी० एससी०, एल-एल० बी० अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटीके स्टोर सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। उन्होंने सन् १९५८ में मूत्रप्रयोग द्वारा अपने एक असाध्य समझे जानेवाले रोग अर्थात् रीढ़के अकड़ाव (स्पोंडेलाइटिस)से मुक्ति पायी थी, जिसका विवरण वात-व्याधिके प्रकरणमें दिया जानेवाला है, तभीसे वे इस प्रयोगके समर्थक तथा प्रचारक हुए हैं। उन्होंने इसी प्रयोगसे अपनी छोटी लड़कीको नेफ्राइटिससे मुक्ति दिलायी है। श्री अंबालाल पटेल अपने ता० २३–९–'५९ के विवरणमें लिखते हैं :—

(१) "चि० नारायणी सात बरसकी उमरमें ही नेफ्राइटिसकी शिकार हो गयी, जिससे उसके पेशाबमें खून और पस आने लगा, शरीर कमज़ोर होने लगा, गलेमें पीड़ा हो जाती थी और बुखार भी आ जाता था। उसको मणिनगरके लल्लुभाई गोरधनदास अस्पतालमें एक सप्ताह तक रखा था। उसके बाद घरमें दस दिन तक वही इलाज चलता रहा। उस समय तो रोग तुरन्त शान्त हो गया, किन्तु दो-तीन सप्ताह बाद उसी रोगका प्रबल आक्रमण

हुआ और पेशाबमें मात्र खून ही आने लगा। मेरे समझानेसे वह मूत्रप्रयोग करनेके लिए तैयार हो गई। कंपकंपीके साथ उसने एक औंस पेशाब पी डाला, जिसका जादू-सा असर हुआ। थोड़े समय बाद जो पेशाब आया वह बहुत ज़्यादा था, किन्तु गाढ़ा न था; उसे भी उसने पी डाला। फिर तो जो पेशाब आता वह पानी-सा स्वच्छ होता। उसे भी विश्वास हो गया कि कुछ अच्छा असर हुआ है। इसलिए दिनमें दो-तीन बार वह दो औंस पेशाब पीने लगी। यों लगातार लगभग पन्द्रह दिन पेशाब पीनेसे उसका रोग नष्ट हो गया। महीनों बाद यह विवरण लिख रहा हूँ। इस अरसेमें फिर कभी रोग दिखायी नहीं दिया, मुँह या सिरकी किसी तकलीफ़ने उसे नहीं सताया और वह चलने-फिरने और दौड़ने लग गयी है।"

डा० परागजी डी० देसाईके परामर्श और मार्गदर्शनसे बम्बईके श्री महेशकुमार वि० जोशीने मूत्रोपचार द्वारा नेफ्राइटिसके रोगसे मुक्ति पायी, जिसका विवरण इस प्रकार है:—

(२) महेशकुमारजी पिछले तीन बरससे नेफ्राइटिससे पीड़ित थे। उन्होंने बम्बईके तीन डाक्टरों, एक वैद्य और हरकिशनदास हॉस्पिटलमें अपना इलाज करवाया था, परन्तु उनका रोग मिटा नहीं। आख़िर उन्होंने ता० १–२–'६७ से मूत्रप्रयोगको अपनाया। उन्होंने चार दिनका मूत्रोपवास किया था। उपवासके दिनोंमें उनके सारे शरीर पर सूजन आ गयी थी। तालाबकी काली मिट्टीको पुराने पेशाबमें भिगोकर सूजे हुए अंगों पर रखा, जिससे थोड़े समयमें ही आराम हो गया था। वे पन्द्रह दिन तक अपना सारा पेशाब पीते रहे। एक बारमें आधा गिलास पीते थे। उन्होंने एक मास तक रोज़ाना मूत्रमालिश की थी, जिसमें डेढ़ घंटा लगता था। वे गरम पानीसे स्नान करते थे। उन्होंने दाँतके दर्दके लिए भी मूत्रका उपयोग किया था। अब उनका स्वास्थ्य अच्छा है। ——संपा०

२. पेशाबका रुक जाना

डाक्टर मगनलाल सलारियाके पास एक विचित्र केस आया। रोगीका नाम नाथा केसराजी था। वह पावैया जातिका था। उसकी उमर ३५ बरसकी थी। उसने २१ बरसकी उमरमें अपनी जननेन्द्रियका छेदन करवा लिया था। उसका पेशाब रुक गया। पेशाबकी नलीमें इतनी सूजन आ गयी कि उसे सिविल अस्पतालमें दाख़िल होना पड़ा। वहाँ पेशाब करानेके लिए उसकी मूत्रेन्द्रियमें सलाई डाली गयी, किन्तु पेशाब नहीं हुआ और सलाईसे पीड़ा असह्य हो गयी। डाक्टरी इलाजने उसकी नाकमें दम कर दिया। आख़िर किसी परिचित व्यक्तिने उसे डा० सलारियाके पास भेजा। ता० ५–१२–'५९ को वह उनके दवाख़ानेमें दाख़िल हुआ। पेशाबका जो रास्ता बन्द हो गया था उसके नीचे ऑपरेशनसे दूसरा रास्ता बनाया जाये तो रोगीको आराम मिल सकता था। जाँचके बाद डाक्टरको मालूम हुआ कि सूजनसे पेशाबकी नली बन्द हो गयी है, फिर भी ऑपरेशनसे पहले उन्होंने मूत्रप्रयोग आज़मा लेनेका विचार किया। मूत्रप्रयोगमें तो रोगी-को उसीका मूत्र पिलाना होता है। परन्तु उस रोगीको तो पेशाबकी एक बूँद भी न आती थी। ऐसी स्थितिमें किसी स्वस्थ व्यक्तिका मूत्र पिलाना पड़ता है। इसलिए मजबूर होकर डाक्टरने अपना मूत्र पिलानेका विचार किया।

डाक्टर सलारियाने उस रोगीको रातके ११ बजे तक तीन बार अपना पेशाब पिलाया। रातको लगभग ढाई बजे बीमारकी खाटके पास जाकर उन्होंने आश्चर्यकारी दृश्य देखा। वह रोगी खर्राटे ले रहा था और उसका बिस्तर पेशाबसे तर हो गया था। पेशाब होता ही रहा, परन्तु रोगीको उसका बिल्कुल भान न था। वह जागा तो उसे काफ़ी आराम महसूस हुआ। फिर तो उसे अपना ही पेशाब पिलाया जाने लगा, जिससे उसके शरीरमें भरा हुआ सारा पेशाब निकल गया। वह दो तीन दिनमें ही ठीक हो गया। यह है पेशाबकी आश्चर्यजनक शक्ति!

३. मूत्रपीड़ा और अन्य अनेक रोग

श्री डाह्याभाई मकनजी झवेरी मोरवी (सौराष्ट्र) के निवासी हैं। बम्बईमें जौहरीका व्यवसाय करते हैं। उनकी आयु ८१ बरसकी है। अति वृद्ध होनेसे नासिक रोड पर कुबेर भवनमें आरामके लिए रहते हैं। उन्होंने मूत्रप्रयोगसे अनेक लाभ उठाये हैं। 'मानवमूत्र' पुस्तकके प्रचारके लिए उन्होंने एक हज़ार रुपये भारत सेवक समाजके कार्यालयमें भेज भी दिये हैं।

उनका ता० २–४–'६० का पत्र इस प्रकार है:—

"चार बरस पहले मुझे पेशाबकी बहुत तकलीफ़ थी। मैंने प्रोस्टेट ग्लैन्ड (मूत्राशयके मुँह पर गाँठ) का ऑपरेशन कराया। करीब एक महीना अस्पतालमें रहकर मैं घर आया। परन्तु पेशाब रुक-रुक कर आता, पीड़ा होती और जलन भी। सर्जनसे जब यह बात की, तब उन्होंने कहा, 'गाँठ काट डालनेके बाद ज़ख्म भर जानेसे नस सिकुड़ गयी है। इसलिए नली डालकर उसे ज़रा चौड़ा करना होगा।' डाक्टरने वैसा किया। परन्तु मुझे असह्य पीड़ा हुई और उस समय मैं बेहोश भी हो गया। उसके बाद एक महीने तक मैं चारपाईसे लगा रहा। बहुत ख़र्च किया, फिर भी पीड़ा ज्योंकी त्यों बनी रही। सर्जनने फिर नली डालनेकी सलाह दी। पहलेकी असह्य पीड़ाके कारण मैं फिरसे वैसी हिम्मत न कर सका और चालू पीड़ाको सह लेनेमें ही सन्तोष माना। यह स्थिति चार बरस तक रही। इस अरसेमें जब पेडूमें थोड़ा-सा भी पेशाब इकट्ठा हो जाता, तो तुरन्त मुझे पेशाबके लिए उठना पड़ता। इसलिए रातको रोज़ तीन-चार बार पेशाबके लिए उठता और ठंड लगने पर तो पाँच-छः बार उठना पड़ता, जिससे नींद ख़राब होती। इस तरह रातको बार-बार उठनेसे ठंडी हवा सहन करनी पड़ती, जिससे सर्दी हो जाती, फिर कफ़ निकलता और दोनों बग़लोंमें बेहद दर्द होता।

करवट लेकर सोया भी न जाता। इस तरह महीने दो महीनेमें हवा लगती कि पीड़ा खड़ी हो जाती।

"कन्सल्टेंट (राय देनेवाले) डाक्टरोंको दिखाया जाये तो वे पेशाब, खून, टट्टी और कफ़की रिपोर्ट माँगते हैं और उन्हें एक्सरेके फ़ोटो भी बताने पड़ते हैं।

"मैंने मन मारकर यह सब किया। १६ एक्सरेके फ़ोटो बतलाये। तब डाक्टरने कहा कि बग़लोंमें सर्दीके पैचिज़ हैं, जिनमें कफ़ भर गया है, इसलिए दर्द होता है। इसके लिए २१ दिन तक दवा लेनेकी सूचना दी और कई इंजेक्शन दिये। इन प्रयोगोंसे सारे शरीरमें ऐसी खुजली उठी कि खुजलीवाले रोगीकी तरह खुजलाते-खुजलाते सारा शरीर खरोंचोंसे भर गया और कहीं कहीं खून भी निकल आया। रात-दिन चैनसे बैठ भी नहीं सकता था। कंधों और छातीमें दर्द होता था। डाक्टरने हृदयकी जाँच करानेको कहा। गरम दवाइयोंके कारण पेशाब भी बूंद बूंद आता और असह्य पीड़ा होती। मैं गरम पानीके टबमें बैठता तब कहीं थोड़ा आराम पाता।

"डाक्टरने गुरदेमें पथरीकी सम्भावना बतायी, नहीं तो ऐसी पीड़ा न होती। इसलिए उसका इलाज भी चला।

"मेरे भतीजेको हार्ट अटैक हुआ था और ब्लड-प्रेशर भी था। उसने आपकी लिखी हुई पुस्तक मँगवाकर पढ़ी थी और तदनुसार मूत्रप्रयोग भी किया था। उसने एक दिन ज़िक्र किया कि मूत्रोपचार करनेसे उसे कुछ लाभ हुआ है। इसलिए मैंने वह पुस्तक मँगायी। अस्वस्थ होते हुए भी मैंने सारी पुस्तक पढ़ डाली। मैंने अपने ४० बरसके फ़ेमिली डाक्टरकी सलाहसे मूत्रप्रयोग शुरू कर दिया।

"मैं रोज़ाना तीन बार पेशाब पीने लगा और मैंने दूसरी सब दवाइयाँ बन्द कर दीं। मुझे सुबह कब्ज़ रहता था, अब मूत्र-पानसे टट्टी साफ़ आने लगी और पेशाब भी ठीक होने लगा। साथ

ही पुराने पेशाबसे मैं मालिश भी करने लगा और बादमें गर्म पानीसे स्नान कर लेता था। इस तरह एक महीने तक यह प्रयोग चला, जिससे निम्नलिखित लाभ हुए :—

१. बवासीरकी तकलीफ़ बहुत समयसे थी, वह मिट गयी।

२. कब्ज़ रहता था, वह बहुत कम हो गया। शुरूमें काले रंगकी टट्टी आती थी, अब ठीक आती है।

३. पहले भूख नहीं लगती थी, अब लगती है और रुचिसे खाता हूँ।

४. पीठ पर सूखी खुजली जैसा एक दाग़ था, मूत्रमालिशसे वह साफ़ हो गया।

५. पीठमें दर्द बिल्कुल नहीं होता।

६. छातीमें पीड़ा बिल्कुल नहीं है।

७. पेशाब खुलकर आता है, परन्तु नली तंग होनेसे थोड़ी जलन होती है।

८. पहले रातमें तीनसे छः बार उठना पड़ता था, अब एक या दो बार उठना पड़ता है।

९. पहले पेडूमें थोड़ा पेशाब भर जाता कि पेशाबकी हाजत हो जाती, किन्तु अब ऐसी बात नहीं है। पेशाब काफ़ी जमा हो जाने पर ही हाजत होती है।

१०. गुरदेमें बारीक रेत या पथरी होनेकी डाक्टरको जो आशंका थी वह अब नहीं रही; क्योंकि गुरदेमें किसी प्रकारका दर्द नहीं है।

११. डेढ़ मासमें सर्दी नहीं हुई, बुख़ार नहीं आया और छातीमें दर्द नहीं हुआ है।

१२. पहले बायें कानके पास एक उभरी हुई जगह थी। वहाँसे पीड़ा उठकर सिरके बायें भागमें पहुँच जाती और आधी रात तक बहुत पीड़ा होती। १५ दिनोंसे वह मिट गयी है।

१३. दाहिने हाथ पर सफ़ेद कोढ़के दो छोटे-छोटे दाग़ थे, जिनकी दवा करनेसे डाक्टरने इनकार कर दिया था, वे दाग़ भी काफ़ी साफ़ हो गये हैं।

१४. शरीरमें जो खाज होती थी वह मूत्रमालिश शुरू करनेसे ही बन्द हो गयी थी।

१५. जिस चीज़के खानेसे मुझे तुरन्त सर्दी या गर्मी हो जाती थी वह भी अब अपना बुरा असर किये बिना हज़म हो जाती है। जैसे कि डेढ़ बरससे बवासीरके कारण दूध या दहीके साथ बाजरेकी रोटी खाना छोड़ रखा था, अब वह शुरू कर दी है और गुड़ खाना भी शुरू कर दिया है, फिर भी बवासीर मालूम नहीं होती।

"इस प्रकार मुझे अनेक लाभ हुए हैं। इसमें ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं है। खोटका बेटा अपने बापकी गोदमें पेशाब कर देता है तो उसकी बहन कहती है, 'लो, इसने बापको पवित्र कर दिया,' यह कहावत यहाँ चरितार्थ होती है। पेशाबकी मालिश करते वक्त उस पर प्रीति पैदा होती है, क्योंकि उससे फ़ायदा मालूम होता है।"

४. मूत्रकी महापीड़ा*

मैंने यह चेतावनी बारंबार दी है कि जिसके खूनका दबाव कम हो उसे मूत्रोपचारमें लम्बा उपवास करके अपनी कमज़ोरीको बढ़ाना नहीं चाहिये। मैं भी इसी नियमका पालन करता आया हूँ।

* सन् १९६० में लेखकका स्वानुभव।

मैं अपने शरीर पर प्रयोग तो कर सकता हूँ, पर उसे ख़तरेमें नहीं डाल सकता। इसलिए मेरे उपचारमें जब कभी कोई खतरा खड़ा होता, तब जो साधन कारगर सिद्ध हुआ है उसीका सहारा लेता और ख़तरेको दूर करता। जब तक हम स्वमूत्रके उपचारकी पद्धतिको व्यवस्थित तथा निश्चित नहीं कर पाते, तब तक हमें गंभीर रोगोंके उपचारके लिए ऐसी वृत्ति रखनी होगी। मूल द्रव्यमें हमारी श्रद्धा होने पर भी हमें ऐसा इसलिए करना पड़ता है कि हमें उसके शास्त्रीय उपयोगका ज्ञान नहीं है। हमें इस अज्ञानताके दोषको दूर करना चाहिये। इसी आशयसे हमने अहमदाबादमें 'मूत्रचिकित्सा अनुसंधान केन्द्र'× खोला है। अनेकोंके अनुभवके बाद मूत्रोपचारकी शास्त्रीय पद्धति मिल जाने पर हमारी कठिनाई दूर हो जायेगी।

उपचारके दौरान भी गत वर्ष सितम्बर महीनेमें सर्दीसे मुझे खाँसी हुई और पूरा पेशाब नहीं हुआ, जिससे पाँवों पर सूजन आयी और बढ़ी। उसे दूर करनेके लिए डाक्टरकी मदद लेनी पड़ी। परन्तु लेनेके देने पड़ गये अर्थात् ज़रूरतसे ज्यादा दस-ग्यारह पौंड पानी निकल गया। सामान्यत: मेरा वज़न १०० पौंड रहता था, उसके बदले ८९ पौंड हो गया और कमज़ोरी बढ़ गयी। परिणामत: २१ सितम्बरके रोज़ लकवेका हमला हुआ, उसे फ़ौरन मिटानेके लिए डाक्टरने इंजेक्शन दिया। परन्तु उसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि पेशाब बन्द हो गया। 'लेने गयी पूत और खो बैठी खसम' वाली बात हुई। तीन घंटे तक पेशाबकी एक बूँद भी न आयी और दर्द था बेहद! इसलिए पड़ोसी डाक्टरको बुलाकर पेशाब निकलवाया, पर इतनेसे काम पूरा नहीं हुआ। फिर पेशाब रुक गया। चौबीस घंटे बीत गये। असह्य पीड़ा होने लगी। डाक्टरको बुलाया। वे अपना साधन लेकर आये, परन्तु साधनका उपयोग करनेसे पहले उन्होंने कहा—

× अब बंद हो चुका है।

"इस तरह बार-बार पेशाब निकालनेमें ख़तरा है। विजातीय साधन अंदर जानेसे मूत्र-नलीमें सूजन आनेका पूरा भय है और सूजन आ जाये तो ऑपरेशन करके पेशाबके लिए दूसरा द्वार खोलना पड़े।"

मैंने कहा — "मूत्र-नलीकी सूजनको रोकनेके लिए आप किसी ऐसे जन्तुनाशक द्रव्यका उपयोग करें जो शरीरके भीतरी भागके लिए हानिकर न हो।"

उन्होंने कहा — "ऐसा कोई जन्तुनाशक द्रव्य नहीं है जिसका उपयोग शरीरके भीतरी भागमें हो सके।"

मैंने कहा — "मूत्र जंतुनाशक द्रव्य है और वह शरीरके अंदरका तत्त्व है, इसलिए निर्दोष है। आप अपना साधन पेशाबमें डुबोकर अंदर डालें, ताकि सूजन आनेका भय न रहे।"

डाक्टरने मेरी बात मानकर वैसा किया। पेशाब १९ औंस हुआ, जो गाढ़ा, गंदला और लाल सिन्दूर जैसा था। चैन पड़ा। थोड़े समयमें पेशाबकी हाजत हुई, ज़ोर हुआ और बूंद-बूंद निकलने लगा। खूब जलन होने लगी। फिर भी बूंद-बूंद निकलनेसे कुछ चिन्ता कम हुई। इस बारेमें डाक्टर साहबसे पूछा कि पेशाब बहुत जलनके साथ बूंद-बूंद होता है, इसलिए रातको नींद नहीं आती, क्या किया जाये?

उन्होंने सलाह दी — "अमुक चार टिकियाएँ मँगवा कर खा लें।"

मैंने शंका की — "परन्तु फिर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी?"

उन्होंने कहा — "वे कुछ नुकसान नहीं करेंगी। परन्तु यदि आप वे टिकियाएँ नहीं लेंगे और पेशाबकी पीड़ा चलने देंगे, तो प्रोस्टेट ग्लैंडके सूजनेसे ऑपरेशन करानेकी ज़रूरत खड़ी हो जायेगी, जो इस उम्रमें आपके लिए ख़तरनाक है।"

यह बात सुनकर मैं सोचने लगा। मुझे यह तुरन्त सूझ आया — 'मैं कैसा दंभी हूँ! मेरे कहनेसे दूसरे यह प्रयोग करते हैं, जिसे सुनकर मैं खुश होता हूँ। मैं खुद फिर प्रयोग क्यों न करूँ?' एक घंटेकी कोशिशसे बूँद-बूँद करके आधी छटाँक पेशाब इकट्ठा हुआ, जो लाल शिगरफ़ जैसा, गाढ़ा और गंदला था। उसे मैं आँखें बंद करके पी गया। फिर दूसरे घंटेमें आधी छटाँक इकट्ठा हुआ, उसे भी पी गया। एकाध घंटेके बाद पेशाबकी धारा शुरू हुई और अन्तमें बूँद-बूँद निकला। जलन तो होती ही थी। फिर तो जैसे-जैसे पेशाब पीता गया वैसे-वैसे पेशाबकी धारा बढ़ती गयी और जलन कम होने लगी। इस तरह आठ दिनमें ज़रा भी जलनके बिना स्वच्छ मूत्रकी धारा निकलने लगी और मैं बड़े ख़तरेसे बच गया।

एक मास बाद मैं यह हाल लिख रहा हूँ, बिल्कुल निर्भय हूँ और अब स्वस्थ मनुष्यकी भाँति मुझे स्वाभाविक पेशाब होता है।

यह आवश्यक है कि जो व्यक्ति यह नैसर्गिक उपचार करे उसे यह देखते रहना चाहिये कि शरीर पर प्रयोगका क्या असर हो रहा है और किसी भूलके कारण ख़राब असर मालूम हो तो तुरन्त सामान्य विवेकसे अपने उपचारमें परिवर्तन करके लाभकारी पद्धति अपनानी चाहिये। ऐसा करनेमें यह सुरक्षा है कि ऐसे परिवर्तनसे कुछ हानि तो होती नहीं और हमें सच्चे रास्तेका पता चल जाता है। प्राकृतिक उपचार भी मनुष्यकी शारीरिक प्रकृतिके अनुसार कमोबेश असर करते हैं। यह संभव है कि सभी शारीरिक प्रकृतियोंके लिए एक ही परिचर्या अनुकूल न भी आये। इसलिए सच बात तो यह है कि जो व्यक्ति अपने शरीरका वैद्य या डाक्टर खुद होगा और अपने शरीर पर होनेवाले अच्छे-बुरे असरको समझकर नैसर्गिक उपचारोंका समन्वय करेगा, उसका स्वास्थ्य उसीके हाथमें रहेगा।

५. डायबिटीज़ और हाई ब्लडप्रेशर

डायबिटीज़ और हाई ब्लडप्रेशर दोनों रोग आये दिन बढ़ते जा रहे हैं। भोगी एवं त्यागी दोनों इन रोगोंसे आक्रान्त देखे जाते हैं। साधारण शिक्षित और उच्च कोटिके विद्वान दोनों इन व्याधियोंसे पीड़ित हैं। लोकसेवक तथा लोकनेता भी इन बीमारियोंसे मुक्त नहीं हैं। वैद्य और डाक्टर भी इन बीमारियोंके शिकार हो जाते हैं।

इस यांत्रिक एवं वैज्ञानिक युगने हमारे जीवनको असंतुलित कर दिया है। संतुलित जीवनका अर्थ है मन और इन्द्रियों द्वारा संतुलित व्यवहारका होना। मन, भोजन, श्रम और विश्राम इन चारोंमें सन्तुलन न रहनेसे हमारा स्वास्थ्य बिगड़ता है और हमें अनेक व्याधियाँ आ घेरती हैं। उपर्युक्त दोनों रोगोंका भी मूल कारण यही असन्तुलित जीवन है।

श्री मणिलाल वी० देसाई नवसारी (गुजरात) में रहते हैं। उनकी रोगमुक्तिका विवरण 'भारत सेवक' के जुलाई, १९६५ के अंकमें प्रकाशित हुआ था, जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है:—

—संपा०

"मैं पिछले बारह-तेरह वर्षसे डायबिटीज़ तथा हाई ब्लडप्रेशर और पाँवोंकी सूजनसे पीड़ित था, जिसके लिए मैंने अनेक दवाएँ और उपचार किये, परन्तु उनसे किसी प्रकारका लाभ नहीं हुआ, बल्कि 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।' आख़िर ता० २०–४–'६५ की सुबह प्राचीन मूत्रचिकित्सा केन्द्र, अहमदाबादमें दाख़िल हुआ और डाक्टरकी सलाहसे यथाविधि मूत्रप्रयोग शुरू कर दिया। जल्दी ही मेरी सब तकलीफ़ें दूर हो गयीं। फिर अहमदाबादके सिविल अस्पतालमें अपने पेशाबकी जाँच करवायी। पेशाबमें खाँड बिल्कुल न थी, ब्लडप्रेशर नार्मल था और पाँवोंकी सूजन भी न थी। मैं घर जाकर भी इस प्रयोगको चालू रखूँगा।"

६. डायबिटीज़ और हृदयरोग

श्री घनश्याम केशवलाल व्यास अहमदाबादकी एक प्रतिष्ठित शिक्षण संस्था शारदा मंदिरके भूतपूर्व शिक्षक हैं। उमर ६५ वर्ष। डाक्टरी निदानसे मालूम हुआ कि उनके खूनमें खाँड है, ब्लडप्रेशर है, हृदय चौड़ा हो गया है, जिसका असर गुरदे पर हुआ है; और फेफड़ेमें तथा हाथ-पाँवों पर सूजन है। उन्हें इन्स्युलिनका इन्जेक्शन लेना पड़ता, डिजॉक्सिन, लेसीक्ष और मल्टी विटामिनकी गोलियाँ रोज़ खानी पड़ती थीं, फिर भी उन्हें कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ।

आखिर अपने वयोवृद्ध मित्र श्री चन्दुभाई दवेकी सलाहसे वे मूत्रप्रयोग करने लगे। दिनभरका सारा पेशाब वे पी जाते हैं, उसे नाकमें चढ़ाकर नासिकाओंकी शुद्धि करते हैं, उससे दस मिनट आँखें धोते हैं और कुल्ले करते हैं, गंजके लिए सिरपर मूत्रपट्टी रखते हैं और हाथ-पाँवोंकी मालिश करते हैं। वे नमक, घी, तेल, गुड़ और खाँड नहीं खाते हैं। इस तरह यह प्रयोग लगभग छः माससे चल रहा है।

पहले खूनमें खाँड २१० मि० ग्रा० थी जो घट कर १३० मि० ग्रा० हो गयी है। अब इन्स्युलिनका इन्जेक्शन लेना बन्द कर दिया है। केवल रोज एक बार डायोलीनकी आधी टिकिया लेते हैं। दो बार हृदयका कार्डियोग्राम लिया। अब चौड़ा हृदय संकुचित हो गया है। पेशाबने हृदयको ठीक करनेमें मदद की है। डाक्टरी सलाहसे डिजॉक्सिनकी दो टिकियाके बदले एक ही टिकिया लेते हैं। अब खूनका दवाब १३०-८५ रहता है। सभी सूजन नामशेष हो गयी हैं। खोया हुआ स्वास्थ्य फिरसे प्राप्त हो रहा है। शरीरमें स्फूर्ति और मनमें उमंग है। भूख लगती है। रोज़ाना मन्द गतिमे दो मील चल सकते हैं, पर साँस नहीं चढ़ती।

वे शिवाम्बु चिकित्सासे इतने प्रभावित हो गये हैं कि रोग-नाशक एवं स्वास्थ्य-रक्षक शिवाम्बुके भूत तथा वर्तमान भक्तों और प्रचारकोंका कृतज्ञतापूर्वक अभिनन्दन करते हैं।

——संपा०

७. घोड़ीका मधुमेह

(एक कदम आगे)

मेरी तो दृढ़ मान्यता है कि प्रकृतिका नियम एक और अटल है। इसलिए सिद्धान्त-सम्बन्धी नियममें मैंने अपनी श्रद्धा व्यक्त की है कि जो सत्य मानवके लिए चरितार्थ होता है वही सत्य पशुके लिए भी चरितार्थ होता है। मानो इस विस्मृत सत्य नियमकी हमें याद दिलानेके लिए ईश्वरने अकस्मात् मेरे पास बम्बईके एक पशु-चिकित्सक ड्रॉ० जी० एच० वेलिन्करका विवरण भिजवा दिया, जिसका सारांश इस प्रकार है :——

बम्बईवासी श्री एस० एन० शिप्राने मारवाड़से हिन्दी नसलकी एक तेज़ चलनेवाली घोड़ी खरीदी। वह बम्बई पहुँचते-पहुँचते काफ़ी दुबली-पतली हो गयी और यहाँ आकर बीमार हो गयी। उसे डंगर डाक्टरकी देख-रेखमें रखा गया और पौष्टिक चारा दिया गया। फिर भी उसकी हालतमें कोई खास फ़र्क न आया। परन्तु बादमें मालूम हुआ कि उसे बहुत पेशाब होता था और थोड़े-थोड़े समयके बाद होता था। कमर या गुरदेको छूनेसे वह पीड़ा महसूस करती थी। कुछ दिन उसके पेशाबमें खून भी मालूम हुआ। आखिर पेशाबकी जाँच करनेसे पता चला कि उसमें २ प्रतिशत खाँड जाती है।

डंगर डाक्टर यह जान चुके थे कि मूत्रोपचारसे मनुष्योंका मधुमेह रोग मिट जाता है। एक दिनका इकट्ठा किया हुआ पेशाब लगभग चार पौंड नाल द्वारा उसे पिलाते थे। उसे सात नालें पिलायी गयीं। चौथी नाल पिलानेके बाद घोड़ी अपना चारा भलीभाँति

खाने लगी। उसे अब पहलेकी अपेक्षा कम बार पेशाब होने लगा और साथ ही पेशाबका परिमाण भी कम हो गया। पहले उसके पेशाबमें २ प्रतिशत खाँड आती थी, अब ७५ प्रतिशत आती है।

"इतनेमें उस घोड़ीका कोई ख़रीदार आ पहुँचा। मालिकने अच्छी कीमत लेकर उसे बेच दिया।

इससे यह फलित होता है कि जैसे रोगी मनुष्यके रोगका नाशक उसका मूत्र है वैसे रोगी पशुके रोगका नाशक भी उसका अपना मूत्र है। जो प्राकृतिक सत्य नियम मनुष्यको लागू पड़ता है वही सत्य नियम पशुको भी लागू होता है।

८. गुरदेकी पथरी

(१) श्री एस. के. पंडित, C. I. B. ऑफ़िसर, रायपुर (म.प्र.), उमर ४५ वर्ष। सन् १९७० से उनके दायें गुरदेमें दर्द हो आता था। सब प्रकारके इलाज आजमानेके बाद सन् १९७५ में श्री के. जी. पडितकी देख-रेखमें वे मूत्रप्रयोग करने लगे। उन्हें एक मास तक पेशाव, पानी और दूध पर रखा गया, क्योंकि वे उपवास नहीं कर सकते थे। फिर वे हरी शाकभाजी और फल खूब खाते और मलशुद्धिके लिए त्रिफला भी लेते थे। तीन बार मूत्रपान करते और पुराने पेशाबसे मालिश करते थे। उनका दर्द तो जाता रहा है। गत दो वर्षसे उन्हें बिलकुल कोई तकलीफ नहीं हुई है। चूंकि एक चौथाई पथरी है, इसलिए उन्हें मूत्रपान और मालिश चालू रखनेको कहा गया है। —संपा०

(२) श्री नटवरलाल अंबालाल आमोदवाला ता० ५-९-७७ के पत्रमें लिखते हैं:—

"ता० ३०-५-'७७ को मेरे पेटमें दर्द शुरू हुआ था। उसके बाद दिनभर पेशाब न होनेसे मैं तत्काल सिविल अस्पतालमें दाखिल हो गया। सर्जनने पथरीकी बीमारी बतायी। तीन दिन दवा और इन्जे-

क्शन देनेसे मुझे काफी आराम हुआ। इस अरसेमें अस्पतालमें ही 'मानवमूत्र' पुस्तक पढ़नेमें आई। तदनुसार मैंने प्रयोग शुरू कर दिया। सतत तीन मास प्रयोग करनेसे मेरी बीमारी बिलकुल निर्मूल हो गई है।"

९. गुरदे और छातीका दर्द

श्री गुरनामसिंघ लुधियाना (पंजाब) के एक बड़े बिल्डिंग कन्ट्राक्टर हैं। उमर ४५ वर्ष। उनके गुरदे और छातीमें ८ सालसे दर्द रहता था। गांधी नेचर क्योर आश्रम, फलोरमें दो महीने इलाज कराने पर भी उन्हें पूरा आराम नहीं हुआ। स्थानीय मूत्रचिकित्सक श्री विजयकुमार गुप्ता एडवोकेटकी सलाहसे उन्होंने मूत्रोपचार किया और वे १५ दिनमें ही रोगमुक्त हो गये। ——संपा०

१०. अल्ब्यूमिनुरिअ

श्री किरण धीरजलालकी रोगमुक्तिका विवरण ता० १९–७–'७२ के 'मुंबई समाचार' में प्रकाशित हुआ था, जिसका हिन्दी भाषान्तर इस प्रकार है :——

"मुझे १९६३ में अल्ब्यूमिनुरिअका रोग हुआ था। डाक्टरोंका कहना था कि एलोपैथीमें इस रोगकी कोई दवा नहीं है। यदि सावधानी न रखी जाये तो रामशरण हो जाना पड़े। डेढ़ महीना एलोपैथिक उपचार किया, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। आखिर तंग होकर अपने पिताजीके साथ इलाज करानेके लिए बम्बई गया। वहाँके कुशल डाक्टरोंने भी इस रोगको असाध्य बताया। वहाँ रहकर भी लगभग तीन मास एलोपैथिक दवा की, परन्तु बीमारीमें कोई खास फ़र्क नहीं हुआ।

"फिर पिताजीकी सलाहसे मूत्रोपचार शुरू कर दिया। मैं अपना सारा पेशाव पी जाता। चौथे दिन पेशाबकी जाँच करानेसे मालूम हुआ कि वह एकदम साफ़ है। साढ़े चार मासका डाक्टरी उपचार

जो काम न कर सका, मूत्रोपचारने उसे तीन दिनमें कर दिया। कुछ समय यही उपचार चलता रहा, जिससे मैं रोगमुक्त हो गया। अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ।

"अपने अनुभवके बल पर दूसरोंको इस उपचारके लिए प्रेरित करता रहता हूँ। जिन्होंने श्रद्धा एवं धैर्यसे यह उपचार किया है वे रोगमुक्त हो गये हैं। असाध्य रोगोंसे पीड़ित एक वृद्ध स्त्रीको डाक्टरोंने जवाब दे दिया था और वह मरणशय्या पर थी। स्वमूत्र चिकित्सासे वह नीरोग एवं स्वस्थ हो गयी।"

११. बेकार गुरदे

रूसी एम० मलाओवाला बम्बईमें रहते हैं। जनवरी '७२ में वे इतने बीमार हो गये कि उनका वज़न घटने लगा, सारा शरीर ऐंठन एवं तनावसे ग्रस्त हो गया और कमज़ोरीके कारण उन्हें चारपाईकी शरण लेनी पड़ी। कुछ समय बाद उन्हें अस्पतालमें दाखिल होना पड़ा। विविध निरीक्षण एवं परीक्षण करके डाक्टरोंने कहा कि उनके दोनों गुरदे सिकुड़ गये हैं और बेकार हो गये हैं। ऐसी स्थितिमें दूसरे गुरदे लगानेके सिवा और कोई चारा न था। वे और उनके मातापिता वैसा ऑपरेशन करवाना नहीं चाहते थे।

उनके पिता डा० परागजी देसाईके अस्पतालमें ले गये। जाँच करनेके बाद डाक्टरने कहा कि ऑपरेशनकी ज़रूरत नहीं है रोगीको शीघ्र ही घर ले जाकर शिवाम्बु चिकित्सा शुरू कर दे जिससे अवश्य लाभ होगा।

दूसरे ही दिनसे वे दो बार मूत्रपान करने लग गये और चार दिन पुराने पेशाबसे सारे शरीरकी मालिश करने लगे। दो महीने-में वे इतने स्वस्थ एवं सशक्त हो गये कि ४ सितम्बर, '७२ से अपने काम पर जाने लगे। उनका ब्लड यूरिया ११० मिलिग्राम तक आ गया, जो पहले ३५० मिलिग्राम तक बढ़ गया था। उनका वज़न भी बढ़ गया।

नमक, मिर्च–मसाले तथा मांस, मछली और अंडोंका तामसिक भोजन छोड़कर शाक, फल, दूध आदिका सात्त्विक आहार करनेसे उनका पेशाब गंधहीन, स्वादहीन और निर्मल जल-सा हो गया।

डा० परागजी देसाईने मुझे बताया कि रूसी एम० मलाओवाला अपनी बीमारी पर १५ हज़ार रुपये ख़र्च कर चुके थे, फिर भी कुछ फ़ायदा नहीं हुआ था। शिवाम्बुके उपचारमें केवल मूत्रमालिशके लिए थोड़ेसे रुपये ख़र्च करने पड़े थे। ——संपा०

१२. मूत्रमार्गसे ख़ून आना

श्री चन्द्रमणि पाण्डेय चण्डी (ज़ि० नालंदा, बिहार)से ता० २५–१–'७४ के पत्रमें लिखते हैं:——

"मेरी माताजी करीब ५२ साल की हैं। गत पाँचेक बरससे उनके मूत्रमार्गसे बहुत ख़ून आता था। एक दिन तो इतना अधिक ख़ून आया कि वे बेहोश हो गयीं। उन्हें पटनाके अस्पतालमें दाख़िल तो कराया गया, परन्तु जाँचके बाद डाक्टरने कहा——'इसे चुपचाप घर ले जाइये।' ऐसी स्थितिमें सभी सम्बन्धी निराश हो गये।

"सद्भाग्यसे एक पड़ोसीने मूत्रचिकित्साकी पुस्तक पिताजीको दी, जिसे पढ़कर आशाकी एक किरण दिखायी दी। बहुत समझानेके बाद माताजी मूत्रपान करने लगीं और मेरी बहन सात दिनके पुराने पेशाबसे उनकी मालिश करती रहीं। थोड़े ही समयमें वे रोगमुक्त एवं स्वस्थ हो गयीं।

"इसी प्रयोगसे मेरे पाँच साला एक्ज़ीमाको काफ़ी फ़ायदा हुआ है। मेरी प्रेरणासे दूसरे लोग भी इस उपचारसे लाभ उठा रहे हैं।"

१३. पेशाबमें ख़ून

श्री एन० पी० देसाई बलसाडमें रहते हैं। उमर ५० वर्ष। वे दो-तीन माससे पेशाबमें ख़ूनकी बीमारीसे पीड़ित थे। स्थानीय

डाक्टरोंकी दवासे कुछ आराम नहीं हुआ। फिर वे बम्बईके बड़े डाक्टरोंसे मिले। उन्होंने कहा कि कैन्सर अथवा टी० बी० के कारण ऐसा होगा। ख़ून, पेशाब आदिकी जाँच लेबोरेटरीमें करवायी गयी और १५ दिनके बाद रिपोर्ट भेज देनेको कहा गया और ऐसी दवाका कोर्स लिख दिया जो टी० बी० को लागू हो। बम्बईसे आनेके बाद वे डा० पी० डी० देसाईको मिले। उन्होंने शिवाम्बु चिकित्सा करनेकी सलाह दी। दिनमें केवल तीन बार आधा गिलास शिवाम्बु पीनेसे ख़ूनकी बीमारी मिट गयी। दो दिनका मूत्रोपवास भी किया था और सादा भोजन लिया था। १५ दिन बाद लेबोरेटरीसे जाँचकी रिपोर्ट आयी, जिसमें सब कुछ नार्मल था अर्थात् बीमारीका निदान नहीं हो सका। शिवाम्बु उपचारमें रोगका निदान करनेकी ज़रूरत ही नहीं पड़ती।

१४. दूध जैसा पेशाब

एक रोगीके पेशाबमें गट्ठे हो जाते थे, जिससे पेशाब करते वक़्त बहुत ही पीड़ा भोगनी पड़ती। बम्बईके प्रसिद्ध सर्जनोंका उपचार करनेसे भी कुछ फ़ायदा नहीं हुआ । डा० परागजी देसाईको पत्र लिखकर शिवाम्बु चिकित्साकी सलाह माँगी थी। उन्होंने दिनमें तीन चार बार आधा गिलास पेशाब पीनेकी सलाह दी और दो दिनका उपवास और सादा भोजन करनेको कहा। एक सप्ताहमें पेशाब पानी जैसा साफ़ होने लगा, असह्य पीड़ा मिट गयी और आराम हो गया।

— सम्पा०

१५. पेशाबमें पीप और कमर दर्द

श्रीमती कमलादेवी चोरडिया सरदार शहर (राजस्थान) की हैं। उमर ३० वर्ष। ८ वर्षसे वे पेशाबमें पीप और कमर दर्दसे परेशान थीं। डाक्टरोंके इलाजसे कुछ भी फ़ायदा न होनेसे वे मई, '७२ में श्री भोजराज संचेतीके पास मोमासर आ गईं।

उनकी तकलीफ़ोंका इतिहास सुनकर संचेतीजीने कहा, "मूत्र-चिकित्सामें विविध प्रतिक्रियाओं और उभारोंकी संभावना रहती है, जिन्हें दृढ़ता एवं धीरतासे सहन कर लेने पर नीरोगता प्राप्त की जा सकती है।" कमलादेवीकी तत्परता एवं निष्ठा देख दूसरे ही दिनसे मूत्रोपवास शुरू करा दिया गया। पहले दिन उलटियाँ और टट्टियाँ हुईं। दूसरे दिन टट्टियाँ तो बन्द हो गईं, लेकिन उलटियाँ लगातार तीन दिन तक होती रहीं। फिर भी वे घबराईं नहीं। १४वें दिन मोसंबीके रससे पारणा हुआ। कुछ दिन उन्हें रसाहार पर रखा गया। फिर साधारण हलका भोजन दिया जाने लगा। अंग्रेजी दवाओंके दुष्परिणामों —गैस, सिरदर्द आदिको दूर करनेके लिए वे कभी-कभी कटि-स्नान भी लेती रहीं। दोएक मास तक रोजाना तीन बार वे मूत्रपान और दो घंटे मूत्रमालिश करती रहीं। तीन चार मासमें वे एकदम नीरोग, स्वस्थ एवं सशक्त हो गईं। —संपा०

१०

वातव्याधि

१. रीढ़का अकड़ाव

श्री अंबालाल के० पटेल बी० एससी०, एल-एल० बी० अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटीके स्टोर सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। उनके पत्रमें से नीचेका अवतरण यहाँ दे रहा हूँ :—

"मूत्रप्रयोगसे आपके स्वास्थ्य पर जो असर हुआ उससे प्रोत्साहित होकर ता० १५–५–'५८ को बहुत सवेरे ईश्वर-प्रेरणासे मैंने उसे ख़ुद आज़मानेका श्रीगणेश किया।

"मैं प्लुरिसी, संधिपीड़ा और रीढ़के अकड़ाव (स्पोन्डेलाइटिस) से पीड़ित था। सफ़ेद, ज़रा धूसर और स्पंज जैसे छिद्रोंवाला कफ काफ़ी निकलता था। मैं कामसे फ़ुरसत पाता कि पीड़ाका दौर शुरू हो जाता। सन् १९५२ से ऐसी स्थिति चलती थी। पहले तो ता० १५–५–'५८ से ता० २१–५–'५८ तक सारे शरीरकी मूत्रमालिश करता रहा। ता० २२–५–'५८ से प्रातःकालका पहला पेशाब भी पीने लगा और ता० २७–५–'५८ तक पीता रहा। इस अरसेमें मेरे शरीर पर गरमीकी फुंसियाँ निकल आयीं। उन्हें प्रयोगकी प्रतिक्रिया समझ कर मैं घबराया नहीं। थोड़े ही समयमें वे मूत्रमालिशसे अपने आप शान्त हो गयीं। मूत्रमालिश तथा मूत्रपानका असर तो अद्‌भुत हुआ है। मूत्र विष है, पीने योग्य नहीं है, ऐसी जो रूढ़ मान्यता है वह बिल्कुल झूठी है। यह तो स्वास्थ्य-प्राप्तिका अलौकिक, सुलभ, स्वयंभू और दिव्य साधन है, ऐसी मुझे प्रतीति हुई है। मुझे उपवासके अन्तिम दिन और अगले दिनका अर्थात् ता० ३०, ३१ का पेशाब डिस्टिल्ड वॉटर जैसा स्वादहीन प्रतीत हुआ। जिस दिन मूत्रपान किया उसी दिनसे कफ़की पीड़ा तो जाती रही। ज़ुकाम और पसलियोंका दर्द दूर हो गया। शरीरमें ताज़गी देनेवाली गरमी और शक्ति इतनी आयी कि मैं रातको बिना ओढ़े खुले शरीर सोने लगा। पहले तो मुझे शरीरकी गरमीकी रक्षाके लिए गरम कपड़े लपेटकर सोना पड़ता था। सर्दी, कफ़ और प्लुरिसी जैसा रोग दूर हो गया। जोड़ोंका दर्द और रीढ़का अकड़ाव भी बहुत ही कम हो गया। मेरी गरदनका अकड़ाव भी जाता रहा और वह अच्छी तरहसे मुड़ने लगी। चमड़ीकी शिथिलता दूर हुई और वह कोमल तथा रोगमुक्त हो गयी। मैं कभी-कभी मूत्रमालिश और मूत्रपान करता हूँ, जिससे स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है।"

२. रीढ़की जकड़ और गाँठ

मोगरी, ज़िला खेड़ा (गुजरात) के निवासी श्री चतुरभाई भाई-लालभाईकी मूत्रप्रयोग सम्बन्धी श्रद्धा तथा अनुभवका उल्लेख पहले आ

चुका है। उन्होंने अपनी पुत्रवधूके रोगको भी इसी प्रयोगसे मिटाया, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

उनकी पुत्रवधूकी रीढ़का चौथा और पाँचवाँ मनका जकड़ जानेसे उनपर सूजन आ गयी थी और रीढ़ पर गठीला जमाव हो गया था। दर्द इतना अधिक होता था कि वह ऊँची नज़र रखकर चल नहीं सकती थी और तिरछा-टेढ़ा भी देख नहीं सकती थी। सतत पीड़ाके कारण उसे नींद भी नहीं आती थी। इस तरह उसकी पीड़ा बेहद थी। उसे बम्बई ले जाकर डाक्टरकी सलाहसे गहरी किरणें भी दिलायी गयी थीं, परन्तु आरामका नाम नहीं। वहाँसे वापस आकर आणंदके मिशन अस्पतालमें प्लास्टर ऑफ़ पेरिसकी पट्टी लगवाकर साढ़े तीन महीने वह लेटी रही, पर कुछ फ़र्क नहीं हुआ। दिन-प्रति-दिन उसकी पीड़ा असह्य होती गयी। आखिर उसे मूत्रप्रयोगके लिए राज़ी किया गया। मूत्रमालिशसे प्रयोग शुरू हुआ। सात दिनकी मालिशसे उसकी हालत कुछ सुधरने लगी। उसकी स्थितिमें जो परि-वर्तन होता उसकी ख़बर वे मुझे देते और मेरी सलाहसे काम करते। पन्द्रह दिनकी मालिशसे रीढ़की गाँठ गलने लगी। आवश्यकताके अनुसार उसे कुछ दिन मूत्रके साथ उपवास भी कराये गये। एक मासके भीतर ही पुत्रवधू स्वस्थ होकर अपने पतिके साथ कलकत्ता चली गयी।

३. गठिया* (गाऊट)

अहमदाबादमें न्यू ब्रह्मक्षत्रीय सासायटीमें श्री पुरुषोत्तमभाई सोमाभाई पटेल (स्व० सरदार वल्लभभाई पटेलका भतीजा) रहते हैं। पिछले दो-चार बरससे वे गठियासे पीड़ित रहा करते थे। उनके हाथ-पाँवोंकी उँगलियाँ, कंधे, घुटने आदि अवयवोंके जोड़ जकड़ जाया करते थे और दर्द किया करते थे। दर्दके कारण वे अपने हाथसे वज़न

* मेरी गठिया-मुक्तिका विवरण 'अनुवादकका निवेदन' में दिया गया है। उसे ज़रूर पढ़ें। —संपा०

नहीं उठा सकते थे, उन्हें चलने-फिरनेमें तकलीफ़ होती थी और बूट पहननेमें भी दिक्कत आती थी। इस रोगका असर उनके सारे शरीर पर भी होने लगा। शरीरकी कान्ति तथा स्फूर्ति जाती रही थी। वे दवा तो लेते थे, पर आरामका नाम न था।

मेरी मूत्रचिकित्साकी बातका उन्हें पता लगा और वे मेरे पास आये। मैंने उन्हें सलाह दी कि पुराने मूत्रसे शरीर पर मालिश किया करें और धीरे-धीरे सुबह-शाम मूत्रपान भी करें। इसके अतिरिक्त कुछ आवश्यक सूचनाएँ भी दे दीं।

इतनेमें उन्होंने सपरिवार हरद्वार जानेका निश्चय किया और एक महीना वहाँ गंगाजीके किनारे रहे। वहाँ रहकर उन्होंने यह प्रयोग शुरू किया। पन्द्रह बीस दिन उन्होंने मूत्रमालिश की। मूत्रमालिश भी वे लगातार नहीं कर सके; क्योंकि जब वे दो-एक दिनके लिए दर्शनीय स्थल देखने जाते तब मालिश बन्द रखनी पड़ती। यों कुल मिलाकर बीस दिनकी मालिशसे उनके जोड़ोंका दर्द मिट गया। हरद्वारसे वापस आते ही उन्होंने शीघ्र मुझे बधाईके साथ ख़ुशखबरी सुनायी कि उनका गठिया निर्मूल हो गया है। फिर भी वे रोज़ दो बार मूत्रपान करते रहे, जिसका परिणाम भी सुन्दर आया। उनके शरीरका फीकापन दूर हुआ और लाली आयी। शरीर और मनमें स्फूर्ति आयी। शौच नियमित हो गया और जठराग्नि भी अच्छी तरह काम करने लगी। अब वे निश्चिन्त हैं।

४. लकवा और मधुमेह

श्री सौभाग्यचन्द्र गिरधरलाल पालीताणामें जैन सोसायटी गिरिविहारमें रहते हैं। वहाँ रहनेवाले श्री गुलाबचन्द खूमचन्द शाह लकवे और मधुमेहसे पीड़ित थे। मूत्रप्रयोगसे उन्हें जो लाभ हुआ उसका विवरण उन्हींसे लिखवाकर सौभाग्यचन्द्र गिरधरलालने मेरे पास भेजा है, जिसे नीचे दे रहा हूँ:—

"मुझे दायीं ओरका लकवा था और मधुमेहकी तकलीफ़ भी थी। आपकी 'मानवमूत्र' पुस्तक पढ़कर एक बरससे प्रयोग कर रहा हूँ, जिससे बहुत ही फ़ायदा हुआ। पुस्तकमें बताये हुए महत्त्वपूर्ण उपवास भी मैं कर लेता तो जल्दी आराम हो जाता। परन्तु मैं उपवास नहीं कर सकता हूँ। फिर भी धीरे-धीरे अच्छा फ़ायदा हुआ है। हर रोज़ सुबह दातुन करनेके बाद जो पेशाब आता है उसे पी जाता हूँ और दोपहरमें सारे शरीर पर पेशाबसे मालिश करता हूँ। घुटनेके जोड़का दर्द भी मिट गया है। कमरमें रोज़ जो पीड़ा होती थी वह भी मालिशसे मिट गयी है।

"बहुत समयसे मैं इन्स्युलिनके इंजेक्शन लेता था, उन्हें एक बरससे बन्द कर दिया है।

"मेरा यह निजी अनुभव है कि मूत्रसे चमड़ीकी हर बीमारी मिट जाती है। मेरे शरीर पर कुछ भी होता है तो मैं तुरन्त उसका उपयोग करता हूँ और फ़ायदा उठाता हूँ।

"मेरी उमर ६५ बरसकी है। पहले मुझे चलनेमें खूब तकलीफ़ होती थी। अब तीन चार मील आसानीसे चल सकता हूँ।

"पहले मैं दूरकी चीज़ साफ नहीं देख सकता था। आँखोंमें मूत्र डालनेसे दृष्टिमें कुछ सुधार हुआ है।"

५. गठिया और दूसरी बीमारियाँ

श्रीमती भँवरीदेवी बरडिया ग्राम श्री डूँगरगढ़ (राजस्थान), उम्र ४४ साल, अपने पत्रमें लिखती हैं :—

"जब कुँवारी थी तब बिलकुल स्वस्थ थी, परन्तु शादीके बाद बीमार रहने लगी। मासिक धर्मकी गड़बड़, सिर चकराना, मोटापा, भूख-प्यासकी अधिकता, हृदयकी धड़कन, शरीरके जोड़-जोडमें दर्द, कब्ज इत्यादि। देशी-अंग्रेजी इलाजमें २५ हजार रुपये खर्च करने पर

भी मुझे कोई फायदा नहीं हुआ। मैं अपनी जिन्दगीसे ऊब चुकी थी। आखिर सन् १९७२ में अपने भाईके सुझाने पर मैं श्री भोजराजजी संचेतीके पास मोमासर (जि० चूरू, राजस्थान) आ गयी। उन्होंने मेरी नाड़ी देखकर कहा, 'तुम्हारा गुरदा खराब हो गया है और गठियाकी बीमारी है। अगर निष्ठा एवं दृढ़ताके साथ मूत्र-चिकित्सा करोगी तो जरूर स्वस्थ हो जाओगी।' उन्होंने दूसरे ही दिन पेशाब और पानीके साथ उपवास शुरू करा दिया। मैं सारा पेशाब पी जाती और बालिकाओंके पेशाबसे रोजाना दो घंटे मालिश करवाती। अब देखिये कुदरतका खेल। तीन दिनके बाद मुझे पेशाब होना बन्द हो गया। तब संचेतीजीने बालिकाओंके पेशाबसे सनी हुई मिट्टीका पेड़ू पर लेप करवाया, जिसे दो घंटे तक रखा। तीन दिनके बाद पेशाब खुलकर होने लगा। जोड़ोंका दर्द तो मिट गया, परन्तु दोनों चूतड़ दर्द करने लगे। मेरे इस दर्दसे सब पीहरवाले घबड़ा गये, लेकिन मैंने दृढ़ता रखी और यही सोचा कि मेरी सारी बीमारियाँ उभरकर चूतड़ोंमें आ गयी हैं और यहींसे खत्म हो जायेंगी। श्री भोजराजजीके आदेशसे चूतड़ों पर मूत्रपट्टी रखी गयी। बस तीन रोजके बाद वह दर्द भी जाता रहा। अब मुझे अपना शरीर हलका मालूम होने लगा और मैं अपने आपको स्वस्थ समझने लगी। १४वें दिन सन्तरेके रससे मुझे पारणा करवाया। फिर ८ दिन तक वही रस तीन-तीन घंटेके अन्तरसे देते रहे और दिनमें तीन बार मूत्र पिलाते रहे। फिर तीन दिन गायका एक पाव दूध तीन बार और बीचमें एक पाव सन्तरेका रस एक बार देते रहे। बादमें मुझे गेहूँके आटेका रूखा फुलका और हरी सब्जी दी गयी। लगभग एक महीनेमें ही मैं बिलकुल स्वस्थ हो गयी। मुझे और मेरे पीहरवालोंमें किसीको भी विश्वास नहीं था कि मैं इतनी जल्दी स्वस्थ हो जाऊँगी। श्री संचेतीजीकी निःस्वार्थ सेवाका ही यह फल है कि मुझे नयी जिन्दगी मिल गयी। मैं तो दृढ़ विश्वासके साथ यही कहूँगी कि मूत्रचिकित्सासे जितनी जल्दी

और जितना अच्छा फायदा होता है उतना फायदा किसी दूसरी चिकित्सासे नहीं होता। फिर २५-३० वर्षोंके कटु अनुभवसे कहती हूँ कि अंग्रेजी दवाइयाँ खर्चीली और खराब हैं।"

श्री मोहनलाल बुच्चाने भी सन् १९७२ में संचेतीजीकी देखरेखमें विधिपूर्वक मूत्रोपचार करके १० साल पुराने गठियाको नामशेष कर दिया है। ——संपा०

६. लकवा

श्री प्रीतमसिंह गांधी आश्रम, हापुड़ (जि. मेरठ) में काम करते हैं। उमर ४२ बरस। उनकी दायीं भुजा लकवेसे पीड़ित थी और गर्दन बायीं ओर मुड़ गई थी। दोनोंमें दर्द तो था ही। एक मासका डाक्टरी इलाज बेकार हो गया। आश्रमके व्यवस्थापक चौधरी नेकीरामजीकी सलाहसे ३-४ बार मूत्र पीने और एक घंटा धूपमें मूत्र-मालिश करनेसे उनकी दोनों तकलीफ़ें १५ दिनमें ही दूर हो गईं।

—— संपा०

७. कन्धोंका दर्द

श्रीमती कलावती हैं तो पंजाबकी, पर बरसोंसे जम्मूमें रहती हैं। कलाजी विदुषी, सरल, सहिष्णु, नम्र, निर्भय और गुणग्राहिणी हैं। वे अपने विचारोंको आकर्षक एवं प्रभावक ढंगसे प्रस्तुत कर सकती हैं। बचपनसे वे धर्मरुचि तथा संयमशील रही हैं। तीसरी सन्तान पुत्र हुआ कि उन्होंने अपने निश्चयके अनुसार ब्रह्मचर्यको अपना लिया। वे आधुनिक शृंगार-सामग्रीसे कोसों दूर रहती हैं और रेशमी वस्त्र भी नहीं पहनती हैं। वे स्त्रीसमाजकी उन्नतिके लिए भरसक प्रयत्न करती रहती हैं। उनमें साम्प्रदायिक कट्टरता एवं उन्माद नहीं है। वे हंसके नीर-क्षीर-विवेकको अपने जीवनमें चरितार्थ करनेके लिए प्रयत्नशील रहती हैं।

कुछ वर्ष पूर्व ही एक जैन साध्वीसे उन्हें मूत्रप्रयोगका पता चला और उसकी रोगनाशक शक्तिकी अनुभूति करनेका उन्होंने निश्चय भी कर लिया। वे तीन चार वर्षसे कन्धोंके दर्दसे पीड़ित थीं। प्रचलित सभी उपचार उस दर्दको मिटानेमें व्यर्थ सिद्ध हो चुके थे। १५ दिनके मूत्रपान और मूत्रमालिशसे उनका दर्द नष्ट हो गया।

उनकी चश्मेकी बीमारी इतनी बढ़ गयी थी कि उसके बिना आँखें अपना काम नहीं कर सकती थीं। मूत्रसे आँखें धोने और उसकी मालिश एवं पीनेसे तीन वर्ष पुरानी चश्मेकी बीमारी सदाके लिए दूर हो गयी। उन्होंने चोट, घाव आदिकी पीड़ाको भी बीसियों बार स्वमूत्र द्वारा मिटाया है।

वे मूत्रको रोगसे छुटकारा पाने और आरोग्यको बनाये रखनेका अमूल्य एवं अचूक साधन मानती और समझती हैं और दूसरोंको वैसा मनाने और समझानेका भरसक प्रयत्न करती हैं। उनकी प्रेरणासे कई रोगियोंने मूत्रप्रयोग द्वारा अपने रोगोंको नष्ट भी किया है। —सम्पा०

८. हाथका सुन्न होना

मेरी एक धर्मबहन जंडियालागुरु (जि० अमृतसर, पंजाब) में रहती हैं। उनकी अवस्था ४२ वर्षकी है। उनके स्वभावमें नम्रता और वाणीमें मधुरता है। तीन-चार सालसे पति-पत्नी दोनोंने ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया है। लगभग १२ बरस पूर्व उनका दायाँ हाथ कलाई तक रातको सुन्न हो जाता था। कभी-कभी दायें हाथसे आग-सी निकलती थी। धीरे-धीरे सारी भुजा सुन्न होने लग गयी और दर्द इतना बढ़ गया कि भुजाको थोड़ा दबानेसे बहुत पीड़ा होती थी।

भुजाकी जड़ता और पीड़ाको मिटानेके लिए विविध उपचार किये गये। विटामिनकी गोलियाँ खायी गयी, कीमती टीके लगवाये गये और कई बार अनेक टेस्ट हुए। डाक्टरी उपचारके व्यर्थ सिद्ध होने

पर होमियोपैथिक उपचारकी शरण ली, जिससे कुछ समयके लिए थोड़ा आराम हुआ। आयुर्वेद उपचार भी बेकार साबित हुआ।

सन् १९६५ के चतुर्मासमें वहाँ मुझे जैन साधु-साध्वियोंको संस्कृत पढ़ानेका अवसर मिला। तब उनसे मेरा परिचय हो गया और प्रसंगसे मूत्रोपचारका ज़िक्र भी आ गया। उनसे पाँच दिनका मूत्रोपवास करवाया। मूत्रपान और मूत्रमालिशने अपना असर दिखाया। उनकी बाहु और कलाईकी जड़ता, जलन और पीड़ा कम होने लगी और इतनी कम हो गयी कि वे पहलेकी भाँति दूध बिलोने आदि सभी काम करने लग गयी हैं। उन्होंने अपनी जिस व्याधिके लिए देशी-अंग्रेज़ी उपचार करनेमें न मालूम कितने रुपये पानीमें फेंके होंगे, उस व्याधिको अमूल्य मूत्रोपचारसे लगभग नष्ट कर दिया है और वे स्वमूत्रको आरोग्यका साधन मान और समझकर आवश्यकताके अनुसार उसका उपयोग निःसंकोच एवं निर्भयतासे करती हैं। —सम्पा०

९. आर्थराइटिस

श्रीमती पीरोजन बलसारा (पाटकर मार्ग, बम्बई ७) शिवाम्बु चिकित्सा प्रचारक मंडल, बम्बईके मंत्रीको ता० १–६–'७३ के पत्रमें लिखती हैं :—

"पन्द्रह बरस पहले मेरे दायें घुटने पर चोट लगी थी, जिससे आँट चढ़ आयी थी और घुटना आर्थराइटिससे पीड़ित हो गया। न तो मुझसे खड़ा रहा जाता और न ही चला जाता। मैं सीढ़ी भी चढ़ नहीं पाती। डाक्टरोंने कहा कि अब यह बीमारी नहीं मिटेगी, ऑपरेशन करायेंगी तो निष्फल जायेगा।

"लाचार रोगसे मुक्त होनेके लिए मैंने शिवाम्बुका उपचार अपनाया। शिवाम्बु पीकर दो दिनका उपवास किया और दो महीने यह उपचार जारी रखा जिससे अब मैं लगभग ठीक हो गयी हूँ। जिस डाक्टरने पहले मेरा एक्सरे लिया था, वह मुझे रोगमुक्त देखकर दंग

रह गया। मेरे शरीरमें शक्ति भी बढ़ी है। कुछ दिन हुए मैं अन्यत्र गयी थी और एक दिनमें सीढ़ीके ३०० पाये चढ़ सकी थी।

"अब मेरी उमर ६५ वर्षकी है। मेरे बहुतसे परिचित भी यह उपचार करते हैं। एक युवतीका अंदरका ट्यूमर भी शिवाम्बु चिकित्सासे गल गया, जिसे डाक्टरोंने ऑपरेशन करवानेकी सलाह दी थी।"

१०. टाँगोंमें दर्द और अन्य रोग

जैन मुनि श्री छज्जूरामजीने ता० ९-३-'७५ को अम्बाला (हरियाणा)में मुझे अपने मूत्रप्रयोगका अनुभव इस तरह सुनाया :—

"मेरी आयु ७० वर्ष है। मुझे बरसोंसे क़ब्ज़ था, मेरे घुटनों और पिंडलियोंमें बीस सालसे दर्द रहता था, उठने-बैठने और चलनेमें बहुत कष्ट होता था, मेरे पेट और छातीमें पीड़ा व जकड़ थी, ब्लडप्रेशर और उन्माद था, न नींद आती और न भूख लगती थी। डाक्टरी इलाजसे कुछ आराम नहीं हुआ। वैद्यकी दवासे काफ़ी आराम तो हुआ, पर स्थायी नहीं।

"मैं सन् १९७४ में मूत्रप्रयोग करने लगा। दिनमें अनेक बार मूत्रपान करता और ३० मिनट मूत्रमालिश करता था। भोजन एक बार करता था। आठ दिनमें ही कुछ फ़ायदा हो गया, एक महीनेमें आधा और दो ढाई मासमें पूरा आराम हो गया — सभी रोग नामशेष हो गये।

"२०-२५ सालसे चश्मा लगाता हूँ, फिर भी धुँधलेपनके लिए दवाई लेता था। आँखोंमें मूत्र डालनेसे दवाई लेना छोड़ दिया। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे दोएक बार पेशाब पी लेता हूँ। इस अमूल्य साधनसे लाभ उठानेके लिए दूसरोंको प्रेरित भी करता रहता हूँ।"

अपना अनुभव सुनानेके बाद वे मुझे दो व्यक्तियोंके पास ले गये, जिन्होंने उनकी प्रेरणासे मूत्रप्रयोग करके अपनी बीमारीको मिटाया है।

१. तीस बरसकी श्रीमती रामप्यारीके दायें हाथकी उँगलियोंमें दो सालसे खाज आती थी और वे गल भी गयी थीं। दो हफ्ते पेशाबसे हाथ धोनेसे उँगलियाँ एकदम ठीक हो गयीं।

२. श्री रामप्रतापकी उमर ४५ बरसकी है और कुम्हार हैं। वे तीन-चार सालसे जुकामसे परेशान हो रहे थे और कभी उन्हें बुखार भी आ जाता था। सालभर अंग्रेज़ी दवा लेनेसे भी स्थायी और पूरा लाभ नहीं हुआ तथा उससे कब्ज़की शिकायत खड़ी हो गयी। सन् १९७४ के अन्तमें वे रोज़ाना दो-तीन बार पेशाब पीने लगे और दसेक दिनमें ही नीरोग हो गये। प्रयोगके दौरान उन्होंने हुक्का पीना छोड़ दिया था। कभी तकलीफ़ हो जाने पर वे पेशाब पी लेते हैं। वे मूत्रको शक्ति एवं स्फूर्तिके लिए श्रेष्ठ उपाय मानते हैं। ——संपा०

११. तीस साला टाँगोंका दर्द

श्रीमती भगवतीजी हिंदीके सुप्रसिद्ध लेखक एवं विचारक श्री जैनेन्द्रकुमारकी धर्मपत्नी हैं। ५५ सालकी उमरमें उनकी टाँगें दर्द करने लगीं। धीरे-धीरे वह दर्द इतना बढ़ गया कि चलना-फिरना मुश्किल हो गया। एक साल होमियोपैथीका और २-३ सप्ताह बिजलीका उपचार किया। कोई खास लाभ नहीं हुआ।

पुस्तक पढ़कर वे मूत्रोपचार करने लगीं। पहली बारके मूत्र-पानसे उन्हें आश्चर्यकारी लाभ प्रतीत हुआ —— शक्तिका अनुभव हुआ। ७ दिन पुराने पेशाबसे वे दो घंटे मालिश करती थीं। दो मासमें तीस साल पुराना दर्द बारह आना ठीक हो गया। परिस्थितिवश वे प्रयोग चालू न रख सकीं। दर्द बढ़ जाने पर वे मालिश कर लेती हैं।

प्राय: वे रोज सैर करती हैं और खुद पीसे हुए आटेकी रोटी खाती हैं। मूत्रप्रयोगमें उनकी अनन्य निष्ठा है।

१२. शियाटिका

श्री मलकियतसिंघ गिल फीरोजपुर कैंट (पंजाब) के सेन्ट्रल पब्लिक स्कूलमें खेलोंके शिक्षक हैं। उन्हें कूल्हे और जाँघका वातरोग हो गया। उन्हें गैसकी भी शिकायत थी और भूख कम हो गयी थी। प्राकृतिक उपचारसे पूरा आराम नहीं हुआ। मूत्रचिकित्सक श्री विजयकुमार गुप्ता एडवोकेटने उनसे कुछ दिनका मूत्रोपवास भी करवाया। १५ दिनके मूत्रपान और मूत्रमालिशसे वे बिलकुल ठीक हो गये।

१३. पक्षाघात और पैरका पतला होना

श्री अशोक जनवदे इन्दौर (म० प्र०) में रहते हैं। उनकी बड़ी बहिन सरस्वती जनवदे हैं, जो भिलाईमें शिक्षिका हैं और उनकी उमर २५ वर्षकी है। वे अपनी बहिनकी रोगमुक्तिका हाल इस प्रकार लिखते हैं:——

"मैंने अपने जीवनमें स्वमूत्र-चिकित्साकी सबसे बड़ी सफलता अपनी ही बड़ी बहिनकी जान बचाकर प्राप्त की है। वे सतत तीन मास बिस्तर पर पड़ी रहीं। उठना तो एक तरफ, पर शरीरका निचला आधा भाग हिलता भी न था तथा बायाँ पैर धीरे-धीरे पतला होने लगा था। हाथ छुआनेसे भी भयंकर पीड़ा होती थी। फिर शय्याव्रण भी हो गये थे। ऐसी दशामें दो-दो, तीन-तीन घंटे में कभी पुराने और कभी ताजे पेशाबसे मालिश करता रहा। सभी औषधियों को तिलांजलि दिलाकर मैं दिनमें तीन बार स्वमूत्र पिलाता रहा। १५ दिनमें ही उन्हें ५०% फायदा हो गया और एक महीनेमें वे उठने-बैठने लग गईं। आज तो वे पूर्ण स्वस्थ हैं। इस बातको हुए अभी चार ही मास हुए हैं। उनका बायाँ पैर, जो धीरे-धीरे पतला हो रहा था, आज बिलकुल ठीक है।"

१४. हड्डियोंकी कमजोरी

पिनकी जम्मूमें रहती है। उमर १९ वर्ष। बचपनसे ही उसकी हड्डियाँ इतनी कमजोर थीं कि थोड़ा चलने पर वह गिर जाती थी। भुजा, नितम्ब और टाँगकी हड्डियोंके कई बार फ्रेक्चर भी हुए। हथेलियों और घुटनोंके बल वह चलती थी। शरीर बहुत ही भारी हो गया था। प्रचलित सभी इलाज बेकार साबित हुए।

स्थानीय मूत्रचिकित्सक श्रीमती कला जैनने उससे १९७६ में नौ दिनका मूत्रोपवास करवाया। दो-तीन सप्ताह तक तो वे खुद ही उसकी डेढ़ घंटा मूत्रमालिश करती रहीं। दिनमें ५-६ बार वह मूत्रपान करती थी। परहेज भी पूरा रखा गया। वह अधिकतर शाक और फल खाती रही। तीन मासके उपचारसे आशातीत लाभ हुआ। वजन कम हुआ। हथेलियाँ पूरी तरह खुलने लगीं। अब बिना सहारेके वह चल-फिर सकती है। हाथसे काम भी कर लेती है। आरोग्यके अमूल्य साधन शिवाम्बुका प्रयोग चल ही रहा है।

११

चमड़ीके रोग

१. छाले

श्री केशवभाई मकनजी मास्टरने मूत्रप्रयोग द्वारा अपने स्थायी कब्ज़से छुटकारा पा लिया, जिसका विवरण 'पेटके रोग' नामक प्रकरणमें दिया जा चुका है। उन्होंने कुछ बरस पहले अपने चर्म-रोगको मिटानेके लिए भी मूत्रका उपयोग किया था, जिसके बारेमें वे लिखते हैं :—

"सन् १९४८ में मुझे जुलाहेसे शिक्षक बननेका विचार आया और अध्ययनके लिए अत्यन्त परिश्रम करना पड़ा। आहार-विहारमें गड़बड़ हो जानेसे मेरे शरीर पर छाले ही छाले निकल आये, जिनकी पीड़ाके कारण न तो आरामसे बैठा जाता और न ही सोया जाता। उस समय प्रतिदिन तीन तोला मिट्टी पेशाबमें भिगोकर मैं चुपड़ा करता था। इस तरह बीस दिन तक मैंने यह प्रयोग किया और मेरा शरीर स्वस्थ हो गया।

"ज़हरीली मक्खी, मच्छर या जन्तुके डंक पर पेशाब घिसनेसे आराम हो जाता है। पेशाब घिसनेसे और पेशाबकी पट्टी रखनेसे बिच्छूका ज़हर भी उतर जाता है।"

२. दाद और जुड़पित्ती

श्री शामलभाई खेड़ा जिलेके ग्रामरक्षक दलके व्यवस्थापक हैं। उनका शरीर एर्लजिक (संवेदनशील तथा विकारशील) था। रक्त-विकारके कारण उनके शरीर पर दाद हो गयी थी और दादका उभार नाक पर विशेष था। उन्हें मधुमेहका रोग भी था। अपनी शारीरिक

स्थितिका पूरा विचार किये बिना मनमाने ढंगसे उन्होंने मूत्रप्रयोग शुरू कर दिया और किसी प्रकारका परहेज़ भी न रखा। प्रयोगके दौरान वे चायमें सेक्रीन भी लेते रहे। दो-तीन दिनमें ही उनके सारे शरीर पर जुड़पित्ती हो गयी और कुछ फुंसियाँ भी निकल आयीं। मुझे बोरसद (खेड़ा) से फौरन् खबर दी। मैंने तुरन्त उन्हें सूचित किया कि धीरज रखें और किसी प्रकारकी दवा या इन्जेक्शन न लें, परन्तु मूत्रमालिश ज़रा ज़ोरसे करें, ताकि फुंसियाँ फूट जायें। वैसा करनेसे दो ही दिनमें उनकी सभी तकलीफ़ें दूर हो गयीं।

मूत्र कुदरती रसायन है। सेक्रीन तो रासायनिक बनावट है। विजातीय तत्त्वोंका मेल कैसे बैठे? आखिर परिणाम अच्छा आया। पर शामलभाईने दुःख उठाया। इससे फलित होता है कि मूत्रप्रयोग करनेवालेको कितना सावधान रहना चाहिये।

३. एक्ज़ीमा

(१) श्री लज्जाराम चौधरी टीकरीकलाँ (दिल्ली) में रहते हैं। इस समय उनकी उमर ७५ सालकी है। जलियाँवाला काण्डके समयसे ही वे देशसेवामें संलग्न हो गये थे। आजादीकी लड़ाईमें वे एक सेनानी भी थे। आजकल ग्रामसेवा कर रहे हैं।

लगभग दो बरस पहले इन्हें एक्ज़ीमा हो गया था। चार दिन पुराने पेशाबसे पौन घंटा स्वयं मालिश करते थे और सुबह एक बार मूत्रपान करते। करीब तीन मासमें वह ठीक हो गया। अगर उपवास कर लेते तो बहुत जल्दी ठीक हो जाता। परहेज भी पूरा नहीं रखा था।

(२) श्री रवि जैन जम्मूमें रहते हैं। उमर २५ वर्ष। दायीं भुजा, पीठ, गर्दन और माथा एक्ज़ीमाग्रस्त थे। खुजली तो सारे शरीरमें होती थी। रुपये जितने घावोंसे पीप और खून भी निकलता था। वैद्य और डॉक्टरोंके इलाजसे थोड़ा-बहुत लाभ तो हो जाता, परन्तु फिर प्रकुपित हो जाता था। घरवाले भी परेशान थे।

श्रीमती कला जैनकी प्रेरणासे वे अगस्त, '७५ को शिवाम्बु चिकित्सा करने लगे। वे रोज एक घंटा मालिश और ४-५ बार पान करते थे। घावों पर मूत्रसनी मिट्टीकी पट्टी सुबह दोएक घंटे और रातको पूरा समय रखते थे। घाव १५ दिनमें भर गये और एक मासमें वे रोगमुक्त हो गये।

अन्य अनेक रोगी भी एक्ज़ीमासे मुक्त हो गये हैं।

४. सफ़ेद कोढ़

श्री रणजीतभाई बलदेवभाई परीख एक सहृदय व्यक्ति हैं। उनकी आयु लगभग ३२ वर्षकी है। पन्द्रह वर्ष पहले उनके शरीर पर सफ़ेद कोढ़ हो गया था। सिर, मुँह, पीठ, छाती, पेट, हाथ और पैर आदि सभी अवयवों पर उसके छोटे-बड़े दाग थे। इसी रोगके कारण उनके सिरके बाल भी सफ़ेद हो गये थे। रणजीतभाईको साधु-संन्यासियोंके सत्संगका बहुत शौक था। उन्हें एक बार योगकी साधना करनेवाले एक साधु मिल गये। उनके अधिक सम्पर्कमें आनेसे वे खुद भी योगके साधक बन गये। योगकी साधनाके दौरान उन्होंने 'हठयोगप्रदीपिका' पढ़ी। उसमें अमरोली मुद्राके वर्णनमें 'शिवाम्बु-कल्प' का उल्लेख आया है। आख़िर काफ़ी तलाश करने पर उन्हें दरभंगाकी तरफ़ रहनेवाले किसी महात्मासे 'शिवाम्बुकल्प' नामक संस्कृत पुस्तक मिल गयी। उसमें विविध प्रकारके मूत्रप्रयोगोंका वर्णन है। उन्होंने कई एक प्रयोग ख़ुद किये। उन्होंने नासिका द्वारा मूत्रपान करके अपनी आँखोंकी दृष्टिको ठीक किया, जिसका विवरण 'आँखके रोग' नामक प्रकरणमें दिया गया है। उन्होंने अपने सफ़ेद कोढ़के लिए भी मूत्रप्रयोग किया, जिसका विवरण यहाँ दे रहा हूँ।

यथाविधि मूत्रपान और मूत्रमालिश करनेसे उनके कोढ़ पर असर होने लगा। पहला असर तो यह हुआ कि कोढ़का बढ़ना रुक गया। फिर धीरे-धीरे भिन्न-भिन्न अवयवों पर जो कोढ़के दाग़ थे वे

मिटने लगे। सिरके सफ़ेद दाग़ मिट गये और बाल काले हो गये। मुँह, गला, छाती, बगल, पेट और कमर, इन अवयवों पर जो दाग़ थे वे भी साफ़ हो गये और चमड़ी स्वाभाविक रंग अर्थात् गेहूँ रंगकी हो गयी।

कुछ समय बाद चौमासेमें जब वे मेरे पास आये तब उनकी दाढ़ी और लम्बे बालोंको देखकर शुरूमें तो मैंने समझा कि अरविन्दाश्रमके कोई युवक साधक हैं, क्योंकि दाढ़ी और लम्बे बालोंके साथ मैंने उन्हें पहली बार ही देखा था। फिर तो उनकी काली दाढ़ी और काले बालोंने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया और मूत्रप्रयोगकी अपूर्व शक्तिके एक और अनुभवको जानकर मेरा हृदय गद्गद हो उठा।

उनके हाथके अगले भाग पर और पैरोंके अन्तिम भाग पर कोढ़के दाग़ अभी तक हैं सही, जिन्हें मिटानेके लिए उन्होंने यथेष्ट प्रयत्न नहीं किया। परन्तु उनका कहना है कि वे दाग़ उन्हें कुछ तकलीफ़ नहीं देते अर्थात् गरमीके दिनोंमें उनसे किसी तरहकी जलन नहीं होती। फिर भी उनका दृढ़ विश्वास है कि मूत्रप्रयोग उन दाग़ोंको भी मिटा देगा। उनके मूत्रप्रयोगकी पद्धति अनोखी थी। वे नहा-धोकर भोजन करनेके बाद मूत्रमालिश करते थे और फिर काम पर जाते थे, परन्तु उन्हें कोई दुर्गंध मालूम नहीं होती थी।

स्वानुभवके बाद उन्हें मूत्रकी सच्ची शक्तिका पता चला। फिर तो वे अपने परिवारमें भी इसका उपयोग करने लगे। उनकी पत्नीको कोई तकलीफ़ हो जाती तो वे मूत्रप्रयोगसे दूर कर देते। इसी तरह बच्चोंकी बीमारीमें भी यह प्रयोग काम आता। धीरे-धीरे अड़ोसी-पड़ोसियोंकी छोटी-बड़ी बीमारियोंको मिटानेके लिए भी वे इसका उपयोग करने लगे।

५. गलितकुष्ठ*

कुशल मूत्रचिकित्सक स्व० आर्मस्ट्रॉङ्गने अपनी पुस्तकमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख किया है कि प्रायः सभी गंभीर रोगोंसे पीड़ित रोगी उनके पास आये और मूत्रप्रयोगसे वे रोगमुक्त हुए। परन्तु गलितकुष्ठ (लेप्रॉसी) के एक भी रोगीका उपचार करनेका अवसर उन्हें नहीं मिला। क्योंकि इंग्लैंडमें यह रोग प्रायः नहीं होता है।

(१) डाक्टर पुष्पेन्द्र भट्टने गलितकुष्ठके एक रोगीको मेरे पास भेजा। एक रविवारको वह रोगी अपनी पत्नीके साथ मेरे पास आया। उसका नाम है कानजीभाई मोहनलाल। उम्र ३२ बरसकी। अहमदाबादकी एक मिलके बुनाई विभागमें वह काम करता था। उस समय उसके हाथों और उँगलियों पर ज़ख़्म थे तथा उँगलियोंमें झुनझुनी और जलन रहा करती थी। वह अपना हाथ ऊँचा नहीं कर सकता था। वह चर्मरोगके एक कुशल डाक्टरसे बहुत समय तक अपना इलाज भी करा चुका था। बातचीतके दौरान पता चला कि एक हफ्तेकी मूत्रमालिशसे उसकी पीड़ा काफ़ी कम हो गयी थी। मेरी सूचनासे वह विधिपूर्वक मूत्रप्रयोग करने लगा और रोगमुक्त हो गया। फिर ता० ३०-११-'५८ को मेरे पास आया और प्रसन्नतासे कृतज्ञता प्रगट करते हुए अपना हाल सुनाकर लिखवा भी दिया, जिसका सारांश इस प्रकार है :—

"मैंने पेशाब और पानीके साथ तीन उपवास किये और एक मास तक मूत्रमालिश की। इससे मेरे दायें हाथकी जलन और पीड़ा मिट गयी और घुमने भी लग गया। उस हाथसे अब मैं अच्छी तरह काम कर सकता हूँ। अभी मेरे हाथमें थोड़ी-सी जड़ता है।

* वह कोढ़ जिसमें हाथ-पाँवकी उँगलियाँ आदि गलकर गिर जाती हैं।

कुल-जमा मूत्रप्रयोगसे मुझे बहुत लाभ हुआ है और हाथ-पैरके कोढ़के ज़ख्म मिट गये हैं। उँगलियोंमें जो चरचराहट होती थी वह भी अब मिट गयी है।"

(२) कविराज रामस्वरूप कौशिकको एक दिन रास्तेमें केहरा नामक झीवर मिल गया, जो गलितकुष्ठसे पीड़ित था। वह अपने भयंकर एवं घृणाजनक रोगसे छुटकारा पानेके लिए जहर या विष्टा खानेको भी तैयार था। कविराजजीकी सूचनासे वह सारे शरीरकी मूत्रमालिश करने लगा और सौंफका अर्क मिलाकर अपना पेशाब पीने लगा।

तीन हफ्तेके बाद उसके सारे शरीरसे पानी निकलने लगा जिससे बहुत बदबू आती थी। रोगी इलाज छोड़नेको तैयार हो गया। उसे आश्वासन दिया और समझाया कि वह न तो घबराये और न ही हिम्मत छोड़े। वैद्यजी रोज़ उसके पास जाते और अपनी निगरानी-में मूत्रपान कराते। एक दिन उसे १०४ डिग्रीका बुखार हो गया और वह रातभर बेचैन रहा। अगली सुबह एक अद्‌भुत बात यह हुई कि साँपकी केंचुलीकी भाँति उसकी त्वचा उतर गयी। उसे उपले-की राख पर लिटा दिया गया और वह घोर निद्रामें लेटा रहा। शाम तक तीन चार बार राख बदलनी पड़ी। दो दिन बाद जब उसे होश आया तब उसे शहद डालकर गायका दूध पिलाया और कपड़ेसे उसका सारा शरीर साफ़ कर दिया। फिर उसे चारपाई पर लिटा दिया। रोगी अब वेदनासे मुक्त था और महसूस करता था कि उसकी बीमारी मिट गयी है। वह कुछ दिन तक मूत्रपान करता रहा। अब वह भला-चंगा है और कृतज्ञ है।" ——संपा०

६. सोराइसिस

(१) सोराइसिस एक असाध्य रोग माना जाता है। निम्नलिखित विवरणमें बताये हुए लक्षणोंसे मालूम होता है कि यह रोग कितना पीड़ाजनक तथा भयंकर है। श्री पोपटलाल गोविन्दजी लाखाणी पोर-

बन्दर (सौराष्ट्र) के निवासी हैं। उन्होंने बीस पच्चीस वर्ष बम्बईमें सॉलिसिटरके नाते काम किया था। अब निवृत्त होकर वे पोरबन्दर-में रहते हैं। वे पिछले पच्चीस वर्षसे सोराइसिसके रोगसे पीड़ित थे। आखिर मूत्रोपचारसे वे रोगमुक्त हुए। उन्होंने अपनी रोगमुक्तिका विवरण मुझे ता० ३०–७–'६० को लिख भेजा, जिसे संक्षेपमें यहाँ दे रहा हूँ :—

"मुझे करीब पच्चीस बरस पहले सोराइसिसका रोग हुआ था। यह रोग धीरे-धीरे शुरू होता है। जलने या डंकके छाले जैसा छाला शरीर पर उठ आता है। ऐसे छालेसे रोगका आरम्भ होता है। इस छालेकी विशेषता यह है कि इसमें पानी नहीं होता। इस छालेकी पपड़ी उखड़ती और आती रहती है। इस तरह अज्ञात रूपसे यह बढ़ता रहता है। ऐसा कहा जाता है कि यह प्रायः हड्डीके जोड़ पर अधिक होता है। मुझे शुरूमें घुटनोंके नीचे दोनों टाँगों पर छाले हुए थे, चमड़ी सूखती हुई मालूम होती थी और खाज इतनी होती थी कि खुजलाये बिना रहा नहीं जाता था। मैंने तो एक्ज़ीमाकी कल्पना की थी। परन्तु जैसे-जैसे यह रोग बढ़ता गया वैसे-वैसे चिन्ता होने लगी। खुजलानेसे चाँदीके बारीक चूरे जैसा चूरा झड़ता मालूम होता था। खाजका रोकना बहुत मुश्किल लगता था। उस वक्त मैं बम्बईकी हाईकोर्टमें प्रैक्टिस करता था। वहाँके चर्मरोगके विशेषज्ञको दिखाने पर पहली ही बार मैंने अपने रोगको सोराइसिसके नामसे जाना और यह पता लगा कि रोग असाध्य है। इसको बढ़नेसे तो ज़रूर रोका जा सकता है, परन्तु तुरन्त मिटाया नहीं जा सकता। जैसे-जैसे रोग फैलता गया वैसे-वैसे भिन्न-भिन्न लोगोंकी सलाहके अनु-सार एलोपैथी, होमियोपैथी, आयुर्वेद आदिकी दवाएँ करता रहा, किन्तु पीड़ा और परेशानी दूर नहीं हुई। पिछले कुछ वर्षोंसे तो मैं दिनमें अनेक बार हाथ, पाँवों, मुँह, सिर, पेट आदि सोराइसिसवाले अंगों पर नारियलका तेल चुपड़ता था, जिससे चमड़ी कुछ मुलायम

हो जाती थी। यदि तेल चुपड़नेसे ऊब जाता तो उसका फल भुगतना पड़ता। हाथके पंजेके पिछली तरफ़ अर्थात् उलटे हाथकी उँगलियोंकी हड्डियोंके जोड़ोंकी चमड़ी फट जाती, ख़ून निकल आता इत्यादि।

"इतनेमें एक आकस्मिक अवसर उपस्थित हुआ। पोरबन्दरके डाक्टर श्री दत्ताणीके यहाँ आपकी पुस्तक देखनेमें आयी। वे कैन्सरके उपचारके विचारसे इस पुस्तकका अध्ययन करते थे। मैंने उनसे पढ़नेके लिए पुस्तक ली और दो दिनमें अच्छी तरह पढ़कर इस बारेमें उनसे बातें कीं। उनके कैन्सरके रोगीके दिलमें श्रद्धा तथा उत्साह पैदा करनेके ख़यालसे मैंने मूत्रप्रयोग खुद आज़मानेका फ़ैसला किया। ता० १२–६–'६० से यह प्रयोग करने लगा। छः दिनकी मूत्रमालिशसे मेरा शरीर बहुत कोमल हो गया, जिससे प्रभावित होकर मैंने मूत्रपान भी शुरू कर दिया। थोड़े ही दिनोंमें मेरा रोग नष्ट हो गया। मूत्रपानसे कब्ज़ आदि भी दूर हो गये हैं। शरीरमें अच्छी स्फूर्ति रहती है, भूख ख़ूब लगती है और मन प्रसन्न रहता है।

"मैं अपने प्रयोगका परिणाम अनेक लोगोंको बताता रहता हूँ। बहुतोंने इस प्रयोगसे लाभ भी उठाया है। मैं अपने अनुभवसे कहता हूँ कि मूत्रोपचारसे शरीर और मन पर बहुत अच्छा और जल्दी असर होता है।"

(२) बम्बईवासी श्री जेठालाल जे० जोशीने भी डा० परागजीभाई देसाईकी सूचनासे मूत्रप्रयोग करके दुःखदायी सोराइसिससे सन् १९६२ में छुटकारा पाया है।

७. पायोडर्मा

श्री भगवानदास नाथुभाई धीवर डी० एम० ई०, बलसाडके पॉलिटेकनीक स्कूलमें लेक्चरर हैं। उनकी रोगमुक्तिका विवरण डा० परागजीभाई देसाईकी पुस्तक 'शिवाम्बु चिकित्सा पद्धति' से लिया गया है:—

"मैं पायोडर्मा नामके हठीले एवं असाध्य चर्मरोगसे पिछले आठ वर्षसे परेशान हो रहा था। सारे शरीर पर शीतला (small pox) के छाले हो जाते थे, जिनमें पीप भर जाती थी। मैंने सूरत और नवसारीके सिविल सर्जनोंसे इलाज करवाया, बड़ौदाके जनरल हॉस्पिटल, बॉम्बे हॉस्पिटल और टाटा कैन्सर हॉस्पिटलमें भी उपचार करवाया, परन्तु लाभ न हुआ। आख़िर तंग आकर सन् १९६७ के अगस्त मासमें स्वमूत्रका उपचार शुरू किया, जिसे दो मास तक चालू रखा। रोज़ दो बार दो औंस जितना पेशाब पीता था। दो मास तक सारे शरीर पर गरम पेशाबसे दिनमें दो बार आध-आध घंटा मालिश करता रहा। छालों पर पेशाबकी पट्टी रखता था। शामको मालिशके बाद स्नान नहीं करता था। अगले दिन सुबह उठ कर स्नान करता था। मैंने आठ दिनका उपवास किया था। अब मेरा रोग नष्ट हो गया है।"

८. सोराइसिस एवं पायोडर्मा

श्री मावजी गोकलदास आसर बम्बईमें रहते हैं। आयु ५० वर्ष। उन्होंने ता० १–२–'७३ को अपनी रोगमुक्तिका विवरण डा० परागजी देसाईको लिख भेजा था, जिसका सारांश इस प्रकार है :—

"मैं लगभग पाँच बरससे सोराइसिस एवं पायोडर्मासे पीड़ित था। मैंने एलोपैथिक, होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक, कुदरती इलाज आदि अनेक उपचार किये, परन्तु किसीसे कोई फ़ायदा नहीं हुआ। मैं अपनी बीमारीसे इतना तंग आ गया था कि नौकरी छोड़कर अपने वतन कच्छमें रहनेका विचार कर रहा था। इतनेमें मेरे एक सहयोगी श्री कानजी डी० वैदने मूत्रप्रयोग करनेके लिए मुझे प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। नीरोग तथा स्वस्थ होनेके दृढ़ निश्चयसे मैंने प्रयोगका श्रीगणेश कर दिया।

"मैं 'मानवमूत्र' पुस्तकमें बतायी हुई विधिके अनुसार मूत्रपान और मूत्रमालिश आदि करने लगा। शुरूमें दो-चार दिन कुछ घृणा,

बेचैनी, अशक्ति आदि प्रतीत हुए। फिर एक दिन नींदमें ही बिस्तर पर पेशाब निकल गया, जो ख़ून जैसा मालूम हुआ। मैं कुछ घबराया और अपने हितैषी वैदके पास जाकर सारी बात की। उन्होंने निष्ठा एवं धैर्यके साथ प्रयोग करते रहनेके लिए बहुत प्रोत्साहित किया। फिर तो उत्तरोत्तर मुझे आराम होने लगा और पाँच मासमें लगभग ९५ प्रतिशत आराम हो गया है। अब भी मैं दिनमें दो बार मूत्रपान करता हूँ और कभी-कभी मूत्रमालिश भी कर लेता हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरा रोग निर्मूल हो ही जायेगा।"

९. शरीर पर लाल दाने (रैश)

श्रीमती आशा मेहता (विशेष परिचयके लिए देखें 'दमा और ज़िगरकी सूजन') का सुपुत्र अनलसिंह भी मूत्रोपचारमें श्रद्धा रखता है। उसने अपने एक सहपाठीके चर्मरोगको मूत्रमालिशसे दूर किया है, जिसका विवरण आशा मेहताने इस प्रकार लिख भेजा है :--

"मेरे लड़केके एक सहपाठीके शरीर पर लाल-लाल दाने (rash) बहुत निकलते थे। मेरा लड़का पटियालाके इंजीनियरिंग कालेजमें पढ़ता था और अपने कमरेमें स्वमूत्रसे भरी हुई दो तीन बोतलें रखता था। उन बोतलों पर लिख रखा था -- नैक्टर ऑफ़ लाइफ़ नं० १, २, ३। जब भी किसीको चोट लग जाती या कहीं दर्द होता, तो वह १ नं० वाली बोतलमें से दवाई दे देता था। नं० ३ की बोतलमें ताज़ा पेशाब होता था, जो आँख इत्यादिमें डालनेके काम आता था।

"उसका सहपाठी आकर कहने लगा, 'तुम्हारे पास कोई अमृत नामकी दवाई है, मुझे भी थोड़ी दो, मेरी तो रैशोंसे बुरी हालत है।' उसने नं० १ की बोतलमें से शीशीमें दवाई डाल कर उसे दे दी और सुबह-शाम दो बार मालिश करनेको कहा। एक हफ़्तेकी मालिशके बाद रैश नामशेष हो गये।"

१०. नौसाला दाद

गत वर्ष एक जैन मुनिसे मुझे मालूम हुआ कि श्री सत्येन्द्र मुनिजी मूत्रोपचारका प्रचार करते रहते हैं। दीवालीके बाद मैं उनसे समाना मंडी (पंजाब) में मिला। उन्होंने बताया कि उनकी प्रेरणासे अनेक व्यक्तियोंने मूत्रप्रयोग द्वारा अपनी-अपनी छोटी-बड़ी बीमारियोंको दूर कर दिया है। फिर उन्होंने स्वानुभव भी सुनाया। चोट लगनेसे उनकी एक टाँग पर दाद हो गयी थी। देशी-अंग्रेज़ी विविध दवाएँ और तथाकथित 'जर्मकटर' भी उसे मिटा नहीं सके। नौ साल तक वे परेशान हुए। आख़िर मूत्रमालिश और मूत्र-पट्टीने नौसाला दादको नामशेष कर दिया। —सम्पा०

११. मुँहके खील

श्री हेमराज चौधरी आणंदके खेतीवाड़ी कालेजमें पढ़ते हैं। वे मुँहके खीलोंसे बहुत तंग आ गये थे। मेरी प्रेरणासे उन्होंने मूत्रप्रयोग शुरू कर दिया। मूत्रपान और मूत्रमालिश करनेसे उन्हें खुलकर दस्त आने लगा, अच्छी भूख लगने लगी और चमड़ी मुलायम हो गयी। मल और रक्तकी शुद्धि ठीक हो जानेसे उनके खील मिट गये और मुखकी कान्ति बढ़ गयी। —सम्पा०

१२. कलाईके मस्से

श्री दारा होरमसई मेहताने अपनी पत्नीके मस्सोंको मूत्रसे मिटाया, जिसका हाल 'कैसरे हिन्द' में इस प्रकार प्रकाशित किया है :—

"कुछ महीने पहले मेरी पत्नीकी दोनों कलाइयों पर छोटे-छोटे मस्से निकल आये थे। एक प्रसिद्ध चर्मविशेषज्ञको दिखाया, जिसने महँगी दवाएँ और गोलियाँ लिख दीं और साथ ही डर बताया कि यदि सावधानता न रखी गयी तो सारे शरीर पर मस्से फैल जायेंगे।

मैंने उन दवाओं और गोलियोंको ख़रीदनेका विचार छोड़ दिया और अपनी पत्नीसे कहा कि रोज़ाना अपने ताज़े पेशाबमें अपने हाथोंको कुछ देर डुबो रखो। तदनुसार एक मास प्रयोग करनेसे सभी मस्से नष्ट हो गये और कलाइयाँ पहले जैसी साफ़ हो गयीं।"

१३. सूखी दाद

श्री रणजीतमल लोढ़ा अजमेरनें रहते हैं। उमर ३२ वर्ष। सन् १९७६ में उनकी छाती और पीठ पर सूखी दाद हो गई थी। देशी व अंग्रेज़ी इलाज करनेसे कुछ दिनके लिए तो आराम हो जाता और फिर वही हालत हो जाती।

एक दिन "आरोग्यका अमूल्य साधन : स्वमूत्र" पढ़नेका अवसर मिला। उसे पढ़कर वे रोज़ दस मिनट मूत्रमालिश करने लगे। १०-१२ दिनमें ही दादका नामोनिशान न रहा। अब वे दूसरे रोगियोंको भी इस चिकित्साके लिए प्रेरित करते रहते हैं। ——संपा०

१४. छातीकी गाँठ

(१) श्रीमती इन्दुमती पंडित, उमर ६० वर्ष। सन् १९६८ में उसके स्तनोंके बीच बहुत पीड़ाकारी गाँठ हो गई। सिविल सर्जनने उसे जाँच कर कहा कि गाँठ अभी पूरी पकी नहीं है। एक हफ्तेके बाद यात्रासे लौटकर वह ऑपरेशन करेगा। श्री के० जी० पंडितने गाँठको मूत्रसे सेंकना शुरू कर दिया और उसपर गरम पेशाबकी पट्टी रखी जाने लगी। पाँच दिनके उपचारसे छाती पर गाँठका दाग तक भी न रहा।

(२) श्री मुनि सम्पतमलजी ५० वर्षके हैं। उनकी रोग-मुक्तिका विवरण उन्हींके शब्दोंमें इस प्रकार है :—

"२५ सालसे मेरे वक्षस्थल पर एक गाँठ थी। जोधपुरके प्रवासकालमें अकस्मात् उसमें से गाढ़ी पीप निकलनी शुरू हो गई।

दर्द भी बढ़ गया। चारों ओर सूजने और फूलनेसे अत्यधिक पीड़ा होने लगी। डाक्टरोंने कहा – 'यह कैन्सरकी-सी गाँठ लगती है। शीघ्रातिशीघ्र ऑपरेशन करना लाभदायक है, अन्यथा यह सारे शरीरमें फैल जायेगी। मैंने अपने दृढ़ विश्वाससे शल्य चिकित्सा नहीं करवायी।

"गुरुदेव आचार्य श्री तुलसीजीके आदेशसे मैं मोमासर (राजस्थान)में ठहर गया। स्वमूत्र चिकित्सक श्रीमान् भोजराजजी संचेतीकी सलाहसे मैं गाँठ पर स्वमूत्रकी मालिश करने लगा। कुछ ही समयमें मुझे अद्भुत सुधार दृष्टिगोचर होने लगा। पाँच-छ: मासकी मालिशसे प्राय: गाँठ समाप्त हो गई है। आज भी उसका अवशेष चिह्न दिखाई पड़ रहा है, पर मुझे कोई तकलीफ नहीं है।

"स्वमूत्रचिकित्सा वास्तवमें बहुत ही अच्छी और सस्ती चिकित्सा है। विधिपूर्वक करनेसे अनेक बीमारियाँ दूर होती हैं।"

१५. नितम्ब पर नासूर (अल्सर)

मास्टर गाडबोले, भिलाई (बिहार), उमर १४ बरस। उसके नितम्ब पर नासूर १९६४ में हुआ, जिसका ऑपरेशन एक हफ्तेके बाद होनेवाला था। श्री के० जी० पंडित दिनमें दो बार उसपर मूत्रकी सेंक करने लगे। कुछ आराम होनेसे वह गहरी नींद सो गया। पंडितने सुबह ८ बजे जाकर उसे उठाया और देखा कि बिस्तरेकी चादर पीप और खूनसे तर हो गई थी। नासूरका उभार लगभग दूर हो गया था। उन्होंने गरम पेशाबसे घावको साफ किया और आधे घंटे तक सेंक कर मूत्रपट्टी लगा दी। शामको उसे खेलते देखकर वे हैरान हुए, क्योंकि उसका दर्द बिलकुल मिट गया था। केवल एक बार और गरम पेशाबसे पंडितने घावको सेंका और मूत्रपट्टी बाँध दी। दूसरे दिन घावका निशान तक न रहा और वह स्कूल जाने लगा।

१६. मुखकी कालिमा

गांधी स्मारक भवन, चंडीगढ़के व्यवस्थापक श्री रंक बन्धुजीने ता. १-१२-'७६ को मुझे बताया कि एक लड़कीके आधे मुख पर कालिमा थी। बड़े-बड़े डाक्टरोंसे इलाज कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। एक डाक्टर जाँचके लिए रोज उसका पेशाब लेता और उसे अपनी शीशीमें भरकर वापस दे देता, जिससे वह लड़की मालिश करती और दिनमें तीन बार उसे पीती। २० दिनमें उसके मुखकी कालिमा दूर हो गई। —संपा०

१७. जबड़ेकी गिल्टी

श्री राजाराम प्र० सिंह नदावाँ (जि. पटना, बिहार) से ता. ३-९-'७७ के पत्रमें लिखते हैं :—

"एक स्त्रीके दाहिने गालमें अधिक सूजन एवं दर्द शुरू हो गया। साथ ही जबड़ेमें गिल्टी थी। कुछ दिन देहाती दवा कराई गई। कोई भी लाभ न होने पर दिनांक ८-७-'७७ से पटनाके कैन्सर विभागके हेडका इलाज चला दिनांक १२-८-'७७ तक। किन्तु रोगीको कोई लाभ नहीं हुआ। उन्होंने रोगका निदान कर 'ट्यूमर' बताया। तदनुसार दवा एवं टीके देनेके अलावा रोगीको १५ बिजलीके सेंक भी दिये। कोई लाभ न हुआ।

"दिनांक १६-८-'७७ से प्रथम चार दिन स्वमूत्र द्वारा शरीर-मालिश करनेके बाद २०-८-'७७ से २५-८-'७७ तक उपवासके साथ स्वमूत्रपान, पट्टी और सेंक चले। २८-८-'७७ को मुनक्के और मोसंबी-के रससे उपवास तोड़ा गया। यह दो दिन तक चला। तीसरे दिनसे सुबह मोसंबीका रस, दोपहरमें मूँगकी दालका पानी और शामको गायका दूध तीन दिन तक दिया गया। उसके बाद मूँग-दालकी खिचड़ी और रोटीका भोजन चल रहा है। स्वमूत्रपान, मालिश तथा सेंकपट्टी पूर्ववत् चालू हैं।

"लाभ :– दस दिनोंके बाद चौदह आने दर्द मिट गया, सूजनमें कमी। गाल पहले कड़ा था, अब नरम हुआ है। गाल पर स्वमूत्रकी सेंक-पट्टी देनेसे दो छिद्र हो गये, जिससे गन्धहीन मवाद निकलता है। शरीरमें शक्ति है।"

१२

आँखके रोग

१. ग्लॉकोमा (सबलवायु) और अन्य पीड़ाएँ

श्री भीखाजी कालाजी अहमदाबादके जमालपुर क्षेत्रमें कसाई-वाड़ेमें रहते हैं। वे ठेला चलानेकी कड़ी मज़दूरी करके अपनी रोज़ी कमाते हैं। उनकी उम्र ४१ वर्षकी है। उनकी कनपटीमें टीस उठती थी और सिरमें दर्द होता था। उन्हें आँखोंसे धुंधला दिखायी देता था और शाम या रातको कुछ भी दीखता न था। आँखें बहुत लाल रहतीं और उनसे निरन्तर पानी निकलता रहता था। वे इस रोगसे लगभग एक वर्षसे पीड़ित थे। गरीब होते हुए भी उन्होंने ५०० रुपये तो ख़र्च कर डाले थे। उन्होंने अहमदाबादके एक प्रतिष्ठित नेत्र-विशेषज्ञको अपनी आँखें दिखायीं। डाक्टरने कहा कि आँखोंकी पुतलीके पीछे जहरीला पानी भरा हुआ है, जिसे निकाल दिया जाये तो ठीक हो सकती हैं। वे अनजान बेचारे घबराये। आँखोंमें सूआ भोंक कर पानी निकालनेसे कहीं अंधा हो जाये तो पत्नी और छोटे बाल-बच्चोंकी क्या दशा होगी, यह चिन्ता उन्हें सताने लगी। इस अरसेमें किसी कामके सिलसिलेमें म्युनिसिपल स्टोर सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री अंबालाल पटेलसे उनकी भेंट हो गयी। उन्होंने भीखाजीको मूत्रप्रयोगकी सलाह दी। भीखाजी रोज़ाना दो-तीन बार अपने पेशाबसे आँखें धोने लगे और एक-दो बार तीन-चार औंस पेशाब पीने लगे। एक सप्ताहमें तो

उन्हें अपनी आँखोंमें कुछ आराम मालूम होने लगा। इसलिए उन्होंने श्रद्धापूर्वक उपचार चालू रखा। एक मासके निरन्तर उपचारसे उनका सिर-दर्द, कनपटीकी चसक और नेत्रपीड़ा मिट गयी। आँखोंकी लाली जाती रही और उनसे पानी निकलना भी बन्द हो गया। आँखें एकदम साफ़ हो गयीं और रतौंधीकी शिकायत भी दूर हो गयी।

भीखाजीने ता० ३–११–'५८ को अपनी रोग-मुक्तिका लिखित विवरण मुझे दिया था, जिसके अन्तमें वे लिखते हैं—"अपने ताज़े पेशाबके प्रयोगसे मेरी आँखोंकी तकलीफ़ और सिरकी पीड़ा मिट गयी है। शरीरमें और कोई व्याधि नहीं है और पहलेकी अपेक्षा अधिक स्फूर्ति लगती है। अब मैं अख़बार भी पढ़ सकता हूँ, जिसे पहले नहीं पढ़ सकता था। इतना फ़ायदा हुआ है कि मैंने चश्मेका उपयोग भी छोड़ दिया है।"

२. ग्लॉकोमा

श्री वेणीशंकरभाई मणिशंकर शुक्ल नवसारी (जि० बलसाड, गुजरात)में निवृत्त जीवन बिता रहे हैं। उनकी अवस्था ६८ वर्षकी है। उन्होंने ग्लॉकोमाको मूत्रप्रयोग द्वारा नष्ट किया, जिसका विवरण इस प्रकार है :—

"मेरी एक आँखमें छः माससे ग्लॉकोमा था। मैंने कुशल नेत्र-विशेषज्ञ डाक्टरोंसे इलाज करवाया, परन्तु कुछ आराम न हुआ और डाक्टरोंकी सलाहसे ऑपरेशन कराना मंजूर किया। मुझे ऑपरेशन-टेबल पर लिटाया गया और आँखोंको सुन्न करनेके लिए इंजेक्शन लगाया गया। सिरिंजकी सूई शिरामें लगनेसे रक्तकी धारा बह निकली, जिसके कारण ऑपरेशन मुल्तवी रखना पड़ा। इससे मैं इतना भयभीत हुआ कि ऑपरेशन करानेकी हिम्मत ही न रही।

"बलसाडके डा० परागजी डी० देसाईकी सलाहसे सन् १९६४के अगस्त मासमें स्वमूत्रका उपचार शुरू किया। रोज़ लगभग एक पाव ताज़ा पेशाब दो बार पीता था और पुराने पेशाबसे ४५ दिन मालिश

करता रहा। आँख धोनेकी प्यालीमें ताज़ा पेशाब डालकर सुबह-शाम दो वक्त अपनी आँख धोता रहा। मैंने उपवास तो नहीं किया। इस प्रकारके उपचारसे मेरी आँखकी सबलवायु नष्ट हो गयी। गत ४ वर्षमें कोई तकलीफ़ नहीं हुई। आजकल मैं एक व्यापारीके यहाँ मुख्य मुनीम हूँ और पढ़ने-लिखने तथा पत्र-व्यवहारका काम भलीभाँति कर सकता हूँ।"

३. चश्मेसे मुक्ति

(१) श्री रणजीतभाई बलदेवभाई परीखका विशेष परिचय 'चमड़ीके रोग' नामक प्रकरणमें आ चुका है। उनकी आँखोंका तेज मन्द हो जानेसे उन्हें चश्मेका उपयोग करना पड़ता था। उनके चश्मेका नंबर –२.५ था। उन्होंने 'शिवाम्बुकल्प' के अनुसार नासिका द्वारा मूत्र-पानका प्रयोग शुरू किया। इस तरह पाँच मासके प्रयोगसे उनके चश्मेका नंबर जाता रहा और उनकी आँखें बहुत तेजस्वी हो गयीं।

उनके नासिकापानके अरसेमें कुछ प्रतिक्रियाएँ भी हुई थीं। वे सुबहका पहला पेशाब लगभग छः औंस नाकसे पीते थे। दो-तीन दिन तक उनका सिर भारी रहा था। इसके अलावा गलेमें भी हलकी-सी चुनचुनाहट होती रही थी। नासिकापान शुरू करनेके एक मास बाद एक नासिकासे कफ निकलने लगा था। आखिर धीरे-धीरे सभी शिकायतें दूर होकर स्वस्थता आने लगी और प्रयोग लाभकारी सिद्ध हुआ।

मैं अपनी मान्यता और अनुभवके आधार पर इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि दिनमें तीन बार —— सुबह, दोपहर और शाम पांच मिनट पेशाबभरी आँख-प्यालियों (आई-बाथ) में पलक मारकर आँखें धोयी जायें तो डेढ़-दो महीनेमें आँखोंका तेज बढ़ जाता है और चश्मेका नंबर कम या दूर हो जाता है।

(२) श्री प्रह्लादभाई मनोरभाई पटेल, गाँव शीलज, जि० अहमदाबाद, उमर ६५ वर्ष (१९७६ में)।

उन्हें आँखोंकी कमजोरीके कारण चश्मा लगाना पड़ता था। उससे छुट्टी पानेके लिए वे आँखोंमें तीन दिन पुराने पेशाबकी बूँदें डालने लगे और कानोंमें भी गरम पेशाबकी बूँदें डाल लेते। उन्होंने सुबह-शाम १५ दिन मूत्रमालिश की, परन्तु मूत्रपान नियमित नहीं किया। १५ दिनमें उनका चश्मा उतर गया और अँधेरेमें भी उनकी आँखें देखने लग गयीं। उनका कमर-दर्द भी जाता रहा।

एक बार उन्हें पेचिश हो गई थी। मूत्रप्रयोगसे वह भी ठीक हो गई। बुखार मालिश करनेसे दूर हो गया।

४. नेत्र-सुधार आदि

श्री कल्याणजी गो० लाखाणी पोरबन्दर (सौराष्ट्र) में रहते हैं। उन्होंने मूत्रप्रयोगसे होनेवाले विविध लाभोंके बारेमें इस प्रकार लिखा है :—

(१) पिछले ४५ बरससे वे चश्मेका उपयोग करते आये हैं। एक मिनट भी चश्मा उतार देनेसे सिरकी नसें खिच जाती थीं। चार दिनके पुराने पेशाबकी बूँदें रातको आँखमें डालते रहनेसे इतना लाभ हुआ है कि वे घंटों तक बिना चश्मेके आनन्दसे रह सकते हैं।

(२) उनके हाथ काँपते थे और कोई चीज़ पकड़ी नहीं जा सकती थी। मूत्रप्रयोगसे हाथोंका कंपन कम हुआ है और प्याला-रकाबी पकड़ी जा सकती है।

(३) उन्हें हर पंद्रह-त्रीस मिनिटमें पेशाबके लिए उठना पड़ता था। अब दो ढाई घंटे बाद पेशाब होता है।

(४) उनके शरीरमें बेचैनी रहती थी, अब काफ़ी स्फूर्ति मालूम होती है। अभी उनका प्रयोग चालू है।

५. आँखोंका दर्द

बम्बईमें रहनेवाली एक ४४ बरसकी स्त्रीने अपने छः बरसके आँखोंके दर्दको मिटाया और चश्मेको भी दूर किया, जिसका विवरण इस प्रकार है :—

"मेरी आँखोंमें लगभग छः बरससे दर्द होता था। आँखकी कोरोंमें इतनी खाज उठती कि दिनभर आँखें मसलनी पड़तीं और उनमें दर्द होता रहता। मुझे स्थानीय के० ई० एम० अस्पतालमें जाना पड़ा। दो महीने इलाज किया, परन्तु आराम नहीं हुआ। फिर मैंने हाजी बचुअली आँखके अस्पतालमें इलाज शुरू किया। जब तक दवा चलती रहती तब तक आराम रहता, दवा बन्द होती कि फिर दर्द शुरू हो जाता। फिर अपने पड़ोसी श्री जयकिशनदासजीकी सलाहसे मैंने मूत्रप्रयोग ता० ३–८–'६० से शुरू किया।

"मैं बाज़ारसे आँख धोनेकी दो प्यालियाँ (आई-बाथ) ले आयी और उनमें ताज़ा पेशाब डालकर रोज़ाना चार बार आँखें धोने लगी। करीब डेढ़ महीने बाद थोड़ा आराम होने लगा, जिससे मेरी श्रद्धा और बढ़ी। बड़े उत्साहके साथ प्रयोग जारी रखा। लगभग तीन महीनेमें पूरा आराम हो गया। साथ ही यह लाभ भी हुआ कि दूरकी नज़र अच्छी हो गयी अर्थात् दूरकी वस्तु साफ़ दिखायी देने लगी। अब केवल लिखने-पढ़नेके लिए चश्मेकी ज़रूरत पड़ती है। मेरे सिरमें भी बहुत दर्द रहता था, वह भी बिल्कुल मिट गया है। अब किसी प्रकारकी तकलीफ़ नहीं है।"

६. पुराने कुकरे

चंडीगढ़से श्रीमती आशा मेहताने निम्नलिखित विवरण भी भेजा है :—

"मेरा लड़का अनलसिंह और उसका धर्मभाई अमरसिंह नागी दोनों पटियाला (पंजाब) के थापर कालेजमें इंजीनियरिंगमें पढ़ते थे।

दोनों जब छुट्टियोंमें घर आये तब अनलने मुझे बताया कि अमर की आँखें बहुत खराब हैं और कुकरोंके कारण उसका पढ़ना मुश्किल हो गया है। कालेजके डाक्टरने तो उसे यहाँ तक कह दिया कि कुकरोंकी हालतमें यह पढ़ाई जारी नहीं रख सकेगा और दो मास बाद उसकी आँखोंकी फिरसे जाँच की जायेगी। ऐसी स्थितिमें अमर कुछ चिन्तित एवं निराश मालूम हुआ। मैंने उसे दिनमें तीन बार ताज़े मूत्रसे आँखें धोने और आँखोंमें मूत्र डालनेको कहा। पहले तो उसकी आँखें लाल हो गयीं और फूल भी गयीं। उसे घबराया हुआ देखकर मैंने कहा कि यह तो भीतरका ज़हर बाहर आ रहा है और सारे ज़हरके निकल जाने पर तुम्हारी सारी तकलीफ़ दूर हो जायेगी। फिर वह धीरज और शान्तिके साथ मूत्रसे अपनी आँखें धोता रहा और उनमें मूत्र आँजता रहा। एक मासके बाद कुकरोंकी शिकायत बिल्कुल दूर हो गयी। जब कालेजके डाक्टरने उसकी आँखोंका फिर से निरीक्षण किया तो वे दंग रह गये और अमरसे कहा – 'तुम्हारी आँखें अब बिल्कुल ठीक हैं।'

"अमर रातके ११-१२ बजे तक पढ़ता और मेहनत करता है, पर उसे कभी कोई आँखकी तकलीफ़ नहीं हुई। अब तो उसका सारा परिवार ही इस अमृतका उपयोग करता है।"

७. कमजोर नजर

श्री मुरारीलाल वर्मा कल्याण हौजरी मिल्स, लुधियानाके एक हिस्सेदार हैं। वे ता. १६-४-'७७ के पत्रमें लिखते हैं :–

"मेरी उमर ६४ सालकी है। श्री विजयकुमार गुप्ताकी प्रेरणासे मैं मुँहमें पेशाब भरकर दस मिनट अपनी आँखें सुबह पेशाबसे धोता हूँ। उसके बाद गरारे करके मुँहसे पेशाब निकाल देता हूँ। इस प्रयोगसे दिन-ब-दिन मेरी नजर ठीक हो रही है। बिना चश्मेके दूर तक देख सकता हूँ। मेरे दाँत पत्थर जैसे हो

गये हैं। उनसे गन्ना चूस सकता हूँ और बादाम फोड़ सकता हूँ। तबसे दाँतोंमें दर्द नहीं हुआ है।"

उसी पत्रमें उन्होंने लिखा है कि उनकी प्रेरणासे मूत्रप्रयोग द्वारा दो मित्रोंकी नज़र नार्मल हो गई है और दो मित्रोंका मोतिया ठीक हुआ है तथा वे ऑपरेशनकी परेशानीसे बच गये हैं।

८. नेत्रोंमें दाने और उनसे पानी झरना

(१) मुनि संयमरुचिजीकी रोगमुक्तिका विवरण :–

"सन् १९६६ में मैं राजस्थानके प्रसिद्ध शहर जोधपुरमें था। वहाँ अकस्मात् मेरे नेत्रोंमें दाने उभर आये और हर समय नेत्रोंसे पानी झरने लगा। नया आदमी यह देखकर आश्चर्यमें डूब जाता कि साधु होकर ये रो रहे हैं। नेत्रचिकित्सकोंकी सलाहसे मैंने ऐनक लगाना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु ज्यों-ज्यों उपचार हुआ रोग बढ़ता ही गया। आखिर अहमदाबादसे प्रकाशित मूत्रचिकित्साकी पुस्तक किसी भाईके पास देखी। उसे पढ़कर स्वमूत्रसे नेत्र धोनेका प्रयोग किया, जिससे पानी गिरना बन्द हो गया। साथ-साथ जलनेति भी करता रहा। धीरे-धीरे ऐनक भी उतर गयी। दाने नष्ट हो गये। आज मेरी दृष्टि बिलकुल ठीक है। अब भी नेत्रोंका उपचार बीच-बीचमें उसी प्रकार करता रहता हूँ। नेत्रज्योति पहलेसे काफी अच्छी है।"

१३

कानके रोग

१. कान बहना

(१) आणंदके पासके मोगरी गाँवके श्री चतुरभाई भाईलालभाई सन् १९५८ के मई मासके दूसरे सप्ताहमें मेरे पास आये। उनके साथ उनकी सोलह वर्षकी लड़की भी थी। मैंने पूछा कि इस लड़कीको क्यों लाये हैं। उन्होंने कहा, "इसका कान बहुत दिनोंसे पका है, बहुत दर्द होता है और पीप निकलती है। कानके किसी विशेषज्ञको बतानेके लिए इसे साथ लाया हूँ।"

मैंने हँसते-हँसते उनसे कहा कि इसे घर ले जाकर इसीके पेशाबकी बूँदें चार दिन कानमें डालें, जिससे दर्द मिट जायेगा। वह लड़की भी समझ गयी। वे मोगरी वापस लौटे और चौथे दिन पत्र आया कि तीन दिन पेशाबकी बूँदें डालनेसे कानकी पीड़ा मिट गयी है, परन्तु अभी थोड़ी-थोड़ी पीप निकलती है, उसके लिए क्या किया जाये? मैंने सूचित किया कि पेशाबको थोड़ा गरम करके छोटी पिचकारीसे कान धो डालें और फिर उसी गरम पेशाबकी बूँदें डालकर रूईका फाहा रख दें। उन्होंने वैसा ही किया। तुरंत चौथे दिन पत्र आया कि बच्चीके कानका दर्द बिल्कुल मिट गया है।

(२) कविराज रामस्वरूप कौशिकने कान बहनेकी तकलीफ़को भी मूत्र द्वारा दूर किया है, जिसका विवरण उन्हींके शब्दोंमें नीचे दिया जाता है :—

"मेरे एक मित्रकी बारह बरसकी कन्याके कान बहते थे और बड़ा दर्द करते थे। उन्होंने बहुत इलाज कराया पर कुछ फ़ायदा

न हुआ। अन्तमें जब कानोंसे बदबू आने लगी तो उन्होंने मेरे कहने पर अपनी लड़कीके कानोंमें गुनगुना स्वमूत्र डालना शुरू किया और कुछ ही दिनोंमें कानोंकी पीड़ा दूर हो गयी।"

२. कान बजना

चि० विपुल चिनुभाई शाह पुष्पकुंज सोसायटी, अहमदाबादमें रहता है, जिसकी उम्र दस बरसकी है। कुछ समयसे उसके कानोंमें दर्द रहता था और कान बजते थे अर्थात् उनमें सांय-सांयकी आवाज़ हुआ करती थी और उसे सुनाई भी कम पड़ता था। घरमें रखी हुई अंग्रेजी दवा डालनेसे तकलीफ़ कुछ कम हो जाती और फिर बढ़ जाती। साथमें रहनेवाले श्री हंसजीने मूत्रप्रयोगसे जो अनेक लाभ उठाये हैं उन्हें विपुल और उसकी माता जानती थीं। उन्हींके अनुरोधसे उसके कानमें ताज़े पेशाबकी बूंदें सुबह-शाम डाली जाने लगीं, जिससे कानका मैल बाहर निकलने लगा और दर्द कम होने लगा। चार-पाँच दिन गुनगुने पेशाबकी बूंदें भी डाली गयीं। इस तरह करीब दो हफ़्तेके मूत्रोपचारसे कानकी सारी तकलीफ़ें दूर हो गयीं।

३. बहरापन

श्री महेन्द्र विट्ठलदास मिस्त्री बम्बईमें रहते हैं। उनकी उमर ३७ वर्षकी है। बचपनसे उन्हें सर्दीकी शिकायत रहती थी और कभी-कभी गलेकी सूजन और शरीरका दर्द भी हो जाता था। उनका बायाँ कान बहरा हो गया। उन्होंने अपने बहरेपनको दूर करनेके लिए देसी-अंग्रेज़ी कई उपचार किये और कानके विशेषज्ञसे भी इलाज कराया, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। उनके कानके परदेमें एक छोटा छिद्र भी था। डाक्टरने यहाँ तक कह दिया कि ऑपरेशन कराने पर भी उनका कान ठीक नहीं होगा। ऐसी स्थितिमें उनका निराश और खिन्न होना स्वाभाविक था।

आख़िर उन्हें किसी तरहसे पता चला कि डा० परागजी डी० देसाई प्रतिमास बलसाडसे बम्बईके मूत्रचिकित्साके मार्गदर्शन-केन्द्रमें आते हैं। वे उनसे मिले और अपने कानकी रामकहानी उन्हें सुनायी। फिर उनकी ढाढ़सभरी सहालसे ता० ३-७-'६७ से स्वमूत्रका प्रयोग शुरू कर दिया। वे रोज़ाना मूत्रपान और मूत्रमालिश करने लगे। साथ ही कानमें पेशाब डालने लगे और पेशाबसे कान धोने लगे। एक हफ्तेमें ही उन्हें फ़ायदा मालूम होने लगा। धीरे-धीरे बहरापन दूर हो गया और कानके परदेका छिद्र भी रुझाने लगा। अब वे अच्छी तरह सुन सकते हैं। फिर भी उन्होंने प्रयोग चालू रखा है। आख़िर तो स्वमूत्र आरोग्यका एक अमूल्य एवं अचूक साधन है।

—संपा०

४. कानका बहना और बहरापन

श्री भोगीलाल एन० चौकसी (गणेश बाग़, F-45, बम्बई १९) लिखते हैं कि उनके मित्र प्रिंसिपल सी० सी० देसाई पिछले बीस वर्षसे कानके दर्दसे पीड़ित थे। कानमें से पीप निकलती थी और उन्हें कम सुनायी देता था। कानमें मूत्र डालते रहनेसे उनकी सभी पीड़ाएँ दूर हो गयीं। मूत्रमालिशसे उनका चर्मरोग भी ठीक हो गया। उन्होंने मूत्रोपचारसे दमे, समीपदृष्टि (शॉर्ट साइट) और एक्ज़ामासे पीड़ित पड़ोसियोंको भी नीरोग एवं स्वस्थ बना दिया।

५. कानका दर्द

वैद्य करुणाशंकर रामशंकर त्रिवेदी अहमदाबादके एक अच्छे वैद्य हैं। वे प्रति सप्ताह स्थानीय दैनिक पत्र 'जनसत्ता' में रोगोंके आयुर्वेदिक उपचारके विषयमें एक लेख लिखा करते हैं। उनका मूत्रसंबंधी निजी अनुभव इस प्रकार है:—

(१) **कानका दर्द**—एकदम ताज़ा या थोड़ा गरम मूत्र डालनेसे कानका दर्द मिट जाता है, यह मेरा अनुभव है। मेरी उम्र छोटी

थी। मैं आठवीं कक्षामें पढ़ता था। एक सुन्दर मन्दिरके आँगनमें संगमरमर पर मैं, मेरा एक भाई और मित्र सो रहे थे। रातको एक बहुत छोटा-सा कनखजूरा मेरे कानमें घुस गया। मैं बालक तो था ही, लगा छटपटाने, परन्तु मन्दिरके द्वारपालने हमसे कहा, "रातको कुछ नहीं हो सकेगा, पेशाब करके कानमें डाल दो, सुबह जो कुछ होगा पता लग जायेगा।" मेरे भाईने मेरा ही पेशाब मेरे कानमें डाल दिया। सुबह यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कनखजूरेके दो-तीन टुकड़े मेरे कानके पास चिपके हुए थे। मूत्रसे ऐसा हुआ या फिर अपने-आप वह बाहर आ गया, इसे भगवान जाने। परन्तु इसका श्रेय तो मैं आजतक ममतापूर्वक अपने मूत्रको ही देता आया हूँ और इसके लिए मैं मन्दिरके द्वारपालका आभारी हूँ।"

(२) श्री के० जी० पंडितने सूचित किया है कि सन् १९६६में कलकत्ताके १२ वर्षीय राजेन्द्र गाडगिलके कानमें बहुत दर्द हो गया था। ताजे पेशाबकी बूँदें कानमें डालनेसे इतना आराम हुआ कि वह आधे घंटेके बाद ही सो गया और रातभर सोता रहा। सुबह उसके कानमें से निकला हुआ कचरा पाया गया और कानका दर्द एकदम जाता रहा।

१४

दाँतके रोग

१. दाँतकी पीड़ा और पीप

अहमदाबादमें कांग्रेसके कई युवक कार्यकर्ता मूत्रप्रयोगके बारेमें बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। वे मूत्रको 'काकाकोला'के नामसे पुकारते हैं। उन्हें लगता है कि रावजीकाका (चाचा)को क्या पागलपन सूझा है? जरा किसीने बीमारीकी शिकायत उन्हें सुनायी नहीं कि वे तुरन्त 'काकाकोला' पीनेकी सलाह दे देते हैं। ऐसी बातें सुनकर मुझे भी आनन्द आता। यह समझकर कि काकाको उनकी दिल्लगी बुरी नहीं लगती, वे बेफ़िक्रीसे मज़ाकका मज़ा लूटते।

मैं पंचशील सोसायटीमें रहता हूँ। एक दिन रातको नौ बजे मेरे पड़ोसमें सभी एक-सरीखे मित्र मिलकर गप-शप लगा रहे थे। श्री मनुभाई पटेल गुजरात प्रान्तके सेवादलके नायक भी वहाँ बैठे थे। उन्हें एकाध महीनेसे दाँतका दर्द परेशान कर रहा था और दाँतोंसे पीप भी निकलने लगी थी। उन्होंने दाँतके डाक्टरकी सलाहसे 'अमोसन' पावडरसे कुल्ले किये और विटामिन सी और कैल्शियमकी गोलियाँ खायीं। शुरूमें थोड़ा फ़र्क मालूम हुआ, परन्तु दूसरी तरफ़के मसूड़ेमें भी पीप पैदा होने लगी। उन्हें और डाक्टरको ऐसी शंका हुई कि शायद पायरिया हो जाये और सब दाँत निकलवा देने पड़ें। ३६ बरसके हृष्टपुष्ट युवक-से और गोलमटोल चेहरेवाले मनुभाईके दाँत निकलवा दिये जायें तो वे कैसे दिखायी देंगे? फिर तो खाना भी पूरी तरह चबाकर न खाया जाये, और वैसा खाना ठीक तरहसे पचे भी नहीं, जिससे और तकलीफ़ें खड़ी हो जायें। वे अपने दुःखकी कहानी खुद ही सुना रहे थे कि मैं वहाँ जा पहुँचा। मेरा तो यह

काम ही हो गया है कि निःसंकोच उपचार सुझाऊँ। मैंने उन्हें मूत्रोपचार सुझाया। मनुभाई यह सुनते ही बोल उठे, "मैं तो इस बातको मानता ही नहीं हूँ। हम कई मित्र साथमें हों और आपकी यह बात चल पड़े, तब मज़ाक करते हैं कि अहमदाबाद नगरपालिकाके सभी पेशाबखानोंका प्रवाह मूत्रचिकित्सा-केन्द्रकी तरफ़ मोड़ दिया जाये और वहाँ इकट्ठे हुए पेशाबकी बोतलें भरकर 'काकाकोला' के लेबल लगाकर उनका निर्यात हो तो नगरपालिकाको अच्छी आमदनी हो जाये।" इस बातको सुनकर सभी मित्र हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

परन्तु मैंने शान्तिसे कहा, "मनुभाई, आपकी बात तो ठीक है। आपको इस तरह मज़ाक करनेका भी अधिकार है। किन्तु मेरा आपसे निवेदन है कि यदि आप सोनेसे पहले जिस दाँतमें दर्द है उस पर अपने पेशाबमें तर किया हुआ रूईका फाहा रखें और आराम न हो, तो फिर आपको मेरा इस तरह मज़ाक उड़ानेका पूरा अधिकार प्राप्त होगा। आप जब तक मूत्रप्रयोगकी व्यर्थताका अनुभव न कर लें, तब तक ऐसी मसख़री करना ठीक नहीं है। इसलिए आप ज़रा इतना तो कर देखें।"

मेरा निवेदन तत्काल तो उन्हें जँचा नहीं। वे चुप रहे। ऐसा घृणित प्रयोग कौन करे? यह सोचकर रातको फाहा नहीं रखा। परन्तु सवेरे पाँच बजे उठे और ज़रा दिल्लगीकी ख़ातिर प्रयोग आज़मानेके लिए रूईका फाहा रखकर सो गये। एक घंटेमें तो मानो जादूका असर हुआ। उनकी पीड़ा शान्त हुई और साथ ही उनका विरोध भी शान्त हो गया। फिर तो उन्होंने श्रद्धाके साथ प्रयोग करनेका निश्चय कर डाला। सुबह उठते ही वे अपने रातवाले मित्रोंसे उत्साहपूर्वक कहने लगे, "आश्चर्य हो गया! सुबह एक ही फाहा रखा कि मेरा दर्द दूर हो गया।" फिर उन्होंने मसूड़े दबा-दबाकर पीप निकालना शुरू किया और सूचनाके अनुसार पेशाबसे कुल्ले करने लगे। थोड़ा पीने भी लगे। ठीक चौथे रोज़ मनुभाईका दर्द बिल्कुल मिट

गया। मेरे पास आकर उन्होंने कहा, "अब मैं आपको अपना विवरण देनेको तैयार हूँ।" मैंने कहा, "जरूरत होगी तो जनहितके लिए आपका विवरण ले लूँगा। परन्तु अब आपको इस जीवन-जलके बारेमें तसल्ली हो गयी है, इसलिए आप निःसंकोच इसका प्रचार करें।" वे वैसा करने लगे। जब वे मित्रमंडलमें बैठे थे तब एक मित्रने कहा, "आपकी प्रवृत्तिमें मनुभाई भी मूँडे गये। अब प्रचारक बन गये हैं।" तब मैंने कहा, "मूल द्रव्यमें वैसी शक्ति है, इसलिए जो सरल बुद्धि रखते होंगे वे तो प्रचारक बनेंगे ही, परन्तु जो अपने आपको सूझ और बुद्धि-मत्ताके ठेकेदार मानते होंगे वही रह जायेंगे और व्यर्थ दुःखी होंगे।"

उपर्युक्त विवरण ता० १२–५–'६१को लिखकर मैंने मनुभाईको दिया और भूलचूक सुधारने और कमीवेशीको ठीक करनेके लिए सूचित किया। उन्होंने भलीभाँति और सावधानीसे देखकर मुझे वह वापिस दिया। इसलिए इसमें न तो कोई त्रुटि है और न ही कोई अतिशयोक्ति।

२. हिलता दाँत

स्व० श्री रावजीभाईने मुझे श्री बालकोबा भावेका वह पत्र दिखाया था जिसमें उन्होंने लिखा था — "मैं मूत्रोपचारको प्राकृतिक चिकित्साका एक अंग मानता हूँ।" फिर वे अन्यत्र लिखते हैं :—

"एलोपैथी, आयुर्वेद, यूनानी, होमियोपैथी आदि चिकित्सा पद्धतियाँ दवा पर अवलंबित हैं, उनकी तुलनामें स्वमूत्र द्वारा रोगमुक्त होनेकी पद्धति अच्छी है, क्योंकि यह स्वावलम्बी है।"

१२ फरवरी, १९६७को उनसे मिलनेके लिए मैं नागपुरसे पवनार (वर्धा) गया था। वहाँ ब्रह्मविद्यामंदिरके व्यवस्थापक श्री सेवानन्दजीसे मालूम हुआ कि अनेक स्त्री-पुरुष मूत्रप्रयोगमें दिलचस्पी रखते हैं और उन्होंने इस प्रयोगसे लाभ भी उठाया है। तब मुझे खयाल आया कि मूत्रप्रयोग कितना व्यापक होता जा रहा है।

वहीं भाऊ पानसे नामके एक पुराने राष्ट्र-सेवकसे मेरा मिलना हुआ। मैंने उनसे मूत्रप्रयोगका अनुभव पूछा। उन्होंने कहा, "मैंने एक बार लकड़ीमें लगी हुई कीलको दाँतसे निकाला था, जिससे दाँत हिलने लग गया था। मूत्रसे कुल्ले और मालिश करनेसे हिलता दाँत जम गया। अब तो मैं मूत्रसे ही मंजनका काम लेता हूँ और अन्य किसी मंजन या पेस्टका उपयोग नहीं करता।"

—संपा०

३. दाँतोंका दर्द

ब्रह्मचारी बनारसीदासजी समतावादके अनन्य भक्त एवं प्रचारक हैं। वे सन् १९६५ में तपोभूमि समतायोग आश्रम, राजपुर (डेरादून) में मेरे परिचयमें आये थे। तभीसे वे मूत्रोपचारमें दिलचस्पी रखते हैं और आवश्यकताके अनुसार उसे कर भी लेते हैं। उन्होंने दाँतके दर्दसे छुटकारा पानेका विवरण मुझे अहमदाबादमें दिया, जिसे यहाँ प्रस्तुत करता हूँ :—

—संपा०

"निवेदन है कि आपके बताये हुए मूत्रोपचार द्वारा मैंने अपने दाँतोंके दर्दको दूर करनेकी जो कोशिश की थी वह बहुत सफल रही। मैं सन् १९६६में गरमीके मौसिममें ज्योलीकोट, जि० नैनीताल (उ० प्र०)के 'समता-साधन-वन' में एकान्तवास कर रहा था। अचानक दाँतोंका दर्द शुरू हो गया। इस कदर तकलीफ़ हुई कि दो दिन बहुत बेचैनीसे गुज़रे और तीसरी रातके दो बजे तो दर्द बेहद हो गया। उसी वक्त स्वमूत्रसे कुल्ले करने शुरू कर दिये। एक बारके कुल्लेमें तीन मिनट लगते थे। बीस मिनटके बाद आराम शुरू हो गया और नींद आ गयी। सुबह उठने पर तो बहुत ही आराम महसूस हुआ। दो तीन रोज़ सुबह-शाम कुल्ले करता रहा और दाँतोंका दर्द एकदम काफ़ूर हो गया। आपका बहुत मशकूर (कृतज्ञ) हूँ।"

४. पायरिया

श्री हरिभाऊ देसाई (आशादीप, ब्रह्मपुरी, बड़ौदा)का ता० १५–२'६२ का पत्र मई १९६२ के 'भारत सेवक' में प्रकाशित हुआ था, जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है :—

"मेरे मित्र होमियोपैथ डा० . . . . भी निजी अनुभवके आधार पर यथासंभव रोगियोंको शिवाम्बुका उपयोग करनेके लिए प्रेरित करते हैं।

"एक व्यक्तिका पायरिया दो माहके मूत्रप्रयोगसे मिट गया है और उसका चश्मा भी दूर हो गया है।"

५. जबड़ेका दर्द

श्रीमती कलावती जम्मूसे ता २६–६–'७५ के पत्रमें लिखती हैं :—

"मेरे जबड़ेमें इतनी विकृति आ गयी थी कि दायीं ओर पूरा मुँह नहीं खुलता था। बर्फ़का टुकड़ा चबाते समय जैसी आवाज़ सुनी जाती है वैसी आवाज़ खाते समय होती थी। रोटी चबाना कठिन था। लगभग एक मास तक रोटी पूरी तरह खा ही नहीं सकी, क्योंकि चबानेमें दर्द होता था। अधिक तरल वस्तु ही लेती। एक मास एलोपैथिक गोलियाँ, कैप्सूल आदि लेती रही, इन्जेक्शन भी लिये और बिजलीका उपचार भी किया, परन्तु तनिक भी लाभ न हुआ। आखिर लगभग दो हफ़्ते मूत्रमें सनी मिट्टीकी पट्टी रखनेसे तथा मूत्रपान और मूत्रमालिश करनेसे जबड़ा ठीक हो गया।"

१५

नाकके रोग

१. पीनस

श्री कान्तिलाल बुलाखीदास पटेल ता० २२–६–'६८ को अनायास बसमें मुझे मिल गये थे। हम दोनों खाड़िया गेट पर उतरे और पारस्परिक परिचयके सिलसिलेमें 'आरोग्यका अमूल्य साधन — स्वमूत्र' के प्रकाशनका भी ज़िक्र आ गया। उन्होंने बताया कि उनका पीनस रोग (बिगड़ा हुआ ज़ुकाम) मूत्रोपचारसे ठीक हो गया था। वे अहमदाबादके मणिनगरमें रहते हैं और अपने जीवनको अध्यात्मकी ओर अग्रसर करनेके लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इस समय उनकी उमर ५८ वर्षकी है। मेरे निवेदन पर ता० २४–६–'६८ की शामको उन्होंने अपनी रोगमुक्तिका विवरण मुझे हाथों-हाथ दिया, जिसका हिन्दी भाषान्तर इस प्रकार है :— — संपा०

"लगभग छः वर्ष पूर्व मेरी नाकमें से बदबूदार चिकना पानी निकलता था और कभी-कभी कफ़के साथ रक्त भी निकलता था। नाकमें पीड़ा भी होती थी। मैंने वी० एस० हॉस्पिटलमें तीन-चार बार पंच कराथा, परन्तु मेरा रोग दूर न हुआ। फिर नाकके विशेषज्ञ डा० बालगेसे पंच कराया, परन्तु मेरी व्याधि मिटी नहीं। इस व्याधि ने मुझे लगभग आठ मास तक बहुत परेशान किया था।

"मेरे एक बुज़ुर्ग हितैषी सेठ श्री जितेन्द्रराय भूताने मुझे 'मानव-मूत्र' पुस्तक भेंटमें दी, जिसे पढ़कर मूत्रप्रयोग करनेको कहा। उसे पढ़कर मैंने दोनों नासिकाओंसे सुबहका पेशाब पीना शुरू कर दिया और लगभग सात महीने तक पीता रहा, जिससे मैं रोगमुक्त हो गया और आज भी उस रोगसे सर्वथा मुक्त हूँ।"

२. नाककी जलन और अन्य पीड़ा

श्री पी० के० राघव पाणिकरका विशेष परिचय सिरके रोग नामक प्रकरणमें दिया गया है। इस समय उनकी अवस्था ४३ बरसकी है। लगभग छः सात बरससे उन्हें सर्दीकी शिकायत थी, जो इतनी बढ़ गयी कि उनकी नाकमें जलन होने लगी, नाककी दोनों ओर आँखोंके पास दर्द होने लगा और कभी-कभी नाकमें से खून भी आ जाता था। उनकी कुछ आदत-सी बन गयी है कि तकलीफ़ बढ़ने पर ही वे उसका उपचार करते हैं। वे जब-तब डाक्टरी उपचारका आश्रय लेते रहे और थोड़ा-बहुत आराम पाते रहे। उन्हें भी अपनी पत्नीकी भाँति पुस्तक पढ़ने पर मूत्रोपचारका पता लगा और उसका उपयोग किया। उन्होंने दिनमें तीन बार मूत्रनेति की और दो तीन दिनके बाद आराम होनेसे मूत्रनेति करना छोड़ दिया। इस तरह लगभग छः मासके अरसेमें उन्होंने दस-पन्द्रह बार मूत्रनेति की होगी, जिससे नाककी उपर्युक्त सभी तकलीफ़ें दूर हो गयीं।

उन्हें जब गलेकी तकलीफ़ होती है तो वे मूत्रके गरारे करके उसे दूर कर लेते हैं। बरसोंसे वे भगन्दरसे पीड़ित हैं। उसकी पीड़ा बढ़ जाने पर वे मूत्रका उपयोग करके उसे कुछ कम कर लेते हैं। उन्होंने और उनकी पत्नीने यह अनुभव किया है कि चोट, चाकू आदि और जलनेके घावोंके लिए मूत्र एक अचूक इलाज है।

दोनोंकी रोगमुक्तिका हाल सुनने और जाननेके लिए मैं ता० ७–७–'६८ की सुबह उनके घर पर गया था। उनसे मैंने अनुरोध किया कि वे दोनों नियमित एवं व्यवस्थित मूत्रोपचार अवश्य करें, ताकि स्वस्थ एवं सशक्त रह सकें। ——संपा०

३. साइनेस

श्री अमृत एन० वाड़ियाका विशेष परिचय 'रक्त प्रदर' नामके प्रकरणमें दिया गया है। उनके पुत्र अनंतकुमार वाड़ियाकी उमर १५

वर्षकी है। इतनी छोटी उमरमें भी उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। उसे आये दिन सरदी हो जाती थी, जिसने साइनेसका रूप धारण कर लिया और वह दमेका शिकार भी हो गया। माता-पिताके समझाने पर वह मूत्रप्रयोगके लिए राज़ी हो गया। १५ दिन तक उसे मूत्रपान कराया गया और उसकी मूत्रमालिश की गयी। रोज़ाना दो बार गरम पेशाबकी नास उसे दी जाती थी। इतने थोड़े समयके मूत्रोपचारसे उसकी दोनों व्याधियाँ — साइनेस और पाँच बरसी दमा — दूर हो गयीं और उसने स्वास्थ्यके आनंदका अनुभव किया। — संपा०

१६

सिरके रोग

१. सिरदर्द

अहमदाबादकी ढालकी पोलमें एक गृहस्थ रहते हैं। वे सुबह उठते कि सिरदर्द होने लगता। उन्हें यह तकलीफ़ सालोंसे थी। ख़ूब बेचैनी रहती और कुछ काम नहीं हो पाता। अपने सिरदर्दको मिटानेके लिए वे अनेक प्रकारके टिंचर लिया करते थे। टिंचरोंके पीनेसे उन्हें नशा चढ़ जाता और नशेमें सिरका दर्द दब जाया करता अर्थात् दर्दका पता न लगता। श्री रणजीतभाईको उनकी तकलीफ़का पता चला कि वे उनके पास पहुँच गये। रणजीतभाईने पहले तो उन्हें यह समझाया कि ऐसी दवाओंसे शरीरको बहुत हानि पहुँचेगी और वे सदाके लिए रोगी हो जायेंगे। फिर उन्हें प्राकृतिक तथा उपयुक्त उपाय सुझाया, जो उन्हें जँच गया। तदनुसार उन्होंने मूत्रपान शुरू कर दिया। पहले ही दिन उन्हें कै हुई, जिससे सिरदर्द कुछ कम हो गया। यों लगातार तीन दिनके मूत्रपानसे उनका बरसों पुराना सिरदर्द दूर हो गया।

२. गंज

(१) सन १९५९ की बात है। हरिजन आश्रम, साबरमती, अहमदाबादमें अपने भूतपूर्व सहयोगी श्री नारायण ओधवजी सलारियासे मेरी अनायास भेंट हो गयी थी। नारायण सलारियाने अपने बड़े भाई डा० मगनलाल सलारियाके मार्गदर्शनमें स्थानीय प्राचीन चिकित्सा अनुसंधान केन्द्र (मूत्रचिकित्सा केन्द्र) का लगभग तीन साल तक भलीभाँति संचालन किया है। उन्होंने मूत्रप्रयोगसे अपने पुराने छातीके दर्द और पुरानी चश्मेकी बीमारीको नष्ट किया। उन्हें मूत्रप्रयोगसे आनुषंगिक लाभ यह भी हुआ कि उनका गंज दूर हो गया। इस समय उनकी अवस्था लगभग ७० बरसकी है। प्रसंगात् निवेदन कर दूँ कि उन्हींके प्रेरक अनुभव सुनकर मैंने अपनी गठियाकी बीमारीके लिए मूत्रोपचारको अपनाया था। ——संपा०

कविराज रामस्वरूप कौशिकने मूत्रोपचारसे एक बालकके गंजको भी मिटाया है, जिसका विवरण उन्हींके शब्दोंमें यहाँ दिया जाता है:— ——संपा०

(२) "रामेश्वरदास शर्माका पुत्र ९ बरसका था, जिसका सिर गंजा था। बड़ा इलाज कराया, मगर आराम नहीं हुआ। मैं एक दिन रामेश्वरदासकी पत्नीको देखने गया तो लड़केके सिर पर दवाई लगायी जा रही थी। मैंने दवा बन्द करवा दी और बालकके अपने मूत्रसे रोज़ उसका सिर धुलवाना शुरू करवा दिया और नारियलके तेलमें उसीका पेशाब मिलाकर मरहम बनाकर उसके सिर पर मसली गयी। चन्द दिनोंमें ही उसका गंज मिट गया।"

३. बालोंका झड़ना

मेरे सिरके बाल झड़ते थे। नहानेके बाद तौलियेसे सिर पोंछता था तब तौलिये पर अनेक बाल लग जाते थे। ८ नवम्बर,

१९५९को मैंने गठियाके रोगसे मुक्त होनेके लिए मूत्रप्रयोग शुरू किया था, जिसका पूरा विवरण 'अनुवादकका निवेदन' मे दिया गया है। उसी मूत्रप्रयोगका आनुषंगिक लाभ यह हुआ कि मेरे बालोंका झड़ना एकदम बन्द हो गया और आज भी मेरे बाल नहीं झड़ते हैं।

—संपा०

४. आधासीसी और बाल गिरना

श्री पी० के० राघव पाणिकर गवर्नमेंट फ़िशरीज डिपार्टमेंटके सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं और गवर्नमेंट ऑफिसर्स कालोनी, अहमदाबादमें रहते हैं। उनकी पत्नीका नाम वीणा पाणिकर है, जो बी० ए० बी० टी० हैं। दोनोंने अव्यवस्थित एवं अनियमित मूत्रोपचारसे काफ़ी लाभ उठाया है और चाहते हैं कि यथाविधि मूत्रोपचार करके सर्वथा एवं सर्वदा नीरोग एवं सशक्त हो जायें।

वीणा पाणिकरकी उमर ४१ बरसकी है। जब वे बीस-बाईस वर्षकी थीं तब वे आधासीसीका शिकार हो गयी थीं और तभीसे उनके बाल भी गिरने लग गये थे। उन्हें कब्जकी शिकायत तो पहलेसे ही थी। अपने आपको नीरोग एवं स्वस्थ बनानेके लिए वे दो बार महात्मा गांधी द्वारा स्थापित निसर्गोपचार आश्रम, उरूली-कांचन (पूना)में रह चुकी हैं। वहाँ रहनेसे कब्ज आदिकी तकलीफ़ तो थोड़ी-बहुत दूर हो गयी थी, परन्तु आधासीसी और बाल गिरनेमें कोई ख़ास फ़र्क नहीं आया था। घरेलू उपचार भी व्यर्थ सिद्ध हुए।

दस साल पूर्व ही उनकी शादी हुई है। शादीके तुरन्त बाद उन्हें अपने एक सम्बन्धीसे आर्मस्ट्रॉङ्गकी पुस्तक 'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' मिली, जिसे पढ़कर उन्होंने मूत्रमालिश शुरू कर दी। वे मूत्रपान तो न कर सकीं। एक मासकी मूत्रमालिशसे ही उनके आधे सिरका दर्द दूर हो गया, बाल गिरने बन्द हो गये और अन्य आनु-षंगिक लाभ भी हुए। बाल लम्बे हो गये मुँह पर जो कत्थई रंगके

दाग़ थे, वे साफ़ हो गये। पहली प्रसूतिके बाद सिरके पिछले भागमें एक इंच जितना गंज हो गया था। पुनः मूत्रमालिश करनेसे वह भी दूर हो गया। —सम्पा०

५. बाल झड़ना व अन्य पीड़ाएँ

श्री उमाचरण सरस्वती (सिंहपुर, ज़िला नरसिंहपुर, मध्य-प्रदेश)ने मूत्रप्रयोगसे जो जो लाभ उठाये, वे पत्र द्वारा भारत सेवक समाजको लिख भेजे थे। मई सन् १९६२ के 'भारत सेवक' में उनके पत्रका उपयोगी अंश ज्योंका त्यों प्रकाशित हुआ था, जिसे संक्षिप्त करके यहाँ भी दिया जाता है:— —सम्पा०

"आज मुझे मूत्रचिकित्सा करते हुए एक मास इक्कीस दिन हो गये हैं। इससे मुझे जो आरोग्य प्राप्त हुआ है, उसका वर्णन नहीं कर सकता। सिरके बाल झड़ते थे. आज वे तोड़ने पर भी नहीं टूटते; आँखें कुछ पीली थीं, उनमें सफ़ेदी आ गयी है; दाँत मजबूत होनेके साथ साथ मन्दाग्नि प्रदीप्त हो रही है। मेरे गाँवमें कई रोगियोंको इससे आशातीत आराम हुआ है।

"मैंने करीब २० दिनके पुराने पेशाबकी शीशीका कार्क निकाला कि उसकी गंधने ही मेरे सिरके दर्दको मिटा दिया।"

६. बालोंका गिरना और रूखापन

श्रीमती कलाजी जम्मूसे ता० ६-१२-'७४ के पत्रमें लिखती हैं:—

"गत पौने दो माहसे शिवाम्बुकी मालिश शुरू की है। इस बार हर तीसरे दिन पहली बार केशोंमें भी मालिश की, जिसका परिणाम सुखद रहा। जो ढेरों बाल गिरते थे वह गिरने बन्द हो गये। धोने पर केश बड़े ही हल्के, चमकदार और मुलायम लगते हैं। इस अवधिमें बालोंको साबुन नहीं लगाया, फिर भी बड़े स्वच्छ

रहते हैं। नारीजातिके लिए बालोंकी मालिश कठिन समझती थी, इसी कारण कभी की नहीं थी। इस बार यह भ्रम दूर हुआ और बालोंका रूखापन भी दूर हो गया।"

७. सिरमें चक्कर आना

श्रीमती झमकुदेवी बैद मोमासर (राजस्थान)की हैं। उमर ५२ साल। वे अपनी रोगमुक्तिका हाल इस प्रकार लिखती हैं :–

करीबन् १३ साल पहले मेरे पैरोंमें बीमारी हो गई थी। इलाज करानेसे वह बीमारी तो दब गई, परन्तु और बीमारियाँ पैदा हो गईं। सिरमें चक्कर आना, टट्टी साफ न आना, हृदयकी धड़कन बढ़ जाना, भूख न लगना और रातको नींद न आना। मैं सन् १९७२ में श्री भोजराजजी संचेतीकी देख-रेखमें स्वमूत्र चिकित्सा करने लगी। कुछ दिनका मूत्रोपवास किया। दो-एक महीने मूत्रमालिश करवाती रही। उपवासके दिनोंमें तो सारेका सारा पेशाब पीती थी। बादमें दो-तीन बार पान करती थी। मैंने खान-पानमें पूरा परहेज़ रखा था। अब तो मैं बहुत स्वस्थ हूँ और स्वस्थ रहूँगी, ऐसा मुझे विश्वास है।"

८. बरसोंका सिर-दर्द

साध्वी नीतिश्रीजीकी रोगमुक्तिका विवरण :–

"कई वर्षोंसे मैं सिर-दर्दसे पीड़ित थी। जब कभी सिरकी नसें फूल जातीं, सारा शरीर कंपित हो उठता। जुकाम होने पर नाक व गलेसे खून भी गिरता। एक बार नाकसे अति मात्रामें खून गिरा। उस समय होमियोपैथिक, एलोपैथिक और प्राकृतिक सभी प्रकारकी चिकित्साएँ की गईं, पर असफल रहीं। होमियोपैथिक दवासे नाकसे खून आना तो बन्द हुआ, पर सिरमें फोड़े निकल आये।

"रुग्ण साध्वियोंकी परिचर्या हेतु मैं मोमासरमें थी। एक बार अचानक जुकामका प्रकोप हुआ। नाक और मुंहसे खून बहने लगा। सिरकी नसें फूल गईं। मूत्रपानसे मुझे घृणा थी। बहुत आना-कानी की, पर मेरी एक न चली। चूंकि स्वमूत्र चिकित्सा हेतु ही हमें वहाँ भेजा गया था आचार्य प्रवर द्वारा। आखिर बड़ी साध्वियों की बात रखते हुए मैंने उसका पान किया, सिर पर पट्टी लगाई और मालिश भी की। तीन दिनके उपवाससे सन्तोषजनक सुधार नज़र आया। मेरी आस्था दृढ़ हो गई। कई दिनों तक क्रम चला।

"अब जब कभी जुकाम, सिर-दर्द होता है तब इसीका प्रयोग कर स्वस्थ बन जाती हूँ। गत पाँच वर्षोंके दौरान मैंने विशेष दवाका प्रयोग नहीं किया। यह सहज सुलभ चिकित्सापद्धति मुझे बहुत पसन्द है।"

१७
गुदाके रोग
१. बवासीर

प्राय: सामान्य रोगोंसे भयंकर रोग हुआ करते हैं, अर्थात् छोटे-छोटे रोग भयंकर तथा उग्र रूप धारण कर लेते हैं, जैसे सर्दीसे खाँसी और खाँसीसे क्षय हो जाता है। इसलिए पहलेसे ही सावधानता रखनी चाहिये।

अहमदाबादसे 'गुजरात समाचार' दैनिक पत्र निकलता है। श्री कान्तिलाल शाह उसके चीफ रिपोर्टर हैं। उन्हें कब्ज़के कारण बवासीरकी बीमारी हो गयी थी, जिससे गुदाके कोमल भाग पर चीरे पड़ गये थे, अतः असह्य पीड़ा और जलन होती थी। उन्होंने मूत्रप्रयोगका आरम्भ किया। परन्तु उनका शरीर इतना एलर्जिक (संवेदनशील तथा विकारशील) था कि पाँवों पर मालिश करनेसे

मुँह पर जुड़पित्ती हो गयी। वे घबराये और मुझे फोन किया। मैंने उन्हें मालिश बन्द करनेके लिए सूचित किया और केवल दिनमें दो-तीन बार मूत्रपानकी सलाह दी। तदनुसार करनेसे एक सप्ताहमें बवासीरकी बीमारी दूर हो गयी। परन्तु जुड़पित्तीकी तकलीफ़ बनी रही। उसे भी तो मिटाना था। उसकी जड़ भी कब्ज़ थी। मेरी सलाहसे उन्होंने मूत्रपान चालू रखा, जिसका परिणाम यह आया कि पेटका सब विकार दूर हो जानेसे और पेट सदा साफ़ रहनेसे जुड़पित्ती भी नामशेष हो गयी और एलर्जिक स्थिति जाती रही।

२. बवासीर, स्वप्नदोष आदि

श्री विश्वम्भरनाथ मीतल बीकानेरमें रहते हैं। उनकी आयु ६५ वर्षकी है। वे मूत्रचिकित्सामें दृढ़ श्रद्धा एवं निष्ठा रखते हैं और इसका प्रचार भी करते रहते हैं। वे ता० २८–१–'७५ के पत्रमें मूत्रप्रयोगका स्वानुभव इस प्रकार लिखते हैं :—

"सन् १९५२ से प्राकृतिक चिकित्साका अनुयायी होनेसे मिर्च, चाय और तम्बाकूका सेवन नहीं करता, फिर भी मैं बवासीर, घुटनोंका दर्द, पायरिया, स्वप्नदोष, दाद आदि रोगोंसे पीड़ित था। सन् १९६२ से स्वमूत्र पीने व मलनेसे सभी रोगोंसे मुक्त हो गया हूँ।

"मुझे ख़ूनी बवासीर भी कभी-कभी परेशान करती थी। वह २–३ दिन स्वमूत्रका एनिमा लेनेसे मिट जाती थी। बवासीर ख़ूनी हो या बादी, नासूर, भगंदर आदिमें एनिमा अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है।

"ऐंठन पर कई दिनोंका पुराना पेशाब लगाकर पत्थरके टुकड़ेसे कई दिन थोड़ी-थोड़ी देर घिसनेसे मेरे दायें पैरकी छोटी अँगुलीकी ऐंठन समाप्त हो गयी, जिसके कारण जूता पहनना असम्भव था।

"सन् १९३० से पानीकी नेति प्रति दिन करता था। किसीने कहा था कि इससे ज़ुकाम नहीं होता और नेत्रोंकी ज्योति कम नहीं

होती। फिर भी १९५० के आसपास मुझे चश्मा लगाना पड़ा। स्वमूत्रसे नेति करने तथा उसीसे नेत्र धोनेसे अब मेरी ज्योति बिल्कुल ठीक हो गयी है। +२.५ नम्बरका चश्मा छूट गया है और मोतियाबिंद होनेका डर भी जाता रहा है।

"कुछ वर्ष पहले गरदनसे नाभि तक सारे शरीर पर लाल-लाल चकत्ते हो गये थे जो केवल २–३ बार स्वमूत्रके भाप-स्नानसे साफ़ हो गये और चमड़ी मुलायम हो गयी।

"शिवाम्बु पीनेसे मुझे स्वप्नदोष होना बिल्कुल दूर हो गया। और भी कई व्यक्तियोंने मेरे दावेकी पुष्टि की है।"

३. भगंदर

(१) कविराज रामस्वरूप कौशिकने भगंदरको भी मूत्रप्रयोगसे मिटाया है, जिसका विवरण इस प्रकार है :—

"मेरे परम मित्र चौधरी सीतारामजी भगंदर रोगसे करीब १५ वर्षसे पीड़ित थे। सीवन पर दो इंच दायरेका व्रण था। वे दो तोला विलायती रूई व्रणमें रखकर खद्दरके कपड़ेकी पाँच छः तह करके लंगोट बाँधते थे और बड़ा कष्ट अनुभव करते थे। रूई दिनमें दो तीन बार बाँधनी पड़ती थी। जब उन्होंने बताया कि वे दो बार ऑपरेशन भी करवा चुके हैं, परन्तु वे ज़्यादा ही खराब हुए हैं, तब मैंने उनसे कहा कि मेरे कहने पर अमल करें तो निश्चय ही आपकी व्याधि दूर हो जायेगी। मैंने उन्हें प्रतिदिन स्वमूत्रमें मुलायम कपड़ा भिगोकर व्रण पर रखने तथा मूत्रपानकी सलाह दी। चौधरीजीने मेरी सूचनाके अनुसार दो मास तक मूत्रप्रयोग किया, जिससे मवाद निकलना बन्द हो गया और चलनेसे जो कभी-कभी मलाशुद्धि हो जाती थी, वह बन्द हो गयी। चौधरीजीको निश्चय हो गया कि वे अवश्य रोगमुक्त हो जायेंगे। निरन्तर सात मासके मूत्रप्रयोगसे व्रण लगभग समाप्त हो

गया। फिर चौधरी साहब किसी कारणसे ज़ीरासे बाहर चले गये। उनका पत्र आया कि थोड़ी-सी पीड़ा शेष है। उन्हें दशांग लेप सुझाया गया, जिससे वे कुछ ही दिनोंमें बिल्कुल ठीक हो गये।"

(२) श्री छोटुभाई डी० चौहान (नवाडीसा, गुजरात) की गुदामें सितम्बर, '७६ में एक छोटी फुंसी हुई, जिसने भगंदरका भयंकर रूप धारण कर लिया और वे जीवनसे तंग आ गये। अनेकों इन्जेक्शन और दो ऑपरेशन बेकार साबित हुए। घावसे मवाद निकलता ही रहा।

आखिर उन्होंने १९७७ में मूत्रप्रयोग अपनाया। वे श्रद्धापूर्वक घाव पर मूत्रपट्टी रखने लगे। पौन इंच गहरा घाव धीरे-धीरे भरने लगा। अब घाव थोड़ा-सा रहा है। उन्हें तीन बार कपड़े बदलनेसे तो मुक्ति मिल गई है और भगंदरसे शीघ्र मुक्ति मिल जानेकी पूर्ण श्रद्धा है।

अंग्रेजी उपचारमें तो हजारों रुपये खर्च हो गये और मूत्रोपचारमें एक फूटी कौड़ी भी खर्च नहीं हुई। मूत्रपट्टीका कितना चमत्कार!

४. ख़ूनी बवासीर

श्री रमेश पँवार C. I. D. (vig) के एक कर्मचारी और पूर्ण शाकाहारी अजमेरमें रहते हैं। उमर २७ वर्ष। वे ता. १-२-'७७के पत्रमें लिखते हैं :–

"मुझे खूनी बवासीर थी। इस बीमारीसे मेरी हालत गिरती चली गई। कमज़ोरी महसूस होती, चक्कर आते और आँखोंके सामने अंधेरा छा जाता था। कई प्रकारके देशी इलाज करवाये, परन्तु किसीसे भी संतोष नहीं हुआ। मैं ऑपरेशन नहीं करवाना चाहता था। आख़िर "आरोग्यका अमूल्य साधन : शिवाम्बु – स्वमूत्र" पढ़कर दृढ़ निश्चयके साथ एक गिलास भरकर मैंने प्रातःकालका मूत्र

पी डाला। सारे दिन जी कुछ मतलाया। उस दिन मैंने दूध एवं खिचड़ी ही खाई। शामको दस्त साफ़ आया, परन्तु न तो दर्द हुआ और न ही ख़ून निकला। मूत्रका एक गिलास पीनेसे मेरा चार साल पुराना रोग बस चुटकी बजाते समाप्त हो गया। सिर्फ सात दिनके मूत्रपानने मेरे असाध्य रोगकी जड़ उखाड़ दी।

"रोज सवेरे उठते ही चायके बजाय मूत्र ही पीता हूँ, दिन-भर स्फूर्ति रहती है और कभी न पीनेसे बेचैनी महसूस करता हूँ। मूत्र-मालिश करनेसे मेरा रंग निखर आया है और चेहरा कांतिमान हो गया है। दो-एक परिचित भी इसके पूर्ण भक्त बन गये हैं।"

१८

स्वप्नदोष और कमज़ोरी

श्री रमेश नाथानी बी० एससी०, डी० टी० सी० एक होनहार युवक हैं। उन्हें कोई व्यसन नहीं है और वे सादगीसे रहते हैं। लगभग तीन वर्षसे उन्हें स्वप्नदोष होता था, जिससे वे कमज़ोर हो गये। मेरी प्रेरणासे वे जून '७५ से दो बार मूत्रपान करने लगे और कभी कभी मूत्रमालिश भी कर लेते थे। वे परहेज़ नहीं रख सके। लगभग डेढ़ माससे स्वप्नदोष होना एकदम बन्द हो गया है और कुछ हद तक कमज़ोरी भी दूर हो गयी है। —सम्पा०

१९

इन्फ़्लुएंज़ा*

आजकल इन्फ़्लुएंज़ाका रोग बहुत होता है। इसके फैलनेसे जनताकी प्राणशक्ति नष्ट हो जाती है और वह अत्यन्त दुःखी होती है। इससे रोगीकी शक्ति क्षीण हो जाती है और कई महीनों तक इसका बुरा असर बना रहता है। मूत्रप्रयोग इस रोग पर जादू-सा असर करता है। इस विषयकी कुछ आवश्यक जानकारी भारत सेवक समाजकी ओरसे अहमदाबादके दैनिक समाचारपत्रोंको जन-हितकी दृष्टिसे प्रकाशित करनेके लिए भेजी थी, परन्तु किसीने उसे प्रकाशित नहीं किया।

विज्ञापनके लिए चलनेवाले दैनिक पत्रोंके रुख़को मैं समझ नहीं सका। यह बात आम जनताके सामने रखनी चाहिये, क्योंकि इसमें जनताका स्थायी हित है।

श्री रणजीतभाई बलदेवभाई परीख एक सेवाभावी व्यक्ति हैं। मूत्रप्रयोगसे ख़ुद लाभ उठाकर दूसरोंको लाभ उठानेके लिए प्रेरणा देते रहते हैं और उनका सक्रिय मार्गदर्शन भी करते हैं। सन् १९५८ में इन्फ़्लुएंज़ाकी बीमारी फैल गयी थी। तब वे ख़ुद तो फ़्लुसे बचे रहे, क्योंकि मूत्रका नियमित उपयोग करते थे। परन्तु उनका एक भतीजा दिलीपकुमार फ्लुका बुरी तरह शिकार हो गया। ख़बर मिलते ही वे उसके पास पहुँच गये और जरूरी जाँच करनेके बाद उसे मूत्र-पानकी सलाह दी गयी। पेशाब पीनेके आधा घंटे बाद ही रोगीको

---

* बुख़ार प्रकरणमें से यह विषय यहाँ लेना ठीक समझा है।
— सम्पा०

ज़ोरकी कै हुई, जिसमें पीला और काला-सा पदार्थ निकल जानेसे छाती और पेट हलके हो गये और फ्लुकी बीमारी भाग गयी। दूसरी बार पेशाब पीनेकी ज़रूरत न रही।

इस तरह रणजीतभाईने अनेक रोगियोंको यों ही अच्छा किया हैं।

२०

तीव्र ज्वर*

सेठ चिमनलाल नगीनदास विद्याविहार अहमदाबादकी एक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय संस्था है। उसके भूतपूर्व आचार्य, सुविदित गुजरातके साक्षर और कवि श्री झीणाभाई (स्नेहरश्मि) सन् १९६६ में वाईरसकी छूतके तीव्र ज्वरसे आक्रान्त हो गये थे। डाक्टरी इलाजसे कोई ख़ास फ़ायदा न होनेसे उन्होंने मूत्रोपवास किया। दसेक दिनके उपवाससे उनका ज्वर शान्त हो गया। फिर डाक्टरकी सलाहसे उन्होंने मूँगका पानी लिया जिससे फिर ज्वर आ गया। मूँगका पानी बन्द कर उपर्युक्त उपवास चालू रखा और तीव्र ज्वरको नामशेष कर दिया।

---

* २६–६–'७५ के 'भूमिपुत्र' में प्रकाशित श्री चन्दूलाल का० दवेके लेखसे साभार उद्धृत।

२१

बेहोशीकी बीमारी

श्रीमती आशा मेहताकी अपनी रोगमुक्तिका विवरण दमा प्रकरणमें आ चुका है। उनका दूसरा लड़का अजय बुद्धिशाली और आध्यात्मिक रुचिका है। उसकी रोगमुक्तिका हाल भी 'भारत सेवक' में प्रकाशित हुआ था, जिसे यहाँ दिया जाता है:—

"उस बच्चेकी कहानी लिख रही हूँ जिसे लेकर मैं १३ जनवरीसे ३१ जनवरी तक प्राचीन चिकित्सा केन्द्र, अहमदाबादमें रही।

"पिछले दो वर्षसे मेरे लड़केको कालेज मिलिटरी एकेडमीमें पढ़ते हुए अचानक बेहोशीकी बीमारी हो गयी। कई मास वहाँ उसकी चिकित्सा हुई, पर लाभ नहीं हुआ। फिर चंडीगढ़के बड़े अस्पतालमें, दिल्लीकी रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें, दक्षिण भारतमें एशियाके सबसे बड़े अस्पतालमें कई प्रकारके टेस्ट हुए और ७–८ हज़ार रुपया व्यर्थ नष्ट किया। फल कुछ न हुआ। रोग चलता रहा और साथमें प्रति मास ७०–८० रुपयेकी दवाइयाँ भी खानी पड़तीं। हारकर मेरा बेटा तंग आ गया, क्योंकि दवाइयोंके कारण उसकी स्मरण-शक्ति क्षीण होने लगी और उसने स्वमूत्र चिकित्सा अपनानेके लिए मेरी विनती मान ली और मैं अहमदाबाद पहुँच गयी। १० दिनका उपवास वहाँ चला और फिर हम यहाँ आ गये। रास्तेमें बच्चेने खूब फल इत्यादि खाये और यहाँ पहुँचते ही रोगने भयानक रूप धारण किया। बेहोशीके दौरे हर आध घंटेके बाद पड़ने लगे और ९–१० दौरे पड़े। १८ घंटे उसकी यही दशा रही। मेरे पतिने घबराकर डाक्टर बुला लिया और मुझपर नाराज़ भी हुए। पर मैंने अपने अटल विश्वासको तनिक भी नहीं डगमगाया। डाक्टरने दो टीके दिये पर कुछ फर्क न पड़ा। मेरा अड़ा

लड़का मुझसे निवेदन करने लगा कि डाक्टरोंके चक्करमें भाईको न डालो और अपना अमृतपान करनेका चालू करो।

"मैं भगवानसे प्रार्थना करने बैठ गयी। बच्चा बेहोश था। पत्थरकी भाँति पड़ा था और दौरे पड़ते जा रहे थे। भगवानने प्रकाश दिखाया और रावजीकाकाने मार्ग बताया। मैं उठी और बड़े लड़केका मूत्र चमचेसे बेहोश बच्चेके मुँहमें डालना आरम्भ किया। आध घंटेके पश्चात् उसे खूब कै हुई। मूत्र पिलानेका काम जारी रहा और कै भी आती रही। उसके शरीरमें कुछ चेतना आने लगी। मैं उसके सिर और पाँवोंके तलवों पर मालिश करने जुट गयी। पूरे दो घंटे भगवानसे लाज रखनेकी प्रार्थनाके साथ मालिश करती रही। पूरे तीस घंटेके बाद बच्चेने आँखें खोल दीं। दौरे तो पहले ही रुक गये थे। उसने मूत्र किया और वही उसे पिला दिया। बस, फिर तो काम चल पड़ा। एक बूंद भी बाहर नहीं गिरायी। इस अमृतने अपना काम कर दिया। पाँच दिनके उपवासके बाद उसे दस्त आने लगे। बड़े गंदे और बदबूदार दस्तोंके साथ ही बड़ी गंदगी निकली और उसके साथ ही ७ इंच लम्बा अजीब प्रकारका कीड़ा उसके पेटसे टट्टीमें निकला। इसे मैंने बोतलमें रखा हुआ है। साँपसे मिलता-जुलता है। बस, इसके निकलते ही बच्चेकी दशा दिन-प्रतिदिन सुधरने लगी। अब ठीक है। आज उपवास तोड़े सात दिन हो चुके हैं।

"इस कीड़ेको देखकर डाक्टरोंकी बुद्धि भी चकरा गयी है। इस अमूल्य अमृतमें वह शक्ति है जो संसारकी किसी औषधिमें नहीं है। भगवान स्वयं सारी शुद्धि करते हैं।

"भगवान मुझे शक्ति दें कि शेष जीवन स्व० रावजीकाकाके इस सेवाके कार्यको आगे ले जानेमें लगा सकूं। आपके ऋणसे मैं दबी हूँ। आपने तथा मेरे गुरुदेव डा० स्टोनने मेरी आँखें खोली हैं। मुझे नया प्रकाश दिखाया है। मैं आपकी आभारी हूँ।"

२२

अपस्मार (मिरगी)

१. श्री विनोद कानजी मोतीवाला बम्बईमें रहते हैं और उनकी उमर २६ बरसकी है। उन्होंने अपनी रोगमुक्तिका विवरण स्वमूत्र चिकित्सा प्रचारक मंडल, १४, सूरज बिल्डिंग, वाड़ी, एलफिन्स्टन रोड, बम्बई–१३ को ता० ७–३–'६७ को भेजा था, जो इस प्रकार है :— —सम्पा०

"मुझे १२ वर्षसे मिरगीके दौरे पड़ते थे। दो ढाई मासके बाद दौरा आता था। मुंहमें झाग आ जाती थी, पेशाब हो जाता था, कै हो जाती थी, जीभ कट जाती थी, सिरदर्द हो जाता था और आँखें ऊपर चढ़ जाती थीं। अपनी बीमारीसे छुटकारा पानेके लिए एलोपैथिक, होमियोपैथिक और आयुर्वेदिक उपचार किये, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। मुझे कहींसे 'मानवमूत्र' पुस्तक मिल गयी, जिसे पढ़कर श्रद्धापूर्वक मैंने यथाविधि मूत्रप्रयोग शुरू कर दिया और समय-समय पर उपर्युक्त मंडलसे मार्गदर्शन भी लेता रहा। अब मैं नीरोग एवं स्वस्थ हो गया हूँ, फिर भी मैं अपना प्रयोग चालू रखूंगा।"

२. श्री अरुणकुमार पुरुषोत्तमलाल (मिरजापुर, उत्तर प्रदेश) को मिरगीका पहला हमला मार्च, '७३ में हुआ था। उनके पिताने शिवाम्बु चिकित्साकी पुस्तक पढ़ी थी। इसलिए डा० परागजी देसाईकी सलाहसे अरुणकुमारने शिवाम्बु प्रयोग शुरू किया। वे रोज़ शिवाम्बु पीते थे। जुलाई '७३ तकमें वे अच्छे हो गये। उसके बाद अभी तक मिरगीका कोई हमला नहीं हुआ है। उनके पिता ७३ बरसके हैं। स्वास्थ्य-रक्षाके लिए वे भी शिवाम्बु पीते हैं। उनके शरीर और चेहरे पर कान्ति दिखायी देती है।

२३

हाथीपाँव

श्रीमती शकुन्तला जोशी, उमर ५० बरस, दुर्ग (म० प्र०)। वह ४० सालकी अवस्थामें हाथीपाँवका शिकार हो गई। उसकी बायीं टाँग बहुत सूज गई। एलोपैथी और आयुर्वेद उसे रोगमुक्त न कर सके। श्री के० जी० पंडितके कहनेसे उसने स्व० रावजीभाई की पुस्तक पढ़ी और मूत्रोपचारके लिए तैयार हो गई। उसने तीन दिनका मूत्रोपवास किया। वह दिनमें तीन बार मूत्रपान और ७ दिन पुराने पेशाबसे मालिश करती रही। धीरे-धीरे टाँगकी सूजन कम होती गई और एक मासके बाद वह साधारण स्थितिमें आ गई। अब काफ़ी दूर तक चल लेती है, फिर भी टाँग सूजती या फूलती नहीं है।

२४

अण्डकोशकी पीड़ा

श्री भुवनेश्वर पाण्डे गांधी आश्रम पटरंगा, ज़ि० बाराबंकी (उ० प्र०)के एक उत्साही और सेवापरायण कार्यकर्ता हैं। वे सन् १९६६ में रंगाईका प्रत्यक्ष अनुभव लेनेके लिए ग्रामोद्योग मन्दिर, राजकोट (गुजरात)में आये थे। उन्होंने मेरे परामर्श और मार्गदर्शनसे मूत्रप्रयोग द्वारा अपनी अंडकोशकी पीड़ाको लगभग नामशेष कर दिया। कार्यकी व्यस्तता और समयकी कमीके कारण वे केवल दो उपवास ही कर पाये और प्रयोगको अधिक समय तक चालू नहीं रख सके। उन्होंने ता० ३०–९–'६६ को अपना लिखित विवरण मुझे दिया, जो इस प्रकार है:—

—सम्पा०

"एक सालसे मेरी दायीं जाँघमें दर्द और सूजन थी और उसी तरफ़के अण्डकोषमें दर्द भी रहता था। कभी-कभी तो तकलीफ़ इतनी बढ़ जाती थी कि बुख़ार भी आ जाता था। जुलाई १९६५ में मैसूर स्टेटमें हुबलीके वस्त्र रसायन विद्यालयमें एक वर्षके लिए पढ़ने गया था। प्रयोगशालामें खड़े-खड़े काम करनेके कारण यह तकलीफ़ और भी बढ़ने लगी। अतः वहाँके कर्नाटक मेडिकल कालेजके एक सर्जनसे इसकी जाँच करायी और दवा शुरू की, परन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ, बल्कि गर्म पत्थरसे सेंक वग़ैरह करने पर मुझे कुछ आराम अवश्य मिलता था। परन्तु यह आराम अस्थायी ही होता था। सत्र पूरा होनेके बाद मैं ग्रामोद्योग मन्दिर, राजकोट (गुजरात)में तीन मास रह कर रंगाईके कार्यका प्रत्यक्ष अनुभव लेनेके लिए आया। धीरे-धीरे रोगने फिर आक्रमण करना शुरू किया, परन्तु मुझे तो वही पत्थरसे सेंक करनेकी क्रिया मालूम थी।

एक सज्जनके कहने से मैं स्वयं पूजनीय हंसराजजीसे मिला और इस सम्बन्धमें उनसे बातें हुईं। उनकी सूचनाके अनुसार मैंने एक बोतलमें पेशाब जमा किया। उससे प्रातः मालिश करना आरम्भ किया। खास कर दायीं जाँघ पर, जहाँ सूजन और दर्द रहता था वहाँ, १०–१५ मिनट तक मालिश करता था और १०–१५ मिनट बाकी शरीरकी मालिश करता था। फिर धीरे-धीरे मनको तैयार किया और मैं दिनमें ३ बार मूत्रपान भी करने लगा और हिम्मतसे दो दिनका मूत्रोपवास भी कर डाला। मुझे बहुत लाभ हुआ। अब तो मैं दिनमें ४–५ बार पान करता हूँ और पुस्तकके अनुसार खान-पानमें भी ध्यान रखता हूँ। अब नाम-मात्रका रोग रह गया है। मुझे विश्वास है कि मूत्रचिकित्सासे अवश्य ही मैं पूर्ण स्वस्थ हो सकूँगा।"

२५

कछराली

श्रीमती कलावतीके कन्धोंका दर्द मिटनेका हाल वातव्याधिके प्रकरणमें आ चुका है। वे अपनी श्रद्धा एवं अनुभवके बल पर मूत्रोपचारका प्रचार करती रहती हैं। उनकी महिमा नामकी एक संयमशील सखी है। उसकी बग़लमें एक बार बहुत भारी कछराली हुई थी, जो दिनमें पाँच छः बार गर्म मूत्रका सेंक करनेसे ठीक हो गयी। दो-तीन वर्ष पूर्व ऐसी कछरालीके लिए उसे अस्पतालमें रहकर शल्य-चिकित्सा करवानी पड़ी थी। मूत्रमें यह अद्भुत शक्ति है कि वह गाँठ, पथरी आदिको गलाकर ही नष्ट कर देता है। ——सम्पा०

२६

शरीरकी सूजन

श्री नारणभाई मोहनलाल (रामनगर, साबरमती, अहमदाबाद) दूध बेचनेका धन्धा करते हैं। उनकी पत्नी पशीबहनकी अवस्था २५ बरसकी है और पिछले डेढ़ बरससे उसका सारा शरीर सूज गया था। अनेक वैद्यों और डाक्टरोंका इलाज करने और अस्पतालोंमें रहने पर भी उसकी बीमारी दूर नहीं हुई।

आख़िर ससुरने ता० २५-४-६१ को उसे स्थानीय मूत्र-चिकित्सालयमें दाख़िल करा दिया जहाँ उन्नीस दिन निम्नलिखित विधिसे उसका उपचार हुआ :—

(१) शुरूमें दो दिन उसे उपवास पर रखा गया। उपवासके दौरान वह दिनभरका सारा पेशाब पीती रही और प्यास लगने पर

गरम किया हुआ ठंडा पानी लेती। पानीको इतना उबाला जाता कि आधा जल जाता और फिर उसे ठंडा किया जाता था।

(२) तीसरे दिन पानी देना बन्द किया और प्यास लगने पर एक-एक चम्मच गायका दूध दिया जाने लगा। इस तरह सात दिन तक रोज़ एक पाव गायका दूध दिया गया। आठवें दिनसे ढाई पाव दूध दिया गया। फिर तीन दिन तीन पाव दिया गया। फिर क्रमशः दूधका परिमाण बढ़ाते गये और रोज़ाना लगभग डेढ़ सेर दूध दिया जाता था। इन दिनों भी दिनभरका पेशाब पीना तो चलता ही रहा।

(३) तीन चार दिनके पुराने पेशाबसे रोज़ाना एक घंटा सारे शरीर पर मालिश की जाती थी।

इस प्रकार उन्नीस दिनके प्रयोगसे ७५ प्रतिशत सूजन कम हो गयी। ता० १५–५–'६१ की सुबह चिकित्सालयसे मुक्त होकर वह अपने घर चली गयी और यथाविधि प्रयोग करती रही।

ता० २–७–'६१ को उसके ससुर श्री मोहनलाल तुलसीरामने चिकित्सालयमें आकर यह शुभ समाचार सुनाया कि घर जानेके बाद दस बारह दिनमें ही पशीबहनकी सूजन नामशेष हो गयी। अब बिल्कुल सूजन नहीं है। तबीयत पहलेसे बहुत अच्छी है, सामान्य भोजन करने लगी है, चल-फिर सकती है और घरका सब काम-काज कर सकती है।

२७

चोट और ज़ख्म

श्री रति मुनिसे मेरा परिचय मार्च सन् १९६४ में हुआ। गत बारह वर्षसे वे एकांतर तप अर्थात् एक दिन खाते हैं और एक दिन उपवास करते हैं। इनका दीक्षा-पर्याय पच्चीस बरस और अवस्था सैंतालीस वर्षकी है। ये अच्छे वक्ता और गायक हैं। ये इतने सरल और प्रेमी हैं कि झट घुलमिल जाते हैं अर्थात् परायेको अपना बना लेते हैं। एक दिन बातचीतके दौरान मुझे पता चला कि वे मूत्रप्रयोगमें दिलचस्पी रखते हैं और अनुभव भी। मेरे अनुरोधसे उन्होंने स्वमूत्र विषयक अपना अनुभव ता० ४–४–'६४ को इस प्रकार लिखकर दिया :—

—सम्पा०

"लगभग तीन वर्ष पूर्व 'मानवमूत्र' नामकी पुस्तक मेरे हाथमें आयी, जिसे पढ़ते ही मूत्रकी अद्‌भुत सामर्थ्यका पता चला। उसे दूसरी बार पढ़ा और श्रद्धाका बीज अंकुरित हुआ और अनुभव करनेकी इच्छा जागृत हुई। इतनेमें एक अवसर उपस्थित हुआ।

"सन् १९६१ की बात है कि बिहारमें चलते समय पाँवोंको इतने ज़ोरसे चोट लगी कि अँगूठेका नाखून निकल गया और खूनकी धरा बह निकली। रास्तेमें और दवा तो कहाँसे मिलती? मूत्रकी याद ताज़ा हो आयी। उसे पेशाबसे साफ़ किया और उस पर पेशाबकी पट्टी बाँध दी। दो ही दिनमें जख्म ठीक हो गया।

"उसी साल पेन्सिल बनाते हुए चाकूसे उँगली कट गयी। खूब खून निकलने लगा। उस पर मूत्रका सिंचन किया और छत्तीस घंटेमें उँगली जैसीकी तैसी हो गयी।

"शरीरके अमुक भागका ऑपरेशन कराना पड़ा। उसका घाव डाक्टरी दवाओंसे भरता न था। मुझे निराशाने आ घेरा। आखिर हिम्मतसे मूत्रका उपयोग शुरू कर दिया। तीन ही दिनमें घाव बिल्कुल ठीक हो गया और मेरी व्याकुलता शान्त हुई।

"सौराष्ट्रमें साबरकुंडलाके पास जोरा नामका एक छोटा गाँव है। वहाँ एक व्यक्ति पांडुरोगसे पीड़ित था और वह ग़रीब था। उसने मूत्रोपचार शुरू कर रखा था। इतनेमें मेरा वहाँ जाना हुआ। तब उसने मेरी सलाह पूछी, तो मैंने अपने ज्ञान तथा अनुभवके बल पर मूत्रप्रयोग चालू रखनेके लिए उसे प्रोत्साहित किया। मूत्रपान और मूत्रमालिश करनेसे वह तीन मासमें रोगमुक्त हो गया। उसे अब भूख भी अच्छी लगती है, स्फूर्ति रहती है और वह रोज़ाना मूत्रपान करता है।

"मूत्र निर्धन और धनवान दोनोंके लिए अतीव उपयोगी तथा हितकारी है। दरिद्रके लिए तो यह वरदान है। स्व० श्री आर्मस्ट्रॉङ्ग और स्व० श्री रावजीभाईने मूत्रकी स्वास्थ्य-रक्षक, आरोग्य-वर्धक तथा रोगनिवारक शक्तिको पुनरुज्जीवित करके जनता पर महान् उपकार किया है, जिसके लिए उन प्रयोगवीरोंको हार्दिक धन्यवाद।"

२८

गेन्ग्रीन

मूत्र-विचार-विनिमय सभा ता० १५–१२–'६३ को अहमदाबादमें हुई थी, जिसमें श्री शंकरभाई भाईजीभाईका (पुरानी जीथरड़ी, सौराष्ट्र) ता० १२–१२–'६३ का पत्र पढ़कर सुनाया गया था, जिसका सारांश यह है :––

"प्रकृतिने किसी भी कारणसे बिगड़े हुए शारीरिक स्वास्थ्यको ठीक करनेके लिए मूत्ररूपी कस्तूरी मनुष्यको दे रखी है, फिर भी कस्तूरी-मृगकी भाँति वह नासमझीसे अपनी बीमारीको दूर करनेके लिए बाहरी दवाकी खोजमें इधर-उधर दौड़ता-फिरता है, जिसमें उसका समय और सम्पत्ति दोनों खर्च होते हैं और चिन्ता तथा व्याकुलताके नये मानसिक रोगोंसे ग्रस्त हो अपना जीवन दुःखमय बना लेता है।

"आठ महीने पहले मेरे दायें पैरका पंजा बूट पहनकर थोड़ा चलने पर गरम हो जाता था। फिर कुछ समय बाद उसी पैरके अँगूठे पर एक फोड़ा-सा हो गया, जिसके पकने पर निचले भागकी चमड़ी काली होने लगी और जलन होने लगी, जो दिन-प्रतिदिन असह्य होती गयी। आख़िर नजदीकके डाक्टरको दिखाने पर उन्होंने निदान किया कि यह बीमारी गेन्ग्रीन जैसी है। पन्द्रह दिन उन्होंने इन्जेक्शन और दवासे इलाज किया, परन्तु कुछ फायदा नहीं हुआ। फिर बड़ौदाके दोएक सर्जनोंको दिखानेसे यह निश्चित हुआ कि गेन्ग्रीनका रोग है। उन्होंने कहा कि इसका ऑपरेशन करनेसे आरामकी संभावना है, नहीं तो इस टाँगको घुटनेसे ऊपर तक कटवाना पड़ेगा। पाँवोंके ऊपरी दायें भागका ऑपरेशन कराया। एक हफ़्ता अस्पतालमें साधा-

रण आराम जैसा लगा। घाव भर जानेसे घर आया। दर्दमें थोड़ा फर्क हुआ, परन्तु पाँवोंकी पिंडली जो पतली होती जाती थी उसमें कोई ख़ास फ़र्क नहीं पड़ा।

"कुछ दिन विचार करनेके बाद दो मास पूर्व मैं आपके मूत्र-चिकित्सालयमें आया। वहाँ श्री नारायणभाई सलारियाकी देखरेखमें पाँच दिनका मूत्रोपवास किया, जिसमें दिनका सारा पेशाब पी जाता और रातका पेशाब मालिश और अँगूठे पर पट्टी रखनेके काममें आता। जलन कुछ कम हुई, जिससे मुझे आशा हुई कि मूत्रप्रयोगसे मेरी पीड़ा दूर हो जायेगी। अँगूठेका नाख़ून और नीचेकी चमड़ी दोनों काले हो गये थे। उन्हें मूत्रचिकित्सालयका मार्गदर्शन करनेवाले डा० मगनभाई सलारियासे कटवा डाला। फिर घरमें रहकर प्रयोग करनेके ख़यालसे नारायणभाईकी अनुमतिसे घर चला आया। प्रयोग चालू है। दो वक्त सादा खाना खाता हूँ। अब भी अक्सर अलोना भोजन ही करता हूँ। इस प्रयोगसे आठ आने फ़ायदा है और सब तरहसे मुझे बहुत आराम है। लगता है कि दो-तीन महीनेमें मुझे पूरा आराम हो जायेगा।"

ता० १–४–'६४ को केन्द्रमें आकर उन्होंने बताया, "मेरा रोग एकदम मिट गया है।"

२९

गर्भाशयकी सूजन

अहमदाबादमें ढालकी पोलमें एक स्त्री रहती है। शादीके बाद उसके गर्भाशयमें सूजन रहा करती थी इसलिए दर्द उठा करता था। उसने डाक्टरों और वैद्योंसे अपना इलाज करवाया, पर कुछ भी आराम न हुआ। श्री रणजीतभाईने पति द्वारा उसे सूचित किया कि मूत्रपानसे उसका दर्द मिट जायेगा। परन्तु उस समय पुरुषोत्तम मास चलता था। पवित्र मासमें अपवित्र मूत्र पीनेका काम भला कैसे हो सकता है? फिर भी समझाने पर वह मान गयी और एक दिनका सारा पेशाब उसने पी लिया, जिसने जादू-सा असर किया अर्थात् एक ही दिनके मूत्रपानसे चिन्ताजनक रोग नष्ट हो गया। पहले वह मुश्किलसे थोड़ी दूर चल सकती थी और अब स्नानके लिए नदी पर जाने लगी है।

३०

रक्त प्रदर

श्रीमती प्रभावतीके पति हैं श्री अमृत एन० वाड़िया। वे बलसाड में टयुटोरियल क्लासका संचालन करते हैं। उन्होंने सन् १९६४में मूत्रप्रयोग द्वारा बीस बरसके पुराने दमेसे दो महीनेमें मुक्ति प्राप्त की थी। वे अपने अनुभवके आधार पर अनेक रोगियोंको मूत्रोपचारके लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करते रहते हैं और अनेक रोगियोंने उनकी सलाहसे मूत्रोपचारको अपनाकर अपने-अपने रोगोंको मिटाया है। ऐसा लगता है कि उन्होंने मूत्रोपचारके प्रचारके शुभ कार्यका श्रीगणेश अपने घरसे किया है।

प्रभावतीकी उम्र ४५ वर्षकी है। वे रक्त प्रदरसे पीड़ित थीं। मासिक स्रावके समय बहुत ज्यादा खून आता था और मासिक स्राव बहुत दिन तक चलता था। उनसे आठ दिनका उपवास करवाया गया और एक मास तक मूत्रपान और मूत्रमालिशको चालू रखा गया। इसके अतिरिक्त पेशाबसे तर किये हुए रूईके फाहे दिनमें चार बार योनिमें रखे जाते थे और परहेज़ भी पूरा रखा जाता था। इस तरह व्यवस्थित मूत्रोपचारसे रक्त प्रदरकी व्याधि एक मासमें ही नष्ट हो गयी।

उनकी १८ वर्षीय पुत्री सुजाताकी पेचिश और सख्त पेटदर्द मूत्रप्रयोगसे मिटे हैं। उनके एक स्नेहीकी खूनी बवासीरको इसी उपचारसे काफ़ी फ़ायदा हुआ है।

अब स्वमूत्र उनके परिवारका 'फेमिली डाक्टर' बन गया है। परिवारके सभी सदस्य अपने छोटे-बड़े रोगको इस सरल एवं अमूल्य उपचारसे दूर कर लेते हैं, जिससे प्रतिवर्ष डाक्टरी दवा पर ख़र्च होनेवाले एक हज़ारसे भी अधिक रुपये बच गये हैं। --सम्पा०

३१

रक्त प्रदर और हिस्टीरिया

श्रीमती किरणदेवी पटावरी मोमासर (राज०)में रहती हैं और उमर ३० वर्षकी है। उनकी रोगमुक्तिका विवरण निम्न-लिखित है :-

"मुझे कितने ही वर्षोंसे रक्त प्रदरकी शिकायत थी। सबसे पहले मैंने श्री डूँगरगढ़के सरकारी अस्पतालमें ऑपरेशन करवाया। परन्तु फायदा होना तो दूर रहा उल्टे हिस्टीरियाका दौरा आना शुरू हो गया। कभी डाक्टरका और कभी वैद्यका इलाज चलता रहा, परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ। दिन प्रतिदिन मेरा शरीर कमज़ोर होता गया। रतनगढ़के अस्पतालमें एक महीना रही। दोबारा

ऑपरेशन भी करवाया, किन्तु मेरी बीमारी दूर नहीं हुई। आखिर सन् १९७३ में घरवालोंकी अनुमतिसे श्री भोजराज संचेतीकी देख-रेखमें मूत्रोपचार शुरू किया। कुछ दिनका मैंने उपवास किया। मैं रोजाना करीब दो घंटे मालिश और तीनेक बार मूत्रपान करती थी। लगभग एक मासके मूत्रप्रयोगसे रक्त प्रदर और हिस्टीरिया दोनों नामशेष हो गये। श्री संचेतीजीकी कृपासे मुझे नई जिन्दगी मिली है। अतः सभी भाई-बहनोंसे मेरा नम्र निवेदन है कि अंग्रेजी दवाइयोंका सहारा छोड़कर इस इलाजसे फ़ायदा उठायें।"

३२

मासिक धर्म व अन्य पीड़ाएँ

मलाड (बम्बई) में नैसर्गिक उपचारका एक बड़ा ट्रस्ट है और अनेक वर्षोंसे इस उपचारका एक अस्पताल भी चलाया जा रहा है। उसमें ४०–४५ बरससे प्राकृतिक चिकित्साके निष्णात डाक्टर कृष्णवर्मा भक्तिभावसे काम करते हैं। वे मूत्रचिकित्सामें भी रस लेते हैं और अनुभव भी रखते हैं। उन्होंने एक भाटिया युवतीकी अनेक पीड़ाओंको इसी चिकित्सासे नष्ट किया है, जिसका विवरण इस प्रकार है :—

"उस युवतीका कहना है कि वह नदीके किनारे पानी भरनेके लिए गयी थी। वहाँ अचानक पैर फिसल जानेसे वह गिर गयी, जिससे अन्दरकी चोटके कारण उसके मासिक धर्मकी क्रिया अनियमित हो गयी। साथ ही उसकी पाचनक्रिया भी बिगड़ी और मलशुद्धिके अवयवोंने ठीक तरहसे काम करना बन्द कर दिया। कब्ज़ रहने लगा, जिसका परिणाम यह आया कि शरीरमें अपने-आप विष इकट्ठा हो जानेसे रक्त अशुद्ध हो गया।

"समयानुसार पहले डाक्टरी इलाज कराया गया। उससे फ़ायदा न होने पर आयुर्वेदिक उपचार भी आज़माया गया। पूर्ण पथ्य और

नियमित क्रियाके अभावमें उस स्त्रीकी दशा इतनी अधिक बिगड़ गयी कि वह कुछ घंटों या दिनोंकी मेहमान मालूम होने लगीं। उस स्त्रीके बहुतसे सम्बन्धियोंने नेचर क्योर होस्पिटल, मलाडमें इस प्रकारकी चिकित्सासे लाभ उठाया था और उसका अभीष्ट परिणाम भी आया था। इसलिए उन्होंने उस स्त्रीको मुझसे इलाज करानेकी सलाह दी।

"जिस समय उस स्त्रीको अस्पतालमें दाख़िल किया गया उस समय उसकी स्थिति इस प्रकार थी -- मासिक स्राव बन्द था, टट्टी भी शायद ही आती थी और पेशाब भी २४ घंटेमें ५–६ औंस ही आता था और वह भी घोड़ेके पेशाब जैसा गहरे चॉकलेटी रंगका तथा अत्यन्त दुर्गन्धवाला। उस स्त्रीके ख़ूनका पानी बन गया था। उसके हाथ, पैर, छाती और पलकें तक सूज गयी थीं, जिससे आँखें बड़ी मुश्किलसे खुलती थीं।

"श्री आर्मस्ट्रॉङ्गकी पुस्तक 'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' के आधार पर, परन्तु कुछ परिवर्तनके साथ उसका उपचार शुरू किया गया। मूत्रचिकित्साके नियमानुसार उसे अधिकसे अधिक पेशाब पिलाया जाता था और गरम पानी भी दिया जाता था। उसकी मूत्रमालिश की जाती थी और उसे सूर्यस्नान भी कराया जाता था। थोड़े समयके बाद उसे सादे पानीके बदले नारियलका पानी दिया जाने लगा। ऐसे उपचारसे धीरे-धीरे पेशाब बढ़कर ७० से ८० औंस तक होने लगा, शरीरकी सूजन कम होने लगी और दूसरी शिकायतें भी दूर होने लगीं। परन्तु ख़ूनकी ख़राबीसे छाती और दूसरे भागों पर जिस जगह गंदे ख़ूनके जमावसे काले धब्बे पड़ गये थे, उस जगह जोंक लगवाकर गंदा ख़ून निकलवा दिया गया। इस प्रकारके उपचारसे वह स्त्री ठीक हो गयी और साधारण व्यक्तिकी तरह अपनी ज़िन्दगी गुज़ारने लग गयी।

"यहाँ मुझे एक और बात भी लिख देना ज़रूरी मालूम होता है। आजसे चालीस वर्ष पहले बम्बईके एक नामी डाक्टर, जो

विलायतके एम० डी० थे और बहुत प्रसिद्ध हो गये थे, 'मूत्र-चिकित्सा' का विरोध करते थे। परन्तु पहले जर्मन युद्धमें मूत्रप्रयोगसे सैकड़ों सैनिकोंकी चिकित्सा की गयी और उससे फ़ायदा नज़र आने लगा, जिससे यह उपचार बहुत प्रसिद्ध होने लगा, तब हमारे यही चतुर एम० डी० डाक्टर, जो एक दिन इसका घोर विरोध करते थे, इसकी प्रशंसा करने लगे।"

३३

गर्भपात और ख़ून आना

श्रीमती वैशाली पंडित (उमर ३२)को प्रसूतिके समय अस्पतालमें रखा गया। गर्भपातके बाद वह वापस घर आई। ख़ून बंद न होनेके कारण उसे मूत्रोपचारकी शरण लेनी पड़ी। ३ दिनके मूत्रोपवाससे प्रयोग शुरू किया गया। पारणेके बाद उसे दूध और फल पर रखा गया। रोज तीन बार मूत्रपान और मालिश करती रही। श्री के० जी० पंडितकी देखरेखमें यह उपचार एक मास तक चला और वह पूर्ण नीरोग एवं स्वस्थ हो गई।

३४

मस्क्युलर डिस्ट्रॉफ़ी

श्रीमती कलावतीने अपने बहनोईको मौतके मुँहसे बचाकर नया जीवन प्रदान किया है और परिचर्याका एक आदर्श भी प्रस्तुत किया है, जिसका विवरण उन्हींके शब्दोंमें नीचे लिखा जाता है :—

—सम्पा०

"मुकेरियां (ज़ि० होशियारपुर, पंजाब)में छोटी बहन सुख-चैनके पति जिनेन्द्रकुमार अपनी बुरी आदतों और असंयत जीवनके कारण पिछले कितने ही वर्षोंसे आन्तरिक दुर्बलतासे पीड़ित हो रहे थे। सैकड़ों रुपयोंकी पौष्टिक औषधियाँ खाकर वे अपनी जीवन-नौका चलाते रहे। दो-एक वर्षसे दूध दुहना, ताला खोलना, कपड़ा काटना इत्यादि काम करते हुए हाथ काँपते थे, चलते हुए टाँगें लड़खड़ाती थीं और प्राणशक्ति क्षीण होती जाती थी। ऐसी गिरती हुई हालतमें उन्हें जनवरी, १९७२ में पटियालाके विशेषज्ञ डाक्टरोंको दिखाया। उन्होंने शरीरके बीसियों टेस्ट लिये और कहा, 'आपकी बीमारी असाध्य है, विदेशमें भी इसका इलाज नहीं है। उन्होंने बीमारीका नाम मस्क्यु-लर डिस्ट्रॉफ़ी बताया। उनके शरीरका कोई अंग काम नहीं करता था। ख़ून बनना बंद हो गया था। पट्ठे, जोड़ सभी शून्य हो गये थे। डाक्टरने रोगीके सामने ही ऐसा कह दिया, 'आप ठीक नहीं हो सकते. जिस दिन गर्दन भी रह गयी, फिर कभी उठ नहीं सकेंगे।' उसी समय कुछ ऐसा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा कि वे बिस्तर पर ही पड़ गये। कई डाक्टरोंका इलाज किया, पर किसीसे नाम मात्र भी लाभ नहीं हुआ। हालत दिन-प्रतिदिन गिरती जा रही थी। शरीर हड्डियोंका ढाँचा हो गया था। जनवरीसे मार्च तक उलटियाँ

होनेसे शरीरमें पानी नाम मात्र रह गया था। पानीकी एक घूँट भी हज़म नहीं होती थी, ऐसा लगता था कि मानो वे दो चार दिनके मेहमान हों।

"मैंने आत्मविश्वाससे सुखचैनको लिख दिया कि घबराने जैसी बात नहीं है। मेरा मन कह रहा है कि स्वमूत्र चिकित्सासे मैं उन्हें ठीक कर दूंगी। मार्चमें आ रही हूँ। आप दो-तीन बोतलोंमें उनका पेशाब रख छोड़ना।

"मैं १७ मार्चको मुकेरियां पहुँची। उस समय उनकी हालत ऐसी थी — शरीर सूख कर काँटा हो गया था। नाड़ियाँ नज़र ही न आती थीं। गाल पिचककर काले हो गये थे। आँखोंके चारों तरफ़ गहरी कालिमा थी। हाथ-पैर नीले-काले हो चुके थे। निरन्तर बिस्तर पर पड़े रहनेसे पीठ पर घाव हो गया था, जिससे मछलीकी भाँति तड़प रहे थे। तीन दिनसे टाँगें जुड़ गयी थीं। शरीरका कोई अंग हिला नहीं सकते थे। मानो जीताजागता पत्थर पड़ा हो। जीवनकी आशा रोगी क्या, सभी छोड़ चुके थे।

"१७ मार्चकी रात्रिको ९ बजे हम दोनों बहनोंने २० दिन पुराने शिवाम्बुसे उनके हाथों तथा पैरोंकी मालिश शुरू की, निरन्तर ढाई बजे तक करती रहीं। वह दृश्य देखने जैसा था। हाथों और पैरोंसे चिकना आटे जैसा रोमकूपोंसे इतना मैल निकलता रहा कि हम काग़ज़ोंमें समेट कर बाहर फेंकती रहीं। ५-६ घंटेकी मालिशसे काले और नीले अकड़े हुए हाथ साफ़, मुलायम तथा सफ़ेद हो गये। रोगी भी हैरान था। प्रातः सभीने देखा तो चमत्कार ही लग रहा था। मालिश तो शुरू कर दी शरीरकी, परन्तु मूत्रपानके लिए रोगी किसी हालतमें तैयार न था। दो दिन घंटों मग़ज़पच्ची करती रही। उसके सामने बैठ-कर गिलास भरकर मैंने शिवाम्बुपान किया। आख़िर जैसे-तैसे २० मार्चको उसने मूत्रपान प्रारंभ कर ही दिया। सारा दिन उपवास

रखवाया। परन्तु रातको थोड़ा-सा दूध दे दिया। वैसे उपवास तो वो माससे चल ही रहा था, क्योंकि पानी भी अंदर नहीं रहता था। बहुत ही कमज़ोर और नाजुक हालतमें उपवास कराना अनुचित समझ सन्तरा, मौसंबीका रस, दूध, खजूरका पानी आदि देती रही, वह सब हज़म हो जाता था।

"दोनों बहनोंकी मिलाकर प्रति दिन ६ घंटे प्रातः और ४ घंटे रात्रिमें पैरोंकी अँगुलियोंसे लेकर सिर तक मालिश होती थी। एक पूरी बोतल सुबह और आधी बोतल रातमें लग जाती थी। पेट पर मिट्टी मूत्रमें भिगोकर मोटी रोटी-सी बनाकर रख देती थी। सर्दियोंमें भी ठंडी मिट्टी ३-४ घंटे पेट पर रखी गयी उबलने जैसी हो जाती थी। निरन्तर डेढ़ मास मिट्टी रखनेसे पेटका सिस्टम ठीक हुआ। गले पर भी मूत्रपट्टी रखती थी। सिरको पट्टियोंसे तर रखती। तलवों, गला, मुँह और सिरकी मालिश पर अधिक ज़ोर देती। उलटियाँ तो बंद हो गयीं। परन्तु अंदर पानीकी कमीके कारण करीब एक घंटेके बाद पानी, दूध, रस आदि देना ही पड़ता था। जी मतलाता। पित्त पड़ते। पहले ३-४ दिन हरे-पीले पित्त निकले, जो रोग दूर होनेके चिह्न थे।

"पहले दिन मूत्र-पानीका एनिमा देने लगी, परन्तु अन्दर पानी ही नहीं गया। गुदामें उँगली डाली तो सीमेंटकी भाँति अंदर मल जमा था। मैंने गणेशक्रियाका प्रयोग किया। मूत्रमें उँगली भिगो-भिगो कर अंदर डाल कर घुमाती रही। पौन घंटा यह क्रिया करनेसे सूखा, सड़ा और दुर्गन्धमय मल आधा किलोसे अधिक निकला होगा। दुर्गन्धसे मेरा सिर फट रहा था। हाथसे दुर्गन्ध आती रही। उस दिन मैं भोजन भी नहीं कर सकी। चार दिन यह क्रिया करनेके पश्चात् एनिमा प्रारंभ किया। एक मास तक एनिमा देना पड़ा।

"तीन दिनके बाद टाँगें खुल गयी थीं। पीठका घाव ठीक हो गया था। एक सप्ताहके बाद वे बैठने लगे थे। १५ दिनके बाद हाथमें

गिलास पकड़ कर दूध आदि पीने लगे, २० दिनके बाद खड़े होने लगे, हाथसे शेव करने लगे, डेढ़ मासके बाद लकड़ी पकड़ कर गलीमें चलने लगे। फिर तो मालिशमें भी सहयोग देने लगे।

"दो महीनेके बाद जलवायु परिवर्तनके लिए हम सब चंडीगढ़ चले गये। वहाँकी जलवायु बहुत अनुकूल रही। शरीर शक्तिशाली हो गया। चेहरे पर कान्ति आ गयी। वे प्रातः सायं दो-दो मील घूमने लगे और साइकल तक चलाने लगे। अब वे बिल्कुल ठीक हैं और दुकान पर काम करते हैं।

"आहार आदि पूर्णतः शुद्ध एवं सात्त्विक होनेसे पेशाबमें गन्धका पता ही न चलता था—चाहे कोई पास भी बैठा रहे मालिशके समय। हाथचक्कीका आटा, हाथकुटे चावल, देसी खाँड और अन्य सभी पथ्य ठीक देती थी। प्रथम २० दिन तो फलोंका रस, दूध, खजूर आदिका पानी देती रही। फिर चनेका रस, खिचड़ी आदि देने लगी, बादमें फुलका।

"शिवाम्बु चिकित्सासे मेरे बहनोईने नयी ज़िन्दगी पायी है, जिसे डाक्टर भी एक चमत्कार मानते हैं। स्वमूत्रकी रोग-नाशक शक्तिकी यह एक अपूर्व सिद्धि है।"

३५

सूडो हाइपर ट्रॉफ़िक मस्क्युलर डिस्ट्रॉफ़ी

श्री जी० के० उपाध्याय (वसन्त निवास, रूम नं० १३, रामरतन त्रिवेदी रोड, मुलुन्द (वेस्ट बम्बई ८०)का २३ वर्षका पुत्र सूडो हाइपर ट्रॉफ़िक मस्क्युलर डिस्ट्रॉफ़ीसे पिछले तीन वर्षसे पीड़ित था। उन्होंने बम्बईके अनेक विशेषज्ञोंसे परामर्श किया और उपचार करवाया। परन्तु किसी एकने भी कोई अचूक उपाय नहीं बताया। सभीने यही कहा कि रोग असाध्य है।

उनके एक मित्रका लड़का भी उसी रोगसे पीड़ित था। किसीकी सलाहसे उसका मूत्रोपचार किया गया, जिससे वह इतना ठीक हो गया कि अपने काम पर लग गया। मित्रके अनुरोधसे उन्होंने भी अपने पुत्रका वही उपचार किया। धीरे-धीरे कुछ आराम होने लगा। उसके हाथ-पैर अच्छी तरह काम करने लग गये। उन्हें विश्वास है कि थोड़े ही समयमें उनका पुत्र स्वाश्रयी हो जायेगा।

३६

कलेजेका सिरोसिस

श्री बिन्दु माधव शास्त्री पंडित बम्बईके एक प्रसिद्ध वैद्य हैं। उनके चिकित्सालय बम्बई तथा महाराष्ट्रके अन्य अनेक स्थानोंमें हैं। वे आवश्यकता और परिस्थितिके अनुसार मूत्रोपचार भी करते हैं। उन्हींकी सलाहसे कलेजेके सिरोसिससे पीड़ित एक व्यक्ति सम्पूर्ण नीरोग हो गया है, जिसका विवरण उन्होंने ता० ६–९–'७० के मराठी अख़बार 'नवशक्ति'में प्रकाशित किया था, जो इस प्रकार है :— ——सम्पा०

"मैं १९६० से कलेजेके रोगसे पीड़ित था। उसमें गाँठ हो गयी थी। वह फूट गयी और ऑपरेशनसे पीप बाहर निकाल दी। दो बरस तक बिस्तरमें लेटे रहनेसे बेडसोर (शय्याव्रण) हो गये थे। आठ महीनेमें कुछ ठीक हो जानेसे मैं अपना काम करने लगा। १९६४में जलोदर हुआ। बम्बईके एक अस्पतालमें दाख़िल होकर इलाज करानेसे कुछ आराम हुआ। १९६६ में फिर पेटका दर्द खड़ा हो गया और फिर अस्पतालमें दाख़िल होना पड़ा। वहाँ मेरे रोगका निदान कलेजेका सिरोसिस हुआ। टेपिंग करके मेरे पेटका पानी निकाला गया। फिर मुझे बड़े अस्पतालमें भेज दिया गया। वहाँ दूध, अंडे तथा दवाएँ और टीके लेनेसे पेट बड़ा हो गया। तंग आकर मैं घर आया और चारपाई पकड़ ली।

"आख़िर वैद्यराज श्री बिंदु माधव शास्त्रीकी सलाहसे मूत्रोपचार शुरू कर दिया। मूत्रपान, मूत्रमालिश और मूत्रवस्ति करनेसे मैं १९६८ में एकदम रोगमुक्त हो गया। दो वर्षसे मुझे कोई रोग नहीं हुआ है। इस उपचारमें खानपान आदिमें पूरा परहेज़ रखना और कम खाना अत्यंत आवश्यक है। रोज़ सुबह चार औंस शिवाम्बुपान करता हूँ। इससे मुझे भूख बहुत अच्छी लगती है, काफ़ी पसीना आता है और कारोबारमें उत्साह रहता है।"

३७

टाँगोंका फ्रॅक्चर

कु० हेमलता हेगीष्टे अहमदाबादमें रहती हैं। इस समय उनकी उमर ५६ वर्षकी है। वे गुजरातकी एक प्रसिद्ध समाजसेविका हैं। वे स्त्रीसमाजका कल्याण करनेवाली अनेक सरकारी और राष्ट्रीय संस्थाओंकी मंत्री अथवा अध्यक्ष रह चुकी हैं। उन्होंने केवल मूत्रमालिशसे अपनी जकड़ी हुई टाँगोंको ठीक किया था। मेरे अनुरोधसे उन्होंने ता० २५-५-'७३ को अपने प्रयोगका विवरण इस प्रकार लिख कर दिया :— —सम्पा०

"२६ जनवरी, १९५६ को मोटरकी दुर्घटनासे मेरी दोनों टाँगोंकी हड्डियाँ टूट गयीं। दायीं टाँगके घुटनेसे दो अंगुल नीचे कम्पाउंड फ्रॅक्कर था। बायीं टाँगमें भी इसी तरह सिम्पल फ्रॅक्चर था। जाँघसे पैरके तलुवे तक दोनों टाँगें प्लास्टरमें रखी गयीं। पाँच हफ्तों बाद उन्हें प्लास्टरसे निकाला गया तो बिल्कुल जकड़ी हुई थीं। उनमें ज़रा भी गति नहीं होती थी। वे ज़रा भी मुड़ती न थीं और मुड़ने पर दर्द होता था। डाक्टरकी राय यह थी कि घुटनोंके पास फ्रॅक्चर होनेसे टाँगोंकी खुलकर गति होना मुश्किल है। बायीं टाँग ९० डिग्रीसे कुछ अधिक ही मुड़ सकेगी, और दायीं टाँग तो इससे भी कम मुड़ सकेगी।

"अनेक सज्जन मिलने आते और अनेक उपाय सुझाते। बहुतसे उपचार किये, जिनमें से दो मुख्य थे। एक उपाय था सुबह-शाम दोनों टाँगोंको २० मिनट स्टीमबाथ देना। दूसरा उपाय एक हितैषी उच्च पदाधिकारीने सुझाया था। वह था स्वमूत्रके प्रयोगका। उन्होंने विश्वासपूर्वक कहा कि मूत्रमालिश करनेसे आपकी टाँगें ज़रूर ठीक हो जायेंगी।

"मैं रातके रखे हुए पेशाबसे सुबह् १५ मिनट मालिश करती और १५ मिनटके बाद नहा लेती थी। मैंने यह् प्रयोग दृढ़ निष्ठाके साथ किया, क्योंकि डाक्टरी अभिप्रायसे मैं घबरा गयी थी। यदि टाँगों में कहीं कुछ दोष रह् गया तो रोज़का काम करनेमें कठिनाई आयेगी। मुझे यह बताते हुए आनंद होता है कि २१ दिनकी मूत्रमालिशसे मेरी टाँगें सरलतासे मुड़ने लगीं और अब पूरी तरह् गति कर सकती हैं। घुटने मोड़कर बैठा जा सकता है और मोड़ने पर एड़ी जाँघको लग जाती है। मेरी स्थिति देखकर डाक्टर भी चकित हो गये। चाहती हूँ कि मेरे अनुभवसे दूसरे भी लाभ उठायें।"

३८

चित्तभ्रम और बुरे विचार

श्री माधवजी आणंदजी (३६, कल्याण रोड, भीवंडी, ज़ि० थाणा, महाराष्ट्र) डा० परागजी देसाईको अपने रोगका हाल इस प्रकार लिखते हैं :--

"मुझे चार वर्षसे चित्तभ्रम होता रहता, बुरे विचार आते रहते और शरीरसे दुर्गन्ध आती रहती, जिससे दुकान पर बैठनेकी भी इच्छा नहीं होती। जब तब ऐसा लगता कि आयु समाप्त हो जायेगी, फिर मेरे बालबच्चोंका क्या होगा? बहुतसे डाक्टरोंकी दवा ली और बीसियों इन्जेक्शन भी लिये, परन्तु जरा भी फ़ायदा नहीं हुआ। आख़िर आपकी सलाहसे मैंने मूत्रप्रयोग शुरू किया। दिनमें तीन बार मूत्रपान करता हूँ। ७५% लाभ हुआ है और पूर्ण लाभकी आशा रखता हूँ। अब तो मेरी सलाहसे अनेक व्यक्ति यह प्रयोग करते हैं और फ़ायदा उठाते हैं।"

३९

वीर्यह्रास और अन्य तकलीफ़ें

श्री नामदेव गणु करगुटकर (कल्याण रोड, भीवंडी, ज़ि० थाणा, महाराष्ट्र) ने ता० १४–५–'७३ को अपनी रोगमुक्तिका हाल डा० परागजी देसाईको इस प्रकार लिख भेजा है :—

"मूत्रके साथ मेरा वीर्यह्रास होता था, पेटमें दर्द था, कमर और हाथ-पैर दुखते थे तथा गैसकी भी शिकायत थी। आपकी पुस्तक 'शिवाम्बु चिकित्सा पद्धति' पढ़कर मूत्रप्रयोग करनेसे मेरी सभी तकलीफ़ें दूर हो गयी हैं।"

४०

घुटनेकी तीव्र पीड़ा

श्री रामकृष्ण वासुदेव कारलेकर (कारलेकर बिल्डिग, हाईस्कूल रोड, मीरज, महाराष्ट्र) ने 'ऑटो यूरिन क्योर' (शिवाम्बु चिकित्सा) लिखी है, जिसका दूसरा संस्करण अगस्त '७२ में प्रकाशित हुआ है। वे शिवाम्बु चिकित्साके एक अनुभवी चिकित्सक एवं प्रचारक हैं। वे शिवाम्बुको मानव-जीवनका अमृत समझते हैं। उनका कहना है कि सुख तथा स्वास्थ्यके अभिलाषी व्यक्ति शिवाम्बुका नित्य सेवन करें। उन्होंने अपनी पुस्तककी प्रस्तावनामें शिवाम्बु-प्रयोगसे बरसों पुरानी घुटनेकी तीव्र पीड़ासे मुक्ति पानेका विवरण इस प्रकार लिखा है :—

"पिछले बारह वर्षोंसे मेरे दायें घुटनेमें तीव्र पीड़ा होती रही है। मैं चलने और बैठनेमें बहुत दर्द महसूस करता था। मेरे पाचन-

तंत्रमें भी कुछ न कुछ गड़बड़ रहा करती थी। जब कभी आहारमें परिवर्तन हो जाता तो एसिडिटी (अम्लता) बढ़ जाती। प्रतिमास तीन चार बार यह तकलीफ़ खड़ी हो जाती थी। छाछ और खट्टे पेय मेरे लिए ज़हर थे। इसलिए उन्हें छोड़ देना पड़ा था।

"सन् १९६६ में श्री आर्मस्ट्रॉङ्गकी पुस्तक -- दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़ -- पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ। परन्तु विविध शंकाओं तथा घृणाके कारण शिवाम्बु चिकित्साको अपनानेका साहस न कर सका।

"सुखी एवं स्वस्थ जीवन जीनेकी दृढ़ श्रद्धा और इच्छा तथा पीड़ारहित मृत्युकी भावनाने शिवाम्बु-प्रयोगको संपूर्णतः करनेके लिए मुझे मजबूर कर दिया और ३ सितम्बर '६६ को अरुणोयदके समय मैंने पहला मूत्रपान किया। फिर तो मैं रोज़ाना सुबहका सारा पेशाब पीने लगा। मैं बढ़ती हुई वृद्धावस्थामें उसके चमत्कारी प्रभावका अनुभव करने लगा। मेरा पहला अनुभव यह था कि मूत्रपानके दोएक घंटेके बाद ही खुल कर दस्त हो जाता और मलशुद्धि नियमित हो गयी। मेरी अम्लताकी तकलीफ़ काफ़ूर हो गयी और पाचनतंत्र बहुत हद तक ठीक हो गया। मेरी भूख बढ़ने लगी। मनकी प्रसन्नता और शरीरकी स्वस्थताका मुझे सुखद अनुभव होने लगा और गहरी नींद आने लगी।

"सैकड़ों दवाएँ, विविध मरहम और लोशन भी मेरे घुटनेकी जिस तीव्र पीड़ाको मिटा नहीं सके उसे शिवाम्बुने चार मासमें नामशेष कर दिया। अब मैं ज़रूर महसूस करता हूँ कि यदि मैं आर्मस्ट्रॉङ्गके निर्देशके अनुसार मूत्रोपवास तथा मूत्रमालिश भी कर लेता तो मेरी बरसों पुरानी व्याधिका शीघ्र अन्त आ जाता। सच बात तो यह है कि इस दिव्य अमृतने मुझे पुनर्जीवन प्रदान किया है।"

४१

हिमोफीलिया

श्री डी० के० जिरवणकर रिसोड (ज़ि० अकोला, महाराष्ट्र) से ता० २०–३–'७२ के पत्रमें लिखते हैं :—

"मुझे हिमोफीलिया (खूनकी बीमारी) थी। बहुतसे इलाज किये, पर कुछ भी फ़ायदा नहीं हुआ। बम्बईके डाक्टरोंका कहना है कि अभी तक इस बीमारीका इलाज नहीं निकला है। अपने शहरके श्री लक्ष्मीनारायण बगडेके सुझानेसे मैंने मूत्रप्रयोग किया। रोजाना तीन बार मूत्रपान करता और ४० मिनट गरम मूत्रसे मालिश करता था। दो मासके प्रयोगसे मुझे इतने लाभ हुए हैं :—

१. स्वप्नदोष नष्ट हो गया।

२. हाथ-पैरकी थकान दूर हो गयी।

३. गरमीमें नाकसे ख़ून आना बंद हो गया।

४. हिमोफीलियामें आठ आने फ़ायदा हुआ।

मैं पूरा परहेज तो नहीं रख सका। मैं मूत्रको अमृत मानकर पीता हूँ।"

४२

पैरका फ्रॅक्चर

श्री रवि जैन पंजाब नेशनल बैंक, सिविल लाईन्स, लुधियाना (पंजाब) में क्लर्क हैं। वे धर्मरुचि तथा सत्संग प्रेमी हैं और सामाजिक कार्यमें सक्रिय दिलचस्पी रखते हैं। मैं ता० १४–३–'७५ को उनसे मिला और उनके फ्रॅक्चरकी रामकहानी सुनी। उन्हें १९ अक्तूबर, '७४ की दुर्घटनाका भी पहलेसे आभास तो हुआ था, पर उसे ध्यानमें नहीं लाये। वे चंडीगढ़में शामके ८ बजे अपने स्नेहीके साथ मोटर साइकिल पर जा रहे थे कि पीछेसे कारकी टक्कर लगी, सड़क पर गिर गये और दायें पैरके टखनेसे चार अंगुल ऊपर हड्डी टूट गयी तथा दायीं कुहनी भी ज़ख्मी हो गयी। उन्हें तत्काल चंडीगढ़के अस्पतालमें दाखिल कर दिया। ऑपरेशनके बाद दायीं टाँगपर प्लास्टर चढ़ा दिया गया। वे दस दिन तक अस्पतालमें रहे। कुहनीका ज़ख्म तो वहीं स्वमूत्र लगानेसे एक हफ्तेमें ही ठीक हो गया था।

९८ दिनके बाद प्लास्टर उतारा गया तो टाँग पर घाव हो गये थे, वह काफी सूज गयी थी और अकड़ गयी थी। वे अपने श्रद्धेय गुरु श्री जगदीश मित्रके सुझावसे तीन मास पुराने पेशाबसे रोज बीसेक मिनट मालिश करने लगे। डेढ़ महीनेमें ७५ % आराम हो गया -- घाव बिल्कुल ठीक हो गये, सूजन बहुत कम हो गयी, टाँगमें लचक आ गयी और दो हफ्तेमें ही मुड़ने लग गयी। मैल उतर जानेसे वह साफ़ भी हो गयी। फिर गुरुजीके सुझानेसे वे फरवरी, ७५से मूत्रपान भी करने लग गये, जिससे शरीरमें चुस्ती और गतिमें कुछ तेजी आ गयी है। घरमें बिना घोड़ीके चल-फिर लेते हैं।

वे ता० १७–६–'७५ के पत्रमें लिखते हैं :—

"अब मैंने बैंकमें रिक्शा पर जाना-आना छोड़ दिया है। एक तरफ़से बस द्वारा चला जाता हूँ और दूसरी तरफ़से पैदल चल कर आ जाता हूँ। गतिमें भी सुधार हुआ है। सूजन भी बहुत कम हो गयी है।"

वे एक बार भाईके विवाह पर रानियाँ (जि० सिरसा, हरियाणा) गये थे। श्री नगीनचंद्र जैनको घोड़ीसे चलते हुए देखा और पूछताछ करनेसे मालूम हुआ कि वातरोगके कारण उनके सारे शरीर पर सूजन आ गयी थी, बड़ी मुश्किलसे उठ-बैठ सकते थे। डाक्टरोंने जवाब दे दिया और कहा कि अब वे कुछ दिनोंके मेहमान हैं। सद्भाग्यसे एक जैन साधुसे उनकी भेंट हो गयी, जिन्होंने मूत्रमालिश करनेके लिए प्रोत्साहित किया। तदनुसार वे अपने पेशाबसे सारे शरीरकी मालिश करने लग गये और कुछ ही दिनोंमें चलने-फिरनेकी शक्ति आ गयी। एक बार उनकी हड्डी भी टूट गयी थी जो मूत्रपट्टी बाँधनेसे जुड़ गयी थी। मूत्रप्रयोगसे वे मौतके मुंहसे बच गये।

४३

हर्नियाकी पीड़ा

श्री नरीमान जे० अंकलेश्वरिया पूनासे ता० २१-२-७२ के पत्रमें लिखते हैं :—

"तीन सालसे खानेके बाद छातीके ऊपरी भागमें जलन होती थी जो सोते समय बढ़ जाती थी। अच्छे डाक्टरोंका निदान था कि मुझे हर्निया है और उसमें अल्सर है। गुरदा खराब होनेसे डाक्टरकी सलाह मानकर दो बार ऑपरेशन करवाया, पर तीसरी बार उसे करानेकी हिम्मत नहीं हुई।

"दोस्तके अनुरोधसे मैंने मूत्रप्रयोग शुरू कर दिया। तीन माससे सुबह, शाम और रातका सारा पेशाब पी जाता हूँ। खानेके बाद हर्नियाका दर्द नहीं होता। कभी हो जाता है तो तुरन्त मूत्र पीनेसे मिट जाता है। पेशाब खुलकर आने लगा है। काम करते हुए दिनमें नींद नहीं आती और थकान भी नहीं लगती। सोते समय नाककी आवाज दूर हो गयी है। शरीरका फीकापन जाता रहा है। कभी कभी मूत्रमालिश भी कर लेता हूँ, जिससे चमड़ी मुलायम हो गयी है। मैंने एक भी उपवास नहीं किया।

"पत्नी भी सुबहका पेशाब पीती है, जो टॉनिक-सा काम करता है। वह कमजोरी और थकान महसूस नहीं करती। छोटी लड़की भी रोज एक बार मूत्रपान करती है।"

४४

१५बरसी मूत्रकी शक्ति

श्री जगदीश मित्र मेरे भूतपूर्व विद्यार्थी हैं, ब्रह्मचारी हैं और ५२ वर्षके हैं। वे अपने कसबे पट्टी (जि० अमृतसर, पंजाब)में जैन विद्यार्थियोंको धर्मशिक्षा देते हैं। लगभग १५ साल पहले उन्होंने अपने पेशाबसे एक बोतल भरकर रख ली थी। समय-समय पर वे उसका उपयोग करते रहे हैं और निम्नलिखित लाभ उठाये हैं :—

१. चाकूसे कटी अँगुलीका ज़ख्म ठीक हुआ।

२. घुटनोंके नीचे बरसों पुरानी सूखी खाज एक बारकी मालिशसे नामशेष हो गयी।

३. दाढ़का दर्द पेशाब लगानेसे मिट गया।

४. उन्होंने भगन्दर और बवासीरका ऑपरेशन लगभग १४ वर्ष पूर्व कराया था। डाक्टरकी सूचनाकी अवहेलना कर सिर ऊँचा रखनेसे सिरमें फुंसियाँ हो गयीं, जो १०-१२ साल परेशान करती रहीं। करीब दो हफ्तेकी मूत्रमालिशसे सदाके लिए दूर हो गयीं।

५. ता० ३–५–'७३ को जगराँवाँ (जि० लुधियाना)में उनके सिर पर गहरी चोट आयी। डाक्टर और जर्राहका एक मास तक इलाज किया, पर कुछ भी लाभ न हुआ। ९ जून, '७३ को पट्टी आकर तीन दिन प्रातः एक बार ताजा पेशाब पिया और पुराने पेशाबकी पट्टी रखनेसे ज़ख्म ठीक हो गया और चक्कर आने भी बंद हो गये।

६. आँखका धुँधलापन, गीद, दर्द आदि ताजे पेशाबकी बूंद डालनेसे दूर हुए हैं।

७. सर्दी, खाँसी, जुकाम, गलेकी खराश और कब्ज दो-तीन बार ताजा पेशाब पीनेसे ठीक हुए हैं

उनके पुराने पेशाबसे दूसरोंने भी लाभ उठाया है। फिर उनके पास दो-तीन मास पुराने पेशाबकी और एक हफ्ता पुराने पेशाबकी बोतल भी है। वे बरसों पुराने पेशाबकी बोतलमें और पेशाब भी डालते रहते हैं। वे अपनी दृष्टि सुधारनेके लिए आजकल भी मूत्र-प्रयोग कर रहे हैं। —संपा०

४५

डा० परागजी देसाईका स्वानुभव

किसी भी विषयका ज्ञान तभी सार्थक होता है जब जीवनमें उसकी अनुभूति होती है। अनुभूतियुक्त ज्ञानसे अपना कल्याण तो होता ही है, साथ ही दूसरोंका कल्याण करनेकी उसमें क्षमता भी आती है। कोरा ज्ञान तो मस्तिष्कके लिए एक भार ही बना रहता है। अंग्रेज़ी कहावत — उपदेशसे उदाहरण बढ़कर है—को चरितार्थ करनेके लिए मैंने समय-समय पर शिवाम्बुकी रोग-नाशक शक्तिका स्वयं अनुभव किया है। शिवाम्बुके प्रयोगसे मैंने जो जो लाभ उठाये हैं, उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत करता हूँ।

मैं पिछले कई वर्षोंसे सर्दी, खाँसी, अजीर्ण, सिर-दर्द जैसे साधारण रोगोंसे कभी-कभी आक्रान्त होता रहा हूँ। कभी-कभी शारीरिक और मानसिक श्रमसे परेशान हुआ हूँ। मेरे जीवनमें अधिक गर्मी और सर्दीसे बेचैन होनेके अवसर भी आये हैं। यह बताते हुए हर्ष और गर्वका अनुभव करता हूँ कि दिनमें दो-तीन बार ४–६ औंस ताज़ा पेशाब पीनेसे थोड़े ही समयमें उपर्युक्त मेरी सभी पीड़ाएँ दूर होती

रही हैं और जब कभी बुढ़ापेकी कमज़ोरी महसूस होने पर रोज़ सुबह एक सप्ताह उतना ही पेशाब पीनेसे मैं स्फूर्ति एवं शक्तिका अनुभव करता हूँ।

उसी अरसेमें मुझे बुखार, दस्त, कै जैसी उग्र बीमारियाँ भी हुई थीं। दो-तीन दिनके मूत्रोपचारसे वे सभी बीमारियाँ भी मिट गयी थीं। जब कभी पेटमें सख्त दर्द होता है, तब एक पौंड गरम पानीमें आधा पौंड पेशाब मिलाकर एनिमा लेनेसे दो-चार घंटेमें दो-चार दस्त आ जाते हैं, जिससे दर्द एकदम दूर हो जाता है।

एपेन्डिसाइटिस, गुरदे और जिगरकी पथरी जैसे भयंकर रोगोंमें बहुत तीव्र पीड़ा होती है, जिसके लिए डाक्टर तो ऑपरेशन करानेकी सलाह देते हैं, परन्तु शिवाम्बुके प्रयोगसे प्रायः ऐसे रोग जल्दी ही ठीक हो जाते हैं और रोगी ऑपरेशनकी झंझट, पीड़ा और खर्चसे बच जाते हैं।

एक बार पाँव फिसल जानेसे मेरे दायें पैरमें मोच आ गयी और पंजे एवं टखने पर सूजन आ गयी, जिसकी पीड़ा असह्य थी और चलना-फिरना भी बहुत मुश्किल हो गया था। फिर दूसरी बार सीढ़ीसे गिर जानेसे छातीके दायीं ओर की पसलियोंमें सख्त चोट लगी थी और वह भाग सूज गया था, जिससे बहुत दर्द होता था। दोनों बार रोज़ाना तीन-चार बार स्वमूत्र पीने और चोटवाली जगह पर मूत्र-पट्टी रखनेसे ज़ोरका दर्द तो दो-तीन दिनमें ही काफ़ूर हो गया था और एक हफ्तेमें बिल्कुल आराम हो गया था।

सामान्यतः ऐसी तकलीफ़ोंके समय एक्स-रे लिवाने और प्लास्टर लगानेकी ज़रूरत पड़ती है और दो-तीन मास चारपाईकी शरण लेनी पड़ती है। इस उपचारमें पीड़ा भी काफी होती है और ख़र्च भी। शिवाम्बु प्रयोगसे ऐसी तकलीफ़ें थोड़े समयमें और बिना खर्चके दूर की जा सकती हैं। टूटी हुई या खिसकी हुई हड्डीको किसी अनुभवी डाक्टर या अस्थि-चिकित्सक द्वारा ठीक कराकर मूत्र-प्रयोगसे उसकी पीड़ाको भी सरलतासे दूर किया जा सकता है।

४६

डा० अर्जुनसिंघके अनुभव

डा० अर्जुनसिंघ पंजाबके निवृत्त सब असिस्टेंट सर्जन हैं और अजमेरमें रहते हैं। उनकी आयु ८३ वर्षकी है। वे अपने अनुभवसे मानते हैं कि एलोपैथी दमनकारी चिकित्सा पद्धति है। फिर इसकी दवाएँ नये रोग भी पैदा कर देती हैं। उनका मूत्रप्रयोग सम्बन्धी अनुभव जाननेके लिए मैं ता० १२–४–'७५ को उनसे मिला।

उन्हें सन् १९४६ से दमा, सन् १९४८ से हृदयरोग, सन् '५५से कुकरे-पड़वाल, बरसोंसे घुटनों एवं कन्धोंमें दर्द और पायरिया परेशान करते थे। सभी बीमारियोंका अंग्रेज़ी इलाज करते-करते वे थक चुके थे। डा० एम० के० थडानी होमियोपैथसे उन्हें मूत्रोपचारके बारेमें मालूम हुआ और उसे उन्होंने आजमानेका फ़ैसला कर लिया।

ता०. ९–९–७३ से वे दिनमें दो-तीन बार स्वमूत्र पीने लगे और आँखोंमें दो बार डालने लगे। वे मालिश तो नहीं कर पाये, लेकिन परहेज़ पूरा रखा। धीरे-धीरे सभी बीमारियाँ ठीक होने लगीं और डेढ़ सालमें कई बीमारियाँ तो बिल्कुल दूर हो गयीं। दमेको ९० % आराम हुआ। दिलका दौरा पहले हर महीनेमें दो-तीन बार पड़ता था, अब पाँच मासमें एक बार पड़ता है। नाकके अग्र भाग पर सफेद कोढ़का जो दाग था वह बहुत कम हो गया है। पैर फटने बंद हो गये हैं। करीब बारह पौंड वजन भी कम हो गया है, जिससे शरीर हलका एवं फुर्तिला हो गया है।

उनकी पोती तनदीप कौर १८ सालकी है। सन् १९७३ में वह कोलाइटिससे आक्रान्त हो गयी। दो मास अंग्रेजी दवाई खायी

और टीके भी लगवाये, पर आराम न हुआ। आखिर १५-२० दिन रोजाना दो बार मूत्रपान करनेसे वह नीरोग हो गयी।

उन्हींकी भतीजी मनमोहन कौरका ४–९–'७३ की शामको गरम चायसे हाथ जल गया। रातको दो-तीन बार जले हाथ पर पेशाब करनेसे वह बिल्कुल ठीक हो गया —— दाग तक भी न रहा।

—— संपा०

४७

श्री विजयकुमार गुप्ताके अनुभव

श्री विजयकुमार गुप्ता (राजपुरा रोड, सिविल लाईन्स, लुधियाना) भारतकी सुप्रीम कोर्ट और पंजाब हाईकोर्टके वयोवृद्ध एडवोकेट हैं। वे मित्रों और दूसरोंकी सहायता करनेके लिए सदा तत्पर रहते हैं। उनके मूत्रोपचारके अनुभव जाननेके लिए मैं ता० १५–३–'७५ को उनसे मिला। उनके अनुभव सुनकर मैंने यह महसूस किया कि वे स्व० प्रयोगवीर श्री रावजीभाई मणिभाई पटेलको श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं। वे ता० १७–५–'७५ के पत्रमें लिखते हैं :——

"मैं सितम्बर, १९४५ से प्राकृतिक उपचारमें सक्रिय अभिरुचि एवं निष्ठा रखता हूँ। मैंने अनेक रोगियोंको इस उपचारसे स्वस्थ बनाया है। हरियाणाके बिजली चीफ इंजीनियर श्री एच० जी० दीवानने मुझे बताया कि निसर्गोपचार आश्रम, जसिडीह (बिहार)के डॉ० पोद्दार मूत्रोपचारके लिए राज़ी हो जानेवाले रोगियोंका यही उपचार करते हैं। मैं उस विचार पर खिलखिलाया और उनसे कहा कि पेशाब पीना संभव नहीं है।

"मैं १९७२ के अवकाशमें जसिडीह गया और निसर्गोपचार आश्रममें करीब २० दिन ठहरा। पोद्दारजीने मुझे मूत्रोपचारकी पुस्तक

दी, जिसे पढ़कर मैं विश्वस्त हो गया। मूत्रपानकी झिझकको दूर करने और रोगियोंको नीरोग बनानेके लिए एक शामको मैंने निश्चय किया कि कल सुबह मूत्रपानका श्रीगणेश करूँगा। अरुचि और करबद्ध प्रार्थनाके साथ सन् १९७२ के अगस्तके अन्तिम सप्ताहमें प्रातः अपना पेशाब पिया, जो बहुत सहज तथा उपयुक्त प्रतीत हुआ।

"मैं १९६५ से पेटके अलसरसे पीड़ित हो रहा था। डाक्टरोंका कहना था कि उसका कारण काम और घरका तनाव है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सक होनेके नाते मैं उसे अयुक्त आहारका परिणाम समझता था। मैंने स्थानीय ईसाई मेडिकल कालेज और अमेरिकन हॉस्पिटलमें उपचार नहीं कराया, क्योंकि मैं प्राकृतिक चिकित्साका भक्त था। परन्तु जाँच आदिके लिए मुझे उक्त अस्पतालमें रखा गया। मैंने खुद ही प्राकृतिक उपचार करके अपने आपको स्वस्थ बना लिया। लेकिन बादमें अयुक्त आहारसे फिर वह पीड़ा खड़ी हो गयी, तब मैंने नवम्बर १९७२ से मूत्रप्रयोग किया और दस दिनमें ही नीरोग हो गया। मैं अब भी मूत्रप्रयोग करता हूँ और स्वस्थ रहता हूँ। निःसन्देह हमें सादा और प्राकृतिक भोजन ही लेना चाहिये। मेरा आहार दूध-दही, उबले शाक, डेरी-मलाई, फल और कच्ची सब्जियाँ है। मैं खाँडसे बचता हूँ, परन्तु कभी-कभी गुड़ और शहद लेता हूँ। अब मेरी आयु ६७ वर्षकी है।

"मैं १९७३ में अमेरिका गया था। जुलाई ७३ में हवाई जहाज में वापस आते हुए मेरे पेटमें घोर असह्य पीड़ा हो गयी। मैंने पेशाबखानेमें जाकर करीब ६ औंस अपना पेशाब पी लिया और दस मिनटमें ही वह दर्द काफ़ूर हो गया। १५ दिन हुए होंगे कि मेरे दायें पैरकी बायीं ओर भीतरी अति पीड़ा हुई। मुझे लगा कि कुछ दिन तक अच्छी तरह चल नहीं सकूँगा। उसी रातको मैंने पैर पर मूत्रपट्टी लगा दी और सुबह ५० % प्रतिशत आराम हो गया,

जिससे मैं अदालतोंमें जा सका। दूसरी रातकी मूत्रपट्टीने तो मेरी पीड़ाको एकदम नष्ट कर दिया।

"बिहार सरकारके एक कृषि अधिकारी नेफ्राइटिससे पीड़ित थे। उन्होंने विल्लौरके मिशन अस्पतालमें दो बार इलाज कराया, पर कुछ भी आराम न हुआ। अन्तमें डाक्टरोंने जवाब दे दिया। जसिडीह निसर्गोपचार आश्रमके डा० पोद्दारने भी निराशाजनक केस समझकर प्राकृतिक उपचार करनेसे इनकार कर दिया। संयोगवश उस वक्त मैं आश्रममें ठहरा हुआ था। तब वे अधिकारी आश्रमके बाहर किसी मकानमें ठहर गये। मेरी सलाह और मार्गदर्शनसे उन्होंने मूत्रप्रयोग करके नया जीवन प्राप्त किया।

"भगत करमचंद प्राइवेट स्टेनोटाइपिस्ट हैं। आयु ६२ वर्ष। उनका मस्तक गंजा होने लगा था। मेरी सलाहसे उन्होंने मूत्रप्रयोग को अपनाया और सात दिनमें ही उनका मस्तक बालोंसे भरने लग गया।

"श्री धरमप्रकाश बी० ए० मिलिटरी कान्ट्रेक्टर हैं। आयु ५५ वर्ष। मेरी सलाहसे उन्होंने लगभग तीन हफ़्ते मूत्रप्रयोग करके प्रोस्टेट ग्लैंडको नष्ट कर दिया है।

"श्री महेन्द्रपाल बी० कॉम० २६ वर्षके युवक हैं, जिसके पिता धनिक कारखानेदार हैं। उसे जठरकी गंभीर पीड़ा थी। उसने गोरखपुर और बरेलीके प्राकृतिक चिकित्सालयमें कुछ महीने रह कर इलाज कराया, लेकिन उसका दर्द मिटा नहीं। फिर मैंने उससे दो महीने मूत्रप्रयोग कराया। पान तथा मालिशके अतिरिक्त कभी-कभी छोटे उपवास भी करवाये। वह सर्वथा पीड़ा-मुक्त हो गया और प्रसन्न रहता है।"

४८

श्री सालिगराम गोसाईंके अनुभव

श्री सालिगराम गोसाईंजी एफ० सी० आइ० लिमिटेड सिन्दरी यूनिट, सिन्दरी (धनबाद)के जूनियर पब्लिकेशन ऑफिसर हैं और प्रेसके संवाददाता भी। वे भी प्राकृतिक उपचारमें बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। वे अपने मित्र गुप्ताजीके बुलाने पर उनके घर गये थे और उनसे मूत्रोपचारके विषयमें बातचीत हुई थी, जिससे वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि वापस सिन्दरी आकर मूत्रप्रयोग करनेका निश्चय कर लिया। वे ता० ३१–१०–'७३ के पत्रमें गुप्ताजीको लिखते हैं :—

"गत ४, ५, ६ जूनको मेरी छातीमें मामूली दर्द हुआ। ७ जूनकी सुबह मूत्रपान करनेसे वह एकदम मिट गया और तभीमे घृणाके बिना एक बार या कभी-कभी कई बार शिवाम्बु पी रहा हूँ। मैं मूत्रोपचारके अपने अनुभव भी संक्षेपमें लिखता हूँ :—

"१. मैं महसूस करता हूँ कि मेरी शारीरिक शक्ति बढ़ रही है, जिसका सबूत है स्थानच्युत गुदाका ५० % संकुचित हो जाना। मैं अब मेजर ऑपरेशनकी जरूरत महसूस नहीं करता हूँ।

"२. मेरी बवासीर एक मासमें मिट गयी।

"३. अब मैं बिना थकानके १६ घंटे काम कर सकता हूँ।

"४. एक बार १० दिनके सम्मेलनमें मैं रातको ढाई बजे या उसके बाद सोया करता था, तो भी मैं स्वस्थ बना रहा।

"५. मेरी तोंद जाती रही है। मेरी कमर लचीली हुई है। गत साढ़े चार माससे जठरमें कोई तकलीफ़ नहीं हुई है। मेरा पेट सपाट है।

"६. आपका कहना है कि मूत्रप्रयोगसे कायाकल्प हो जाता है, सच है; क्योंकि मेरे भूरे बाल काले हो गये हैं। केवल उनके सिरे थोड़े भूरे हैं। अब मैं ५५ वर्षका हूँ।

"७. मैं स्वमूत्र और मंजनसे दाँत घिसने लगा, दो दिनमें दाँतोंसे ख़ून आना बन्द हो गया, तबसे वह नहीं आया है। मेरे ढीले दाँत मजबूत और दृढ़ हो रहे हैं।

'८. मैं १ली सितम्बरसे स्वमूत्रसे आँखें धोता हूँ। मेरी नज़र तेज हुई लगती है और अब आँखें थकती नहीं हैं।

"९. गत सितम्बरसे ७ दिन पुराने पेशाबसे सिरसे पैर तक सारे शरीरकी मालिश करता हूँ। यह शक्तिदायक है। फिर मैं दोएक घंटे बाग़बानी करके नहाता हूँ। शुरूमें पहले ताज़ा पेशाब कानोंमें डालता हूँ। फिर निथरे हुए ७ दिनके पेशाबसे आँखों पर छींटे मारता हूँ। यद्यपि वह थोड़ी देर लगता है, परन्तु जल्दी ही आँखें ठंडी हो जाती हैं।

"१०. बन्दरकी तरह बैठनेसे या लम्बी सैरमें मेरी गुदा बाहर आ जाती थी, अब नहीं आती और मात्र शौचके समय बाहर आती है।

"११. लगभग दस व्यक्तियोंने अहमदाबादसे मूत्रोपचारकी पुस्तकें मँगवायी हैं और उन्होंने यह उपचार शुरू कर दिया है।"

४९

श्री चन्दुलाल दवेके अनुभव

श्री चन्दुलाल काशीराम दवे (२६, ब्राह्मण मित्र मंडल सोसायटी, एलिसब्रिज, अहमदाबाद–६) निवृत्त प्रधान शिक्षक, अध्यात्म रुचि और आहारशास्त्री हैं। उनकी आयु ८४ वर्षकी है। वे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्यके लिए युक्त आहार-विहार तथा अध्यात्मको अनिवार्य-सा समझते हैं। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'सस्ती पोषक वानगीओ' (सस्ते पोषक खाद्य) पाँच बार छप चुकी है। वे योग, निसर्गोपचार और स्वमूत्र चिकित्साको अपने जीवनमें चरितार्थ करनेके लिए प्रयत्नशील रहते हैं। वे २६–६–७५ के 'भूमिपुत्र' में अपना अनुभव इस प्रकार लिखते हैं :—

"मैंने बरसोंसे अनेक बार यह अनुभव किया है कि चोट लगनेसे निकले हुए खूनको बन्द करने और उसके घावको रुझानेका स्वमूत्र एक अकसीर और छूत-निवारक उपाय है। इतना ही नहीं, किन्तु अपने एक सगेके पालतू कुत्तेके मुझे काटनेसे निकले हुए खूनको बन्द करनेमें भी उसका सफल प्रयोग किया है। निर्दय मनुष्यके विषयमें प्रचलित यह उक्ति — 'कटी उँगली पर मूतता भी नहीं है' — यथार्थ है और उसमें सैकड़ों वर्षका अनुभव प्रतिबिम्बित है।

"वर्षों पूर्व आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें पढ़ा था कि मानवमूत्र रसायन है। हमारे लोकनेता श्री मोरारजीभाई देसाई तो बरसोंसे मूत्रपान करके लाभ उठा रहे हैं। कुछ मास पूर्व उनसे मिलना हुआ था तब उन्होंने उक्त आयुर्वेदिक विधानका समर्थन किया था। उस महाजनके दृष्टान्तसे प्रेरित होकर मैं भी प्रातः मूत्रपान करने लगा हूँ, जिससे

सचमुच शक्तिका संचार होता लगता है और शौच सरलतासे पूरी तरह हो जाता है। दोनों नासिकाओंमें थोड़ा लेनेसे कफ़ भी ठीक साफ़ होता है।"

५०

श्री मोरारजीभाई देसाईका अनुभव

स्व० श्री रावजीभाई पटेलने मुझे बताया था कि श्री मोरारजीभाई देसाई मूत्रपान करते हैं, तभीसे उत्कंठा थी कि उनका अनुभव सुनूं। लगभग पाँच वर्ष पूर्व मैं डा० परागजीभाई देसाईके साथ उन्हें नयी दिल्लीमें मिला था। तब पूछने पर उन्होंने बताया कि मूत्र पीनेसे उनका कब्ज़ दूर हो गया है और उनके लिए स्वमूत्र एक श्रेष्ठ रसायन सिद्ध हुआ है।

वे इतने स्वस्थ एवं सशक्त हैं कि ८० वर्षकी आयुमें भी उन्होंने सिद्धाचलकी पैदल यात्रा की है।

नई दिल्लीमें ता. २-१०-७७ को मूत्रसेवनका स्वानुभव बताते हुए उन्होंने कहा कि एक बार उन्होंने मोतियेका ऑपरेशन करवाया था, परन्तु फ़ायदा नहीं हुआ। फिर स्वमूत्रका सेवन करनेसे ठीक हो गया था। इसी तरह उनका बहरापन भी मूत्रसेवनसे दूर हो गया था।

प्रसंगात् उन्होंने यह भी कहा कि मूत्रप्रयोगसे प्रत्येक रोग मिटता है।

ता. १३-९-'७७ को श्री पन्नालाल झवेरीको लिखे गये पत्रमें वे लिखते हैं कि राजकोटके एक ६५ वर्षीय व्यक्तिने कैन्सरका पाँच बार ऑपरेशन कराया, पर वह मिटा नहीं। डाक्टरोंने तो आशा छोड़ दी थी। परन्तु मूत्रप्रयोगसे वह बिलकुल अच्छा हो गया।

—संपा०

५१

श्री के० जी० पंडितके स्वानुभव

श्री के० जी० पंडित भिलाई स्टील प्लांटके इन्जीनियर थे। अब वे अपने अनुभवके आधार पर स्वमूत्र चिकित्साके एक निष्ठावान प्रचारक हैं। स्वमूत्रोपचार अनुसंधान केन्द्र एवं चिकित्सालय, रायपुर (मध्यप्रदेश) का संचालन करते हैं। उनकी प्रेरणासे भिलाईके कितने ही कार्यकर्ताओंने अपने जख्मोंको पेशाबसे धोने और उसकी पट्टी रखनेसे दो या तीन दिनमें ठीक किया है।

भिलाईके क्रिकेट केप्टेन श्री मदन जोशीने अभ्यास और मैचके दिनोंमें मूत्रपान और मूत्रमालिश करते रहनेसे यह अनुभव किया कि पेशाब टॉनिक एवं शक्तिप्रद रस है।

पेटकी गैस, पेचिश, संग्रहणी, अजीर्ण, सिर दर्द इत्यादिसे पीड़ित असंख्य रोगियोंने उनके सुझानेसे मूत्रोपचार एवं हलका आहार करके कुछ ही दिनोंमें अपनी-अपनी बीमारीको दूर कर दिया है।

गत १५ सालके निजी और दूसरोंके अनुभवके आधार पर श्री के० जी० पंडितकी यह दृढ़ मान्यता है कि फ्लू, मलेरिया दो-एक दिनका मूत्रोपवास रखकर रोजाना तीन बार ताजा पेशाब पीने और पुराने पेशाबसे मालिश करने तथा खान-पानमें कड़ा संयम रखनेसे शीघ्र ही नामशेष हो जाते हैं।

श्री के० जी० पंडित अपने अनुभवके आधार पर स्वमूत्रचिकित्साके निष्ठावान प्रचारक हैं। स्वमूत्रोपचार अनुसंधान केन्द्र एवं चिकित्सालय, रायपुर (मध्यप्रदेश)के वे संचालक हैं। ऐसा लगता है कि वे स्व० डॉ० परागजीभाई देमाईकी क्षतिकी किसी हद तक पूर्ति

कर देंगे। स्वमूत्रकी रोगनिवारण-क्षमता सम्बन्धी उनका स्वानुभव इस प्रकार है :–

वे ६० बरसकी उमरमें बीमार हो गये। उनका पाचनतंत्र और नाड़ीतंत्र बेकार-से हो गये। करीब दो साल तक उन्होंने एलोपैथी, आयुर्वेद और होमियोपैथीकी दवाइयाँ लीं। कुछ भी लाभ न होनेसे स्वस्थ होनेके लिए वे स्वमूत्रका सेवन करने लगे और ७ दिन पुराने पेशाबसे सारे शरीरकी मालिश करते रहे। पहले वे शुरूके एक तिहाई पेशाबको छोड़ना भूल गये, जिससे सिर दर्द होने लगा और जी मतलाने लगा। दो हफ्तेमें उन्हें बहुत आराम हुआ और एक महीनेमें वे पूर्ण स्वस्थ हो गये।

खूनी बवासीर

हर गरमीके मौसिममें उन्हें बिरारके अकोटा और अमराडी जिलोंमें रोज दस मील चलना पड़ता था और टट्टी बहुत कठिन आती थी। परिणामस्वरूप सन् १९६६ में वे ख़ूनी बवासीरसे पीड़ित हो गये। वापिस नागपुर आकर पेशाब और पानीके साथ तीन उपवास किये और रोज ताजा पेशाब और गुनगुने पानीका एनिमा लिया। तीन दिनमें ख़ूनका आना बन्द हुआ और बवासीरकी पीड़ा कम हुई। दिनमें तीन बार मूत्र पीते और हर तीसरे दिन एनिमा लेते थे। दो सप्ताहमें बवासीर एकदम मिट गई।

दोनों आँखोंमें मोतिया

सन् १९६७ में आँखके सर्जनसे जाँच कराने पर मालूम हुआ कि दोनों आँखोंमें मोतिया है। उन्होंने दस दिनके मूत्रोपवासका निर्णय किया। पाँच दिन उपवास करनेके बाद ब्लड-प्रेशरकी जाँच कराने पर उसके कम हो जानेका पता चला। पत्नीके आग्रहसे पारणा करके वे दूध, छाछ और संतरेके रसका हलका भोजन करने लगे।

तीन बार मूत्र पीते और मूत्रमालिश करते। एक हफ्तेके बाद साधारण सादा भोजन करने लगे।

सन् १९७० में उसी डाक्टरसे फिर आँखोंकी परीक्षा करवायी। डाक्टर यह जानकर दंग रह गया कि मोतिया और न बढ़कर कुछ कम हुआ है। तबसे वे दिनमें तीन बार ताज़े पेशाबसे अपनी दोनों आँखें धोते रहे और अपने लिखने-पढ़नेका सारा काम भलीभाँति करते रहे हैं।

गठिया

सन् १९७५ में उन्होंने अपने घुटनों एवं बायें कन्धेके गठियाको दूर करनेके लिए तीन दिनका उपवास किया। गठिया पूरी तरहसे जाता रहा और साथ ही मोतिया भी कम हुआ।

सन् १९७६ में उन्होंने फिर उसी डाक्टरसे अपनी आँखोंकी जाँच करवायी। डाक्टरने विश्वासपूर्वक सूचित किया कि अब ऑप-रेशनकी कोई जरूरत नहीं है।

मूत्रको रोगनिरोधक समझकर वे रोज सवेरे पूरा गिलास भर कर मूत्र पीते हैं, ताज़े पेशाबसे तीन बार आँखें धोते हैं और नहानेसे पहले ७ दिन पुराने पेशाबसे मालिश करते हैं।

— संपा०

५२

श्री नेकीराम चौधरीके स्वानुभव

श्री नेकीराम चौधरी गांधी आश्रम, हापुड़ (जि० मेरठ, उ० प्र०)के व्यवस्थापक और अनुभवी मूत्रचिकित्सक हैं। ता. २२-१-'७७ के पत्रमें वे लिखते हैं :–

"१९६४ में मेरे जिगरमें बड़े जोरकी जलन हुई। मैं बड़ा बेचैन हो गया। मेरठके सभी वैद्य-डाक्टरोंका छः सात महीने इलाज करवाया, परन्तु जरा भी आराम नहीं हुआ। चार-पाँच महीने पानीका इलाज करने पर भी आराम नज़र नहीं आया। लिखते-लिखते नींद आने लगती थी। बदनमें भी दर्द रहने लगा। दर्द कभी पैरमें, कभी कन्धेमें, कभी कमरमें। कभी-कभी तो पैरमें इतना दर्द हो जाता कि मैं चल-फिर भी नहीं सकता था।

"एक दोस्तसे स्वमूत्रकी पुस्तक लेकर मैंने पढ़ी और अक्तूबर १९६४ में इलाज शुरू कर दिया। मैं सुबह एक गिलास पेशाब पीता था तथा ७ दिनके पेशाबसे मालिश करता था। मैंने केवल १५ दिन इलाज चलाया। इन १५ दिनोंमें ४ दिन उपवास किया। उपवासमें पानी तथा पेशाब पीता रहा। ११वें दिन पैरों तथा घुटनों पर फुंसियाँ निकल आईं। वे २४ घंटेमें पक जाती थीं। पेशाबकी मालिश करने पर फूट जाती थीं और अच्छी हो जाती थीं। जिगरकी जलन और शरीरका दर्द सदाके लिए नामशेष हो गये।

"मेरी धर्मपत्नीकी उमर लगभग ५५ साल है। १९७१ में उसकी छातीमें इतना दर्द हुआ कि वह बेचैन हो गई। डाक्टरोंने तो छातीके टी० बी० का फतवा दे दिया। एक माहके डाक्टरी इलाजमें काफी रुपये खर्च हो गये। घरवाली भी इन्जेक्शनोंसे परे-

शान हो गई थी। मैंने उससे कहा कि अब थक गई हो तो मेरा इलाज कर लो। वह कहने लगी, "मालिश तो कर सकती हूँ, पर पेशाब नहीं पी सकती।" ७ दिनके पेशाबसे सुबह उगते हुए सूरजकी किरणोंमें वह मालिश करने लगी। ७ दिनमें ही दर्द खत्म हो गया।

"मेरी आखिरी राय यह है कि इससे सस्ता इलाज दुनियामें नहीं है। मैंने इसे सैकड़ों स्त्री-पुरुषों पर आजमाया है। सब जगह कामयाबी मिली है। मैंने तो इसे पशुओं पर भी आजमाया है और सफल हुआ हूँ। मैं सभी रोगपीड़ित भाइयोंसे प्रार्थना करता हूँ कि यह इलाज जरूर करें।"

५३

मानवमूत्रकी संतुलन-शक्ति

दिन-प्रतिदिन मूत्रकी अद्भुत शक्तिका अनुभव हो रहा है। आये दिन मूत्रकी ऐसी विविध तथा अगम्य शक्तियोंका पता चल रहा है कि जिनका कभी स्वप्न तक भी न आया था।

पिछले कई महीनोंमें कितने ही प्रयोग ऐसे हुए हैं जिनसे यह फलित होता है कि मूत्रमें हृदयकी गतिको टिकाये रखनेकी शक्ति है। भगवान् सुश्रुतने मानवमूत्रको विषघ्न तथा रसायन बताया है। सुश्रुतके कथनकी गहराईमें जाकर एक मननशील चिकित्सकने सोचा कि यदि मानवमूत्र साँपके ज़हरका नाशक है तो इसका अर्थ यह हुआ कि साँपका ज़हर मनुष्यके ख़ूनके दबावको एकदम कम कर देता है, जिससे हृदय अपनी शक्ति खो बैठता है और उसकी गति बन्द हो जानेसे मनुष्य मौतका शिकार हो जाता है। अतः साँपके काटे हुए मनुष्यको

मूत्र पिलानेसे विष शान्त हो जाता है, खूनका दबाव बना रहता है, हृदय अपनी शक्ति नहीं खोता है और अपना काम करता रहता है, जिससे वह मनुष्य मौतके मुँहसे बच जाता है। फलितार्थ यह कि किसी भी कारणसे जिस व्यक्तिके हृदयकी शक्ति क्षीण हो रही हो या क्षीण होनेकी संभावना हो, तो उसे मूत्र पिलानेसे हृदयकी गति बनी रहती है।

उपर्युक्त मननशील चिकित्सकने सुश्रुतका गंभीर अध्ययन किया है और अहमदाबादमें चिकित्साका ही व्यवसाय करते हैं। उनका नाम मगनलाल सलारिया है। (उनका विशेष परिचय 'आँतके रोग' नामक प्रकरणमें आ चुका है।) वे आयुर्वेदिक पद्धतिसे ऑपरेशन करते हैं। उन्होंने छोटे-बड़े सैकड़ों ऑपरेशन किये होंगे, फिर भी यह एक नग्न सत्य है कि उनमेंसे एक भी ऑपरेशन रोगीके लिए ख़तरनाक साबित नहीं हुआ। उन्होंने इस बातको भी सिद्ध कर दिखाया है कि मानवमूत्र ऑपरेशनमें भी बहुत उपयोगी है। उन्होंने एक रोगीके ऑपरेशनका हाल मुझे इस प्रकार सुनाया :—

सामान्यतः ऑपरेशन करनेवाले डाक्टर रोगीके हृदयकी शक्तिको टिकाये रखनेके लिए ऑपरेशनसे पहले एट्रोपीन, एफीड्रीन या लोबेलीनके इन्जेक्शन लगाते हैं। डाक्टर सलारियाने सन् १९५८के मई मासमें ४५ बरसकी एक स्त्रीके एपेन्डिसाइटिसका ऑपरेशन किया था। ऑपरेशन करनेसे एक घंटा पहले उसे उपर्युक्त इन्जेक्शनके बदले उसीका मूत्र पिला दिया गया और फिर ऑपरेशन किया गया। ऑपरेशनसे उसके हृदयकी गतिमें कोई कमज़ोरी नहीं आयी और हृदयकी शक्ति बनी रही। ऑपरेशनकी सफलतासे डाक्टर सलारिया ख़ुश हुए और उन्होंने यह निर्णय किया कि इन्जेक्शनके बदले ऑपरेशनवाले रोगीको उसीका मूत्र पिलाया जाये। फिर तो उन्होंने छोटे-बड़े लगभग बीस ऑपरेशनोंमें वैसा ही किया। उन ऑपरेशनोंमें गलेकी गाँठ, कंठमाला, लायपोमा (कन्धे पर एक सेरकी गाँठ), दाहिनी छातीमें कैन्सर और

भगंदरके ऑपरेशन भी शामिल हैं। एक व्यक्तिकी दायीं जाँघ और पेड़ूके बीच एक बड़ा फोड़ा था, जिसके अन्दरके सड़े हुए भागको निकाल कर दूसरी चमड़ी लगायी गयी थी। उपर्युक्त ऑपरेशनोंमें सभी रोगियोंको इन्जेक्शनके बदले उन्हींका पेशाब पिलाया गया था, जिससे उनके हृदयकी शक्ति सुरक्षित रही। अब तो डा० सलारियाने ऑपरेशनसे पहले इन्जेक्शन लगानेकी पद्धति बन्द कर दी है और मूत्र पिलानेका नियम बना लिया है।

उपर्युक्त विवेचनसे यह तो स्पष्ट तथा निश्चित है कि मूत्र-प्रयोगसे रोगीके हृदयकी शक्ति बनी रहती है और उसका रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) संतुलित रहता है। अब इस बातका निर्णय करना है कि इस प्रयोगमें मूत्रपानका कितना असर होता है और मूत्रमालिशका कितना? ऐसे प्रयोगोंसे इसका वैज्ञानिक दृष्टिसे निर्णय हो सकता है। परन्तु एक बात तो निश्चित हो गयी कि मानवमूत्रका योग्य पद्धतिसे उपयोग किया जाये तो वह ऊँचे या नीचे रक्तचापको सन्तुलनमें ला देता है।

अब इस बात पर दूसरी दृष्टिसे विचार किया जाता है। मैंने अहमदाबादके एक प्रसिद्ध डाक्टरसे, जो मेरे मित्र हैं, इस बातकी चर्चा की कि डा० सलारियाने रोगीके हृदयकी शक्तिको टिकाये रखनेके लिए ऑपरेशनसे पहले इन्जेक्शनके बदले उसीका मूत्र पिलाया और उन्हें उपर्युक्त विवरण भी कह सुनाया। परन्तु उन्हें मेरी बात जँची नहीं। उन्होंने हृदय, गुरदे और जिगरकी रचना आदिके चित्र खींचकर मुझे समझाया कि ऑपरेशनके समय रोगीको किस तरह रखा जाता है और बताया कि हृदयकी शक्तिको बनाये रखनेके लिए ऑपरेशनके समय प्रत्येक रोगीको इन्जेक्शन नहीं लगाया जाता है, परन्तु जिस रोगीका हृदय दुर्बल होता है उसीको वैसा इन्जेक्शन दिया जाता है। मूत्रमें ऐसी शक्ति होती है, इसे न तो

उन्होंने पढ़ा है और न ही आज तक इस बारेमें कोई वैज्ञानिक निर्णय हुआ है।

मित्र डाक्टरकी बात उनके अपने अनुभवके अनुसार तो ठीक ही है। जिस विषयका निजी ज्ञान या अनुभव न हो उस विषयके बारेमें किसी भी जिम्मेदार व्यक्तिका अपना निश्चित अभिप्राय न देना ही उचित है। साथ ही यह भी उतना ही उचित है कि जिसे जिस विषयका ज्ञान या अनुभव हो उसे उस विषयके प्रति दुराग्रहकी वृत्ति भी नहीं रखनी चाहिये। मूत्रमें खूनके दबावको सन्तुलित करनेकी और हृदयकी शक्तिको सुरक्षित रखनेकी सामर्थ्य है, इस बारेमें उपर्युक्त अनुभवके अतिरिक्त मेरा अपना वर्तमान अनुभव है कि मुझे अपने मित्र डाक्टरोंकी सलाहसे अपने हृदयकी शक्तिको बनाये रखनेके लिए डिजॉक्सिन (डिजिटेलिस)की टिकिया नियमित रूपसे लेनी पड़ती थी, परन्तु अब मैंने डिजॉक्सिनकी टिकियाका स्थान मूत्रको दे दिया है। पिछली वर्षा ऋतुमें सतत वर्षाके कारण हवा बहुत नमीदार रही और वह सरसर चलती रही, परन्तु मुझे सरदी तक भी न हुई। दिनमें दो बारका मूत्रपान मेरे शरीरको सर्दीसे बचानेके लिए बख्तरका काम करता है, इसलिए मैं तो निर्भय हो गया हूँ।

५४

मानवमूत्रकी विषघ्न शक्ति

मानवमूत्र विषघ्न तथा रसायन है, ऐसा भगवान् सुश्रुतने लिखा है। मैंने यह बात बार-बार सुनी है कि सँपेरे साँपको पकड़ते समय अपने मूत्रसे भरा हुआ गिलास तैयार ही रखते हैं, ताकि साँपके काटने पर वे उसे फ़ौरन पी सकें जिससे ज़हर न चढ़े। 'शिवाम्बुकल्प' नामक संस्कृत पुस्तकमें ऐसा उल्लेख है कि छः महीने तक लगातार मूत्रपान और मूत्रमालिश करनेवाले व्यक्ति पर साँपके ज़हरका कुछ भी असर नहीं होता। कई जैन और अन्य साधुओंके मुँहसे भी यह बात सुनी है। परन्तु लिखी-लिखायी और सुनी-सुनायी बात इस वैज्ञानिक युगमें भला कैसे मानी-मनायी जा सकती है? और कभी-कभी विज्ञानकी आड़में सहज अनुभूत सत्य बातको भी ठुकरानेकी धृष्टता की जाती है। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि लिखित, कथित और श्रुत बातका शास्त्रीय अन्वेषण और परीक्षण कर लेनेके बाद उसे सामान्य नियम या सिद्धान्तके रूपमें लोकहितकी दृष्टिसे जनताके समक्ष प्रस्तुत किया जाये, तभी वह वैज्ञानिक दृष्टिसे मान्य हो सकता है।

यह वसुन्धरा तो रत्नोंसे भरी है। जिसकी जैसी साधना होती है उसे वैसे साधन मिल ही जाते हैं। जबसे लोकहितकी दृष्टिसे मैंने मूत्रोपचारका प्रचार शुरू किया है तबसे मुझे अनायास और अकस्मात् मदद मिलती ही रही है। मैं उलटी-पुलटी और अनिश्चित बात पर ध्यान नहीं देता हूँ। परन्तु वह कितनी शक्य और करने योग्य है, इसकी प्रतीति हो जाने पर किसीके आये हुए विवरणको स्वीकार करता हूँ। मैं मानवमूत्रकी विषनाशक शक्तिके प्रत्यक्ष तथा निश्चित प्रमाण प्राप्त करनेकी चिन्तामें रहता था। इसी बीच कपड़वंजके

पुराने विश्वासपात्र समाजसेवक श्री चन्द्रकान्त परीख, जो आजकल हरिजन आश्रममें महागुजरात खादीप्रचारक मंडलके चरखा-सरंजाम कार्यालयमें काम करते हैं, मेरे सम्पर्कमें आये। जब वे कपड़वंजमें रहते थे तब उनका परिचय एक संन्यासीसे हो गया था, जिनका नाम विवेकानन्द सरस्वती है। स्वामीजीसे उनका इतना प्रेम हो गया कि वे बार बार सत्संगके लिए उनके पास जाया करते थे। चन्द्रकान्त परीखको जीर्ण ज्वर रहा करता था और खाँसी भी आती थी। बहुत प्रयत्न करने पर भी उनका रोग मिटा नहीं। स्वामीजीके साथ रहनेवाले वैद्यराजने भी उनका उपचार किया, परन्तु कुछ भी आराम न हुआ। आख़िर वे मूत्रपान और मूत्रमालिश करने लगे और एक ही सप्ताहमें नीरोग हो गये। उन्होंने अपने मूत्रप्रयोगकी बात स्वामीजीसे कही। उनकी बातका अभिनन्दन करते हुए स्वामीजीने कहा, 'यह तो अमृत है।' फिर तो इस संबंधमें उन्होंने अपने अनुभवकी अनेक बातें सुनायीं। उनमें से एक बात यह थी कि एक स्त्रीने तीन तोला अफीम घोलकर पी ली थी। उसे पेशाब पिलानेसे अफीमका ज़हर उतर गया था। चन्द्रकान्तने मेरे पास आकर उक्त बात कह सुनायी और दूसरी अनेक बातें भी हुईं। मैंने उक्त बातकी सचाईका पता लगानेके लिए स्वामीजीसे मिलनेका निश्चय किया।

मैं ता० ३०–९–'५९, बुधवारको हरिजन आश्रम गया और वहाँसे चन्द्रकान्तको साथ लेकर स्वामीजीके पास गया। स्वामीजीको देखते ही मुझे लगा कि उनकी उम्र लगभग ५५ सालकी होगी, परन्तु बादमें पता चला कि वे मेरेसे ६ बरस बड़े थे अर्थात् ७८ बरसके थे। बहुत-सी इधर-उधरकी बातें हुईं। फिर मैंने मानवमूत्रके सम्बन्धमें उनके अनुभव पूछे और खास तौरसे यह पूछा कि मूत्रकी विषनाशक शक्तिका उन्हें कोई प्रत्यक्ष अनुभव है। तब उन्होंने कहा, "हमारे उत्तरप्रदेशके बरेली ज़िलेमें तो किसीको साँप काट खाये तो उसका ज़हर उतारनेके लिए मानवमूत्र पिलाया जाता है। ऐसा कहा जाता

है कि चंदन गोह इतना ज़हरीला प्राणी है कि उसका ज़हर उतरता ही नहीं। वह जिसे काटती है वह मर ही जाता है। परन्तु उसका ज़हर भी मानवमूत्रसे उतर जाता है। ऐसी विशेष घटनाएँ उधर होती हैं।" मैंने उन्हें पूछा, "आपको ऐसा कोई ख़ास अनुभव यहाँ हुआ है? एक स्त्री अफीम खा गयी थी, उसका ज़हर आपने मूत्र पिलाकर उतार दिया, क्या यह बात सच है?" उन्होंने कुछ सकुचाते हुए जवाब दिया, "यह बात ज़रा गंभीर है।" मैंने कहा, "इसमें कोई हर्ज़ नहीं। यह कानूनके ख़िलाफ और आत्मघातका यों दोहरा पुलिस केस है। फिर भी आप मुझे सच्ची बात बताइये।" उन्होंने गंभीरतासे कहा, "बात यह है कि यहाँ एक व्यक्ति ग़ैरकानूनी अफीम बेचता था। उसकी पत्नीको यह पसन्द न था। वह रोज़ अपने पतिसे यह धंधा छोड़ देनेके लिए कहा करती थी, पर वह सुनी-अनसुनी कर देता था। आख़िर खींचतानकी भी हद होती है। अपने पतिकी अनुपस्थितिमें ढूँढ़ने पर तीन तोला अफीम उस स्त्रीके हाथ लग गयी, जिसे वह पानीमें घोलकर पी गयी और आधे घंटेमें बेहोश होकर गिर पड़ी। इतनेमें उसका पति आया। उसे सन्देह हुआ। अफीम न मिलनेसे उसका सन्देह निश्चयमें बदल गया अर्थात् वह समझ गया कि सारीकी सारी अफीम उसीने पी ली है। वह व्याकुल होकर मेरे पास दौड़ आया। वह मेरे सामने रो पड़ा। सारी बात मुझे कह सुनायी और आजीजी करने लगा, 'स्वामीजी, मुझे किसी तरह बचाइये। यदि मेरी पत्नी मर गयी तो दोहरा मुजरिम बन जाऊँगा अर्थात् एक अफीम बेचनेका गुनाह और दूसरा आत्महत्यामें निमित्त बननेका।' मुझे तुरन्त सूझ आया। शाम हो रही थी। मैंने उसे कहा कि वह अड़ोसी-पड़ोसियोंके लड़कोंका पेशाब उसको रातभर पिलाता रहे। उसने लगभग पन्द्रह लड़कोंका पेशाब अपनी स्त्रीको रातभर पिलाया। प्रातःकाल वह स्त्री होशमें आयी और मृत्युके मुखसे बच गयी।" ज़िन्दा बची हुई उस स्त्रीको मैंने देखना चाहा। स्वामीजीने उसे बुलानेके

लिए एक आदमीको भेजा, पर वह उस समय घरमें न थी। उस स्त्रीका नाम मैंने नोट कर लिया। इस बातको वहाँ बैठे हुए तीन चार आदमी भी जानते थे। फिर स्वामीजीने एक और बात भी सुनायी।

"अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटीकी ओरसे आवारा कुत्तोंको ज़हर देकर मार डालनेका काम चल रहा था। उसमें मेरा कुत्ता भी फँस गया। ज़हर खिलानेवालोंको पता चल गया कि यह लाल कुत्ता स्वामीजीका है। इसलिए उन्होंने उसके सामने ज़हरवाली मिठाई नहीं डाली। परन्तु दुर्भाग्यसे दूसरे कुत्तेकी मिठाईका शेष भाग छीना-झपटीसे वह खा गया। फिर तो उस पर भी ज़हरका असर हुआ। वह लड़खड़ाता हुआ मेरे पास आया। मैं समझ गया कि उसने खानेमें कहीं ज़हर खा लिया है। इसलिए मैंने उसे एक गिलास भरकर पेशाब पिला दिया। थोड़े ही समयमें उसका ज़हर उतर गया। दूसरे दिन मैंने म्युनिसिपैलिटीमें अर्ज़ी देकर उसका लाइसेन्स लिया और उसके गलेमें पट्टा बाँध दिया।"

उपर्युक्त बात पूरी हुई कि वही पट्टेवाला लाल कुत्ता वहाँ आ खड़ा हुआ, जिसे देखकर मुझे बहुत खुशी हुई।

इसके अलावा उन्होंने मानवमूत्रके सफल प्रयोगोंके बारेमें और भी बहुत-सी बातें सुनायीं। फिर मैंने विदा ली। उनके पास आयुर्वेदके पंडित और उत्तरप्रदेशके निवासी एक जवान वैद्य थे, जिन्होंने मुझे बताया कि उन्होंने भी उपर्युक्त घटनाएँ आँखोंसे देखी हैं। तब मेरे मुँहसे सहसा उद्‌गार निकल पड़ा—'मूत्रचिकित्साको यदि एक चिकित्सा माना जाये तो उसे आयुर्वेदकी जननी कहा जा सकता है।'

२५

उपसंहार

इस पुस्तकके प्रकरणोंको जब मैंने लिखना शुरू किया तब मुझे मालूम न था कि उपसंहारके लिए उपयुक्त तथा पर्याप्त सामग्री मिल जायेगी। परन्तु अपेक्षित सामग्री मुझे मिल गयी, जिसके लिए मैं प्रभुका उपकार मानता हूँ। मुझे जो विवरण या बातें शंकास्पद लगीं उन्हे मैंने इस पुस्तकमें नहीं लिखा। मैंने जो कुछ भी लिखा है वह पूरी जाँच-पड़तालके बाद ही लिखा है। फिर भी मनुष्यमात्र भूलका पात्र है। मुझसे कोई भूल हो गयी हो तो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

मेरी दृष्टिसे मूत्रोपचार चिकित्साशास्त्रका विषय नहीं है और चिकित्साशास्त्रकी दृष्टिसे यह पुस्तक लिखी भी नहीं गयी है। यद्यपि मूत्र शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त करनेके लिए संपूर्ण रसायन है। यह वृद्धावस्थाके सभी रोगोंका नाश करके वृद्धको युवक जैसी कान्ति तथा शक्ति प्रदान करता है और विषका नाशक भी है, तथापि मैं चिकित्साके साधनकी दृष्टिसे इसको महत्त्व नहीं देता। यह तो शरीरका एक सहज अंश है, जो केवल मनुष्यको ही नहीं, किन्तु प्राणिमात्रको अपने शारीरिक स्वास्थ्यके लिए जन्मसे ही मिला हुआ है। इसलिए मैं इसे सहगोत्रीके रूपमें अपनाता हूँ। यदि अनुभवकी कसौटी पर कसी हुई शास्त्रीय पद्धतिसे इसका उपयोग किया जाये तो यह निष्फल हो ही नहीं सकता। इंग्लैंडमें स्व० जॉन आर्मस्ट्रॉङ्गने वर्षोंके अनुभवके आधार पर इसके उपयोगकी पद्धति निश्चित की थी, जिसके अनुसार काम करनेसे उन्हें किसी भी केसमें निष्फलता नहीं मिली थी जिसमें मुख्य द्रव्यको दोषी समझा जाता। हमें भी यहाँ वैसी पद्धति (टेकनीक) तैयार करनी होगी। इसके लिए शरीरकी रचना और

उसके दोषोंके जानकारोंको गवेषक वृत्तिसे काम करना पड़ेगा। परन्तु न तो इसमें अधिक समय लगेगा और न ही कोई मुश्किल पेश आयेगी; क्योंकि इसमें शरीरकी अस्वस्थताको दूर करके स्वस्थता प्राप्त करनेके लिए अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंकी तरह हजारों द्रव्योंका प्रयोग तो करना नहीं है। केवल एक ही द्रव्यके साथ तदाकार होनेकी बात है। तात्पर्य यह कि एलोपैथीके किसी विशारदको अपने हजारों द्रव्यों और शरीरके रोगोंका अध्ययन करके उनका मेल बिठानेमें वर्षों लग जायँ, फिर भी कोई निश्चय न हो सके। अथवा दो एलोपैथी विशारद इस बातमें एकमत न हो सकें कि अमुक द्रव्य ही अमुक रोगको निर्मूल करनेमें पूर्ण समर्थ है। परन्तु मूत्रोपचारके लिए ऐसी कोई बात नहीं है। एक ही वस्तु सभी रोगोंके उन्मूलनमें पूर्ण समर्थ है। केवल जिस शरीरके लिए उसका उपयोग करना है उसका निदान कर लेना होता है। वास्तवमें तो उसके निदानकी भी आवश्यकता नहीं है। परन्तु उस शरीरकी शक्ति, स्थानिक जलवायु, मूत्रका परिमाण, उपयोगविधि, प्रयोगके समयमें, उसके पहले तथा बादमें पथ्यापथ्य — इन सब बातोंका स्पष्ट निश्चय होना चाहिये। इतना ही नहीं, किन्तु इस प्रयोगके करनेवालेको आहार-विहारमें विवेकशील रहना चाहिये, क्योंकि मनुष्यके मानसिक रोग और ग्रामतन्तुओंके दोष भी शरीरके दोष हैं। इस साधनसे वे रोग तथा दोष दूर भी किये जा सकते हैं। ऐसी अमोघ शक्तिवाले इस साधनका उपयोग करनेमें बड़ी सावधानता रखनी चाहिये।

किन्तु बिना किसी प्रयत्नके अनायास मिले हुए विवरणोंको देखते हुए मुझे प्रतीत होता है कि हमारी जीवन-प्रणाली जैसे-तैसे जिन्दा रहनेकी है। हमारी आदत कुछ ऐसी बन गयी है कि हम किसी कामको विधिपूर्वक तथा नियमानुसार नहीं करते हैं। परन्तु यह आदत इस प्रयोगमें नहीं चल सकेगी। वैसा करनेसे हम इस सर्वोत्तम साधनको निष्फल बनाकर बदनाम कर डालेंगे। जो इस

प्रयोगमें संयम नहीं रख सकता, परहेज नहीं कर सकता, अपेक्षित धैर्य नहीं रख सकता और आचार-विचार तथा आहार-विहारमें शुद्धता नहीं रख सकता, वह कृपा करके इस प्राकृतिक साधनका उपयोग न करे। मुझे अपना विवरण लिखकर भेजनेवाले कितने ही मित्रोंने नियम आदिके उल्लंघनोंको स्वीकार करते हुए खेद भी प्रकट किया है, जिसका उल्लेख इस पुस्तकमें यथास्थान तो किया ही है, फिर भी दो-एकका जिक्र यहां भी कर देता हूँ — "आपने बीड़ीका व्यसन छोड़नेको कहा, किन्तु मैंने वह नहीं छोड़ा; आपने तला हुआ, गरिष्ठ और मसालेदार भोजन नहीं खानेकी सूचना दी है, परन्तु मैंने श्रीखण्ड (मीठा पनीर) और पकौड़े खाये हैं; फिर भी मुझे फ़ायदा हुआ है।" ऐसे भाई-बहनोंसे मेरा निवेदन है कि परहेज न रखने पर भी आपको फ़ायदा हुआ है यह कोई बड़ी बात नहीं है; भले फ़ायदा हुआ। परन्तु यदि फ़ायदा न हुआ होता और अपथ्य आहार या बुरे व्यसनसे नुकसान हुआ होता तो उसका परिणाम क्या आता, उसे क्या आप जानते हैं? आप तब यह नहीं कहते कि हमारी गलतीसे यह नुकसान हुआ है, बल्कि खुले आम यही कहा जाता कि 'अमुक व्यक्ति मूत्र-चिकित्सासे मौतके घाट उतर गया,' जिसका अनुचित लाभ निहित स्वार्थवाले उठाते। इसलिए मुझे कठोर शब्दोंमें यह चेतावनी देनी पड़ी है कि कृपा करके बार-बार दी गयी सूचनाके अनुसार संयम रखकर ही इस साधनका उपयोग करें।

अहमदाबादके दैनिक पत्रोंमें नये-नये जायकेदार खाद्य बनानेकी विधिके बारेमें पढ़कर मुझे तो व्याकुलता होती है। खट्टी, खारी, तीखी, कसैली, कड़वी आदि वस्तुओं और वात, पित्त और कफ पैदा करनेवाली परस्पर मारक वस्तुओंको मिलाकर खिचड़ी-खाद्य तैयार किये जाते हैं, जिनके असली जायके और असरका कुछ पता ही नहीं चलता। इस तरह अमृत तुल्य आहारको विष बनाकर खाया जाता है। जो स्त्रियां ऐसे विविध खाद्य तैयार करती हैं वे अपने

आपको होशियार समझती हैं। ऐसे खाद्य तैयार करनेमें उनके समयका अपव्यय होता है और खानेवालोंके स्वास्थ्य पर बुरा असर होता है। इसलिए उनसे मेरा निवेदन है कि वे चटोरेपनके मोहको तिलांजलि दे दें और घरके बालकों तथा अन्य कुटुम्बियोंके स्वास्थ्यकी ज़िम्मेदारीको समझकर ऐसे हानिकर खाद्य बनानेका बहिष्कार कर दें। प्रकृतिदत्त स्वाभाविक खाद्य वस्तुओंमें जो पोषक तत्त्व रहते हैं उन्हें स्वादिष्ट बनानेके नाम पर नष्ट कर डालना प्रकृति तथा मनुष्य जातिके प्रति घोर अपराध करना है। इसीलिए तो गांधीजीने, 'जिसने इन्द्रियाँ जीतीं उसने जगत् जीत लिया' इस सूत्रके साथ यह सूत्र भी जोड़ दिया — 'जिसने जीभ जीत ली उसने सभी इन्द्रियाँ जीत लीं।'

इस बारेमें और अधिक विवेचन न करके फिर यह निवेदन करना चाहता हूँ कि मूत्रप्रयोग करनेवाला व्यक्ति इस पुस्तकमें दी गयी सूचनाओं पर और इसके बाद नये अनुभवके आधार पर जन-हितकी दृष्टिसे प्रकाशित की जानेवाली सूचनाओं पर पूरा अमल करनेका निश्चय कर लेनेके बाद यह प्रयोग शुरू करेगा, तो उसे अवश्य ही लाभ होगा। वैसा न करके जो लापरवाह रहेगा, उसे खुदको तो नुकसान होगा ही, साथ ही वह इस कल्याणकारी, सुन्दर प्रयोगको बदनाम करके अनेक लोगोंको हानि पहुँचायेगा अर्थात् अनेक व्यक्तियोंको इस प्रयोगके लाभसे वंचित करेगा।

इस मूत्रचिकित्सासे अमीर-ग़रीब सबको खूब आराम मिल सकता है फिर भी अमीर अपने साधनोंके बल पर शायद प्रचलित चिकित्सा-पद्धतिसे अपने रोग मिटायें, किन्तु ग़रीब लोग अब इस ख़र्चीली चिकित्सा-पद्धतिको निभा नहीं सकते; क्योंकि वे तो आर्थिक तंगीसे तंग हो रहे हैं। ग़रीबोंकी सामर्थ्य कहाँ कि इस अत्यन्त ख़र्चीली चिकित्साको अपना सकें? इसलिए ग़रीबोंके लिए तो यह चिकित्सा एक वरदान है। मैं समझता हूँ कि बहुत-से युवक ग़रीबों तथा रोगपीड़ित जनताकी सेवा करनेके ख़यालसे डाक्टरीका अध्ययन शुरू करते हैं और उसके

लिए काफ़ी पैसा भी खर्च करते हैं। परन्तु बादमें खर्च उनके लिए एक बोझ बन जाता है। उस खर्चको पूरा करनेके लिए और अपने व्यवसायकी रूढ़िमें फँसकर वे अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिए महत्त्वाकांक्षी बन जाते हैं, जिसका परिणाम यह आता है कि दरिद्रनारायणकी सेवा धरी रह जाती है। परन्तु इस चिकित्सामें ऐसी बात नहीं है। इसमें तो प्रत्येक व्यक्तिको अपने आपका डाक्टर बनना है। यह इतना सरल और अचूक उपाय है कि एक अनपढ़ आदमी भी साधारण सावधानी रखकर इससे अपने रोगको दूर कर सकता है और अपने स्वास्थ्यकी रक्षा कर सकता है।

मैं शास्त्रोंको मानता हूँ और श्रद्धापूर्वक मानता हूँ। परन्तु शास्त्र कही जानेवाली पुस्तकोंमें जो कुछ लिखा है, वह सब शास्त्रीय है, ऐसा मैं नहीं मानता। क्योंकि मूल शास्त्रोंमें कई ऐसी बातें मिला दी गयी हैं जो प्रक्षेपक प्रतीत होती हैं। और उन शास्त्रीय पुस्तकोंमें जिन बातोंका उल्लेख नहीं है उनका अस्तित्व ही न था और वे मिथ्या हैं, ऐसा भी मैं नहीं मानता हूँ। शास्त्र अर्थात् शक्तिशाली चिन्तकोंके स्वानुभवका व्यवस्थित संकलन। जो वस्तु आज तकके बने हुए शास्त्रोंमें नहीं है उस वस्तुको किसीने स्वानुभव करके जगत्के सामने प्रस्तुत किया और उसे विशेष अनुभवकी कसौटी पर कसा, जिससे वह शास्त्रीय बन गयी। प्रश्नोंका समाधान इस प्रकार विशाल दृष्टिकोणसे किया जाये, तो किसी भी ज्ञानकी प्रगति हो सकती है। हम एक ही बातको पकड़कर बैठे रहें और ढोल पीटते रहें कि हमारी बात अच्छी और दूसरोंकी बुरी, तो एक दिन हमारी बात भी बुरी हो जायेगी। इस तरह ज्ञानकी कूपमंडूकता ज्ञानको ही ले डूबती है।

सूर्यनारायणकी शक्तिका भला कहीं वर्णन किया जाता है? इसी प्रकार नरमूत्रका वर्णन करते हुए केवल इतना ही कहा है कि वह विषघ्न तथा रसायन है। बुद्धिशाली पुरुष इससे अधिक भला

और क्या कहें? दूसरे प्राणियोंके मूत्रका लाभ परिमित है। इसलिए उसका वर्णन तदनुसार किया गया है। वे नरमूत्रके अपरिमित गुणोंका वर्णन करने लगते तो अन्त ही न आता, इसलिए उन्होंने विषघ्न तथा रसायन, इन दो शब्दोंमें नरमूत्रके गुणोंका रहस्य समझा दिया। ईश्वरका वर्णन भी तो नेति नेति शब्दोंसे किया गया है। आयुर्वेदके अनुयायी मेरी बात पर अवश्य विचार करें, क्योंकि आयुर्वेदकी रचना यदि सृष्टिके प्राणिमात्रके सुखके लिए हुई है, तो उसीके अंगभूत इस मूत्रके साधनसे तो दुनियाभरके अधिकसे अधिक दुःखितोंकी सेवा होनेवाली है। विचारशील व्यक्तियोंको इससे अधिक और क्या कहा जाये?

आयुर्वेदमें आठ प्रकारके प्राणियोंके मूत्रके गुण-दोष बताये हैं। उन प्राणियोंका मूत्र भगवान् चरकके वर्णनके अनुसार मानव-जातिके लिए लाभकारक हो सकता है। परन्तु यह खोज करनेकी जरूरत है कि उनका पेशाब उनके अपने शरीर पर क्या असर करता है। वे प्राणी अपने दुःखको मिटानेके लिए सहज अन्तःप्रेरणासे अपने मूत्रका उपयोग करते हैं और व्याधिसे मुक्त हो जाते हैं। यही बात मानवमूत्रके सम्बन्धमें है। आयुर्वेदके अनुसार शायद एक मनुष्यका मूत्र दूसरे मनुष्यके लिए उष्ण, तीक्ष्ण, दाहक तथा पित्तकारक होगा। परन्तु इस मूत्रचिकित्सामें तो यह विधान नहीं किया गया है कि एक मनुष्यका मूत्र दूसरे मनुष्यको स्वस्थ बनानेके लिए पिलाया जाये, प्रत्युत इसमें तो वैसा करनेका निषेध है। विशेष परिस्थितिको छोड़कर केवल बाह्य उपचारमें एक दूसरेके मूत्रका उपयोग हो सकता है। अब मैं अपने अनुभव और मेरी अपेक्षा भी अधिक श्रद्धा तथा धैर्यसे किये हुए दूसरोंके अनुभवके आधार पर छाती ठोककर कह सकता हूँ कि स्वमूत्र अपने लिए निर्दोष है और किसी तरह हानिकर नहीं है। विधिपूर्वक उचित मात्रामें उसका उपयोग किया जाये तो किसी भी प्रकारके रोगके लिए वह अवश्य लाभकारी है। यह केवल शास्त्रकी

बात नहीं है, परन्तु अनुभवकी बात है। इस पुस्तकमें जो यहांके और विदेशके रोगियोंके विवरण दिये हैं वे अपेक्षित प्रतीतिकी जीती-जागती मिसालें हैं। अभी तक यहाँ प्रायः इस विषयमें पूरी सावधानीके साथ व्यवस्थित प्रयोग नहीं हुए हैं। रोगियोंने अपनी सूझबूझके अनुसार जो अधूरे प्रयोग किये हैं उनका परिणाम जब इतना आशास्पद है, तो फिर शास्त्रीय ढंगसे इस प्रयोगके किये जाने पर कितना आश्चर्यजनक परिणाम आ सकता है, इसकी स्पष्ट प्रतीति भी पिछले प्रकरणोंको पढ़नेसे हो जाती है। जैसे, श्री बापालाल वैद्यके स्वानुभव-सिद्ध विवरणसे कोई इनकार नहीं कर सकता। उन्होंने एक सच्चे चिकित्सकके नाते जो अनुभव किया वही लिखा है। इसी तरह डाक्टर गुणनिधि भट्टने क्षयके दो रोगियोंकी रोग-मुक्तिका जो व्यवस्थित विवरण दिया है, उसमें भी कोई इनकार नहीं कर सकता। सभी विवरण नग्न सत्य हैं अर्थात् उन्हें लिखने या देनेमें पूरी सावधानी रखी गयी है और उनमें किसी प्रकारकी अतिशयोक्ति नहीं है। ऐसे अनुभवोंसे शास्त्रकी रचना होती है।

कितने ही मित्र मुझे कह रहे हैं कि इस प्रयोगको लोकप्रिय बनानेके लिए मूत्रचिकित्साके आरोग्य-भवनोंकी स्थापना होनी चाहिये, जहाँ इसी चिकित्सासे रोगियोंका उपचार किया जाये। परन्तु मैं इस विचारसे सम्मत नहीं हूँ, प्रत्युत इसका विरोधी हूँ। मैं तो यह मानता हूँ कि मूत्रचिकित्सा घरेलू चिकित्सा हो जानी चाहिये। बालकोंकी माताओंको इस चिकित्सामें कुशल होना चाहिये। इसमें कुछ खर्च करनेकी जरूरत नहीं है। किसी वस्तुका संग्रह करनेकी भी आवश्यकता नहीं है। इस मूत्रचिकित्साका सन्देश घर-घर पहुँचना चाहिये। समय पाकर विविध अनुभवोंके आधार पर शास्त्रीय पद्धति तैयार हो ही जायेगी। समाजके बुद्धिशाली लोग इस उपचारकी प्रगतिमें सहायक बनें और अपेक्षित पद्धतिके निर्माणमें पूरा सहयोग दें।

परन्तु इतनेसे काम नहीं चलेगा। हमें इस विराट् कार्यको अनुभवकी अहरन पर रखकर प्रयोगके हथौड़ेसे पीटकर इसकी जाँच-पड़ताल करनी होगी और इसे शास्त्रीय रूप भी देना होगा। इसके प्रयोग पर कुछ पाबन्दियाँ भी लगानी होंगी। इस चिकित्सासे लोगोंको लाभ ही हो और वह भी अच्छी तरह हो, ऐसे अन्वेषण हमें करने होंगे। यद्यपि एक बात तो निश्चित है कि मूत्र अपने शुद्ध रूपमें ही कल्याणकारी है और मुझे इस विषयमें शंका है कि मूत्र किसी वैज्ञानिक या प्राकृतिक द्रव्यके मिश्रणसे विशेष लाभकारी हो सकता है। फिर भी कोई व्यक्ति इसके मूल गुणोंकी रक्षा करते हुए और इसे दोषयुक्त न बनाते हुए किन्हीं प्राकृतिक साधनोंसे इसके गुणोंमें वृद्धि करनेका कोई जादूभरा उपाय करे तो मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं होगी। परन्तु मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि 'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी।'

इस प्रकारकी मर्यादा रखते हुए इस चिकित्साको शास्त्रीय बनानेके लिए गुजरात और देशके मुख्य-मुख्य स्थानोंमें अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किये जायें, जिनमें भिन्न-भिन्न प्रकारके रोगियोंको रखकर इस चिकित्सा द्वारा उन्हें रोगमुक्त तथा स्वस्थ बनाया जाये। इसके साथ ही इस कार्यमें श्रद्धा और दिलचस्पी रखनेवाले वैद्य, डाक्टर, शरीर-शास्त्री और आहार-शास्त्री केवल सेवाभावसे मूत्रचिकित्साकी शास्त्रीय पद्धतिके निर्माणके लिए ऐसे अनुसंधान केन्द्रोंमें बैठकर निष्ठा-पूर्वक तप और सेवा करें और वे विविध रोगोंके विषयमें, तत्सम्बन्धी उपचारोंके बारेमें तथा उन उपचारोंके दौरान होनेवाली क्रिया-प्रति-क्रियाओंके सम्बन्धमें व्यवस्थित विवरण तैयार करें जिससे शास्त्रीय पद्धतिके संकलन तथा निश्चयमें सहायता मिले। इस बातको तो सभी स्वीकार करेंगे कि लाखों रुपये ख़र्च करके अस्पताल बनवानेकी अपेक्षा थोड़ेसे ख़र्चमें यह सरल कार्य हो सकता हो और निभाया जा सकता हो, तो यह मानवजातिके लिए अधिक सुखदायी सिद्ध होगा।

ईश्वरने मुझे प्रकाशकी जो एक किरण दी है वह मैंने लोक-कल्याणकी दृष्टिसे जनताके समक्ष प्रस्तुत कर दी है। बुद्धिशाली तथा व्यवहारकुशल पाठकोंसे निवेदन है कि वे मेरी बात पर उदारतासे विचार करें और अपने अनुभवकी कसौटी पर यथार्थ सिद्ध होने पर निर्भयतासे इसका प्रचार करें। यदि इसमें कुछ कमी या दोष प्रतीत हो तो उसे दूर करें। मेरा दिल तो यह कहता है कि थोड़े ही समयमें गुजरात तथा देशके छोटे-बड़े गाँवों और शहरोंमें ग़रीब और मध्यम वर्ग इस अमूल्य तथा सरल प्राकृतिक चिकित्सासे पूरा-पूरा लाभ उठायेंगे। आशा है गुजरात और देशके धनवानों और बुद्धिमानोंके सहयोगसे इस चिकित्साकी शास्त्रीय पद्धति निश्चित करनेके लिए अनेक आरोग्यकेन्द्र भी स्थापित होंगे।

अन्तमें पुनरुक्ति दोष करके भी दो महत्त्वपूर्ण बातोंकी याद दिला देना चाहता हूँ। पहली बात यह है कि हमारी अज्ञानताके कारण, रोगीकी वृद्धावस्था तथा अशक्तिके कारण या रोगीका शरीर अनेक रोगोंका घर हो जानेके कारण यदि किसी रोगीको इस चिकित्सासे लाभ न हो पाये, तो यह माननेकी धृष्टता न की जाये कि मूत्रचिकित्सामें कोई दोष तथा त्रुटि है, किन्तु यही समझा जाये कि उपर्युक्त कारणोंसे यथेष्ट लाभ नहीं हो पाया है। दूसरी बात यह है कि इस चिकित्साको अपनाकर जिस किसीने आराम पाया है, वह यह न समझे कि उसे आहार-विहारमें असंयमी होनेका परवाना मिल गया है। उसे पथ्यापथ्य तथा आहार-विहारके नियमोंका भलीभाँति पालन करना ही चाहिये।

अपने कटु वचनके लिए पाठकवृन्दसे क्षमा चाहता हूँ और इस भावनासे अपने वक्तव्यको समाप्त करता हूँ——

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात ।।

आरोग्यका अमूल्य साधन
शिवाम्बु – स्वमूत्र

चतुर्थ खंड

चिकित्सकोंकी दृष्टिमें

स्वमूत्रकी विशेषताएँ

१. स्वमूत्र सहज, प्राकृतिक और स्वाधीन साधन है।
२. स्वमूत्र जन्तुनाशक, विषनाशक और रसायन है।
३. स्वमूत्र रोगका नाशक और आरोग्यका रक्षक है।
४. स्वमूत्र वात, पित्त और कफका शामक है।
५. स्वमूत्र पोषक, पाचक और अद्वितीय रेचक है।
६. स्वमूत्र आबालवृद्धके लिए सर्वथा कल्याणकारी है।
७. स्वमूत्र प्रत्येक प्राणीके शरीरका संतरी और वैद्य है।
८. स्वमूत्र धर्मसंगत, निर्दोष तथा हानिरहित है।
९. स्वमूत्र सादा और संयमी जीवनका सहायक है।
१०. स्वमूत्र अर्थ और गुणकी दृष्टिसे अमूल्य है।
११. स्वमूत्र रोगका निदान स्वयं कर लेता है।
१२. स्वमूत्र प्राकृतिक नियमके चक्रको पूरा करता है।

१

मनुष्य-मूत्र

—श्री बापालाल ग० वैद्य*

मैंने श्री रावजीभाईका लेख इसी अंकमें अन्यत्र उद्धृत किया है, क्योंकि वह निष्ठासे लिखा गया है। उन्होंने अपने लेखमें जिस पुस्तकका उल्लेख किया है, उसे मैंने भी पढ़ा है। जॉन डबल्यू० आर्मस्ट्रॉङ्ग उसके लेखक हैं। पुस्तकका नाम 'वी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' है। पुस्तकमें लेखकने अपने अनुभूत केस दिये हैं, इसलिए वह विशेष ध्यान देने योग्य है। इस लेखकका तो यह दावा है कि मनुष्य अपना मूत्र पीकर सभी रोग मिटा सकते हैं। लेखकने कहा है कि कैन्सर, गेन्ग्रीन, हृदय-रोग, पाण्डु रोग, व्रण, चमड़ीके अनेक रोग, गुदाकी सूजन, सिरोसिस आदि अनेक भयंकर रोग भी केवल मूत्रसे मिटते हैं। लेखक खुद क्षयरोगसे पीड़ित थे। वे नौकरीके लिए अयोग्य समझे गये थे। प्रस्तुत पुस्तक अक्षुण्ण पथ पर नूतन प्रस्थान करती है, इसलिए विशेष महत्त्व रखती है।

आयुर्वेदमें भेड़, बकरी, गाय, भैंस, हथिनी, ऊँटनी, घोड़ी और गधी; इन आठ प्रकारके प्राणियोंके मूत्रके गुणदोष बताये हैं और चिकित्सामें इन सबके मूत्रका न्यूनाधिक उपयोग भी हुआ है। जलोदर रोगमें आठ प्रकारके मूत्रका बाह्य तथा अभ्यन्तर (सेके पाने च) उपयोग सूचित किया गया है। चरकमें उदरके रोगियोंके लिए कुछ भी खाये बिना भैंसके मूत्र और दूध पर रहनेका विधान है। चरकमें गोमूत्रके साथ हर्रे (अभया) खानेका विधान है। शोथ रोगमें गोमूत्र

---

* श्री ओ० ना० आयुर्वेद महाविद्यालय, सूरतके आचार्य।

पर रहनेका विधान है। प्रत्येक मूत्रके अलग अलग गुण बताये हैं और मूत्रके सामान्य गुण जानने योग्य हैं। यह देखते हुए तो मालूम होता है कि उस समय मूत्रकी अनोखी चिकित्सापद्धति ही प्रचलित होगी।

मूत्रके सामान्य गुण—मूत्र उत्सादन (मालिश)में, आलेपनमें, आस्थापन बस्तियोंमें, विरेचनमें, स्वेदोंमें, अगदों (विषका प्रतिकार करनेवाली दवाओं)में, उदर रोगोंमें, अफरा आदि रोगोंमें, बवासीरमें, गुल्म (वायुगोला) रोगोंमें, कुष्ठ रोगोंमें, पुलटिस आदि सेंकोंमें परिषेक में (धारा करनेमें) उपयोगी है। मूत्र मात्र जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाला है, विषघ्न (विषनाशक) है, कृमिघ्न (कृमिनाशक) है, पाण्डु रोगके रोगियोंके लिए श्रेष्ठ है, उत्तम कल्याणकारी है। (चरकमें पाण्डु रोगके लिए गोमूत्रका बहुत ही उपयोग बताया गया है।) मूत्रपान कफका शमन करता है, वायुका अनुलोमन करता है और पित्तको नीचेकी तरफ़ ले जाता है।

सुश्रुतने नरमूत्रको (**मानुषं च विषापहम्**) विषघ्न माना है।

अष्टांगसंग्रहकारने '**तिक्तं पामाहरं मूत्रं मानुषं तु विषापहम्**' अर्थात् मनुष्य-मूत्रको स्वादमें कड़वा; सूखी खाज, खुजली आदिको मिटानेवाला और ज़हरको हरनेवाला बताया है।

भावमिश्रने कहा है कि नरमूत्र विषका नाशक है, उसका पान रसायन है, खुजली या पामाको मिटानेवाला है और क्षार तथा लवणसे युक्त होनेके कारण तीक्ष्ण है।

योगरत्नाकरमें 'लघुमालिनीवसंत' के पाठमें बताया है कि खपरिया (केलेमीना)को इक्कीस दिन तक '**नराम्बुमध्ये**' अर्थात् मनुष्यके पेशाबमें डालकर रखा जाये, फिर धूपमें रखकर पेशाबको सुखाया जाये और फिर उस खपरियामें समान मात्रामें काली मिर्च मिलानेसे लघुवसंतमालती बनती है। इस तरह मनुष्यमूत्रके उपयोगका उल्लेख हमारा ध्यान खींचता है।

संक्षेपमें आयुर्वेदने मूत्रका उपयोग बहुत ही किया है और नर-मूत्रको 'विषघ्न' कहा है। यहाँ 'विष' शब्द सभी प्रकारके विषका द्योतक है अर्थात् आधुनिक 'वाइरस' आदि और सड़नेसे पैदा होनेवाले विषों (टॉक्सिनों)का भी उसमें समावेश हो जाता है।

ऐसा होते हुए भी मूत्रचिकित्सा पर एक भी स्वतन्त्र ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

गुजराती भाषामें 'अखूट जीवनदोरी' नामकी एक पुस्तक है, जो सूरतके युगान्तर कार्यालयसे सन् १९२३ में प्रकाशित हुई थी और अब नहीं मिलती है। इसके लेखक श्री चंदुलाल लल्लुभाई गोवर्धनदास हैं। इस पुस्तकमें पेशाबसे रोग मिटानेके बारेमें एक दो पन्ने हैं, ऐसा युगान्तर कार्यालयवाले श्री रतिलाल तन्नाने मुझसे कहा है। यह पुस्तक अभी तक मेरे पढ़नेमें नहीं आयी है। श्री तन्नाने मुझसे कहा था कि 'अखूट जीवनदोरी'के लेखक रोज़ नियमसे अपना पेशाब पीते थे और यदि मैं भूलता नहीं तो गांडीव प्रेसवाले श्री नटवरलाल मालवीने भी इस बातका समर्थन किया था। उक्त लेखक काफ़ी बड़ी उमरके होकर गुज़रे थे और मरते दम तक वे अपना पेशाब रोज़ाना पीते रहे। मुझे यह भी बताया गया है कि उनकी दीर्घायुका कारण मूत्रपान था। श्री तन्नाका कहना है कि किसी पॉलिग्लॉट — नार्वे तरफ़के अनेक भाषाओंके जानकार एक संन्यासीकी प्रेरणासे उन्होंने यह पुस्तक लिखी थी।

'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़'के लेखकने पेशाबका उपयोग पीनेके लिए भी बताया है और उस समय उपवास करनेके लिए कहा है। वे लिखते हैं कि मस्सेको पेशाबसे धोनेसे वह मिट जाता है। 'सिद्धभेषजमणिमाला'के विद्वान लेखककी निम्नलिखित आज़मायी हुई बात पर भी विचार करें:—

'कहीं चोट लगी हो या घाव हो, तो उस पर पेशाब करनेकी परिपाटी तो आज भी प्रचलित है। पेशाबसे घावको धोनेसे वह जल्दी ही भर जाता है।'

मैं अपना एक निजी अनुभव लिख देना उचित समझता हूँ। एक बार मेरी घोड़ीकी छातीमें पेड़का एक ठूँठ घुस गया था और काफ़ी गहरा घाव हो गया था। उस समय एक अनुभवी सज्जनने मुझे यह प्रयोग बताया कि घरके सभी व्यक्तियोंका पेशाब एक कुंडेमें इकट्ठा कर लिया जाये। थोड़ी छानी हुई राख उस पेशाबमें मिला दी जाये, फिर लकड़ीके सिरे पर बंधे हुए कपड़ेके टुकड़ेसे उस पेशाबको घोड़ीके घाव पर बार-बार छाँटा जाये। वैसा किया गया और थोड़े ही समयमें वह घाव बिल्कुल ठीक हो गया। मैं समझता हूँ कि पशुचिकित्सालयमें उसी घावके भरनेमें चार महीने लग जाते।

बचपनमें कहीं चोट लग जाती तो हम उस पर पेशाब कर देते थे, जिससे चोट पकती न थी और जल्दी ठीक हो जाती थी। यूरोपमें भी चोट पर पेशाब करनेकी पद्धति प्रचलित थी।

सूखी खाज या खुजली पर वैद्य गोमूत्र घिसवाते हैं। गोमूत्रमें थोड़ा नमक और हल्दी मिलाकर घिसनेसे सूखी खाज या खुजली मिट जाती है। मानवमूत्र भी खुजलीके लिए उपयोगी है।

एक सज्जनने मुझे बताया कि एक व्यक्तिके मुँह पर बड़े बड़े छाले हो गये थे। वे डाक्टरोंकी दवाइयाँ और इन्जेक्शन लेते लेते थक गये थे, पर छाले नहीं मिटे। उस सद्‌गृहस्थने उनसे कहा कि कंडेकी राख मिलाकर छालों पर पेशाब चुपड़ा करें। ज़रा गंदा तो लगेगा, पर तुरन्त मिट जायेंगे। और सचमुच उसका जादू-सा असर हुआ। छाले एकदम मिट गये। यह प्रयोग बतानेवाले महाशय अभी मौजूद हैं।

कान पकने पर कई लोग कुत्तेका पेशाब कानमें डालते हैं। बकरीका पेशाब कानमें डालनेसे भी कानका बहना बन्द हो जाता है। मनुष्यका मूत्र भी डाला जा सकता है।

कोढ़का भी मूत्र अक्सीर इलाज है। अंग्रेज लेखकके शब्द हैं :—

"Indeed, urine is the skin food par-excellence as also the remedy of evry kind of skin disease." (P.55)

अन्तमें वे लिखते हैं :—

"It is not a specific for any given disease, it is a specific for health." (P. 24)

पेशाब पीनेका खयाल ही पेशाब पीनेसे रोकता है, परन्तु एकाध बार पिया नहीं कि अरुचि भाग जाती है। अंग्रेज़ लेखक तो पेशाबको 'मॅजिक फ्ल्यूइड' (चमत्कारी रस) मानते हैं।

('भिषग्भारती', जुलाई, १९५८)

२

स्वास्थ्यका उत्तम साधन

—डा० मगनलाल ओ० सलारिया

प्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम्।
स्वर्गापवर्गयोद्वारं त्रैलोक्यशरणं शिवम्॥

१. आयुर्वेद एक उपवेद है, क्योंकि इसकी जननी भी वेद है। विश्वभरके सभी प्राणी अर्थात् जीवजन्तुसे लेकर हाथी तक कैसे सुखी हों, किस तरह वे एक-दूसरेके परस्पर सहायक हों, उनके स्वास्थ्यकी रक्षा कैसे हो और रोगी रोगमुक्त कैसे हों, इन सब बातोंका ज्ञान आयुर्वेदमें ही है।

आयुर्वेदका अवतरण—ब्रह्मासे दक्ष प्रजापतिने हेतु (कारण) सहित सम्पूर्ण आयुर्वेद सीखा, जिसमें हेतु-विपरीत चिकित्सा है। और सूर्यनारायणने भी ब्रह्मासे व्याधि-विपरीत चिकित्सावाला आयुर्वेद सीखा। इसलिए हमारे यहाँ आरोग्यके लिए सूर्यसे प्रार्थना करनेकी यह

अपनी प्रकृतिके अनुकूल थोड़ासा हलका भोजन लेकर अपना पेशाब पीना चाहिये और मालिश करनी चाहिये।

मूत्रचिकित्साको अपनानेवाले रोगीके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह मूत्रपानके साथ-साथ अपने खान-पानमें पूर्ण संयम एवं विवेक रखे और आवश्यकताके अनुसार अमुक समयके लिए उपवास भी करे। इस चिकित्सामें इस बातका खास ध्यान रखनेकी ज़रूरत है कि पेशाबका जो स्वाद हो उस स्वादवाली वस्तुका त्याग कर देना चाहिये। सामान्यतः इसमें मीठी, खारी और खट्टी वस्तु नहीं खानी चाहिये। जब मूत्र स्वादहीन, गन्ध-हीन और वर्षाके पानी जैसा अथवा डिस्टिल्ड वॉटर जैसा हो जाये (एक मासके मूत्रपानसे वैसा मूत्र हो जाता है।) तब इच्छानुसार खाद्य खाया जा सकता है। यदि फिर मूत्रमें स्वाद आदिकी प्रतीति हो, तो वैसे स्वादवाली वस्तु न खायी जाये। तात्पर्य यह कि जब शरीर संपूर्ण स्वस्थ होता है तब वह अपनी पुष्टि और रक्षाके लिए खाद्य वस्तुका पूर्ण रूपसे उपयोग कर लेता है अर्थात् उसे आत्मसात् कर लेता है, परन्तु जब शरीर रुग्ण होता है तब खाद्यको पूरी तरहसे पचा नहीं पाता है और न पचा हुआ खाद्य मूत्र द्वारा बाहर आता है, जिससे मूत्रमें स्वादकी प्रतीति होती है। उस मूत्रको पी लेनेसे वह पच जाता है।

मैंने सुश्रुतमें पढ़नेके बाद साहसके साथ यह प्रयोग शुरू किया है। सुश्रुतमें लिखा है —‘**मानुषं तु विषापहम्**’ अर्थात् मनुष्यमूत्र विष-हर है। हम सहज ही समझ सकते हैं कि जिसे ज़हर चढ़ता है, उसका हृदय निर्बल हो जाता है और वह बेहोश हो जाता है, उसे मूत्र पिलानेसे वह सशक्त होकर होशमें आ जाता है। इसलिए मैंने ऑपरेशन करानेवाले रोगियोंके लिए मूत्रका उपयोग शुरू कर दिया है और लगभग सोलह बड़े ऑपरेशनोंमें मुझे सफलता मिल चुकी है। ऑपरेशनके दौरान किसी रोगीको सेलाईन या प्लाज़्मा या ब्लड नहीं देना पड़ा है।

लोकोक्ति प्रसिद्ध है--आरोग्यं भास्करादिच्छेत् । आगे चलकर इन दोनों पद्धतियोंका समन्वय हो जाने पर आजकल हेतु-विपरीत, व्याधि-विपरीत और हेतु-व्याधि-विपरीत; इन तीनों पद्धतियोंसे रोगोंकी चिकित्सा की जाती है। पशु, पक्षी, वृक्ष, सभीके लिए अलग अलग आयुर्वेद बने हुए हैं। आयुर्वेदके आठ अंग बताये गये हैं और प्रत्येक अंग पर स्वतंत्र ग्रन्थकी रचना की गयी है।

२. उपर्युक्त मंगलाचरणमें शिवका नाम आया है। इससे मालूम होता है कि सब प्रकारके सुख तथा ज्ञानके दाता केवल शिव ही हैं। भगवान् शिवने विश्वके समस्त प्राणियोंके कल्याणके लिए अपनी पत्नी पार्वतीको संबोधित करते हुए संवादके रूपमें जगत्को ज्ञान दिया है। उनके शिष्य रावण, नागार्जुन आदि बहुत-से हैं, जिन्होंने अपनी अपनी देनसे आयुर्वेदको समृद्ध किया है और उनका दावा है कि वे दुःसाध्य रोगकी भी सफल चिकित्सा करते थे।

देव और दानव दोनों एक ही बापके बेटे थे, परन्तु देव विष्णुको मानते थे और दानव शिवको। वे दोनों किसी पारस्परिक वैमनस्यके कारण कभी-कभी लड़ा करते थे। देवोंके गुरु बृहस्पति थे और वैद्य अश्विनीकुमार थे। दानवोंके गुरु तथा वैद्य शुक्राचार्य थे, जिनके पास मृतसंजीवनी विद्या थी, जिससे युद्धमें घायल हुए सभी व्यक्ति पुनर्जीवन प्राप्त करते थे।

रुद्र द्वारा जब यक्षका मस्तक काट दिया गया तब देवोंके कहनेसे अश्विनीकुमारोंने उसको फिरसे जोड़ दिया था और शंकरने स्वयं अपने पुत्रका सिर काटकर पुनः स्वयं ही जोड़ दिया था। ऐसे उदाहरण एक-दूसरेके आयुर्वेदमें और पुराणोंमें बहुत हैं। इससे मालूम होता है कि दोनों पक्षवाले आयुर्वेदका ज्ञान रखते थे। दोनों पक्षवाले आयुर्वेदका विकास करनेमें एक-दूसरेसे बाजी ले जानेकी कोशिशमें रहते थे और इस छान-बीनमें संलग्न थे कि रोगको कमसे कम द्रव्यसे

बनाकर देते थे। मैंने उनसे तीनों दवाओंकी असलियतका पता लगाने-की बहुत कोशिश की, परन्तु अन्त तक उन्होंने उसे छिपाये ही रखा। वैद्योंकी यह मनोदशा सचमुच अनुचित है। बादमें गोंडल रसशालासे प्रकाशित 'रसमंगल' नामक ग्रंथ अभी मेरे देखनेमें आया। उसके आरम्भमें ही चिकित्साखंडमें वातघ्न, पित्तघ्न और कफघ्न रसोंके बारेमें मैंने पढ़ा, तब मुझे संतोष हुआ। कहनेका आशय यह है कि आयुर्वेदमें भी तीन ही औषधियोंसे प्रत्येक रोग मिटता है। और आखिर एक पारेसे ही सब रोग नष्ट होते हैं, ऐसा तो पहले आ ही चुका है।

तान्त्रिक ग्रंथोंसे पता चलता है कि अघोरी मल, मूत्र आदिका उपयोग दवाके तौर पर करते थे। इसी तरह जैन शास्त्रमें छोटी और बड़ी प्रतिमा धारण करनेवाले मुनियोंके लिए स्वमूत्रके उपयोगका विधान है। भगवान् शंकरने पार्वतीके समक्ष रुद्रयामल तंत्रके अन्तर्गत शिवाम्बुकल्पमें केवल मूत्रकी ही महिमा गायी है और यह भी बताया है कि मूत्रपान करनेसे मनुष्यके सब रोग मिट जाते हैं और वह चिरजीवी हो जाता है। आगे चलकर आयुर्वेद और रसतंत्रमें दूसरी दवाओंके साथ मूत्रप्रयोग करनेका उल्लेख किया गया है। भगवान् आत्रेयने आठ मूत्रोंका औषधिके रूपमें उपयोग बताया है। वे आठ मूत्र उन्हीं पशुओंके हैं जो घास-चारा खाकर जीते हैं। सुश्रुतने इसके अतिरिक्त मानवमूत्रका दवाके रूपमें उपयोग बताया है। प्रश्न उठता है कि भगवान् आत्रेयने मानवमूत्रका उपयोग क्यों नहीं बताया? क्योंकि पशुओंके मूत्रकी अपेक्षा मानवमूत्र तो मनुष्योंके लिए अधिक उपयोगी हो सकता है। आज हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं कि पशुओंका मूत्र उनके लिए हितकर होता है। भगवान् आत्रेय यह भी कहते हैं कि ये आठ प्रकारके पशुमूत्र मनुष्यके स्वास्थ्यके लिए भी उपयोगी हैं, तो फिर उन्होंने नरमूत्रके बारेमें उल्लेख क्यों नहीं किया? इसका सीधा-सादा जवाब यही हो सकता है कि जो वस्तु व्यापक

है, प्रचलित है, उसका उल्लेख करनेकी उन्हें कोई ज़रूरत ही प्रतीत न हुई हो। सूर्यनारायणके गुण-दोष या अस्तित्वका वर्णन करनेकी भला कहीं आवश्यकता होती है ? इसी प्रकार नरमूत्रके बारेमें इतना कहना ही पर्याप्त है कि वह विषघ्न तथा रसायन है। वृद्ध वाग्भटने अपने अष्टांगसंग्रहमें आठ मूत्रोंके अतिरिक्त मृगके मूत्रका भी उल्लेख किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि जो प्राणी हमारी तरह शाकाहारी हो उसीके मूत्रका दवाके तौर पर उपयोग करना बताया है।

यदि किसी प्राणी — पशुपक्षी या मनुष्यके अन्दर बननेवाली चीज़का उपयोग उसीका रोग मिटानेमें या शस्त्रक्रियामें किया जाता है तो इस प्रक्रियाको अंग्रेज़ीमें 'ऑटोजीनस' कहते हैं। इसी नियमके अनुसार आज भी ऑटोब्लड (अपना खून) दिया जाता है और उसमें कुछ हानि नहीं है।

रोगके उपचारमें जब ऐसी वस्तुओंका अधिकतर उपयोग किया जाता है जो सजातीय प्राणी या मनुष्यके लिए परस्पर उपयोगी होती हैं, तब इस प्रक्रियाको अंग्रेज़ीमें 'होमोजीनस' कहा जाता है।

तीसरी प्रक्रिया यह है कि हमारे जैसे खान-पानवाले विजातीय प्राणीकी वस्तु दवाके तौर पर उपयोगमें ली जाती है, इसे अंग्रेज़ीमें 'हेटेरोजीनस' कहते हैं। महर्षि आत्रेयने इस तीसरी प्रक्रियाको अपनाकर अपनी चिकित्सापद्धतिमें आठ प्रकारके मूत्रोंका समावेश किया है, जब कि भगवान् शंकरने स्वयं शिवाम्बुकल्पका वर्णन करते हुए मनुष्य-मूत्रका सबसे श्रेष्ठ गुण बताकर प्रथम प्रक्रियाको अपनाया है, जो बिल्कुल निर्दोष है और प्रत्येक रोगमें उसका उपयोग करनेकी सूचना दी है। जैसे आत्रेय शासन (मत)में स्वस्थके लिए हरड़ और रोगीके लिए उपवास बताया है, वैसे भगवान् शंकरके मतमें स्वस्थ तथा रोगी दोनोंके लिए मूत्रके उपयोग पर ज़ोर दिया है, परन्तु दोनोंकी प्रयोग-विधिमें अन्तर है।

मिटाया जाये। महर्षि आत्रेयने चरकमें 'दीर्घञ्जीवतीयम्' नामक अध्यायमें रोगोंके उपचारके लिए मुख्य काष्ठादिक औषधियों तथा मूत्रवर्गका उपयोग किया है, जब कि भगवान् शंकर और उनके अनुयायियोंने अपनी चिकित्सा-प्रणालीमें लोह, उपलोह, विष, उपविष, मूत्र, मोती, माणिक, प्रवाल आदिका उपयोग किया है और अन्तमें यह भी सिद्ध किया है कि केवल पारद (पारे) से ही समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

३. यूरोपमें इस आशयसे अनेक प्रयोग और अन्वेषण हुए हैं कि दवाकी मात्रा कम हो और वह आसानीसे ली जा सके। सबसे पहले डा० हनिमँनने होमियोपैथिक पद्धतिका आविष्कार किया और दुनियाको बता दिया कि एलोपैथिक पद्धतिमें बड़े पैमाने पर सबसे अधिक मात्रा-में जिस दवाका उपयोग होता है और उसका जो परिणाम आता है, उसकी अपेक्षा उसी दवाको होमियोपैथिक पद्धतिके अनुसार बिल्कुल थोड़ी मात्रामें (अर्थात् उनके मतानुसार ख़ूब हायेस्ट पोटेन्सीमें) लिया जाये तो एकदम विपरीत परिणाम आता है। उदाहरणके तौर पर अफ़ीमसे दस्त बन्द हो जाते हैं, किन्तु इसी अफ़ीमको होमियोपैथिक पद्धति द्वारा लेनेसे कब्ज़ दूर हो जाता है। उसके बाद उन्हींके शिष्य सुश्लरने रोग मिटानेके लिए बारह दवाइयोंका ही उपयोग किया है। अमेरिकामें डा० बर्जेसने एप्समपैथी अर्थात् विलायती नमकसे ही सभी साध्य-असाध्य रोग मिटाये हैं। उन्होंने इस चिकित्सा-पद्धतिमें केवल सात ही साल्ट्सका उपयोग करके रोग मिटाये हैं। मैं जब सन् १९२१ में बम्बईमें नेशनल मेडिकल कालेजमें पढ़ता था, तब मैंने एक प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य वैद्यराजको केवल तीन ही औषधियोंसे रोग मिटाते हुए देखा था। वे अपने दवाखानेमें केवल तीन ही शीशियाँ अपनी मेज़ पर रखते थे, जिन पर वातघ्न, पित्तघ्न और कफघ्न ये तीन नाम लिखे हुए थे। वे बीमारकी नाड़ी देखकर उसे पीने और चुपड़ने के लिए तीनों दवाइयोंको न्यूनाधिक मात्रामें मिलाकर और पुड़ियाँ

उपर्युक्त विवरणसे पता चलेगा कि शुक्राचार्यके पास संजीवनी दवा एक ही थी। अश्विनीकुमारोंके पास भी ऐसी ही कोई दवा होनी चाहिये जिससे वे देवोंमें प्रख्यात हुए। भगवान् शंकरने एक ही पारेकी दवासे और शिवाम्बुसे प्रत्येक रोगको मिटाया, ऐसे उदाहरण मिलते हैं। यूरोप और अमेरिकामें भी डा० हनिमॅन, डा० सुश्लर, डा० बर्जेस और अन्तमें आर्मस्टॉङ्ग, क्रमशः इन सबने अपनी सारी ज़िन्दगी इसी कोशिश और खोजमें गुज़ार दी कि यथासंभव एक ही दवासे सभी रोग मिट जायें। डा० हनिमॅनने स्वाद बिनाकी दवाओंसे काम लिया और डा० सुश्लरने केवल बारह द्रवाओंका ही उपयोग किया। डा० बर्जेसने हर बीमारीको मिटानेके लिए सिर्फ़ सात मॉल्ट्सका ही उपयोग किया। आर्मस्टॉङ्गने बाइबलके एक वाक्यसे प्रेरित होकर मूत्रसे अपने क्षयरोगको मिटाया। फिर इंग्लैंडमें और अन्यत्र विविध रोगोंसे पीड़ित सैकड़ों व्यक्तियोंको नीरोग तथा स्वस्थ बनाया और यह सिद्ध कर दिखाया कि मनुष्यका मूत्र प्रत्येक रोगका रामबाण उपाय है। उन्होंने 'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' नामक पुस्तक लिखकर दुनिया पर एक महान् उपकार किया है।

इस मूत्रचिकित्सामें न तो नाड़ी ही देखनी पड़ती है और न ही निदान करना पड़ता है। यह तो इतना सरल और अद्भुत सुन्दर उपाय है कि स्वस्थ व्यक्ति स्वमूत्र पिये और मूत्रमालिश करे तो स्वस्थ बना रहे और रोगी अपना पेशाब पिये और मालिश करे तो नीरोग हो जाये। केवल इतनी बात ध्यानमें रखी जाये कि जब तक रोगीका रोग दूर न हो तब तक वह मूत्र पीकर उपवास पर रहे और रोगमुक्त हो जाने पर मूँगका झोल लेकर उपवास छोड़े और फिर धीरे-धीरे सादा और हलका भोजन—दाल-भात, शाक आदि लेने लगे। अपनी प्रकृतिके अनुकूल ही आहार लेना चाहिये। मूत्रका उपयोग करनेमें स्वस्थ मनुष्यको किसी प्रकारका परहेज़ रखनेकी कोई खास ज़रूरत नहीं है, परन्तु जो व्यक्ति बीमार हो उसे उपवास या

३

मूत्रचिकित्सा

—वैद्य करुणाशंकर रामशंकर त्रिवेदी

गुजरातके वयोवृद्ध तथा प्रतिष्ठित कार्यकर्ता श्री रावजीभाई पटेलको मूत्रचिकित्सासे लाभ हुआ, इसे 'जनसत्ता' (एक स्थानीय दैनिक पत्र) के पाठक जानते ही होंगे और उन्होंने इस पर विचार भी किया होगा। मूत्रचिकित्साकी संपूर्ण विधि भी उन्हीं वृद्ध-श्रेष्ठकी लेखनी द्वारा हमें प्राप्त हुई है। कुछ वैद्य-डाक्टरोंने तो मूत्रोपचारका समर्थन किया है और कुछने उसका विरोध किया है।

जैसे आर्य संस्कृति या धर्म एक ही मनुष्यकी देन नहीं है, वैसे आयुर्वेद भी एक ही मनुष्यका रचा हुआ शास्त्र नहीं है। जैसे आर्य संस्कृति अनेक समुज्ज्वल संस्कृतियोंका महामंगल मिलन है, वैसे ही आयुर्वेद विश्वमें प्रचलित आरोग्यकी सभी पद्धतियोंके मूलका महाद्योतक एक महास्रोत है। जगत्में एकदम नयी प्रतीत होनेवाली किसी भी पद्धतिके मूल इसमें मिलेंगे ही। इसी प्रकार मूत्रचिकित्साको चिकित्सकगण भले ही आज नया आया हुआ एक 'नाटक' मानें, परन्तु इसका मूल आयुर्वेदमें है ही (देखिये भावप्रकाश, पूर्वखंड, मूत्रवर्ग)। चरक, सुश्रुत वाग्भट या अन्य शास्त्रीय ग्रन्थ इस मूत्रचिकित्साके विरोधी नहीं, किन्तु पुरस्कर्ता प्रतीत होते हैं; क्योंकि उन ग्रन्थोंमें जहाँ-तहाँ मूत्रचिकित्साके समर्थक सूत्र मिलते हैं और मूत्रवर्गमें तो व्यवस्थित रूपसे मिलते हैं। जब शास्त्रमें ही मूत्रचिकित्साकी गणगाथा मिलती हो तो यह कहना कि मूत्रोपचार शास्त्रमान्य नहीं है, वदतो व्याघात ही है। तो फिर कौन माईका लाल वैद्य इसे शास्त्रबाह्य कहनेकी धृष्टता कर सकता है? हठाग्रहसे किसीको अपनी बात पर

अड़े रहना हो, तो मैं उससे विवाद करना नहीं चाहता। मैं तो नम्रतासे इतना ही कहना चाहता हूँ कि मूत्रचिकित्सा शास्त्रबाह्य विषय नहीं है। और मेरी यह प्रामाणिक मान्यता है कि मूत्रचिकित्सा आयुर्वेद-मान्य है। यदि यह एक चिकित्सा-पद्धति हो तो प्रत्येक रोग पर इसका कुछ न कुछ असर होना ही चाहिये अथवा इसका प्रचुर उपयोग होना चाहिये और हठीले माने जानेवाले महारोगोंमें भी इसका उपयोग होना चाहिये। वस्तुतः भावप्रकाशके कर्ताने गोमूत्रके उपयोग इस ढंगसे प्रस्तुत किये हैं कि साधारणसे साधारण मनुष्य भी उन्हें कर सकता है। गोमूत्रके लिए तो हिन्दू फौरन तैयार हो जायेंगे परन्तु नरमूत्रके विषयमें उनका सम्मत होना ज़रा मुश्किल है।

आम तौर पर दादियाँ आज भी घरमें छोटी बहुओंको कहा करती हैं -- "बेटा, बच्चेका पेट अफर गया है, वह मूते तब उसका मूत हाथमें लेकर ज़रा पिला देना।" सामान्यतः ऐसा आदमी शायद ही मिल सकेगा जिसका जन्म गाँवमें हुआ हो और जिसने बचपनमें अपना पेशाब न पिया हो। आज गाँवोंमें बालकोंको मूत्र पिलाया जाता है और वह नुकसान नहीं करता, बल्कि फ़ायदा ही करता है, यह आँखों देखी बात है।

नरमूत्रके लिए आयुर्वेदका अभिप्राय --

नरमूत्रं गरं हन्ति सेवितं तद् रसायनम्।
रक्तपामाहरं तीक्ष्णं सक्षारलवणं स्मृतम्॥

(भावप्रकाश, पूर्वखंड, मूत्रवर्ग, श्लो० ७)

मनुष्यका मूत्र क्षारयुक्त, खारा और तीक्ष्ण है। वह ज़हरको मारता है। लाल खुजलीको मिटाता है। उसका सेवन किया जाये तो रसायनका काम करता है। आजकल जिन दवाओंके रोज़ नये नये नाम व लेबल तथा विज्ञापन आते हैं, उनके प्रलोभनमें न आकर सन्तुलित बुद्धिसे विचार करें तो आयुर्वेद जिस नरमूत्रके सेवनको रसायन

कहता है अर्थात् जो वृद्धत्वको दूर करके यौवनको टिकाये रखता है, सात धातुओंकी समता करता है और अग्निको सम रखता है, उस रसायन समान नरमूत्रकी चिकित्साकी उपेक्षा कैसे हो सकती है? उसमें जहर हटानेका गुण माना जाता है। गाँवमें साँप काटने पर बहुत लोगोंको नरमूत्र पिलाया जाता है। इस तरह अनेक बचे हैं, ऐसा सुननेमें आता है। परन्तु इस वैज्ञानिक युगमें सुनी-सुनायी और लिखी-लिखायी बातसे मूत्रके विषनाशक गुणको सिद्ध मान लेना ठीक नहीं है। और साथ ही मूत्रकी विषनाशकताके शास्त्रीय उल्लेखको एकदम निराधार कहना तो आयुर्वेदके प्रति अन्याय करना होगा। इसलिए जब तक इस बारेमें व्यवस्थित तथा सुनिश्चित प्रयोग और अनुसंधान न हो जायें तब तक कोई निश्चयात्मक विधान करना ठीक न होगा।

यह तो मूत्रचिकित्साके बारेमें एक सरसरी तौर पर दिया गया अभिप्राय मात्र है। यदि समस्त रोगोंके लिए इस चिकित्साका व्यवस्थित विवरण लिखने लगें तो अवश्य एक पुस्तक तैयार हो जाये। यहाँ तो सामान्य रोगोंके लिए इस चिकित्साका मोटे तौर पर विधान इसलिए किया है कि जनता इस विज्ञानके प्रति घृणा न बताये और उपेक्षावृत्ति या उदासीनवृत्ति न रखे। परन्तु प्रत्येक रोग पर मूत्रका कितना और कैसा असर होता है, इसे शास्त्रीय ढंगसे अवश्य समझाया जा सकता है।

विषहरके रूपमें गोमूत्रका उपयोग प्रत्येक धातुके शोधनमें है ही। परन्तु यह 'विषहर' शब्द बहुत ही विशाल तथा व्यापक अर्थमें प्रयुक्त किया गया है। यह केवल साँप, बिच्छू या धातुके ही विषका नहीं, अपितु शरीरमें उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक विषका भी निवारण करता है। इस विषभारी युगमें ऐसे विषहारी औषधका प्रचार तथा प्रसार प्रेरणादायक और पवित्र कार्य है, ऐसा मैं खुले आम निवेदन करके इस कल्याणकारी प्रचारमें अपना हिस्सा प्रेमपूर्वक अदा करता हूँ।

ता० १७–११–'५८ ('जनसत्ता' से साभार उद्धृत)

४

एलोपैथी बनाम शिवाम्बु चिकित्सा

—डा० परागजी डी० देसाई

इस नग्न सत्यसे शायद ही कोई इन्कार कर सकता है कि इस वैज्ञानिक युगमें दवाओं और डाक्टरोंकी वृद्धिके साथ-साथ रोगों और रोगियोंकी भी वृद्धि हो रही है। बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष, ग़रीब-अमीर शिक्षित-अशिक्षित, भोगी-त्यागी सभी medicine minded अर्थात् दवाकी मनोवृत्तिवाले हो गये हैं। ज़रा सी तकलीफ़ हुई नहीं कि दवाकी गोली या टिकिया गटगटायी नहीं अथवा सूई लगवायी नहीं। प्रायः सभी लोग यह मानते और समझते हैं कि शारीरिक अस्वस्थताको (अब तो मानसिक अस्वस्थताको भी) दूर करनेके लिए किसी प्रकारसे दवाको शरीरके बाहर लगाना या अंदर पहुँचाना अनिवार्य-सा बन गया है। पेटेन्ट दवाएँ दवाकी मनोवृत्तिको केवल बढ़ावा ही नहीं देतीं अपितु दृढ़ करती हैं।

दवाके व्यामोहके बारेमें प्रयोगवीर गांधीजी अपनी पुस्तक 'आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान' की प्रस्तावनामें लिखते हैं :—

"अनुभव तो ऐसा है कि जिस घरमें दवाकी शीशी दाख़िल हुई कि वहाँसे फिर निकलती ही नहीं। असंख्य मनुष्य जीवनभर किसी-न-किसी रोगसे पीड़ित रहते हैं और एकके बाद दूसरी दवाकी शरण लेते रहते हैं तथा वैद्य और डाक्टर बदलते रहते हैं, रोग मिटानेवाले वैद्य या डाक्टरकी खोजमें भटकते रहते हैं, और अन्तमें खुद परेशान होकर, दूसरोंको परेशान करके व्याकुलतासे मर जाते हैं।"

... ...

"इससे पाठकको इतना समझ लेना चाहिये कि रोगीको डाक्टरके पास दौड़नेकी ज़रूरत नहीं है और एकदम दवा नहीं लेना है।.....

आपका रोग आपके डाक्टरके बसका नहीं है। आपकी आयु होगी तो आप ज़रूर अच्छे हो जायेंगे।" (पृष्ठ ९–११)

दानवीर घनश्यामदास बिरला अपने एक लेखमें लिखते हैं :—

"मैंने अपनी ज़िन्दगीमें आयुर्वेदिक, यूनानी और एलोपैथीकी सभी प्रकारकी दवाएँ ली हैं और मित्रोंको भी दी हैं। परन्म मुझे ऐसे एक भी केसकी याद नहीं आती है जिसमें कोई दवा रामबाण सिद्ध हुई हो। कई दवाओंसे तो सचमुच नुकसान ही हुआ है और दवा छोड़ने पर प्रकृतिने स्वयमेव मुझे स्वस्थ कर दिया।

"मैंने ज़िन्दगीमें दो ऑपरेशन कराये हैं, उन दोनोंसे मुझे लाभ हुआ है। मुझे याद नहीं आता कि किसी दवासे मुझे फ़ायदा हुआ हो। एक ऐसा समय भी था, जब खुद दवा खाने और दूसरोंको खिलानेकी मुझे बीमारी थी। परन्तु उसकी व्यर्थताका अनुभव होने पर मैंने यह सब छोड़ दिया है।

"कलकत्ताके प्रसिद्ध डाक्टर, जो बंगालके मुख्य मंत्री भी रह चुके हैं, विधानचंद्र राय बड़े विद्वान और विनोदी थे उन्होंने मुझे यह किस्सा सुनाया था —'अस्पतालमें दो रोगी थे, जिनमेंसे एक मौतकी घड़ियाँ गिन रहा था, दूसरेकी हालत कुलजमा ठीक थी। मैं जब उन्हें देखनेके लिए अस्पतालमें गया, तब नर्सने एक बीमारके लिए कहा कि उसकी मृत्यु निश्चित है और दवा देना बेकार है, परन्तु दूसरे रोगीकी दशा कुछ ठीक है, उसे बचानेकी कोशिश करनी चाहिये। नर्सकी सलाहके अनुसार मैंने एक रोगीको बिल्कुल छोड़ दिया और दूसरेका इलाज शुरू किया। चौबीस घंटेमें मैंने देखा कि जिस रोगीको दवा नहीं दी थी, उसकी हालत सुधरती जाती थी और जिसे दवा दी गयी थी वह मौतके पास पहुँच गया था। मैंने नर्ससे कहा कि इसकी दवा भी बन्द कर दो।"

यह एक तथ्य है कि आधुनिक बहुत-सी अंग्रेजी दवाएँ हानिकारक हैं और ये दवाएँ बीमारीको मिटाती नहीं हैं, बल्कि दबाती हैं और इनका अधिक परिमाणमें उपयोग करनेसे नयी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। बुखारमें कुनैन लेनेसे 'क्विनिनिज़म' (बहरापन, चक्कर आना आदि) हो जाता है। कब्जके लिए जुलाबकी दवा लेनेवाले अनेक व्यक्ति बवासीर, कोलाइटिस (बड़ी आँतकी सूजन और सड़न) आदि अनेक रोगोंके शिकार होते देखे जाते हैं। 'स्ट्रेप्टोमाइसिन' के सेवनसे चक्कर आने लगते हैं और ज़मीन घूमती दीखती है। 'सल्फ़ा ड्रग्स' से खाज, सूजन, पेशाबमें खून आना और एनीमिया जैसी तकलीफ़ें खड़ी हो जाती हैं। 'क्लोरोमाइसिन' से पेटकी बीमारियाँ और दिलकी तकलीफ़ें हो जाती हैं और यह मृत्युकी संभावनाको पैदा करती है। 'पेनेसिलिन' से खाज, लाल चकत्ते निकलना आदि बीमारियाँ हो जाती हैं और कभी तत्काल मृत्यु भी हो जाती है।

गुजरात राज्यके भूतपूर्व राज्यपाल श्रीमन्नारायण अग्रवालजीका प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी एक भाषण 'स्वस्थ जीवन' के फरवरी, १९६६ के अंकमें प्रकाशित हुआ था, जिसका कुछ अंश यहाँ दिया जाता है :—

"आजकल एक 'एण्टिबायोटिक्स' दवा चली है। उससे कितनी बीमारियाँ चालू हो जाती हैं। मुझे याद है कि हमारे राष्ट्रनेता पं० जवाहरलाल नेहरूसे मैंने पूछा — आप जानते हैं कि साल दो सालसे वे बीमार थे—कि 'पंडितजी, आपकी बीमारी क्या है?' तो उन्होंने बताया कि 'एण्टिबायोटिक्स' की बीमारी है। डाक्टरोंने उन्हें इतनी दवाइयाँ पिलायीं, फिर भी कोई असर नहीं हुआ। वे नित्य व्यायाम करते थे, आसन करते थे और अपना स्वास्थ्य अच्छा रखते थे। लेकिन कुछ इन्जेक्शन एण्टिबायोटिक्सके उनको दिये गये। उनकी इच्छा इन्जेक्शन लेनेकी नहीं थी। परन्तु डाक्टरोंने कहा कि नहीं, आपको इन्जेक्शन लेना पड़ेगा। केन्द्रकी तरफसे डाक्टर ऐसा हुक्म करते हैं, अपना अधिकार

समझते हैं प्रधान मंत्री पर। इसलिए लेना पड़ा उनको, इन्जेक्शन लेनेसे उनका स्वास्थ्य बिल्कुल बर्बाद हो गया, क्योंकि यह 'एण्टिबायोटिक्स' इतनी तेज़ दवा होती है कि स्वास्थ्यको खराब कर देती है। आजकल एक नयी बीमारी पैदा हो गयी है जो डाक्टरोंकी समझमें नहीं आती है और दवा लेने पर भी ठीक नहीं होती है, उसे 'एलर्जी' कहते हैं। इस एलर्जीके लिए इतनी कड़ी दवा होती है कि यह दवा खानेके बाद 'हार्ट अटैक' हो जाता है।"

आजकी तथाकथित श्रेष्ठ चिकित्सा-पद्धति एलोपैथी रोगके कारण, रोग और रोगके उपचारकी अनेकतामें मानती है। उसकी दृष्टिसे रोगके कारण अनेक, रोग अनेक और रोगके उपचार भी अनेक हैं। इस चिकित्सा-पद्धतिमें मुख्यतः जन्तु रोगके कारण माने जाते हैं। विविध प्रकारके जन्तु विविध प्रकारके रोगोंको जन्म देते हैं। मलेरिया, फ़ाइलेरिया, इन्फ्लुएंज़ा, सर्दी, न्यूमोनिया, टी० बी०, हैज़ा आदि रोग भिन्न-भिन्न प्रकारके जन्तुओंसे पैदा होते हैं। फिर जन्तुओंके कारण जिस-जिस अंगमें रोग पैदा होता है, उस-उस अंगके अनुसार उस रोगका नाम रखा जाता है। जैसे गलेके कौएकी व्याधि टॉन्सिलाइटिस, छातीकी व्याधि ब्रोन्काइटिस, जठरकी व्याधि गेस्ट्राइटिस, आँतकी व्याधि कोलाइटिस, आँत्रपुच्छकी व्याधि एपेन्डिसाइटिस इत्यादि।

रोगके मूल कारण मलसंचयको दूर करनेके लिए कुदरत कै, दस्त, बुख़ार आदि विकार उत्पन्न करती है। यह अत्यंत खेदका विषय है कि एलोपैथी कुदरतके इस हितकारी प्रयत्नकी उपेक्षा तथा अवहेलना करके उस विकार——रोगको दूर करनेके लिए जन्तुनाशक दवाओंका ही मुख्यतः उपयोग करती है। जन्तुनाशक दवाओंसे जन्तुओंका नाश तो हो जाता है और रोग तत्काल दूर हुआ लगता है——दब जाता है, जिससे रोगी कुछ आराम भी महसूस करता है, परन्तु उन तेज़ और ज़हरी दवाओंके ख़राब असरसे रोगी देर तक कमज़ोर बना रहता है। फिर ऐसे उपचारसे रोगका सच्चा कारण तो नष्ट नहीं होता,

केवल रोगके बाह्य चिह्न—कै, दस्त, पीड़ा आदि तत्काल दूर होते हैं, जिससे रोगी और डाक्टर यह मान-समझ लेते हैं कि रोग मिट गया है। रोगका मूल कारण मलसंचय तो ज्योंका त्यों बना रहता है और उसका नाश या निकाल न होनेसे दबा हुआ रोग जल्दी या देरसे डायबिटीज़, हृदयरोग, क्षय, कैन्सर आदि किसी हठीले एवं जीर्ण रोगके रूपमें प्रस्तुत हो जाता है, जिसके लिए रोगीको तेज़ और ज़हरी दवाएँ देर तक खानी पड़ती हैं, जिनकी प्रतिक्रियाके रूपमें नये-नये दवा-रोग (ड्रग-डिज़ीज़) भी पैदा हो जाते हैं और रोगीको लेनेके देने पड़ जाते हैं। ख़र्च और परेशानी दोनों उठाते हुए भी रोग दूर नहीं हो पाता, यह कितनी दुःखद स्थिति है!

इस दुःखद स्थितिसे मुक्ति पानेके लिए अति प्राचीन एवं अनुभवसिद्ध शिवाम्बु चिकित्साको अपनानेकी अत्यन्त आवश्यकता है। यह चिकित्सा शरीरको एक सम्पूर्ण इकाई मानती है। आरोग्य और रोग दोनोंका संबंध सारे शरीरसे है—शरीरके किसी अंग या भागसे नहीं है। इसीलिए शरीरके मुख्य विकार अर्थात् रोगके साथ-साथ अन्य विकार भी इससे दूर हो जाते हैं। फिर इस चिकित्सामें रोगका कारण एक, रोग एक और रोगका उपचार भी एक है। यह कितनी सरल तथा महत्त्वपूर्ण बात है कि रोगका कारण, रोग और उसका उपचार तीनों शरीरमें हैं। जब रोगका कारण एक और रोग एक, तब निदान किसका और क्यों किया जाये? उपचार एक होनेसे डाक्टर या वैद्यकी भी विशेष आवश्यकता नहीं है। फिर तो यही कहना उचित होगा कि शिवाम्बु—स्वमूत्र ही निदान करनेवाला और चिकित्सा करनेवाला दोनों है। देखिये! रोगी कितना स्वतंत्र है अपने रोगको दूर करनेके लिए और वह भी बिना किसी ख़र्चके!!

५

स्वमूत्र-चिकित्सा – १

—विद्यानन्द 'विदेह'

हालमें ही अमेरिकाके डा० मोरेस एस० माज़ेलने मानवमूत्रसे एक इन्जेक्शन तैयार किया है। उसकी एक बोतलका मूल्य तीन हज़ार डालर (बीस हज़ार दो सौ पचास रुपये) है और उसका एक इन्जेक्शन एक सौ डालरमें लगाया जाता है। ज्यों-ज्यों अधिक मात्रामें तैयार होने लगेगा, वह सस्ता होता जायेगा। यह हृदय-रोगके लिए रामबाण का काम देता है और अन्य रोगों पर उसके परीक्षण किये जा रहे हैं। हृदय-रोगका दौरा होने पर उसके एक ही इन्जेक्शनसे रोगीको पाँच मिनटके अंदर ही पूरा आराम हो जाता है, किन्तु इससे रोगी सदाके लिए रोगमुक्त नहीं होता। कई सौ गेलन मानव-मूत्रको सड़ा और शोध कर डा० माज़ेल एक बोतल इन्जेक्शन तैयार कर पाये हैं।

उनकी एकमात्र कठिनाई यह है कि पर्याप्त इन्जेक्शन बनानेके लिए उतनी अधिक मात्रामें मूत्र एकत्र कैसे किया जाये? वे अब यह व्यवस्था कर रहे हैं कि अमेरिकाके अधिकसे अधिक मूत्रालयोंमें ऐसे पात्र रख दिये जायें जिनमें बिना दुर्गन्ध फैले मूत्र जमा किया जा सके। इस प्रकार इस इन्जेक्शनके रूपमें सभी देशोंके रोगी प्रसन्नताके साथ अपने पैसोंसे अमेरिकनोंका मूत्रपान कर रहे होंगे। अपना जीवन सभीको प्रिय होता है और उसकी रक्षाके लिए वह यथाशक्ति कितना भी व्यय करके किसी भी वस्तुका सेवन करनेको तैयार हो जाता है।

चालू शताब्दीमें मूत्रचिकित्सा पर सबसे पहली पुस्तक मिस्टर आर्मस्ट्रॉङ्गने अपने निजी परीक्षणोंके आधार पर प्रकाशित की थी। उस पुस्तकका नाम था The Water of Life (जीवनका जल)।

इस विषयकी प्रेरणा उन्हें बाइबलमें क्राइस्ट द्वारा कथित Drink waters out of thine own cistern. अर्थात् अपने निज तालाबका पानी पी, इस वाक्यसे मिली। उस पुस्तकका उन सभी देशोंमें, जिनमें अंग्रेज़ी भाषाका प्रचलन था, प्रवेश हुआ। उसके आश्रयसे अनेक देशोंमें मूत्र-चिकित्सा-पद्धतिसे लगभग सभी रोगों पर परीक्षण किये गये। परिणामस्वरूप विविध देशोंमें उस उस देशकी भाषामें इस विषय पर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए।

अथर्ववेदके प्रथम काण्डके तृतीय सूत्रमें मूत्र-चिकित्साका बीज है। अघोर चिकित्साके प्रकरणमें आयुर्वेदमें मूत्रचिकित्साका उल्लेख है। कतिपय पुराणोंमें भी इस चिकित्साप्रणालीका जहाँ-तहाँ वर्णन है। प्रत्यक्षत: यह चिकित्सा पद्धति कोई नयी बात नहीं है। गौका मूत्र अनेक असाध्य रोगोंकी सिद्ध चिकित्सा है और इसीलिए गोमूत्रकी बड़ी महिमा है। यह भी एक तथ्य है कि मनुष्यका अपना स्वमूत्र गोमूत्रकी अपेक्षा हज़ार गुना लाभदायक है। गोमूत्र अमृत है, तो मानवका स्वमूत्र उसके अपने लिए परमामृत है। किसी भी मनुष्यके शरीरमें उत्पन्न होनेवाला कोई रोग ऐसा नहीं है जो स्वयं अपने ही मूत्रसे दूर न किया जा सके। हृदयरोगी प्राय: स्वमूत्र-चिकित्साका आश्रय लेते हैं। व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ रहनेके लिए भी स्वमूत्रका सेवन करते हैं।

वर्षों पूर्व मैंने अथर्ववेदके एक मन्त्रके आधार पर मूत्रचिकित्साके विषयमें एक लेख लिखा था। तब मुझे इस विषयका लेशमात्र कोई ज्ञान न था। उसके बाद एतद्विषयक पर्याप्त साहित्य मुझे पढ़नेको मिला है और मैंने असंख्य बालक-बालिकाओं, युवक-युवतियों, वृद्ध-वृद्धाओंके विविध रोगों पर इस चिकित्सा-पद्धतिका परीक्षण किया और उस प्रयोगमें शत-प्रतिशत सफलता मिली। इस प्रकार मैं अब इस विषयका पर्याप्त अनुभव रखता हूँ। स्वयं अपने ऊपर इस पद्धतिके प्रयोगकी नौबत नहीं आयी। आवश्यकता होने पर मुझे इसके प्रयोगमें कोई झिझक

न होगी। राजयोगियोंको रोग प्रायः होते नहीं हैं और होते हैं तो वे अपनेको इच्छाशक्ति तथा आत्मशासनके द्वारा ही नीरोग कर लेते हैं। नितान्त आवश्यक हो जाने पर वे भी इस पद्धतिसे लाभ उठाते हैं।

इस विषय पर लेखमाला प्रकाशित करनेका मेरा कोई विचार न था। पर जब मैंने देखा कि शीघ्र ही यह नौबत आनेवाली है कि इन्जेक्शनके रूपमें संसार अमेरिकनोंका मूत्रपान कर रहा होगा, तो मुझे लगा कि भारतकी इस अभिशापसे रक्षा की जानी चाहिये। इसी दृष्टिसे मैं यह लेखमाला प्रकाशित कर रहा हूं।

मनुष्य, पशु, किसी भी प्राणीके अपने मूत्रमें चौरानवें (९४) प्रतिशत अमृत और छह प्रतिशत विष होता है। शरीर-शरीरके विषकी कटुताकी कोटि भिन्न-भिन्न होती है। स्वशरीरके मूत्रमें मिश्रित विष स्वशरीरका अंश होनेके कारण स्वशरीरके लिए सर्वथा अनुकूल होता है, जब कि एक शरीरके मूत्रका विष दूसरे शरीरके लिए नितान्त प्रतिकूल और इसीलिए हानिकारक होता है। मांसाहारियों और व्यसनियोंका मूत्र विशेषतः निर्व्यसनी शाकाहारियोंके लिए घातक होता है। इसी कारण मूत्रचिकित्सामें गौ, भेड़, बकरी, ऊँट, घोड़ा आदि शाकाहारी तथा वनस्पत्याहारी पशुओंका ही मूत्र प्रयोगमें लाया जाता है; कुत्ता, बिल्ली, शेर, चीता आदि मांसाहारी पशुओंका नहीं। अमेरिका घोर मांसाहारी और व्यसनी देश है। उनके पेशाबसे बने इन्जेक्शन तथा औषधियाँ मानवजातिका कितना अहित करेंगे, आज उसकी कल्पनासे मैं सिहर उठा हूँ।

पीली जातियोंमें नीरोग रहते हुए भी स्वास्थ्योन्नतिके लिए स्वमूत्रपानका आम रिवाज है। आर्मस्टॉङ्गके साहित्यसे प्रभावित होकर श्वेत, भूरी और काली जातियोंमें भी इसका पर्याप्त प्रचलन हो गया है। अधिकांश पालतू चौपाये थके हुए या रुग्ण होने पर स्वमूत्रका पान करते हैं। जंगली चौपाये तो सामान्यतः सभी स्वमूत्रका पान करके ही नीरोग और स्वस्थ रहते हैं। पशुचिकित्सकों द्वारा जहाँ-तहाँ

यह खोज की जा रही है कि पशुओंके अपने-अपने मूत्रके पानसे उनके स्वास्थ्य पर क्या, कैसा प्रभाव पड़ता है और उनके किस-किस रोगकी चिकित्सा उनके अपने-अपने मूत्रसे की जा सकती है। भारतके किसानोंको इस विषयकी पर्याप्त जानकारी है। पाश्चात्य देशोंके सभ्योंमें यह एक विशेष गुण है कि वे किसी भी विषयमें बिना संकोच गहराईके साथ खोज करते हैं।

बहुत सम्भव है कि सम्पूर्ण मनुष्यजातिमें कभी स्वमूत्रपान और स्वमूत्र-चिकित्साका आम रिवाज रहा हो और विज्ञान तथा सभ्यताके विकासके साथ उसका लोप हो गया हो। भारतीय माताएँ अब भी आम तौर पर सामान्य रोगोंमें शिशुओंको उनके (शिशुओंके) मूत्रका पान कराती हैं। पैरोंकी छाजनमें प्रायः लोग अपने पैरों पर छोटे बच्चोंसे पेशाबकी धार लगवाते हैं। असंख्य मानुषी रोगों पर परीक्षण करनेके उपरान्त आर्मस्टॉङ्गका कहना है कि प्रत्येक मनुष्य अपने शरीरमें उत्पन्न होनेवाले किसी भी रोगकी सफल चिकित्सा अपने स्वयंके मूत्रके यथाविधि प्रयोगसे कर सकता है।

क्राइस्टने स्वमूत्रको जीवनका जल कहा है, पर इस चिकित्सा प्रणालीके गवेषकोंके अनुसार इसे जीवनका अमृत कहा जा सकता है। 'परमात्मा और प्रकृति बहुत दयालु हैं। उन्होंने प्रत्येक प्राणीके मूत्रमें उसके शरीरके सम्पूर्ण रोगोंकी अचूक औषधिका संचार कर दिया है,' आर्मस्टॉङ्गकी इस मान्यतामें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

अनेक रोग हैं जिनकी चिकित्साके लिए पर्याप्त मात्रामें मूत्र इकट्ठा करना होता है। मूत्र एकत्र करनेके लिए लाजिमी तौर पर चीनी या मिट्टीका पात्र होना चाहिये। जिन रोगोंकी चिकित्साके लिए ताज़ा मूत्रका पान किया जाता है, तदर्थ लाजिमी तौर पर शीशेका गिलास होना चाहिये। जिस प्रकार तांबा, पीतल, स्टील आदि धातुओंके पात्रोंको माँज–धोकर स्वच्छ रखा जाता है, उसी प्रकार मूत्र-

चिकित्सार्थ काममें आनेवाले पात्रोंको भी स्वच्छ रखा जाना चाहिये। मूत्रप्रयोगके फौरन् बाद साबुन वा मिट्टीसे रगड़कर, पानीसे धोकर और कपड़ेसे पोंछकर उन्हें साफ़ कर देना चाहिये।

नमक, मिर्च, गर्म मसाला, खटाई, मिठाई आदिका सेवन मित मात्रामें ही करना चाहिये। खटाईके सेवनसे मूत्रका शोधन तो होता ही है, उससे मूत्रमें रक्तवर्धनकी शक्तिका भी वर्धन होता है। जो लोग खट्टी चीजोंका कतई सेवन नहीं करते उनका मूत्र उनके शरीरमें रक्तका वर्धन पर्याप्त मात्रामें नहीं कर पायेगा! चौबीस घण्टोंमें एक छटाँकसे अधिक चीनी, गुड़ या शहदका सेवन लाभकर नहीं होता है। इस चिकित्सामें जहाँ अल्पाहार नितान्त आवश्यक है, पेयोंका भी अल्पपान ही होना चाहिये। एक समयमें पाव किलोसे अधिक किसी भी प्रकारके पेय (पानी, दूध, रस) का पान नहीं करना चाहिये। विटामिनकी दृष्टिसे मूत्र अति सघन बताया जाता है।

मेरा यह सुझाव या आग्रह कदापि नहीं है कि जनता मूत्र-चिकित्साप्रणालीको अपनाये ही। मेरा आशय केवल यह है कि पर-मूत्र-निर्मित इन्जेक्शन तथा औषधियोंके इस्तेमालकी अपेक्षा स्वमूत्रचिकित्सा कहीं अधिक निरापद और आपत्तिरहित है। यह अवश्य है कि जहाँ सब चिकित्सापद्धतियाँ विफल हो जाती हैं, वहाँ निश्चय ही स्वमूत्र-चिकित्सा-पद्धति पूर्णतः सफल होती है। स्वमूत्रचिकित्सा-पद्धतिके लिए स्वशरीरका कोई रोग असाध्य नहीं है। यह भी है कि इस पद्धतिको अपनाकर अल्पधन और निर्धन अपने धन और समयकी बचत कर सकते हैं।

इस मिथ्या ग्लानिको त्याग देना चाहिये कि गौ आदि पशुओंका मूत्र मानवके अपने मूत्रसे अधिक पवित्र और उपादेय है। पशुओंमें सबसे अधिक पवित्र मूत्र बकरीका और फिर गौ का है। इनके मूत्रसे भी अधिक पवित्र मनुष्यका अपना मूत्र है।

सर्वप्रथम मैं उन रोगोंकी स्वमूत्रचिकित्साका उल्लेख करूँगा जिनके कारण मनुष्यका जीवन मृत्युके झूलेमें झूलता रहता है, फिर उन रोगोंकी चिकित्साका, जिनमें शेष चिकित्सापद्धतियाँ अपनेको निरुपाय पाती हैं और फिर सामान्य रोगोंकी चिकित्साका।

('स्वस्थ जीवन', दिसम्बर, १९७१ से साभार)

स्वमूत्र-चिकित्सा – २

— विद्यानन्द 'विदेह'

स्वमूत्र प्रयोग विधि

स्वमूत्रके पाँच प्रयोग हैं–– (१) पान, (२) लेप, (३) मालिश, (४) बिंदुपातन (बूँदें डालना) और (५) मार्जन (धोना)।

रातको शयनावस्थामें आपके मूत्राशयमें जो मूत्र एकत्र हुआ है, पानके लिए वह मूत्र प्रथम कोटिका है। यदि आप दिनमें भी लगातार एक या दो घंटा सोते हैं, तो उस शयनावस्थामें एकत्र हुआ मूत्र दूसरी कोटिका है। हर दो, तीन या चार घंटे बाद विसर्जित मूत्र तीसरी कोटिका है।

लेप तथा मालिशके लिए सभी समयोंमें एकत्र किया आपका मूत्र कम-से-कम तीन दिन और तीन रात पुराना होना चाहिये। मूत्र जितना अधिक पुराना होगा वह उतना ही अधिक प्रभावकारी होगा, किन्तु सात दिन और सात रातसे अधिक पुराना न हो। लेप या मालिश करनेसे पूर्व मूत्रको बारीक कपड़ेसे छान लेना चाहिये। जिस पात्रमें मूत्रका संग्रह किया जाये वह सदैव अच्छी प्रकार ढका रहना चाहिये। उसमें कोई जन्तु या पदार्थ प्रवेश न करने पाये।

बिंदुपातन और मार्जनके लिए ताज़ा मूत्रका ही प्रयोग किया जाता है। कतिपय रोगोंमें मूत्रकी धार दी जाती है। वह भी ताज़ा मूत्रकी ही होती है।

हृदय-रोग और स्वमूत्र

धड़कन, फड़कन, उछाल, विषम गति, दुर्बलता, क्षति, स्खलन, विकलता, आकारवृद्धि, शूल आदि हृदयके जितने भी रोग हैं उन सबकी चिकित्सा आप अपने मूत्रसे इस प्रकार कीजिये—

(१) रात्रि-शयनके उपरान्त जब आप प्रातः सोकर उठें तो बिस्तर पर लेटे-लेटे या बैठकर, जैसा भी आपका नियम हो, ईश-स्तवन अथवा ईशवन्दना कीजिये।

(२) अपना काचका स्वच्छ गिलास लेकर मूत्रालय या एकान्त स्थानमें जाकर अपने गिलासमें मूत्रविसर्जन कीजिये। विसर्जित मूत्र यदि पाव किलोसे अधिक है तो शेषको बाहर फेंककर अपने गिलासमें केवल पाव किलो मूत्र रहने दीजिये और आँखोंकी पलकें बन्द करके उसे एक ही साँसमें शीघ्रसे शीघ्र पी जाइये। बेहतर यह होगा कि आप पाव किलोका ही गिलास उपयोगमें लाइये, ताकि शेष मूत्र बाहर फेंकनेमें समय ख़राब न हो। मूत्राशयसे बाहर निकलते हुए आपके मूत्रमें दो गैसें मिली होती हैं जो हृदयरोगके विनाशमें अतिशय गुण-कारी होती हैं। मूत्रके गिलासमें उतरते ही यदि एक मिनटके भीतर ही उसका पान न किया गया तो वे दोनों गैसें हवामें उड़ जायेंगी। मूत्रकी पाव किलोकी मात्रा बीस वर्षसे अधिक किसी भी आयुके रोगीके लिए है। बीस वर्षसे कम आयुके रोगीके लिए मूत्रकी मात्रा एक बटा आठ किलो (एक किलोका आठवाँ भाग) है। इस आयुके रोगीका गिलास उतना ही बड़ा हो जिसमें एक बटा आठ किलो ही मूत्र आये। यदि मूत्र कम मात्रामें उतरता है तो उतनी ही मात्रामें सेवन कीजिये।

(३) भोजन करनेसे पूर्व एक बार और भोजनके मध्यमें दो बार थोड़ा-थोड़ा रस, छाछ या जल अवश्य पीयें।

(४) रात्रि-शयनसे तीन घंटे पूर्व भोजन कीजिये। भोजनके उपरान्त सिवाय रस या जलके अन्य किसी वस्तुका सेवन न कीजिये।

(५) रात्रि-शयनके समय पुनः अपने ताजा मूत्रका पान कीजिये, जो उपर्युक्त मात्रासे कम भले ही हो, अधिक न हो।

(६) स्नान करनेसे पूर्व बैठकर अपने पुराने एकत्र मूत्रमें से कुछ मूत्र लेकर पाँच मिनट अपनी हथेलियों और अँगुलियोंसे धीरे-धीरे अपने सीने पर मालिश कीजिये।

('स्वस्थ जीवन', मार्च, १९७२ से साभार)

६

प्राकृतिक चिकित्सक और मूत्रचिकित्सा

—हंस

श्री आर्मस्टॉङ्गका यह कथन—"The Urine-therapy is a Nature-cure in the most literal sense of the word." अर्थात् मूत्रचिकित्सा बिल्कुल सच्चे अर्थमें प्राकृतिक उपचार है, चरितार्थ हो रहा है। अनेक प्राकृतिक चिकित्सक मूत्रकी रोगनाशक शक्तिका लोहा मानने लग गये हैं। प्राकृतिक चिकित्सालय, जसिडीह (बिहार) के संचालक श्री महावीरप्रसाद पोद्दार मूत्रप्रयोगसे भी रोगियोंका उपचार करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सालय, जयपुर (राजस्थान) के संचालक डा० सुखरामदासजी मूत्रप्रयोगमें श्रद्धा रखते हैं। उन्होंने खुद भी इस प्रयोगसे लाभ उठाया है। वे आवश्यकताके अनुसार रोगीको यह उपचार करनेकी सलाह और प्रेरणा भी देते हैं। वे अपने एक पत्रमें लिखते हैं—"स्वमूत्र चिकित्साका इतना व्यवस्थित अनुभव है नहीं, परन्तु कई मामलोंमें मैंने पाया कि इसका अच्छा असर पड़ता है।" उनके चिकित्सालयमें 'आरोग्यका अमूल्य साधन—स्वमूत्र' की भी बिक्री होती रहती है।

निसर्गोपचार आश्रम, उरूलीकांचन (पूना) के संचालक श्री बालकोबा भावे शिवाम्बु-चिकित्साको स्वावलम्बी और अमूल्य मानते हैं। उन्होंने स्वयं इससे लाभ उठाकर स्व० श्री रावजीभाई मणिभाई पटेलको लिखा था कि मूत्रचिकित्सा प्राकृतिक चिकित्साका एक अंग है।

डा० रॅन्डोल्फ़ स्टोन अमेरिकाके एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक हैं। उन्होंने ''Energy the Vital Principle in the Healing Art,' 'Polarity Therapy,' 'Wireless Anatomy of Man' इत्यादि अनेक पुस्तकें लिखी हैं। उन्हें योग तथा अध्यात्म विद्याका अच्छा ज्ञान एवं अनुभव है। वे अपनी अध्यात्मक्षुधाकी शान्तिके लिए लगभग सात वर्षोंसे प्रति वर्ष छ: मासके लिए ब्यास (अमृतसर, पंजाब) आते हैं। वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। उनकी आयु ८० वर्षसे अधिक है। वे मूत्रको अमृत मानते हैं। उन्होंने स्वस्थ होने तथा स्वस्थ रहनेके लिए दैनिक पाँच नियम बताये हैं, जिनमेंसे निम्नलिखित पहले दो नियम मूत्रप्रयोगके बारेमें हैं :—

१. प्रात: ५–६ बजे उठते ही अपना ताज़ा पेशाब एक या दो गिलास भरकर पियें, उससे अपनी आँखें धोयें और गरदन, मुँह, कानों और सिरकी तेज़ीके साथ मालिश करें। फिर पानीसे धो डालें।

२. चुल्लूभर पेशाबको नाकमें सुड़क कर चढ़ायें और निकाल दें। इससे नासिकाएँ साफ़ हो जाती हैं और बहुतसे सिरदर्द भी ठीक हो जाते हैं।

श्रीमती आशा मेहताने मुझे बताया था कि यदि कोई रोगी मूत्रप्रयोग करनेके लिए तैयार न हो तो वे उसका इलाज नहीं करते। मैंने अपने एक दमेसे पीड़ित सम्बन्धीके बारेमें पूछा था तो उन्होंने मूत्रप्रयोग करानेकी सलाह दी थी।

७

प्राकृतिक चिकित्सामें स्वमूत्रचिकित्सा*

Leslie. O. Korth, D. O., M. B. H. A. (Hon. F.AC.A. (Hon.) U.S.A.

(१) जब मैं बालक था तब जाड़ेमें मेरे हाथ बहुत फट गये थे और ऊपरी भागमें चीरे पड़ गये थे, जो अत्यन्त पीड़ाकारी थे। हाथोंको स्वमूत्रसे धोनेसे पीड़ा बहुत कम हो गयी और दो ही दिनमें वे एकदम ठीक हो गये। एक्ज़ीमा तथा अन्य चर्म रोगोंके लिए मूत्रकी गद्दियाँ बहुत लाभकारी हैं।

(२) कुछ बरस हुए एक रोगी मेरे पास आया, जिसकी छातीका कैन्सर बहुत बढ़ चुका था। उसका दृश्य भयानक था और दुर्गन्धका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

मैंने तुरन्त उसे सुझाया कि वह गहरे खुले घाव पर अपने पेशाबसे तर की हुई गद्दी रखे, सूख जाने पर नयी गद्दी और अन्तिम गद्दी सोते समय रखे।

इसका अद्‌भुत परिणाम यह आया कि घोर घृणाजनक दुर्गन्ध कुछ ही दिनोंमें नष्ट हो गयी, जिससे रोगी और लंदनके कैन्सर विशेषज्ञ चकित हो गये। रोगीका धैर्य भी बहुत बढ़ गया। मैं कह नहीं सकता

---

* डा० परागजीभाई देसाईका 'स्वमूत्र चिकित्सा' संबंधी एक लेख ब्रिटिश नेचरोपैथिक जर्नलके शरत् १९७३-७४ के अंकमें प्रकाशित हुआ था, जिसके समर्थनमें उसी जर्नलके हेमन्त १९७३-७४ के अंकमें यह लेख भी छपा था। लेखकने इसमें अपने कुछ अनुभव दिये हैं।
—संपा०

कि उसका शेष जीवन कैसे बीता, क्योंकि मेरा सम्पर्क नहीं रहा। वह मेरे पड़ोसमें नहीं रहती थी।

(३) लगभग ४७ बरसका एक पुरुष ल्यूकेमियाका शिकार हो गया। उसके विशेषज्ञके अनुसार वह कुछ ही दिनोंका मेहमान था। मैंने उसे मूत्रोपचार बताया और आर्मस्ट्रॉङ्गकी पुस्तक 'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' पढ़नेको दी, जिसे पढ़कर उसने मूत्रप्रयोग किया। उसके स्वास्थ्यमें साधारण सुधार हुआ और शीघ्र मृत्युकी भविष्यवाणी के बावजूद वह पाँच वर्ष तक जीता रहा।

(४) प्रथम विश्वयुद्धमें डा० डन्कनने घायल सैनिकोंसे टीनकी टोपियोंमें पेशाब करनेको कहा। कुछ सैनिकोंने तो उस पेशाबसे अपने घाव स्वयं धोये और कुछने दूसरोंकी मददसे धोये। कहा जाता है कि एक भी सैनिकके घाव गले-सड़े नहीं।

(५) डा० के० हर्ज़ने 'स्वमूत्र चिकित्सा' पर लिखा है। उन्होंने निम्नलिखित व्याधियों एवं पीड़ाओंकी स्वमूत्र चिकित्सा की है, जो प्रभावशाली है :—

१. मूत्रमार्गकी संक्रामक सूजन।

२. गर्भावस्थामें विषैला रोग।

३. एलर्जीस : दमा, हे फ़ीवर (घासज्वर), नाककी सूजन, पित्ती —शरीर पर लाल चकत्ते।

४. आकस्मिक दशाएँ।

५. चर्मरोग

६. संक्रामक रोग।

इन रोगोंकी भी स्वमूत्र चिकित्सा की है :—

रिनाडका रोग, मासिक धर्मकी पीड़ा, मधुप्रमेह, सारे शरीरकी धमनियोंके संकुचित और सख्त हो जानेसे रक्त प्रवाह ठीक न होना, आकुलताकी दशाएँ —— विशेषत: रजोनिवृत्तिके समय, इत्यादि ।

८

बीयरसे मुक्ति कैसे ?

—एस० एल० जेमिसन A.A.,B.S.,D.V.M.,N.D.,D.D., Maripsoa, California.

डा० जेमिसनके साथ डा० परागजीभाई देसाईका पत्रव्यवहार हुआ है। डा० देसाई द्वारा भेजी गयी स्वमूत्रचिकित्सा संबंधी सामग्री से उन्हें बहुत सन्तोष एवं प्रसन्नता हुई है। वे स्वमूत्र चिकित्साको वैज्ञानिक दृष्टिसे ठीक समझते हैं और यह मानते हैं कि स्वमूत्रमें रोगनाशक सभी उपयोगी तत्त्व विद्यमान हैं। फिर वे स्वमूत्रकी रोगनाशक शक्तिको एक सिद्ध तथ्य समझते हैं। वे इस चिकित्साका अनुसंधान भी करते हैं। उन्होंने डा० देसाईको यह विश्वास दिलाया है कि वे स्वमूत्र चिकित्साकी प्रगतिके लिए भरसक प्रयत्न करेंगे।

रोगपीड़ित मनुष्य-जातिके लिए डा० देसाईकी चिन्ताकी कदर करते हुए वे ता० १०-११-'७३ के पत्रमें लिखते हैं कि संयुक्त अमेरिकाकी हमारी सरकार शायद विश्वमें सबसे अधिक अपराधी है। उसकी यह पालिसी है कि अस्वस्थता किंवा रुग्णता बनी रहे, क्योंकि वह धनकुबेर है।

बीयरकी गुलामीसे छुटकारा पानेके लिए वे इस प्रकार लिखते हैं :—

"बीयर, पसीना और पेशाबमें खनिजोंका परिमाण समान है और इनका स्वाद एवं रंग भी एकसा है। शरीरके लिए उपयोगी एवं आवश्यक हार्मोन्स बीयरकी अपेक्षा स्वमूत्रमें अधिक हैं, जिसे आर्मस्ट्रॉङ्गकी पुस्तक 'दी वॉटर ऑफ़ लाइफ़' प्रमाणित करती है।

"बीयरकी भाँति मूत्रमें केवल खनिज ही नहीं हैं, परन्तु हार्मोन्स तथा विटामिन भी हैं। सामाजिक परिस्थितिके कारण हम सोचते हैं

कि स्वमूत्रपान घृणाजनक और हमारे स्वास्थ्यके लिए हानिकारक है। ऐसा सोचना भ्रान्त एवं मिथ्या है। **स्वमूत्र तो परम कल्याणकारी** है। जब हम दोएक दिन स्वमूत्र पी लेते हैं तो बीयर पीनेकी उत्तेजक इच्छा नष्ट हो जाती है और फिर पेशाब पीना चालू रखें।

"जब तक मैंने बाइबलके 'न्यू वर्ल्ड ट्रान्सलेशन' में प्रोवर्ब्स ५: १५-१८ नहीं पढ़ी थीं तब तक मैं स्वमूत्रपानका साहस नहीं कर सका था। यह एकदम स्पष्ट है कि सर्वोच्च प्रमाण पुस्तक स्वमूत्रपानकी शिक्षा देती है।

"स्वमूत्रपानसे बीयर पीनेसे बढ़ी हुई चर्बी कुछ ही दिनोंमें दूर हो जायेगी और आपका शरीर सुगठित तथा फुरतीला हो हो जायेगा। फिर स्वमूत्रके हार्मोन्ससे आपको इतना पोषण प्राप्त होगा कि भोजनकी इच्छा एवं आवश्यकता बहुत कम हो जायेगी और आप अनायास ही परिमित आहार पर रह कर अपनी दृढ़ संकल्पशक्तिसे अपने मित्रोंको प्रभावित कर सकेंगे।

"ताज़े पेशाबका स्वाद बिलकुल अरुचिकर नहीं है—एप्सम साल्ट जितना भी अप्रीतिकर नहीं है।

"जरा दिल कड़ा करके एक बार मूत्रपान किया नहीं कि वह सधा नहीं।"

एस० एल० जेमिसन मानवमूत्र संबंधी अनुसंधान भी कर रहे हैं। उनके अनुसंधानका साराश निम्नलिखित है :—

"मैं कई सप्ताहोंसे मूत्रचिकित्सा प्रणालीके विषयमें विचार करता रहा हूँ और इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यह प्रणाली पूर्णतः वैज्ञानिक है।

"जब शरीर रुग्ण अथवा घायल होता है तब विशेष प्रकारके अग्नितत्त्व (enzymes) पैदा होते हैं जो शरीरको स्वस्थ बनाते हैं। कुछ वर्ष पहले स्विट्ज़रलैंडमें बर्न शहरमें एक कान्फरेन्स enzymes के विषयमें हुई थी। उसमें enzymes के विश्लेषणसे रोगके निदानके विषयमें विचार हुआ था। enzymes के विषयमें

खोज करना कोई आसान काम नहीं है और विशेषतः शरीरसे बाहर निकलनेवाले enzymes का पता लगाना और भी कठिन है।

"जब हम यह सोचते हैं कि जो enzymes शरीरमें उत्पन्न होते हैं वे अवश्य मूत्रके द्वारा बाहर निकलते हैं और उस मूत्रको पुनः ग्रहण करके वास्तवमें हम enzymes को ही शरीरमें प्रविष्ट करते हैं और इस प्रकारसे autogenous enzyme चिकित्सा प्रणालीका व्यवहार कर रहे होते हैं।

"मेरा अपना सिद्धान्त है कि यकृत मूत्रके मलपदार्थोंको शुद्ध करता है और उस शुद्ध मूत्र द्वारा चिकित्सा और भी सुगम तथा प्रभावशाली हो जाती है।

"सब जानते हैं कि मूत्रमें (Hormones) अन्तःस्राव भी पर्याप्त मात्रामें होते हैं। डाक्टर सिमियोनसने अपने अन्वेषणोंसे यह पता लगाया है कि मूत्र ग्रहण करनेसे मनुष्यकी भूख कम हो जाती है। डॉ० साइमन मोटापा दूर करनेके सम्बन्धमें खोज कर रहे थे और उन्होंने यह सिद्ध किया है कि शरीरके अनुचित अंगोंमें चर्बीका इकट्ठा हो जाना मध्य मस्तिष्कके किसी भागमें विकार उत्पन्न करता है। देखा गया है कि इस भागसे निकलनेवाला एक विशेष प्रकारका अन्तःस्राव, जिसका नाम Chorionicdiencephalon-otropin है, शरीरमें चर्बीको संचित होनेसे रोकता है। डॉ० साइ-मनने मोटापेकी चिकित्सा के लिए H. C. G. नामके विशेष Hormone का उपयोग किया है। उसने यह सुझाव दिया है कि H. C. G. का नाम Chorionicdiencephalon otropin रख देना चाहिए।

"मेरा अपना विचार है कि मूत्रमें स्वभावतः एक अन्तःस्राव (Hormone) होता है जिसे Nephrodiencephalon otropin कहते हैं। यह उसी प्रकारके कार्यको करता है।

"यह प्रतीत होता है कि अगर मध्य मस्तिष्कके कार्यको ठीक कर दिया जाए, तो शरीरके सब कार्य ठीक ढंगसे होंगे और इसके लिए मूत्रचिकित्सा प्रणाली विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य करती है।"

परिशिष्ट – १

मूत्रचिकित्साका हार्द

(मार्गदर्शक प्रश्नोत्तरी)

प्रस्तुत पुस्तकके सिलसिलेमें मुझे कुछ ऐसा अनुभव हुआ है कि पाठक प्रायः न तो पुस्तकको एकाग्रता तथा सावधानतासे पढ़ते हैं और न ही उसके बारेमें गंभीरतासे सोचते हैं। उनकी दशा रामायणके उन श्रोताओं जैसी है जो सारी रामायण सुनकर कथाकारसे यह प्रश्न करते हैं — 'राम राक्षस था कि रावण राक्षस था?' पुस्तकमें यथास्थान सभी बातोंकी स्पष्टता की गयी है, फिर भी उन बातोंके बारेमें मेरे पास प्रश्न आते हैं। इसी तरह 'मूत्रचिकित्सानो स्वानुभव' नामक मेरे लेखकी स्पष्ट बातोंके बारेमें अनेक पाठक मुझे प्रश्न पूछते रहे हैं, उन सबके उत्तर देते-देते मैं थक गया हूँ। इसलिए परिशिष्टके रूपमें यह प्रश्नोत्तरी देना ज़रूरी मालूम होता है। आशा है कि पाठकोंके लिए यह सरल और सुविधाजनक सिद्ध होगी।

प्रश्न — मूत्रचिकित्सासे कौनसे रोग मिटते हैं?

उत्तर — मूत्र किसी एक या अनेक रोगोंकी दवा नहीं है। प्रकृति-दत्त इस शरीरको सदा स्वस्थ तथा स्फूर्तिमान बनाये रखनेके लिए मनुष्यको यह प्राकृतिक साधन मिला है।

प्रश्न — अर्थात् हमें कोई भी रोग हुआ हो तो वह मूत्र-चिकित्सासे मिट जाता है, ऐसा आप कहते हैं ?

उत्तर — ऐसा मैं नहीं कहता, प्रकृति कहती है। मैंने आपकी तरह समझनेका प्रयत्न किया और मैं समझा हूँ।

प्रश्न — तो फिर मुझे कौनसा रोग हुआ है, उसे भी मुझे जाननेकी ज़रूरत नहीं है।

उत्तर — जब हमने इसे शारीरिक स्वास्थ्यकी रक्षाका साधन मान लिया तब जाननेकी ज़रूरत नहीं रहती कि शरीरमें कौनसा रोग हुआ है। रोगको खोज निकालनेका काम मूत्र स्वयं करता है और उस रोगरूपी चोरका कान पकड़कर शरीररूपी घरसे बाहर निकाल देता है।

प्रश्न — आपकी यह बात ठीक तरहसे समझमें नहीं आयी। ज़रा एकाध मिसाल देकर समझाइये।

उत्तर — अच्छा, मैं एक ऐतिहासिक तथ्य बताकर आपको समझानेका प्रयत्न करता हूँ। बहुत बरस पहले मुझे यह मालूम हुआ कि योगसाधना करनेवाले साधकोंको योगाभ्यास शुरू करनेसे पहले अपना शरीर संपूर्ण स्वस्थ बना लेना चाहिये। ऐसा न हो तो कोई भी साधारण रोग योगसाधनाकी मुख्य चाबी अर्थात् एकाग्रता प्राप्त करनेमें बाधक होता है। एकाग्रताकी सिद्धिके लिए ध्यानमें बैठे कि खाँसी शुरू हो जाये या आधासीसी हो जाये या पेट दर्द करने लगे या दस्त लग जायें, तो तुरन्त एकाग्र होनेमें विक्षेप आता है और अस्थिरता आ जाती है। ऐसी अस्थिरतासे योग कभी सफल नहीं हो सकता। इसलिए योगाभ्यास करनेवालेका शरीर सर्वथा नीरोग होना चाहिये। यह कैसे हो? यह कैसे पता चले कि शरीरमें कौनसा छोटा या बड़ा रोग है? किस वैद्य या डाक्टरको दिखाकर सच्चा निदान तथा उपचार कराया जाये? इस प्रकार कभी सच्चा तथा सुरक्षित निर्णय नहीं हो सकता। इसलिए योगियोंने अभ्यास से या

सहज प्रेरणासे ऐसा निर्णय किया कि मनुष्यके शरीरमें ही ऐसे संपूर्ण द्रव्य हैं, जिनके उचित उपयोगसे बिगड़े हुए स्वास्थ्यको ठीक किया जा सकता है और उसे सुरक्षित रखा जा सकता है।

प्रश्न—यह तो अद्‌भुत बात है। यदि ऐसा था तो आज तक यह फ़िलासफ़ी कहाँ चली गयी थी? अभी एकदम कहाँसे टपक पड़ी?

उत्तर—यह फ़िलासफ़ी कहीं चली तो नहीं गयी थी। हमारे आसपास ही खेल रही थी, अब भी खेल रही है, और उसे हम अपनी आँखोंसे देखते हैं; परन्तु हमारी व्यभिचारिणी बुद्धि हमें यह समझने नहीं देती।

प्रश्न—आपकी अलंकारवाली भाषा समझमें नहीं आयी। जरा स्पष्ट शब्दोंमें समझानेका कष्ट करें।

उत्तर—ईश्वरने इस विराट् विश्वमें असंख्य प्रकारके स्थावर और जंगम जीवोंकी रचना की। अन्तमें मानव-शरीरकी रचना करके तो उसने कमाल ही कर दिया। ईश्वरकी सृष्टिमें यह सर्वश्रेष्ठ कृति है। ईश्वरने जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, जलचर, भूचर और खेचर जीवोंको जो साधन दिया है वही साधन मनुष्यको भी दिया है। दूसरे जीव ईश्वरकी दी हुई प्रेरणाके अधीन होकर उस साधनका सफल उपयोग करते हैं। केवल मनुष्य ही बुद्धिके घमंडमें आकर उसका ठीक उपयोग नहीं करता। वह मुख्यतः स्वार्थसाधनकी दृष्टिसे अपनी बुद्धि द्वारा वैज्ञानिक साधनोंकी खोज किया करता है, जिसे मैं बुद्धिका व्यभिचार मानता हूँ। मानव-सेवाके लिए दी हुई बुद्धिको धनप्राप्तिका साधन बनाना बुद्धिके साथ व्यभिचार करना है।

प्रश्न—अब मैं आपकी कटाक्षकी भाषाको समझा। आप यह कहना चाहते हैं कि जैसे पालतू या भटकते हुए पशु-पक्षी अपना स्वास्थ्य अपने साधनसे ठीक कर लेते हैं, वैसे हमें भी उसे ठीक करके ईश्वरदत्त इस शरीरको संपूर्ण तथा स्वाधीन रखना चाहिये।

इसके बदले हमने अपने शरीरको दूसरे जड़ या सजीव साधनोंका गुलाम बना डाला है। तो क्या मनुष्यको भी पशु-पक्षियोंकी तरह कुदरती प्रेरणाके आधार पर जीवित रहना चाहिये और ईश्वरकी दी हुई बुद्धिका कोई उपयोग नहीं करना चाहिये?

उत्तर —- आप मेरे आशयको समझे तो सही, परन्तु मैं यह नहीं कहता कि हमें केवल जानवरोंकी तरह कुदरती प्रेरणा पर ही जीना चाहिये, अपितु हमें उस बुद्धिका भी उपयोग करना चाहिये, परन्तु उसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिये।

प्रश्न —- ठहरिये! ठहरिये! बुद्धिके सदुपयोग और दुरुपयोगकी बात यहाँ कहाँ है? यहाँ तो बुद्धिका उपयोग करनेकी बात है। क्या मनुष्य अपनी बुद्धिका उपयोग भी न करे?

उत्तर —- बुद्धिका उपयोग अवश्य करे, परन्तु वह प्रकृतिके सहयोगमें रहकर उसका उपयोग करे, तभी मानवजातिका हित हो सकता है। प्रकृतिके विरुद्ध जाकर उसका उपयोग किया जाये तो वह बुद्धिका दुरुपयोग कहलाता है और उससे मानवजातिका अहित होता है। परन्तु हम दूसरी पटरी पर चढ़ गये। बुद्धिहीन पशु जिस साधनका उपयोग अव्यवस्थित रूपसे करते हैं, बुद्धियुक्त मनुष्य उसी साधनका उपयोग व्यवस्थित और विवेकपूर्वक करे तो वह प्रकृतिका पूरा लाभ उठा सके।

प्रश्न —- आपकी यह बात तो मेरी समझमें आ गई। परन्तु मेरे मनमें एक प्रश्न उठा करता है कि हम उस दिव्य साधनको कैसे भूल गये?

उत्तर —- अब इसके कारणोंकी तफ़सीलमें या गहराईमें जानेकी ज़रूरत नहीं है। चाहे जो कारण हों, परन्तु हमने इस प्राकृतिक अमूल्य द्रव्यको मलिन तथा घृणित मान लिया। जो अधिक नाक-भौं चढ़ाये और रूमालसे अपनी नाक बंद करके रखे, वह अधिक संस्कारी, साफ़-सुथरा और धर्मिष्ठ समझा जाने लगा। इस बाह्य शुद्धिके भुलावेमें सच्ची वस्तु लुप्त हो गयी। हमने असली चीज़ खो दी।

प्रश्न — आपकी यह बात तो यथार्थ है, किन्तु इस प्राकृतिक साधनमें कुछ कमी है, इसे तो आप भी स्वीकार करेंगे न? इसका स्वाद कुछ अरुचिकर है। इसकी गंध भी कुछ ऐसी है कि इसे पीते हुए कंपकंपी होने लगती है, ऐसा कहनेमें कोई अतिशयोक्ति तो नहीं है? इसका क्या उपाय?

उत्तर — आपकी दलील किसी हद तक ठीक है। इसका आधार तो व्यक्तिगत आदत है। खसके सुगन्धित इत्रकी गन्धसे अफ्रीकाका सीदी अपनी नाक चढ़ा लेता है और बदबू आती है, यह कहकर वह दूर भागता है। शराब न पीनेवाले व्यक्तिको उसकी गन्ध असह्य लगती है। मैं तो यह मानता हूँ कि सुगन्ध, दुर्गन्ध, स्वाद, बेस्वाद, आदि सब चोचले तभी तक हमें सूझते हैं जब तक हमें उससे प्रयोजन नहीं है। दुःखों तथा रोगोंसे छुटकारा पानेके लिए चाहे जैसी बदबू-दार या बेस्वाद लगनेवाली कड़वी दवा तो हम गटका जाते हैं। किन्तु सच बात तो यह है कि जब किसी साधनके प्रति श्रद्धा हो जाती है, तो बुरीसे बुरी चीज़ भी अच्छी लगती है। इसलिए असली बात तो हृदयके निश्चयकी या श्रद्धाकी है। मनुष्यका स्वमूत्र उसके शारीरिक स्वास्थ्यके लिए फौलादी बख्तर है, यह बात हमारे दिलमें जम जानी चाहिये और इस बारेमें पूरी श्रद्धा होनी चाहिये। पिछले कई महीनोंमें मैंने स्वयं ऐसे अनेक लोगोंको देखा है जिन्हें मूत्रकी बात सुनते ही कंपकंपी छूटती थी और फिर उन्हीं लोगोंने मूत्र पीकर अपने आपको शारीरिक व्याधिके भयसे मुक्त कर लिया है। इसलिए आपकी दुर्गन्ध या बेस्वादकी दलील टिक नहीं सकती, क्योंकि लोग रोगों और उनके खर्चीले उपचारसे इतने तंग आ गये हैं कि यह अद्भुत तथा अमूल्य द्रव्य उनके विश्वासका पात्र बने बिना रह नहीं सकता। भारतवर्षकी जनतामें यह जीवट है ही कि ज़रूरतके वक्त वह सच्ची वस्तुको अपना लेती है।

प्रश्न —— आपकी बात गंभीरतासे विचारणीय है, इसमें कोई शक नहीं, किन्तु वैज्ञानिक किसी हिकमतसे इसकी दुर्गन्ध तथा कुस्वादको नष्ट कर दें, यह क्या इष्ट नहीं है?

उत्तर —— इस विषयमें मुझे तो शंका है। प्रत्येक व्यक्तिके लिए स्वमूत्र हितकर है। चिकित्साशास्त्रकी दृष्टिसे भी यह उसीके शरीरके लिए उपयोगी है। इसलिए प्रकृतिने जो द्रव्य उसके शरीरसे निकाला है, जिससे अमुक तत्त्वोंकी क्षति हुई, अतः वह उसे वापस देनेसे ही उन तत्त्वोंकी क्षतिपूर्ति हो सकती है। परन्तु आपके कथनके अनुसार इसकी दुर्गन्ध तथा कुस्वादको निकाल देने पर इसके मूल तत्त्व रहेंगे या नष्ट हो जायेंगे, इसका निर्णय भी तो वैज्ञानिक ढंगसे होना चाहिये। मुझे तो विश्वास है कि वैसा करनेसे इसके महत्त्वमें बहुत अन्तर आ जायेगा। फिर भी कोई वैज्ञानिक मूत्रके गुणदोषोंमें तनिक भी अन्तर न आने देकर अपेक्षित संशोधन करे तो मुझे उसमें कोई आपत्ति न होगी। दूसरी एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि मूत्र वैयक्तिक दृष्टिसे उपयोगी है अर्थात् स्वमूत्र स्वके लिए उपयोगी है, परके लिए नहीं। इसलिए इसके सामुदायिक संशोधनसे कुछ बात बनेगी नहीं, प्रत्युत उस संशोधनसे एक बड़ा खतरा यह पैदा होगा कि एक-दूसरेके मूत्रके उपयोगसे एक-दूसरेके रोगके संक्रमणकी पूरी पूरी संभावना है। इसलिए मैं तो यह मानता हूँ कि ऐसा संशोधन किसी वैज्ञानिकके बसकी बात नहीं है। प्रकृति स्वयं संपूर्ण है। उसे जैसी है वैसी ही रहने देनेमें हमारा सच्चा पुरुषार्थ है।

प्रश्न —— अब मुझे यह समझाइये कि शरीरके भिन्न-भिन्न रोगों पर उसका उपयोग कैसे किया जाये?

उत्तर —— मैं आपको पहले ही यह बता चुका हूँ कि मूत्र किसी एक रोगको मिटानेकी दवा नहीं है, किन्तु शारीरिक स्वास्थ्यको सुरक्षित रखनेके लिए और बिगड़े हुए स्वास्थ्यको ठीक करनेके लिए प्रकृतिका

दिया हुआ अमूल्य साधन है। इसी दृष्टिको सामने रखकर इसका उपयोग करना चाहिये। कोई यह न समझ बैठे कि शारीरिक स्वास्थ्य को सुरक्षित रखनेवाले द्रव्यके सेवनसे मनुष्य मृत्युसे भी मुक्त हो जाता है। जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु भी निश्चित है। परन्तु वह कब होगी, यह तो कोई नहीं जान सकता। किन्तु मूत्रमें इतनी शक्ति है कि उसका निष्ठापूर्वक सेवन करनेवाला व्यक्ति जीवन-पर्यन्त संपूर्ण स्वस्थ तथा नीरोग बना रहे और हँसते-हँसते मृत्युका आलिंगन करे। इस शक्तिका न्यूनाधिक अनुभव करना प्रत्येक व्यक्तिके पुरुषार्थ पर निर्भर है।

प्रश्न—आपने विशेष महत्त्वकी बात स्पष्ट कर दी, यह बहुत अच्छा हुआ। मेरे समझनेमें भी अब कोई गड़बड़ी नहीं रही। अब मुझे आगेकी बात समझाइये।

उत्तर—इतना निश्चित है कि स्वस्थ व्यक्तिके लिए मूत्रका नियमित उपयोग आवश्यक नहीं है, फिर भी दूरदर्शिता और साव-धानताकी दृष्टिसे प्रतिदिन थोड़ी मात्रामें वह मूत्रपान करता रहे तो इसमें कुछ नुकसान तो है नहीं, प्रत्युत कुछ फायदा ही है। इन्फ्लुएंज़ा, हैज़ा आदि संक्रामक रोगके समय दैनिक मूत्रपान उनसे बचाता है।

जो अपनी खराब सेहतके लिए इसका प्रयोग करना चाहते हैं वे भी अनेक रोगोंसे बचनेके लिए इसी एक उपायको अपनायें। वे इसका प्रयोग नीचे लिखे अनुसार कर सकते हैं:—

१. रोगकी गम्भीरताके अनुपातमें न्यूनाधिक मात्रामें नियमित मूत्रपान करें।

२. केवल मूत्र और पानीके साथ आवश्यकताके अनुसार उपवास करें।

३. पुराने पेशाबसे सारे शरीर पर काफी समय तक मालिश करें।

४. शरीर पर फोड़े-फुंसियाँ हों, जलनेसे फफोले या ज़ख्म हो गये हों, कोई अंग सड़ गया हो, छोटे-बड़े घाव हों या ऐसी कोई तकलीफ़ हो कि मालिश न हो सके, तब पुराने पेशाबसे तर की हुई पट्टीका उपयोग करें और उस पर पेशाब छींटते रहें।

५. पेड़ू जैसे नाज़ुक अंग पर या ऐसे भाग पर जहाँ अधिक मालिश न हो सकती हो वहाँ पेशाबकी पट्टी रखें।

नोट :—इस बारेमें विशेष जानकारीके लिए पुस्तकके तत्-सम्बन्धी प्रकरणको देखें।

प्रश्न —परन्तु इसके प्रयोगका आरंभ कहाँसे और किस प्रकार किया जाये, इसकी भी कुछ जानकारी दीजिये न?

उत्तर —हाँ, यह जानकारी भी आवश्यक है। कई लोग अत्यंत आवेश और उत्साहमें आकर इसके प्रयोगकी मर्यादा भूल जाते हैं, जिससे विपरीत परिणाम आता है। ऐसी अनेक घटनाएँ हुई हैं। इसके प्रयोगमें निश्चित मार्गदर्शन करनेवाला तो कोई विरला ही होता है। इसलिए प्रत्येक रोगीको प्रयोगकी दृष्टिसे अति सावधान रहना चाहिये और अधीर नहीं होना चाहिये। वस्तुतः सुरक्षित मार्ग यह है कि जिसे मूत्र पीनेसे घृणा आती हो या जिसका जी मतलाता हो, वह अपने आप पर ज़बरदस्ती न करे और थोड़े दिनके लिए रुक जाये। मालिशसे आरम्भ करना चाहिये। इस आज़ादीसे मालिश की जाये कि आधी नफरत दूर हो जाये। साथ-साथ ताजे पेशाबसे दाँतों और मसूड़ोंको घिसा जाये, जिससे दाँत मज़बूत बनेंगे और अगर उनमें कुछ खराबी होगी तो वह दूर हो जायेगी, क्योंकि मूत्र जन्तुनाशक भी है। और ऐसा करनेसे नफ़रत भी जाती रहेगी। एक बात सभीको जान लेनी चाहिये कि दुनियाभरमें ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जो निर्दोष होते हुए भी जन्तुनाशक हो।

प्रश्न -- आप इसे ज़रा और समझाइये। मुझे सुननेमें बहुत आनन्द आ रहा है।

उत्तर -- मूत्रमालिश करते करते दो चार रोज़ हो जायें तो फिर मूत्रपानके निर्णय पर आना चाहिये। प्रातःकाल जल्दी उठकर, हाथ-मुँह धोकर, साफ़ गिलासमें पेशाब करके श्रद्धा और भक्तिसे पी जाना चाहिये। उसके बाद थोड़ा पानी पिया जाये तो कोई हर्ज़ नहीं। इस प्रकार अपनी प्रकृतिको साधकर मूत्रप्रयोग किया जाये तो कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। परन्तु इच्छाके विरुद्ध अपनी प्रकृति पर ज़बर-दस्ती करके मूत्रपान किया जाये तो प्रकृति ही उसका विरोध करती है अर्थात् कै द्वारा उसे निकाल देती है और फिर शरीरमें अव्यवस्था खड़ी हो जाती है। इसलिए हमारी कोशिश यही रहे कि प्रतिक्रिया न होने पाये।

प्रश्न -- यह उपचार किस-किस रोग पर कितने-कितने दिनों तक करना चाहिये, ऐसा कुछ निश्चित है क्या?

उत्तर -- इस बारेमें पहलेसे कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। कई बार मुख्य रोगके साथ-साथ अनेक छोटे रोग भी शरीरमें होते हैं। इस उपचारसे पहले वे छोटे रोग भागने लगते हैं और बादमें मुख्य रोग भागता है। जबसे मालिशकी क्रिया शुरू होती है और एक बार पीना शुरू होता है तबसे शरीरमें रहे हुए छोटे-बड़े रोग भागनेकी तैयारी करने लगते हैं। कितने ही रोग तो मालिशसे ही विदा हो जाते हैं। जो रोग गंभीर होते हैं वे मूत्र और शुद्ध पानीके साथ उपवास करनेसे तथा कम या ज्यादा समय तक मालिश जारी रखनेसे दूर हो जाते हैं। इसलिए यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि अमुक रोग अमुक अवधिमें नष्ट हो जायेगा।

प्रश्न — इस उपचारको करते हुए क्या कोई अन्य तकलीफ़ पैदा होती है? यदि ऐसा हो जाये तो क्या करना चाहिये?

उत्तर — उपर्युक्त रीतिसे सावधानताके साथ उपचार शुरू किया हो तो प्रारम्भमें कुछ नहीं होता। परन्तु प्रयोग शुरू होते ही मूत्रको शरीरके भीतर विभिन्न अवयवोंको स्वच्छ करनेका काम करना पड़ता है। शरीरमें मल, कफ या दूसरे प्रकारका कचरा रास्ता रोक कर पड़ा हो तो मूत्र उसे बाहर निकाल देता है। वह तीन तरहसे निकालता है — दस्त, कै या चमड़ी द्वारा, अर्थात् उपवास-कालमें दस्त या कै होनेकी पूरी संभावना है। कई बार खुजली होकर शरीर पर गरमीकी फुंसियाँ भी निकल आती हैं। ऐसी दशामें ज़रा भी घबराना नहीं चाहिये। यही समझें कि मूत्रने अंदरकी सफाईका काम शुरू कर दिया है और हमें अपने प्रयोगको शांति तथा निश्चिन्ततासे स्थितप्रज्ञकी भाँति देखते रहना चाहिये। उस समय चाहे जैसे प्रिय मित्र या रिश्तेदारकी सलाह मानकर किसी प्रकारकी दवा या विजातीय द्रव्यको शरीरमें दाखिल नहीं करना चाहिये। जानबूझकर या भूलसे भी यदि कोई इस सूचनाका उल्लंघन करेगा तो उसे बड़ा खतरा उठाना पड़ेगा।

प्रश्न — तब क्या किया जाये? शरीरपर होनेवाली वह क्रिया-प्रतिक्रिया कब तक शान्त हो जायेगी? बिना किसी उपायके वह क्या शान्त हो जायेगी?

उत्तर — कुछ भी न करें। तटस्थ रहकर देखते रहें। शान्तिसे अपना काम करते रहें और मूत्रको अपना काम करने दें। उसका काम पूरा हो जाने पर सब ठीक हो जायेगा। तात्पर्य यह कि प्रयोगके दौरान जो नयी तकलीफ़ें खड़ी होंगी वे अपने-आप दूर हो जायेंगी।

प्रश्न — इस स्थितिमें उपवाससे रोगीकी शक्ति क्षीण नहीं होती? कहाँ तक टिक सकती है?

उत्तर — केवल पानीके साथ उपवास करनेसे रोगीकी अशक्ति बढ़ती है सही, परन्तु मूत्रके साथ उपवास करनेसे रोगीकी अशक्ति प्रायः अधिक नहीं बढ़ती; क्योंकि मूत्रके पोषक क्षारोंसे शरीरकी

शक्ति बनी रहती है। फिर भी कई अति गम्भीर और हठीले रोगोंमें अधिक उपवास करनेकी ज़रूरत रहती है। उस समय यदि रोगी अधिक अशक्तिका अनुभव करे, तो एक साथ दस उपवास करनेके बदले पाँच-पाँच उपवास दो बारमें करे और पन्द्रह उपवास एक साथ करनेके बदले तीन बारमें पाँच-पाँच उपवास करे। बीचके दिनोंमें फल आदिका पथ्य आहार लेकर अपनी शक्ति टिकाये रखे। ऐसा करनेसे इतना ही अन्तर पड़ता है कि जो कार्यसिद्धि एक साथ दस दिनोंके उपवासमें हो जाती वह दो या तीन बार पाँच-पाँच उपवास करनेसे पन्द्रह या बीस दिनमें होगी। यह तो मैंने शक्ति टिकाये रखकर उपवास करनेकी दूसरी रीति बतायी। यथासम्भव ऐसे लम्बे उपवास कम ही किये जायें।

प्रश्न — उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिये ?

उत्तर — इस उपचारमें उपवास छोड़ते समय और उसके बाद बहुत सावधान रहनेकी ज़रूरत है। यदि पूरी सावधानी न रखी गयी तो सारा परिश्रम व्यर्थ सिद्ध होगा। इसलिए उपवास छोड़ते समय और उसके बादके दिनोंमें हमें अपने आहार-विहारमें बहुत संयम रखना होगा।

सामान्य रूपसे तो यह कहा जा सकता है कि जितने दिनके उपवास किये हों, मूल आहार पर आनेमें कमसे कम उतने दिन तो लगने ही चाहिये। परन्तु प्रयोग करनेवाला अपनी जठराग्नि और प्रकृतिको ध्यानमें रखकर उन दिनोंमें कमी-बेशी भी कर सकता है। यह बात अवश्य ध्यानमें रखें कि उपवास छोड़नेके बाद एकदम असली खुराक पर आना खतरा मोल लेना है। सर्दीका मौसिम न हो तो मोसंबीका रस लेकर उपवास छोड़ा जा सकता है। मधुमेहका रोगी न हो तो रातभर पानीमें रखी हुई पाँच-सात खजूरें या पन्द्रह-बीस द्राक्षाओंको सुबह उसी पानीमें मसलकर और छानकर उनका रस लेना श्रेष्ठ है। दूसरी बार पपीतेके गूदेको एकरस करके और आव-

श्यकताके अनुसार उसमें नीबूका रस मिलाकर खाना चाहिये। फिर बारी-बारीसे चीकू आदि रसदार फल लेने चाहिये। दूसरे दिन फलोंके अतिरिक्त एक बार पानी मिलाकर उबाला हुआ दूध और दूसरी बार मलाई निकालकर केवल दूध लेना चाहिये। यह ध्यान रहे कि दूध पेश्च्यूराईज़्ड न हो और उसमें दानेदार खाँड न डाली जाये। फिर धीरे-धीरे मूँगका पतला और गाढ़ा रसा तथा खूब पका हुआ ढीला भात लिया जाये।

प्रश्न — आराम हो जानेके बाद रोगीको किस प्रकारका आहार लेना चाहिये?

उत्तर — यह एक जटिल प्रश्न है, क्योंकि सभी रोगोंका मूल अपथ्य आहार है। क्या खाना चाहिये, यह हमें मालूम नहीं है। कितना और किस प्रकार खाना चाहिये, इसका भी हमें ज्ञान नहीं है। जहाँ बैठे वहीं खाना, और कोई व्यक्ति जो कुछ भी दे दे, उसे खा लेना, ऐसी हमारी बुरी आदत है। आम तौर पर मेज़बान और मेहमानकी मनोदशा कुछ ऐसी होती है। मेज़बान यह समझता है कि अगर मेहमानसे कुछ खानेके लिए आग्रह न किया गया तो वह अविवेकी समझा जायेगा और मेहमान वैसे आग्रहकी ताकमें ही रहता है। अर्थात् तनिक-सा आग्रह होते ही वह खानेकी तत्परता बता देता है। परन्तु हमारे मनमें यह दृढ़ निश्चय होना चाहिये कि हम अमुक निश्चित समय पर ही पथ्य आहार करेंगे और लज्जा या आग्रहके वश नहीं होंगे, फिर चाहे हम किसी रईसके मेहमान ही क्यों न हों। हमारा नकार इतना स्पष्ट और दृढ़ हो कि मेज़बानके दिलमें यह यकीन हो जाये कि नकार शिष्टाचारका सूचक न होकर सचमुच खानेकी अनिच्छाका सूचक है। कई व्यक्ति तो घर पर छककर भोजन कर लेनेके बाद भी होटल और रेस्टोरांमें मित्रोंके साथ डट जाते हैं, तला हुआ मसालेदार नाश्ता उड़ाते हैं और ठंडे खाद्य और पेय डकारते जाते हैं। यह सब खराब आदतें हैं। जो अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करना चाहते हैं उन्हें ऐसी खराब आदतोंसे बचना चाहिये।

प्रश्न — यह तो आपने सर्वसामान्य बात बतायी। यह भी सूचित करें कि इस प्रयोगको करनेवाला कौनसा आहार ले और कौनसे आहारका त्याग करे?

उत्तर — मैं आहारके सम्बन्धमें कुछ विशेष अधिकारके साथ तो नहीं कह सकता हूँ, परन्तु गांधीजीने मुझे यह सिखाया है कि पेट माँगे वह खाना, जीभ माँगे वह नहीं खाना। "जिसने इन्द्रियाँ जीत लीं उसने सारा संसार जीत लिया," इस सूत्रके साथ गांधीजीने यह सूत्र और जोड़ दिया था — "जिसने जिह्वा जीत ली उसने सभी इन्द्रियाँ जीत लीं।" यथासम्भव स्टार्चवाला आहार कम लेना चाहिये। ताज़ी शाकभाजी और अपने प्रदेशमें होनेवाले फल आवश्यकताके अनुसार लेने चाहिये। दालों और उनसे बने हुए खाद्योंके उपयोगमें संयम रखना चाहिये। भोजन सोनेसे दो-तीन घंटे पहले कर लिया जाये तो पचनेमें सरलता होती है। जेलमें एक नियम बहुत ज़रूरी था — "कम खाना और ग़म खाना।" यह नियम बाहरके लिए भी उतना ही ज़रूरी है। और विशेषतः इस उपचारमें निम्नलिखित वस्तुएँ तो सदाके लिए छोड़ ही देनी चाहिये :—

(१) दानेदार सफेद खाँड और उसका बूरा। (२) मैदा और उससे बनी हुई चीज़ें, जैसे डबल रोटी, मिठाई आदि। (३) पेंश्च्यूराईज़्ड दूध। (४) मशीनसे पॉलिश किये हुए चावल। (हाथकुटे चावलका उपयोग करें।) (५) तम्बाकूके खाने, पीने, सूँघने आदिका व्यसन और किसी भी नशीली चीज़ पीनेका व्यसन। (६) डिब्बे या बोतलमें बन्द किये हुए खाद्य तथा पेय पदार्थ — फल, जूस आदि। (७) वनस्पति घी।

प्रश्न — आँख, नाक और कानकी बीमारीके लिए मूत्रका उपयोग किस तरह करना चाहिये?

उत्तर — जो वस्तु शरीरके लिए हितकर है वह उसके अंगोंपांगोंके लिए हितकर होती ही है। आँख, कान, नाक, दाँत आदि

सभी शरीरके अविभाज्य अंग हैं। कोई भी रोग सीधा आँख या कानका नहीं होता। दूसरे रोगोंकी भाँति शरीरके बिगड़नेसे आँख या कानके रोग पैदा होते हैं। इसलिए इन अंगोंके सभी रोग शरीरकी अस्वस्थता एवं विकृति दूर होते ही अपने आप मिट जाते हैं। अतः आँख, कान, नाक या चमड़ीके रोगोंका उपचार भी वही है जो पहले बताया जा चुका है।

प्रश्न — क्या आपको विश्वास है कि लोग इस कल्याणकारी मूत्र-चिकित्साको अपना लेंगे? और इस ज़मानेमें जिसकी जड़ें पातालमें पहुँची हैं, उस एलोपैथी चिकित्साके नागपाशसे लोग छुटकारा पा सकेंगे?

उत्तर — मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मेरा यह पेशा नहीं है, व्यापार या व्यवसाय नहीं है। मुझे जो सत्य अकस्मात् मिला है उसे मैंने पीड़ित जनताके सामने प्रस्तुत किया है। मुझे पीड़ासे छुटकारा पाना होगा। और मुझे इस उपचारमें श्रद्धा होगी तो मैं इसका उपयोग करूँगा। दूसरोंको श्रद्धा नहीं होगी तो वे नहीं करेंगे। अधिक दुःख उठाकर जब उनमें श्रद्धा पैदा होगी तब वे यह उपचार करेंगे। इस बारेमें मुझे हाय-तोबा करनेकी क्या ज़रूरत? जिसे ग़रज हो, जिसे पीड़ासे छुटकारा पाना हो, जो प्रत्येक उपाय करके निष्फल और निराश हो चुका हो, उसके लिए यही एक अन्तिम उपाय रह जाता है। इसे आज़माना हो तो वह अपने-आपको ख़तरेमें डालकर भी करे। मैं तो यह स्पष्ट कहता हूँ कि जिसे यह उपचार करना हो वह हज़ार बार सोच समझकर अपनी ग़रज़से करे। पीड़ा और पैसेकी लूटसे बचना हो तो लोग मेरी बात आज़मा कर देखें। फिर भी मैं सभीसे आग्रहपूर्वक इतना तो कहता हूँ कि कृपा करके सरसरी तौर पर और अधूरा प्रयोग या उपचार न करें। परन्तु निर्दिष्ट सूचनाओं तथा मर्यादाओंके अनुसार शास्त्रीय ढंगसे करें। ऐसा नहीं करेंगे तो आपकी निष्फलता इस संपूर्ण चिकित्साको बदनाम करेगी। जो व्यक्ति मूत्र-

प्रयोगसे अपना इलाज करना चाहता है, वह यह न मान बैठे कि उसे खान-पान और रहन-सहनमें स्वच्छन्दताका परवाना मिल गया है।

इस चिकित्सामें अभी बहुत अन्वेषणकी ज़रूरत है। इसका उपयोग करनेकी विस्मृत विधियोंको खोजना है और अनुभवके आधार पर नयी विधियाँ तैयार करनी हैं। इस कार्यके सिद्ध होनेमें काफी समय लग जायेगा, फिर कहीं जाकर यह उपचार सचमुच शास्त्रीय बनेगा। तभी आजकी शंकाएँ-प्रतिशंकाएँ दूर हो सकेंगी। मुझे तो आशा है कि यह उपचार व्यापक बनेगा। मैं यह नहीं चाहता हूँ कि इस उपचारके दवाख़ाने खोले जायें और उनमें काम करनेवाले चिकित्सक मोटरें दौड़ाते फिरें, परन्तु मेरी यह अभिलाषा अवश्य है कि घर-घर वृद्ध दादियाँ अपने पौत्र-पौत्रियोंके स्वास्थ्यको पूर्ववत् इस अमूल्य और अचूक साधनसे सुधारने तथा सुरक्षित रखने लग जायें। प्रभु मेरी इस अभिलाषाको पूर्ण करे तो मृत्युसे पहले मुझे अपना फ़र्ज अदा करनेका आत्मसन्तोष होगा। प्रभु सबका कल्याण करे।

परिशिष्ट – २

हाँ, मानवमूत्र अमृत है !

कोचीनसे 'मलबार हेरल्ड' नामका एक अंग्रेज़ी अख़बार निकलता है। उसके ४ फरवरी, '६१ के अंकमें एक लेख छपा है, जिसका शीर्षक यह है—"**वे मानवमूत्रको अमृत बनाना चाहते हैं।**" वह लेख इस प्रकार है :—

"अभी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसमें यह दावा किया गया है कि मानवमूत्र असाध्य रोगोंको भी मिटाता है। उस पुस्तकके लेखक श्री रावजीभाई मणिभाई पटेल हैं। वे गुजरात प्रदेशके भारत सेवक समाजके संयोजक हैं। उस पुस्तकका वक्तव्य केन्द्रीय सरकारके वित्तमन्त्री श्री मोरारजी देसाईने लिखा है।

"कांग्रेस अध्यक्ष श्री यु० एन० ढेबर पुस्तकके अन्तमें दिये गये अपने अभिप्रायमें लेखकको अभिनन्दन देकर कहते हैं—'खास करके चमड़ीके रोगों और दमा जैसे रोगों पर सामूहिक रूपसे प्रयोग होने चाहिये। इस विषयका अच्छा अनुसन्धान होना चाहिये और आम जनताके लिए सुलभ सुन्दर साहित्य तैयार होना चाहिये। अन्तमें वे एक बातका विचार करनेके लिए कहते हैं। अपना मूत्र पीनेसे पीने-वालेकी सात्त्विक, राजसिक और तामसिक वृत्तियों पर क्या असर होता है ?'

"पुस्तकने केवल गुजरातमें ही नहीं, किन्तु दूसरे प्रान्तोंमें भी आश्चर्य तथा विरोध दोनोंको जन्म दिया है। इस पुस्तक पर टीका करते हुए एक आयुर्वेद-विशारद और केन्द्रीय सरकारके आयुर्वेदिक बोर्डके सदस्यने यह अभिप्राय प्रदर्शित किया है—'पुस्तक मूर्खतासे पूर्ण है।'

"आधुनिक चिकित्साशास्त्र मानता है कि मूत्र बहुत खतरनाक चीज़ है। डिक्शनरीमें मूत्रका अर्थ यह दिया है कि मूत्र गुरदे द्वारा फेंका हुआ हानिकारक पदार्थ है। यदि इसे बाहर निकलने में तीन-चार घंटोंसे अधिक विलम्ब हो जाये तो मनुष्यका जीवन खतरेमें आ जाता है। आयुर्वेदने भी मूत्रको औषध नहीं माना है और अन्य किसी चिकित्सापद्धतिने भी मूत्रको औषधका स्थान नहीं दिया है।"

उपर्युक्त लेख पढ़कर यह पता चलता है कि आयुर्वेदके नाम पर और आयुर्वेद-विशारद तथा केन्द्रीय सरकारके आयुर्वेदिक बोर्डके सदस्यकी ओटमें आज तक जो हीरेकी भाँति अमूल्य तथा कल्याणकारी सिद्ध हुआ है उसे काच मानकर तिरस्कृत किया गया है। सचमुच यह अत्यन्त खेदका विषय है। राजाके सालेकी तूती बरसों तक इसी तरह बोलती रही होगी . . . फिर भी मैं ऐसे तर्कका आश्रय लेना नहीं चाहता हूँ। मैंने तो अपने एक आयुर्वेदके विद्वान् मित्रकी सहायतासे आयुवदके शास्त्रीय अवतरणोंके साथ उस पत्रको उत्तर लिख भेजा था। मूत्रचिकित्सामें दिलचस्पी और श्रद्धा रखनेवालोंकी, जो अब हज़ारों नहीं बल्कि लाखों हैं, जानकारीके लिए वह उत्तर नीचे दे रहा हूँ :—

निःसन्देह मानवमूत्र अमृत है! मनुष्यके शारीरिक स्वास्थ्यको बनाये रखनेके लिए और बिगड़े हुए स्वास्थ्यको ठीक करनेके लिए विश्वमान्य दो ही साधन हैं—एक दूध और दूसरा मूत्र। आयुर्वेदमें महर्षि आत्रेयने इन दोनों साधनोंको शारीरिक स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए प्रधान माना है। आयुर्वेदके अनेक शास्त्रोंमें से निम्नलिखित अवतरण प्रस्तुत करता हूँ :—

१. सुश्रुत —

(मूत्र) मूत्रं मानुषं च विषापहम्।।

(सू०, अ० ४५, मूत्रवर्ग – २२८)

(दूध) क्षीरं नार्याश्च सर्वप्राणभृतां सात्म्यम्।।

२. हारीत --

(मूत्र) मानुषं क्षारकटुकं मधुरं लघु चोच्यते ।
चक्षूरोगहरं बल्यं दीपनं कफनाशनम् ।।
(प्र०. अ० ९, मूत्रवर्ग)

(दूध) संजीवनं बृंहणमेव सात्म्यं
संतर्पणं नेत्ररुजापहं च ।
पित्तस्य रक्तस्य च नाशनं च
नारीपयः स्नेहनमेव शस्तम् ।।
(प्र०, अ० ८, दुग्धवर्ग)

३. वृद्ध वाग्भट-अष्टांगसंग्रह --

(मूत्र) नेत्ररोगहरं पित्तं प्रवृद्धं च नियच्छति ।।
पित्तं तिक्तं कृमिहरं रोचनं कफवातजित् ।
तिक्तं पामाहरं मूत्रं मानुषं तु विषापहम् ।।
(सू०, अ० ६, श्लो० १४७, १४८)

(दूध) वनितास्तन्यत्वाममेव तु तद्धितम् ।
(सू०, अ० ६, श्लो० ६१)

४. भावप्रकाश --

(मूत्र) नरमूत्रं गरं हन्ति सेवितं तद्रसायनम् ।
रक्तपामाहरं तीक्ष्णं सक्षारलवणं स्मृतम् ।।
(पूर्वखण्ड, मूत्रवर्ग, श्लो० ६)

(दूध) नारीक्षीरं त्वाममेव हितं न तु शृतं हितम् ।।
(पूर्वखण्ड, दुग्धवर्ग, श्लो० २६)

५. योगरत्नाकर —

(मूत्र) पित्तरक्तकृमिहरं रेचनं कफवातजित् ।
तिक्तं मोहहरं मूत्रं मानुषं तु विषापहम् ।।
(मूत्राष्टकम्, श्लो० ११)

(दूध) पयोऽङ्गनानां पिबतां नराणां प्रागेव जूर्तिः प्रशमं प्रयाति ।
(दुग्धगुणाः, श्लो० २)

पशुका मूत्र और दूध मनुष्यके रोगके नाशके लिए उपयोगमें आता है। जो विजातीय द्रव्य माना जाता है उसे तो हम सब काममें लेते हैं तो फिर उपर्युक्त आयुर्वेदिक मतके अनुसार मनुष्यका दूध और मूत्र तो सजातीय द्रव्य हैं, आरोग्य-रक्षाके लिए उसका उपयोग करनेमें क्या आपत्ति है? तांत्रिक कार्यमें इस द्रव्यका उल्लेख बहुत अच्छी तरहसे किया है। और जो उसे अपने रोगको दूर करनेके लिए दवाके तौर पर उपयोग करते हैं वे मूत्रको रोग-निवारक अमृत मानते हैं।

यह बात सत्य है कि यदि किसी मनुष्यको पेशाब आनेमें देर लगती है, तो उसे तकलीफ़ होती है और उसकी जान ख़तरेमें आ जाती है। इसलिए आयुर्वेद कहता है कि टट्टी-पेशाबकी हाजतको रोकना नहीं चाहिये, क्योंकि वैसा करना शरीरके लिए खतरनाक है। इसलिए इस कुदरती हाजतको फौरन् दूर करना ज़रूरी है, परन्तु किसी असाध्य रोगको मिटानेके लिए उस पेशाबको पीनेमें कोई हर्ज़ नहीं है। आयुर्वेदमें उसे पीनेका कहीं भी निषेध नहीं किया है। वाग्भट तो कहते हैं — '**न किंचित् विद्यते द्रव्यं जगत्येव अनौषधम्**' अर्थात् जगतमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे औषधके रूपमें न लिया जा सके। केवल उसका बुद्धिपूर्वक उपयोग करनेकी आवश्यकता है।

आयुर्वेदिक औषधियोंके अभिज्ञ और केन्द्रीय सरकारके आयुर्वेदिक बोर्डके सदस्यने जो 'मानवमूत्र' पुस्तकको मूर्खतापूर्ण कहा है उसके

बारेमें मुझे अधिक कुछ कहना नहीं है। मैं उनसे निम्नलिखित दो प्रश्न ही पूछता हूँ :—

१. ऊपर लिखे गये आयुर्वेदिक अवतरणोंमें आयुर्वेदके ऋषियोंने जो मत प्रदर्शित किया है, उसे वे अमान्य कर सकते हैं क्या? क्या वे अवतरण शास्त्रीय नहीं हैं?

२. क्या वे अपने अनुभवके बल पर यह कह सकते हैं कि अपने या दूसरेके रोगके लिए मूत्रका उपयोग भयानक या घातक सिद्ध हुआ है? यदि उन्हें ऐसा अनुभव या ज्ञान नहीं है, तो उनका यह कहना कि 'मानवमूत्र' पुस्तक एकदम मूर्खतापूर्ण है, केवल व्यर्थ ही नहीं किन्तु कोरी गप्प है।

संभवतः उन्होंने आयुर्वेदका बड़ा अध्ययन किया होगा और उसमें वे पारंगत होंगे। चाहे किसीने सैकड़ों मन वज़नकी पुस्तकें पढ़ी हों और वे सभी कंठस्थ हों, परन्तु अनुभव रत्तीभर न हो, तो उसके तोतेकी तरह रटे हुए ज्ञानकी कोई क़ीमत नहीं है। मैं तो यह छाती ठोककर कह सकता हूँ कि मेरे स्वानुभव और मेरे जैसे विविध रोगोंसे पीड़ित हज़ारों रोगियोंके निजी अनुभवने मेरी बातको शास्त्रीय बना डाला है। उसे वैज्ञानिकोंके प्रमाण-पत्रकी भी ज़रूरत नहीं है।

मैं अधिक नहीं लिखता। मैं इतना ही कहता हूँ कि मूत्र अमूल्य विज्ञान है और अपने देशके दरिद्र और दुःखी लोगोंके लिए वरदानके समान है। उनके लिए तो मूत्र सचमुच अमृत है। यदि कोई व्यक्ति रोगको भयंकर तथा घातक पीड़ासे बचना चाहता है तो वह निर्भयता तथा निःशंकतासे अपने ही मूत्रका यथाविधि उपयोग कर सकता है।

परिशिष्ट – ३

शिवाम्बुकल्प

'आयुर्विद्या' पूना आयुर्वेद महाविद्यालयका मासिक पत्र है, जो गत ३२ वर्षसे प्रकाशित हो रहा है। उसके जून १९६० के अंकमें 'शिवाम्बुकल्प:' प्रकाशित हुआ है और उसी अंकमें गुजरात यूनिवर्सिटी, अहमदाबादके प्रो० रा० ब० आठवलेका 'शिवाम्बुकल्प' नामक लेख मराठी भाषामें प्रकाशित हुआ है, जिसमें शिवाम्बुकल्पकी प्राचीनताका प्रतिपादन किया गया है और वैद्योंसे प्रार्थना की गयी है कि वे इस विषयका सूक्ष्म अध्ययन करें और प्रयोग करके जनताके स्वास्थ्यकी रक्षा करें। दोनोंका उपयोगी भाग ही लिया गया है। प्रो० आठवलेके लेखका उपयोगी भाग पहले दिया जाता है।

—— सम्पा०

"हठयोगके अनेक ग्रन्थोंमें शिवाम्बुकल्पके प्रयोगका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। उन उल्लेखोंमें से एक उल्लेख हठयोगके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हठयोगप्रदीपिका'में मिलता है, जो इस प्रकार है :——

पित्तोल्बणत्वात् प्रथमाम्बुधारां
विहाय निःसारतयाऽन्त्यधाराम् ।
निषेव्यते शीतलमध्यधारा
कापालिके खण्डमतेऽमरोली ।।

(उपदेश ३, श्लोक ९६)

[**भावार्थ**—— शिवाम्बुकी पहली धारामें पित्त अधिक होता है और पिछली धारा निःसार होती है। इसलिए इन दोनों धाराओंको छोड़कर शीतल मध्य धाराका सेवन (पान) किया जाये। यह योग-क्रिया खण्ड कापालिक मतमें अमरोली नामकी मुद्रा कहलाती है।]

. . . .

"परन्तु शिवाम्बुकल्पकी यह विधि सैकडों वर्षोंसे गुप्त रूपसे चलती थी और विशिष्ट सम्प्रदायके लोग ही इस सांकेतिक शब्द शिवाम्बुका ज्ञान रखते थे। इसलिए संस्कृतके पंडित भी इसका अर्थ नहीं जानते थे।

... ...

"शिवाम्बुकल्पका यह प्रयोग केवल हठयोगियों और तांत्रिकोंमें ही सतत प्रचलित रहा है। परन्तु वैद्यक शास्त्रमें इसका अधिक उपयोग नहीं हुआ है। इसके दो कारण हैं-- (१) स्वमूत्रप्राशनका प्रयोग ही गंदा और घृणा उत्पन्न करनेवाला है। इसलिए वैद्य इसे खुले आम बतानेमें संकोच एवं भयका अनुभव करते थे। (२) इस प्रयोगमें विशिष्ट मन्त्रका जप और होम-हवन करनेका विधान भी है, जिसका अनुष्ठान जन-साधारणके लिए दुष्कर है; अतः यह प्रयोग विशिष्ट सम्प्रदायके लिए ही मर्यादित है, ऐसी वैद्योंकी भी मान्यता होनी चाहिये। चाहे जो भी कारण हो, किन्तु यह निश्चित लगता है कि हमारे वैद्योंने शिवाम्बुकल्पके प्रयोगको हँसीका विषय मानकर तिरस्कृत एवं निषिद्ध कर दिया। वास्तविक शिवाम्बुकल्पमें यह स्पष्ट कहा है कि विविध औषधियोंके चूर्णके साथ शिवाम्बुका सेवन करने और शिवाम्बुके साथ अमुक औषध लेनेसे अमुक लाभ होता है। इस तरह यह विषय वैद्योंका है, फिर भी उन्होंने इसे अग्राह्य माना है। तथापि यह एक महत्त्वपूर्ण घटना है कि शरीर-शुद्धि और आरोग्यको अत्यन्त महत्त्व देनेवाले हठयोगियोंने इसे प्रेमसे अपनाकर इसे हजारों बरसोंमें सुरक्षित रखा और इसके अखण्ड प्रयोग चालू रखे। बीसवीं सदीके चिकित्साशास्त्रसे अपरिचित एक अंग्रेज गृहस्थने हज़ारों रोगियों पर शिवाम्बु-चिकित्साका सफल एवं यशस्वी प्रयोग करके इसे एक चिकित्सा-पद्धति प्रमाणित करनेका श्रेय प्राप्त किया है, परन्तु इस चिकित्साके प्रणेता आर्मस्ट्रॉङ्ग नहीं हैं। हमारे भारतवर्षमें हज़ारों वर्षोंसे यह चिकित्सा प्रसिद्ध थी और इसके प्रयोग विशिष्ट मंडल करते थे और इसमें अपना गौरव समझते थे।

"मुझे अपनी खोजसे यह मालूम हुआ है कि आज भी शास्त्रोक्त विधिसे शिवाम्बुकल्प करनेवाले अनेक हठयोगी और तांत्रिक मौजूद हैं।

... ...

"इन सब प्रमाणोंसे हम यह सिद्ध करते हैं कि हमारे पूर्वज शिवाम्बु-सेवन (स्वमूत्रप्राशन)का संपूर्ण ज्ञान रखते थे। वे इसका प्रयोग भी करते थे और आज भी प्राचीन परंपराके अनुसार इसका प्रयोग करनेवाले हमारे देशबन्धु हैं। फिर भी भारतके वैद्योंने इस चिकित्साको अपने ग्रन्थोंमें प्रतिष्ठित स्थान नहीं दिया है और सामान्य रोगों पर इसका प्रयोग नहीं किया है। इस नग्न सत्यसे कोई इनकार नहीं कर सकता है कि आज भी वैद्य इसका प्रयोग करनेके लिए तैयार नहीं हैं। आज इस प्रयोगको चिकित्साशास्त्रकी भूमिका पर लानेका महत्त्वपूर्ण कार्य एक पाश्चात्य अंग्रेज़ने किया है और हमें यह मानना होगा कि भारतके शिक्षित लोगों पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ने लगा है। हमें अपने पूर्वजोंसे यह अमूल्य विरासत मिली है और हमारे चिकित्सकोंका यह कर्तव्य है कि शास्त्रीय प्रयोगोंसे उसके महत्त्व एवं मूल्यको सिद्ध करके आजकी जनताको उससे लाभ पहुँचायें।

... ...

"आर्मस्ट्रॉङ्गकी स्वमूत्रचिकित्साका प्रथम प्रयोग मेरे तरुण मित्र श्री फणसेने किया, परन्तु इस चिकित्साका स्वयं प्रयोग करने और दूसरे अनेक लोगों पर सफलता एवं निश्चिततासे प्रयोग करनेका श्रेय तो यहाँकी कांग्रेसके मुख्य कार्यकर्ता श्री रावजीभाई पटेलको ही देना चाहिये। उन्होंने गत दो वर्षोंमें इस चिकित्सासे अनेक रोगियोंको रोग-मुक्त कर दिखाया और इस वर्ष इस उपचार पर प्रमाणभूत गुजराती पुस्तक 'मानवमूत्र' (शारीरिक स्वास्थ्यके लिए कुदरती उपचार) प्रकाशित कर दी। इस पुस्तक पर यहाँके अनेक वैद्योंने अच्छे अभिप्राय दिये हैं और ये उद्गार निकाले हैं कि आयुर्वेदमें भी अनेक दवाओंको

मानवमूत्रका पुट दिया जाता है। परन्तु वे स्वयं प्रयोग करने और रोगियोंसे प्रयोग करानेमें अभी झिझकते हैं। मेरी उन वैद्योंसे विनती है कि वे इस विषयका सूक्ष्म अध्ययन करके उसमें निर्दिष्ट विविध कल्पोंका प्रयोग करें और उनमें सफलता मिलने पर आम जनतामें इसका प्रचार करके जनताके स्वास्थ्यमें वृद्धि करें।"

यह 'शिवाम्बुकल्प' डामरतन्त्रका एक भाग है। इसमें १०७ श्लोक हैं, जिनमें से शुरूके २१ श्लोक और उनका भावार्थ यहाँ दिये जाते हैं :—

अथ वक्ष्ये महेशानि ! क्रियाः सिद्धिप्रदायिनीः ।
पात्राणि विहितानीह शास्त्रविद्भिः प्रयत्नतः ।। १ ।।

सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यजं रीतिजं तथा ।
आयसं मृण्मयं चैव नागजं काचसंभवम् ।। २ ।।

वैणवं काष्ठसंभूतं बिल्वजं कम्बुसंभवम् ।
अस्थिजं चर्मजं चैव पात्रं वै पर्णसंभवम् ।। ३ ।।

एषामन्यतमे पात्रे धारयेच्च शिवाम्बुकम् ।
उत्तमं मृण्मयं पात्रं ताम्रजं देवि ! सूत्तमम् ।। ४ ।।

अक्षारकटुकान्नाशी साधकः श्रमवर्जितः ।
शयीत लघुभुग् रात्रौ भूमिशायी जितेन्द्रियः ।। ५ ।।

चतुर्थ्यामवशिष्टायां रात्रावुत्थाय बुद्धिमान् ।
मूत्रोत्सर्गं प्रकुर्वीत प्राङ्मुखः परमाशयः ।। ६ ।।

आदिधारा परित्यज्य चरमां च त्यजेद् बुधः ।
मध्यधारां प्रगृह्णीयादेष च विधिरुत्तमः ।। ७ ।।

यथा भुजंगदेहेषु मुखे पुच्छे विषं भवेत् ।
एवं शिवाम्बुधारायां प्रकारः प्रथितः शिवे ! ।। ८ ।।

शिवाम्बु चामृतं दिव्यं जरारोगविनाशनम् ।
तदादाय महायोगी कुर्याद्वै निजसाधनम् ॥ ९ ॥

मुखशुद्धिं प्रविधाय कृत्वा चावश्यकीं क्रियाम् ।
[illegible]शिवाम्बु विमलं जन्मरोगविनाशनम् ॥ १० ॥

मासमात्रप्रयोगेण निर्मलाभ्यन्तरो भवेत् ।
मासद्वयाभ्यासवशात् पाटवं चेन्द्रियादिषु ॥ ११ ॥

मासत्रयप्रयोगेण रोगदुःखविनाशनम् ।
पंचमासाभ्यासतोऽपि दिव्यदृष्टिरनातुरः ॥ १२ ॥

षण्मासाज्जायते योगी महाबुद्धिः कृतागमः ।
सप्तमासप्रयोगेण जायते बलवत्तरः ॥ १३ ॥

अष्टमासाभ्यासवशात् स्वर्णकान्तिः स्थिरा भवेत् ।
नवमासप्रयोगेण क्षयकुष्ठविनाशनम् ॥ १४ ॥

दशमासप्रयोगेण जायते तेजसां निधिः ।
एकादशभिरेवात्र मासैः सर्वाङ्गनिर्मलः ॥ १५ ॥

जायते मानवो वर्षप्रयोगेणार्कसंनिभः ।
वर्षद्वयेन जायेत पृथिवीतत्त्वसंजयी ॥ १६ ॥

वर्षत्रयेण जायेत अप्तत्त्वजयकृद् भवेत् ।
चतुर्वर्षाभ्यासतः स्यात् तेजस्तत्त्वजयी ध्रुवम् ॥ १७ ॥

पंचवर्षाभ्यासतश्च योगी वायुजयी भवेत् ।
सप्तवर्षप्रयोगेण अहंकारजयी भवेत् ॥ १८ ॥

अष्टवर्षप्रयोगेण महत्तत्त्वजयी भवेत् ।
नववर्षाभ्यासतोऽयं जन्मात्ययविवर्जितः ॥ १९ ॥

दशवर्षप्रयोगेण खेचरः श्रमवर्जितः ।
तथा चैकादशे वर्षे शृणोत्याभ्यन्तरं ततः ॥ २० ॥

द्वादशाब्दप्रयोगेण जीवेदाचन्द्रतारकम् ।
बाध्यते नैव सर्पाद्यैर्विषाद्यैर्न विहिंस्यते
न दह्यतेऽग्निना क्वापि काष्ठवत्तरति जले ॥ २१ ॥

भावार्थ :—

हे पार्वती ! अब मैं सिद्धि देनेवाली क्रियाएँ कहता हूँ और शास्त्र जाननेवालों द्वारा विचारपूर्वक बताये हुए पात्र बताता हूँ।

सोने, चाँदी, ताम्बे, काँसे, पीतल, लोहे, जस्ते, मिट्टी, काच, बाँस, बेल, शंख, हड्डी, चमड़े और पत्तोंका बना हुआ पात्र हो। इनमें से किसी भी प्रकारके पात्रमें साधक शिवाम्बुको धारण करे। हे देवि ! मिट्टीका पात्र उत्तम और ताम्बेका सर्वोत्तम है।

खारे, कड़वे-तीखे पदार्थ न खानेवाला, श्रमरहित, सुपाच्य एवं सात्त्विक भोजन करनेवाला, जितेन्द्रिय साधक रातको भूमि पर सो जाये। चौथे पहरमें उठकर विवेकी तथा उच्च आशयवाला साधक पूर्व दिशाकी ओर मुख करके मूत्रोत्सर्ग करे और आदि तथा अन्तकी धाराको छोड़कर मध्यकी धारा ग्रहण करे, क्योंकि मूत्रपानकी यह उत्तम विधि है। हे शिवे ! जैसे साँपके मुँह और पूँछमें ज़हर होता है वैसे ही मूत्रधाराके विषयमें यह बात प्रसिद्ध है। शिवाम्बु दिव्य अमृत है। बुढ़ापे एवं रोगका नाशक है। महायोगी उसका पान करके अपनी साधना करे।

सबसे पहले मुखशुद्धि करके आवश्यक क्रिया करनेके बाद जन्म-रोगके नाशक एवं निर्मल शिवाम्बु पीनेका प्रयोग एक मास तक करनेसे अन्तर निर्मल होता है। दो मासके प्रयोगसे इन्द्रियोंमें पटुता आती है अर्थात उनकी शक्ति तीव्र होती है। तीन मासके प्रयोगसे रोग

आदि दुःख नष्ट होते हैं। पाँच मासके प्रयोगसे दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। छः मासके प्रयोगसे बुद्धि तीव्र होती है और वह शास्त्रज्ञ हो जाता है। सात मासके प्रयोगसे वह अधिक बलवान् होता है। आठ मासके प्रयोगसे वह सोने जैसी स्थिर कान्तिवाला हो जाता है। नौ मासके प्रयोगसे क्षय एवं कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं। दस मासके प्रयोगसे वह तेजोनिधि अर्थात् अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है। ग्यारह मासके प्रयोगसे उसके सारे अंग निर्मल एवं कान्तिमान् हो जाते हैं। एक वर्षके प्रयोगसे वह सूर्य जैसा तेजस्वी हो जाता है। दो वर्षके प्रयोगसे वह पृथ्वी तत्त्वको, तीन वर्षके प्रयोगसे जल तत्त्वको, चार वर्षके प्रयोगसे अग्नि तत्त्वको, पाँच वर्षके प्रयोगसे वायु तत्त्वको, सात वर्षके प्रयोगसे अहंकार तत्त्वको और आठ वर्षके प्रयोगसे महत् तत्त्वको जीत लेता है। नौ वर्षके प्रयोगसे वह जन्म-मरणसे रहित हो जाता है। दस वर्षके प्रयोगसे वह श्रमरहित खेचर अर्थात् आकाशमें चलनेवाला हो जाता है। ग्यारह वर्षके प्रयोगसे वह अन्तर्नाद सुनता है। बारह वर्षके प्रयोगसे जब तक चाँद तारे हैं तब तक वह जीता है। फिर उसे सर्प आदि विषैले प्राणी पीड़ा नहीं पहुँचाते हैं, विष आदि मार नहीं सकते हैं, आग कभी जला नहीं सकती है और वह लकड़ीकी तरह पानीमें तैरता है।

परिशिष्ट – ४

दवाका व्यामोह

गांधीजीने सन् १९०६ में दक्षिण अफ्रीकामें 'आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान' नामक पुस्तक लिखी थी। उसकी प्रस्तावनामें उन्होंने उस समयके डाक्टरी पेशेका जो वर्णन किया है और उसके बारेमें निष्णात डाक्टरोंके जो अभिप्राय दिये हैं, वह सब आधी सदी पहले जितना ठीक लगता था, आज उससे कहीं ज्यादा ठीक लगता है। शारीरिक स्वास्थ्यकी रक्षा चाहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके लिए उसे अत्यन्त उपयोगी समझकर मैं यहाँ दे रहा हूँ:—

"हमारी आदत ऐसी है कि ज़रा भी तकलीफ़ हुई कि तुरन्त हम डाक्टर, वैद्य या हकीमके पास दौड़ जाते हैं। यदि हम ऐसा नहीं करते तो अपने नाई या पड़ोसीकी सलाहसे कोई भी दवा ले लेते हैं। हम यह मान बैठे हैं कि दवाके बिना तकलीफ़ दूर नहीं होती। यह सचमुच एक बड़ा वहम है; और इस वहमसे जितने मनुष्य दुःखी हुए हैं और होते हैं, उतने दूसरे कारणोंसे नहीं होते और न होनेवाले हैं। इसलिए यदि हम इतना समझ जायें कि तकलीफ़ क्या चीज़ है, तो कुछ शान्ति रख सकते हैं। तकलीफ़का अर्थ है दुःख। रोगका अर्थ भी वही है। रोगका उपाय करना तो ठीक है, परन्तु उसे मिटानेके लिए दवा लेना व्यर्थ है; इतना ही नहीं, किन्तु उससे अनेक बार हानि होती है। मेरे घरमें कचरा हो, उसे मैं ढाँक दूँ तो उसका जैसा असर होता है वैसा असर दवाका होता है। मैं कचरा ढाँकूँ तो वही कचरा सड़ कर मेरे लिए हानिकर सिद्ध होगा। और ढकना सड़ जाये तो ढकना एक और कचरा हो गया। अब तो मुझे पुराने और नये दोनों प्रकारके कचरेको निकालना होगा। ऐसी दशा दवा लेनेवालेकी होती है। परन्तु यदि मैं कचरा निकाल डालता हूँ, तो घर जैसा था वैसा फिर हो जाता है। रोग पैदा करके कुदरत

वह चेतावनी देती है कि हमारे शरीरमें कचरा है। और कुदरतने शरीरमें से कचरा निकालनेके रास्ते रखे हैं। और जब रोग हो जाये तब हमें समझ लेना चाहिये कि हमारे शरीरमें कचरा था, जिसे कुदरतने निकालना शुरू कर दिया है। यदि कोई व्यक्ति मेरे घरमें पड़े हुए कचरेको निकालने आये तो मैं उसका उपकार मानूँ।

वह व्यक्ति जब तक कूड़ा-करकट निकाल नहीं लेता, तब तक मुझे कुछ कठिनाई तो होगी, फिर भी मैं चुप रहूँगा। उसी तरह कुदरत मेरे शरीररूपी घरसे कचरा निकाल डाले तब तक मैं शान्ति रखूँ, तो मेरा शरीर अच्छा हो जाये और मैं नीरोग यानी दुःखरहित हो जाऊँ। मुझे सरदी हुई है तो मुझे तुरन्त कुछ दवा लेने या सोंठ खानेकी दौड़धूप नहीं करनी चाहिये। मैं जानता हूँ कि मेरे शरीरके अमुक भागमें कूड़ा पड़ा था, जिसे निकालनेके लिए कुदरत आयी है। मुझे उसे रास्ता देना चाहिये, ताकि कमसे कम समयमें मेरे कचरेकी सफाई हो जाये। यदि मैं कुदरतका सामना करूँ तो कुदरतको दोहरा काम करना पड़े; अर्थात् कचरा निकालने और मेरे साथ लड़नेका काम। मैं कुदरतकी मदद कर सकता हूँ। जैसे, जिस कारण से कूड़ा दाख़िल हुआ हो उस कारणको दूर करूँ, जिससे और कूड़ा दाख़िल न हो; अर्थात् उस दौरान खाना बन्द कर दूँ जिससे कूड़ेका बढ़ना रुक जाये और खुली हवामें योग्य कसरत करूँ तो मैं भी शरीरकी चमड़ी द्वारा कचरा निकालने लग जाऊँ। शरीरको नीरोग रखनेका यह एक सुनहरी नियम है, ऐसा प्रत्येक व्यक्ति स्वयमेव सिद्ध कर सकता है। केवल हमें अपनी मनोदशाको स्थिर रखना चाहिये। जो व्यक्ति ईश्वर पर सच्ची श्रद्धा रखता है वह तो सदा ऐसा ही करेगा। ऐसी मनोदशा बनानेमें इतनी बात सहायक होगी — मैं वैद्य आदिसे दवा लूँगा तो मेरी बीमारी मिट ही जायेगी, ऐसा बीमा कोई वैद्य नहीं करेगा। वैद्य सभीको तो नीरोग नहीं कर देता। यदि ऐसा होता तो मुझे ये प्रकरण लिखने न पड़ते और हम सब आरामसे ज़िन्दगी गुज़ारते रहते।

"अनुभव तो ऐसा है कि जिस घरमें दवाकी शीशी दाखिल हुई वहाँसे फिर निकलती ही नहीं। असंख्य मनुष्य जीवनभर किसी न किसी रोगसे पीड़ित रहते हैं और एकके बाद दूसरी दवाकी शरण लेते रहते हैं तथा वैद्य और डाक्टर बदलते ही रहते हैं, रोग मिटानेवाले वैद्य या डाक्टरकी खोजमें भटकते रहते हैं; और अन्तमें ख़ुद परेशान होकर, दूसरोंको परेशान करके व्याकुलतासे मर जाते हैं। प्रसिद्ध स्वर्गस्थ जज स्टीवनने, जो हिन्दुस्तानमें भी रह चुके थे, एक बार कहा था कि जिन वनस्पतियोंके बारेमें वैद्य बहुत कम जानते हैं, उन वनस्पतियोंको ऐसे शरीरोंमें दाखिल करते हैं कि जिनके बारेमें वे उससे भी कम जानते हैं। वैद्य (चिकित्सक) ख़ुद भी काफ़ी अनुभव करनेके बाद ऐसे ही उद्‌गार निकालते हैं। डाक्टर मेजेन्दीने कहा है, 'चिकित्साका व्यवसाय महापाखंड है।' सर एस्ली कूपर एक विख्यात डाक्टर हो गये हैं। उन्होंने कहा है, 'चिकित्साशास्त्र केवल अनुमान पर रचा हुआ है।' सर जॉन फार्बसने कहा है, 'वैद्यों-की बुद्धिमत्ता होने पर भी अनेक मनुष्योंके रोग कुदरतने ही मिटाये हैं।' डाक्टर बेकर बताते हैं, 'लाल बुख़ारसे जितने बीमार मरते हैं उसकी अपेक्षा उस बीमारीकी दवासे बहुत ज्यादा मरते हैं।' डाक्टर फ़रोथ कहते हैं, 'वैद्यककी अपेक्षा अधिक अप्रामाणिक पेशा शायद ही नज़र आता है।' डाक्टर वॉटसन कहते हैं, 'अनेक महत्त्व-पूर्ण प्रश्नोंके बारेमें शंकापूर्ण समुद्र पर हमारा व्यवसाय भटकता रहता है।' डाक्टर कॉज़वेलका कहना है, 'यदि वैद्यक नष्ट हो जाये तो मनुष्यजातिको अपार लाभ हो।' डाक्टर फ्रेंक कहते हैं, 'हजारों आदमियोंका क़त्ल दवाखानोंमें होता है।' डाक्टर मेसनगुड कहते हैं, 'युद्ध, महामारी और दुष्कालसे जितने आदमी मौतका शिकार होते हैं, उससे कहीं ज़्यादा दवाइयोंसे मरते हैं।' जहाँ जहाँ वैद्य बढ़े हैं वहाँ वहाँ रोग बढ़े हैं, ऐसा हम जगह जगह देखते हैं। जिन अख़-बारोंमें दूसरे विज्ञापन नहीं छप सकते उन अख़बारोंमें दवाइयोंके बड़े-बड़े विज्ञापन प्रकाशित हो जाते हैं। 'इंडियन ओपिनियन' में जब

विज्ञापन लिये जाते थे तब उसके कर्मचारी विज्ञापन मांगनेके लिए दूसरोंके पास जाते; परन्तु दवाके मालिक दवाके विज्ञापन प्रकाशित करनेके लिए इस पत्र पर दबाव डालते और खूब पैसा देनेका प्रलोभन देते थे। जिस दवाकी क़ीमत एक पाई है उस दवाका हम एक रुपया देते हैं। प्रायः दवा बनानेवाले हमें यह जानने ही नहीं देते कि दवा किससे बनी है। एक दवावालेने 'गुप्त दवाइयाँ' नामकी एक पुस्तक अभी प्रकाशित की है। उसे प्रगट करनेका उद्देश्य यह है कि लोग भ्रांतिमें न रहें। उसमें वह बताता है कि सार्सापरिला, फ्रुटसाल्ट, सीरप वगैरह पेटेंट दवाइयाँ हैं, जिनके दाम हम तीन शिलिंगसे सात शिलिंग तक देते हैं। उसमें बतायी हुई दवाकी असल कीमत एक फ़ार्दिंगसे एक पेनी तक होती है। इसलिए हम कमसे कम छत्तीस गुने और अधिकसे अधिक तीन सौ छत्तीस गुने दाम देते हैं। तात्पर्य यह कि हम तीन हज़ार पाँच सौ प्रतिशतसे पैंतीस हज़ार प्रतिशत तकका नफ़ा देते हैं।

"इससे पाठकको इतना तो समझ लेना चाहिये कि रोगीको डाक्टरके पास दौड़नेकी ज़रूरत नहीं है, एकदम दवाएँ नहीं लेना है। परन्तु सभी लोग इतना सबर नहीं रखेंगे। सभी डाक्टर अप्रामाणिक नहीं हैं। हर वक्त दवा ख़राब ही है ऐसा साधारण मनुष्य नहीं मानेगा। इन सबको इतना तो कहा जा सकता है कि आप यथा-सम्भव धैर्य रखें, डाक्टरोंको यथासम्भव तकलीफ़ न दें, डाक्टरको बुलायें तो अच्छे डाक्टरको बुलायें। और एक डाक्टरको बुलानेके बाद उसीके इलाज पर डटे रहें। वही जब दूसरे डाक्टरको बुलानेके लिए कहे तभी दूसरेको बुलायें। आपका रोग आपके डाक्टरके बसमें नहीं है। आपकी आयु होगी तो आप ज़रूर अच्छे हो जायेंगे। और आपके उपाय करने पर भी आपकी या आपके रिश्तेदारकी मौत हो जाये, तो समझें कि वह भी जीवनका एक प्रकारका परिवर्तन ही है।"

— गांधी

आरोग्यका अमूल्य साधन
शिवाम्बु – स्वमूत्र

पंचम खंड

शिवाम्बुकी नई उपलब्धियाँ

१. रोगमुक्ति एवं स्वस्थताका सरल, सुलभ एवं स्वतंत्र उपचार

स्वमूत्रचिकित्सा एक प्रकारकी प्राकृतिक चिकित्सा ही है। मूत्रचिकित्साके पुनरुद्धारक श्री आर्मस्ट्रॉङ्ग तो इस चिकित्साको सच्चे अर्थमें प्राकृतिक उपचार मानते हैं। इस चिकित्सामें प्रकृति-विरुद्ध उपायोंका उपयोग करना केवल असंगत ही नहीं होगा, अपितु खतरनाक भी। डाक्टरी दुनियामें यह मान्यता रूढ़ है कि पेशाब शरीरसे निकला हुआ अथवा शरीरका फेंका हुआ गन्दा और जहरीला तत्त्व है। आर्मस्ट्रॉङ्ग इसे जीवनजल कहते हैं। आयुर्वेद इसे रसायन कहता है और तन्त्रशास्त्र शिवाम्बु मानता है। अमेरिकाके एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक, नैष्ठिक ब्रह्मचारी एवं ध्यानयोगी डॉ. रेन्डोल्फ़ स्टोन इसे अमृत मानते हैं, फिर बहुतसे रोगी भी इसे अमृत समझते हैं।

स्वमूत्रचिकित्सा शरीरको एक सम्पूर्ण इकाई मानती है। आरोग्य और रोग दोनोंका सम्बन्ध शरीरसे है, शरीरके किसी अंग या भाग से नहीं है। यह ठीक है कि रोग या विकार शरीरके किसी अंग या भागमें दिखायी देता है, परन्तु होता है सारे शरीरका। इसीलिए शरीरके मुख्य विकारके साथ-साथ अन्य विकार भी इस चिकित्सासे दूर हो जाते हैं—होते देखे गये हैं। फिर इस चिकित्सामें रोगका कारण एक, रोग एक और रोगका उपचार एक है। अपथ्य एवं असंतुलित आहार ही रोगका मूल कारण है। श्रीमद् भागवतमें ठीक ही कहा है—"**नाश्नतः पथ्यमेवान्नं, व्याधयोऽभिभवन्ति हि।**" अर्थात् पथ्य अन्नको न खानेसे ही रोग उत्पन्न होते हैं। तात्पर्य कि अपथ्य खानपानसे पाचन और मलत्यागकी क्रिया पूरी तरह नहीं होती, जिससे मलसंचय हो जाता है और वह मलसंचय शरीरके कोषोंमें फैल जाता है। उसे दूर करनेके लिए कुदरत सर्दी, कै, दस्त, बुखार आदि के विकारको पैदा कर देती है। शरीरशुद्धिके लिए कुदरतका यह एक हितकारी प्रयत्न है। शिवाम्बु और पानीके साथ दो-एक या दो-चार (विकारके अनुसार) दिनका उपवास करनेसे ये सब विकार

सरलता एवं शीघ्रतासे दूर हो जाते हैं। इससे यह फलित होता है कि मलसंचय विकारका साक्षात् कारण है, उससे पैदा होनेवाला विकार – चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो – रोग है, और उस रोगका उपचार है स्वमूत्र। यह कितनी सरल और विशेष बात है कि रोगका कारण, रोग और उपचार तीनों शरीरमें हैं। जब रोगका कारण एक और रोग एक तब निदान किसका और क्यों किया जाय? उपचार एक होनेसे डॉक्टर या वैद्यकी भी आवश्यकता नहीं है। फिर तो यही कहना उचित होगा कि स्वमूत्र ही निदान करनेवाला और चिकित्सा करनेवाला दोनों है। देखिये! रोगी कितना स्वतन्त्र है अपने रोगको दूर करनेके लिए और वह भी बिना किसी खर्चके!!

आजकी तथाकथित श्रेष्ठ चिकित्सा-पद्धति एलोपेथी रोगके कारण, रोग और रोगके उपचारकी अनेकतामें मानती है। उसकी दृष्टिसे रोगके कारण अनेक, रोग अनेक और रोगके उपचार अनेक हैं!!! इस चिकित्सामें मुख्यतः कीटाणु रोगके कारण माने जाते हैं। विविध प्रकारके कीटाणु विविध प्रकारके रोगोंको जन्म देते हैं। मलेरिया, फाईलेरिया, इन्फ्लूएंजा, सर्दी, न्यूमोनिया, टी. बी., कॉलेरा आदि रोग भिन्न-भिन्न प्रकारके कीटाणुओंसे पैदा होते हैं। फिर कीटाणुओंके कारण जिस जिस अंगमें रोग पैदा होता है उस उस अंगके अनुसार उस रोगका नाम रखा जाता है। जैसे गलेमें कौएकी व्याधि टॉन्सिलाईटिस, छातीकी व्याधि ब्रोन्काईटिस, जठरकी व्याधि गेस्ट्राईटिस, आँतकी व्याधि कोलाईटिस इत्यादि।

मानवमूत्रकी उपयोगिता और रोग दूर करनेकी क्षमताका स्पष्ट उल्लेख आयुर्वेद, यूनानी हिकमत, जैन धर्मशास्त्र, बाइबल, योग और तन्त्रशास्त्रमें मिलता है। इससे यह सिद्ध है कि मूत्र कोई निकम्मी चीज नहीं है। केवल डाक्टरी दुनियामें यह मान्यता रूढ़ है कि पेशाब शरीरसे निकला हुआ अथवा शरीरका फेंका हुआ मल है। परन्तु आजकी खोजोंने इस मान्यताको भ्रान्त एवं मिथ्या प्रमाणित कर दिया है। मूत्रमें पाये जानेवाले हॉरमोन्स, विटामिन, एन्जाईम, क्षार – पोटेशियम, कैल्शियम, मेग्नेशियम आदि अनेक तत्त्व पोषक,

रोगनाशक तथा रोगका प्रतिकार करनेवाले और शरीरकी शक्तिको बढ़ानेवाले होते हैं। हाल ही में अमेरिका, जापान, आदि विदेशोंमें जो वैज्ञानिक अन्वेषण हुए हैं उनसे यह मालूम होता है कि मानवमूत्र-में कैन्सर, क्षय, श्वासरोग, हृदयरोग आदि घातक रोगोंको नष्ट करके शरीरको स्वस्थ बनानेके अद्‌भुत गुण हैं।

शरीरकी रचनाके अनुसार इसे तीन प्रकारके आहारकी जरूरत है। सबसे अधिक महत्त्वका आहार है वायु, क्योंकि इसके बिना शरीर क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता है। वायुसे दूसरे दरजे पर जल है। मनुष्य कई दिनों तक पानी पर जी सकता है। हमें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि वायु और जल पूर्ण स्वच्छ एवं निर्मल हों।

आहारके क्रममें तीसरा स्थान है अन्न, शाक आदिका। प्राकृतिक एवं सनातन सत्य तो यह है कि "आहार जीवनके लिए है," परंतु हमारी स्वादवृत्तिने इस सत्यको उलट दिया है, अर्थात् "आहारके लिए जीवन है" ऐसा कर दिया है, जिसका परिणाम यह आया है कि हमारा स्वास्थ्य बिगड़ गया है और बिगड़ता जा रहा है। गांधीजी "आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान"में लिखते हैं :—

"इसे तो सभी स्वीकार करेंगे कि लाखमेंसे निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे मनुष्य तो स्वादके लिए खाते हैं। ये लोग इस बात की परवा नहीं करते कि ऐसा करनेसे वे बीमार होंगे या तन्दुरुस्त रहेंगे।" (पृष्ठ ३६)

आगे चलकर वे लिखते हैं :—

"मनुष्य खानेके लिए नहीं जन्मा है और खानेके लिए जीता नहीं है, परन्तु अपने कर्ताकी पहचान करनेके लिए पैदा हुआ है और उस कामके लिए जीता है। ईश्वरकी पहचान शरीरके निर्वाहके बिना नहीं होती है और खुराकके बिना शरीरका निर्वाह नहीं हो सकता है, इसलिए भोजन करना अनिवार्य है। यह ऊँचेसे ऊँचा विचार है। . . . नास्तिक मनुष्य भी यह मान्य करेगा कि आरोग्यकी रक्षा करते हुए भोजन करना चाहिये और शरीरको स्वस्थ रखनेके लिए खाना चाहिये।" (पृष्ठ ३७)

शरीरको नीरोग एवं स्वस्थ रखनेके लिए यह अनिवार्य है कि हम अपने खाने और पकानेकी आदतोंमें परिवर्तन करें। रुचि तथा स्वादको महत्त्व न देकर उपयोगिता एवं पोषकताको महत्त्व देना चाहिये। अब तो साधारण व्यक्ति भी इस बातको मानता है कि पकानेसे शाक आदिके पोषक तत्त्व – विटामिन, क्षार, एन्ज़ाईम आदि नष्ट हो जाते हैं। आधुनिक आहारशास्त्री प्रयोगोंके आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि फल, शाकभाजी, अंकुरित अन्न आदि कच्चे या भापसे पका कर खायें, जिससे शरीरको उपयोगी और पोषक सभी तत्त्व पूरी तरहसे मिल सकें। उन्हें घी-तेलमें छोंक कर और नमक, मिर्चमसाले डाल कर खानेसे लाभकी अपेक्षा हानि अधिक होती है, क्योंकि वे गरिष्ठ अर्थात् पचनेमें भारी होते हैं।

स्वमूत्रचिकित्सा वस्तुतः प्राकृतिक चिकित्सा है और प्राकृतिक चिकित्सा एक जीवन-प्रणाली है। इसलिए हमारा खानपान एवं रहनसहन तदनुरूप ही होना चाहिये।

१ जनवरी, १९८१ पन्नालाल झवेरी

२. स्वमूत्र : स्वास्थ्यकारी एवं रोगहारी

– राजवैद्य पंडित शिव शर्मा

पंडित शिव शर्मा पटियालाके राजवैद्य पं. श्री रामप्रसादके होनहार सुपुत्र थे। इनका जन्म १२ मार्च, १९०६को टकसालमें हुआ था। वे आयुर्वेद विद्यालयके प्रतिभाशाली स्नातक थे और सुवक्ता भी।

पंडितजीने अमेरिका, जापान, आस्ट्रेलिया तथा यूरोपके कितने ही देशोंका प्रवास किया था। पंडितजीने आयुर्वेद पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं। जापानकी युनिवर्सिटीमें उनकी एक पुस्तक पाठ्य पुस्तकके रूपमें भी चलती है।

जीवनभर विभिन्न संस्थानोंके सभ्य तथा अध्यक्ष पदको विभूषित करते हुए वे उन संस्थानोंकी उन्नतिके लिए प्रयत्नशील रहे हैं।

समय समय पर विविध शिक्षण संस्थाओं एवं सरकारों द्वारा दिये गये पारितोषिकों तथा पुरस्कारोंमें 'धवन्तरि एवार्ड,' 'पद्म-भूषण,' 'वैद्यरत्न', 'आयुर्वेद चक्रवती' तथा 'पोपस मैडल' प्रमुख हैं।

हालमें कुछ पत्रकारोंने राजवैद्य पंडित शिव शर्माकी मुलाकात बम्बईमें ली थी, जिसमें स्वमूत्रचिकित्साके बारेमें रसप्रद प्रश्नोत्तर हुए थे। श्री बी. जे. कापडियाने उन प्रश्नोत्तरोंको आयुर्वेदके एक प्रसिद्ध-मासिक "निरामय" के जून १९७८के पूर्णांक ९९ तथा वर्ष ९के तीसरे अंकमें प्रकाशित किया है। उसका निम्नलिखित सार शिवाम्बु चिकित्सा सम्बन्धी गलतफहमी एवं भ्रान्तिको दूर करनेमें सहायक सिद्ध होगा।

– सम्पादक

पंडितजीने प्रश्नोत्तरके दौरान यह बताया – "मानवमूत्रको कई अच्छा मानते हैं और कई बुरा मानते हैं। यह तो अपनी अपनी मान्यताकी बात है। कुछ लोग अंबरको बहुत ही गुणकारी मानते हैं। यह सुगंधित द्रव्य एक प्रकारकी मछलीकी विष्ठा ही है। वह मछलीके लिए तो अग्राह्य है, वह उसे फेंक देती है। हम उसे औषधि तथा सुगंधके तौर पर उपयोगमें लेते हैं। कस्तूरी भी हिरनका एक प्रकारका जमा हुआ लहू ही है। वह हिरनकी नाभिमेंसे ही निकलता है, फिर भी उसका उपयोग किया जाता है और लाभकारी माना जाता है।

"मानवमूत्रमें कुछ एक 'माईक्रो एलिमेन्ट्स' होते हैं। वे मूत्रपान द्वारा शरीरमें दाखिल हो सकते हैं। इससे अनेक लोगोंको लाभ हुआ है और कुछको लाभ नहीं हुआ है। परन्तु यह विषय तो शरीर पर आधारित है। किसीको इससे लाभ हो या न हो, परन्तु हानि तो होती ही नहीं है। . . . . . मैं कितने ही ऐसे रोगियोंको जानता हूँ कि जो किसी भी तरहका इलाज किये बिना केवल अपने मूत्रके सेवनसे ही स्वस्थ हो गये हैं। स्तनके रोगसे पीड़ित सैकड़ों स्त्रियाँ भी मूत्रप्रयोगसे ही रोगमुक्त हो गई हैं।

"आयुर्वेदमें विभिन्न रोगोंके उपचारके लिए स्वमूत्रप्रयोग करनेकी भिन्न भिन्न पद्धतियोंका उल्लेख है। जिन्हें उसमें श्रद्धा हो वे लोग

यह प्रयोग करें तो इसमें कुछ भी बुरा नहीं है . . . . स्वस्थ व्यक्ति भी यदि स्वमूत्रका सेवन करे तो इससे कुछ भी हानि नहीं होती है। यह अनेक प्रकारसे गुणकारी है। चरकने कहा है कि "सेवितं तद् रसायनम्" –अर्थात् यदि मूत्रका यथोचित सेवन किया जाय तो आयु बढ़ती है। शरीरको स्वस्थ रखना और आयुमें वृद्धि करना मनुष्यका कर्त्तव्य है। . . . . स्वमूत्र विषनाशक है, आयु-वर्धक है। चमड़ीके सब रोग इससे नष्ट हो सकते हैं। यह खूनके कम दबाव तथा अन्य दोषोंको दूर करता है।"

३. स्वमूत्रचिकित्सा : एक अनुपम साधन

–डॉ. पी. सी. शर्मा, वैद्य बी. एन. पाण्डेय, श्री. जे. एन. सिंह
(औषधीय पाध्य सर्वेक्षण इकाई, राजकीय महाविद्यालय, पटना)

आयुर्वेद विश्वमें सबसे पुरानी चिकित्सा है। आयुर्वेदके मूल-ग्रंथों–चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, हारीत संहिता आदिमें मूत्र चिकित्साके बहुत उल्लेख मिलते हैं। चरक संहितामें आठ पशुओंके मूत्रका वर्णन किया गया है। सुश्रुत संहितामें आठ पशुओंके अतिरिक्त मनुष्यमूत्रका विश्लेषण किया गया है। उसमें बताया है कि मनुष्य का मूत्र विषनाशक है। हारीत संहितामें इसका अधिक ब्योरा दिया गया है। उसके बाद "निघन्टु" समयके बहुत ग्रन्थोंमें मानवमूत्रके विषयमें महत्त्वपूर्ण जानकारी दी गई है।

यों आयुर्वेदके भिन्न भिन्न ग्रन्थोंके अध्ययनसे मालूम होता है कि मानवमूत्रका उपयोग दीर्घकालसे होता आया है। मनुष्यमूत्र एक रसायन है, और वह विषनाशक तथा त्रिदोष-शामक होनेसे अनेक रोगोंको दूर करनेमें उपयोगी सिद्ध हुआ है, अतएव यह एक स्पष्ट तथ्य है कि मनुष्यजातिकी विविध व्याधियोंकी चिकित्साके लिए स्वमूत्रका उपयोग प्राचीनकालसे होता रहा है, और स्वमूत्र-चिकित्सा कोई नई वस्तु नहीं है। ऐसा लगता है कि कुछ समय तक मूत्रचिकित्सा विस्मृत हो गई थी, परंतु अब वह पुनः जीवित हो गई है।

एलोपेथी चिकित्सा पद्धतिके पुरस्कर्ता यह माननेको तैयार नहीं हैं कि मनुष्यमूत्रमें विविध रोगोंका उन्मूलन करनेकी अद्‌भुत शक्ति है। यह विचारणीय है कि आयुर्वेदके आधारभूत ग्रन्थोंमें इस चिकित्साका इतना विशद वर्णन क्यों किया है और इस बारेमें गहराईसे अन्वेषण करना अत्यावश्यक है। चाहे जो हो, इस विषयमें अधिक विवाद न करते हुए, इस चिकित्सासे रोगमुक्त होनेवाले कुछ रोगियों के दृष्टांत प्रस्तुत करते हैं।

बिहारके नवादा जिलेके रजौली कस्बेके जमींदार हीरासिंहजी को किसी स्थलसे स्वमूत्र-चिकित्साकी प्रेरणा मिली और वे पिछले कुछ वर्षोंसे इस चिकित्सा द्वारा श्री रावजीभाईकी पुस्तकमें दी हुई पद्धतिके अनुसार वहाँके गरीब लोगोंकी सेवा कर रहे हैं। हमने १९७८में उनके साथ घूम-फिर कर लोकसेवाकी प्रवृत्तिका प्रत्यक्ष अनुभव किया, जिसकी सफलताके कुछ एक उल्लेखनीय उदाहरण निम्नलिखित हैं :–

(१) श्री हेमराज चौधरीकी पत्नी यमुनादेवी, उमर २६ वर्ष, निवासी गाँव भाईजीभत्ता, रजौली। कानमें बार-बार आवाज आती तब १०-१२ मिनिटके बाद बेहोश हो जाती। सारा शरीर लकड़ीकी भाँति कड़ा हो जाता। डेढ़ेक घंटा यह स्थिति रहती। धीरे धीरे दर्द बढ़नेसे दिनमें बार-बार ऐसा होने लगा, और कभी कभी मुँहसे फेन निकल आता। सभी एलोपेथी डॉक्टरोंने रोगका निदान 'एपिलेप्सी' – मिरगी किया। और उसके लिए गार्डिनल, पेनिड्यूर्स, डाइलेन्टिन जैसी दवाएँ दीं। कितने ही महीने उपचार करने पर भी कुछ फायदा नहीं हुआ। निराश होकर बाबू हीरासिंहकी सलाहसे स्वमूत्रोपचार शुरू किया। एक मासमें व्याधि कम हुई और तीन मासके उपचारसे वह पूरी तरह मिट गई।

(२) श्रीप्रसाद रविदास, उमर ४० वर्ष, गाँव चौया, रजौली। कुछ वर्षोंसे बायें घुटने पर सूजन थी और पीड़ा होती थी। पैर मोड़नेसे अधिक पीड़ा होती थी। पेशाब मुश्किलसे बूँद बूँद आता था। आमवातका रोगी मालूम हुआ। दीर्घकाल तक एलोपेथीक

उपचार करने पर भी कुछ फायदा नहीं हुआ। बीमारी ४ बरस पुरानी थी, तब स्वमूत्रचिकित्साकी शरण ली गई। ४-५ मासकी चिकित्सासे रोगका नामनिशान बाकी न रहा। भूख बढ़ी और पाचनशक्ति सुधरी तथा कामशक्ति भी बढ़ गई। एक वर्षके उपचारसे रोगी संपूर्ण स्वस्थ हो गया।

(३) श्री लट्टन मेहता, आयु ३० वर्ष, गाँव चौया, रजौली। एलोपेथी डाक्टरोंके कथनके अनुसार और पेथोलॉजिक जाँचसे क्षय-रोगका निदान हूआ। रोगीको खाँसीसे कफमें खून आता था और शरीर दुर्बल हो गया था। हड्डियाँ, पसलियाँ दिखाई देती थीं। डाक्टरोंको रोगीके बचनेकी आशा न थी। इस रोगीने बाबू हीरासिंहकी देखरेखमें स्वमूत्रोपचार शुरू किया और ६ महीनेमें संपूर्ण स्वस्थ हो गया। उसके बाद भी दिनमें एक बार स्वमूत्रपान करता है।

(४) श्री जोगेश्वर ठाकुर, उमर ४५ वर्ष, गाँव फलावरिया, रजौली। हाथ-पैर और शरीरके दूसरे अंगोंकी चमड़ी फट जाती, घाव हो जाते और पानी निकलता। बहुत कमजोरी लगती। हाथ-पैरमें झुनझुनी होती और बार-बार सुन्न हो जाते। ऐसा लगता कि यह रोग रक्तपित्त है।

लगभग एक बरससे रोगी स्वमूत्रचिकित्सा कर रहा है। रोगमें ८५ प्रतिशत सुधार लगता है। केवल दो तीन छोटे घाव हाथपैर पर रह गये हैं। बाकीका शरीर स्वस्थ है। अब अपना कामकाज भलीभाँति कर सकता है। भूख लगती है, खाना हजम हो जाता है और शरीरमें पर्याप्त शक्तिका अनुभव करता है।

(५) श्री दुःखन मेहता, उमर ५० वर्ष, गाँव खलोल, रजौली। दायीं तरफकी चमड़ी पर हलके पीले रंगके बड़े बड़े चकते हो जाते। धीरे-धीरे सारे शरीरमें फैल गये। उनमें झुनझुनी और जलन होती, सारा शरीर सूज गया। दोनों हथेलियां लाल रहतीं और चमड़ी फट जाती। भूख नहीं लगती। खाना पचे नहीं। करीब एक वर्षकी स्वमूत्र-चिकित्सासे लगभग ८५ प्रतिशत फायदा है।

(६) श्री कंचनप्रसादसिंह, आयु ६६ वर्ष, गाँव पड़ुई, जिला जहानाबाद। गत कुछ वर्षोंसे जोड़ोंका दर्द था। साथमें धातुक्षीणता की भी शिकायत थी। पेशाब करते वक्त वीर्य भी निकलता। पाचन-शक्ति दुर्बल हो गई थी। अनेक उपाय किये, सफलता न हुई। स्वमूत्रचिकित्सा शुरू करनेके बाद कुछ दिन तक नाक तथा कानमें-से बहुत रस निकलता रहा। फिर तबीयत सुधरने लगी। स्वमूत्र-पान और मालिशसे तीन महीनेमें रोगी एकदम स्वस्थ हो गया। अब ६६ वर्षकी उमरमें शरीरमें जरा भी कमजोरी नहीं लगती है।

(७) श्री जगदीशप्रसादसिंह, उमर २५ वर्ष, गाँव खुर्दकमा, रजौली। गलेमें दर्द, खाँसी आती, कफके साथ खून निकलता और बुखार भी रहता और सिरमें दर्द होता। बहुत इलाज किये। फायदा नहीं हुआ। लगभग एक मासकी स्वमूत्रचिकित्सामें उपर्युक्त सभी तकलीफोंमें ५० प्रतिशत फायदा मालूम हुआ। कफके साथ खून आना बन्द हो गया। खाँसीमें बहुत फायदा हुआ।

४. मानवमूत्रमें उत्तम औषधीय तत्त्व

ता. ३०–९–'७९के 'जन्मभूमि प्रवासी'में श्री कान्तिलाल भट्टने "ब्लडप्रेशरमां मूत्रचिकित्सानी सफलता" नामक एक लेख लिखा है। उसका सारांश यहाँ दिया जाता है:

"अमेरिकाके एलोपेथिक डॉक्टरोंने अद्यतन अन्वेषण द्वारा यह साबित किया है कि उच्च रक्तचाप (हाई ब्लडप्रेशर)में मानव-मूत्र प्रभावक प्रमाणित हुआ है। बहुतसे लोग मूत्रचिकित्साको अवैज्ञानिक मानते हैं। अब बुद्धिगम्य तथ्य उनके समक्ष प्रस्तुत किये जा सकते हैं। गर्भवती स्त्रियों या कुँआरियोंका मूत्र तो अनेक ऐलोपेथिक दवाओंमें इस्तेमाल किया जाता है। तांत्रिक, योगी और रहस्यवादी मूत्रचिकित्साका समर्थन करते हैं।

"तिब्बतके महान योगी मीलारैया कहते थे – 'मुझे जब प्यास लगती थी तब मैं स्वमूत्र पीता था।' तिब्बतके कठिन वायुमंडलमें इस योगीको मूत्र पी कर निबाहना पड़ता।

"जैन ग्रन्थोंमें भी मूत्रचिकित्साका उल्लेख है। आचार्य भद्रबाहुके व्यवहारसूत्रमें कहा है कि साधक एकान्तमें रहकर उपवास करके साधना करे और 'दिनभरका मूत्र पी ले।

"डामरतंत्र नामके ग्रन्थमें 'शिवाम्बुकल्पविधि' नामक प्रकरणमें मूत्रचिकित्साका उल्लेख है कि किसी भी आध्यात्मिक सिद्धिके लिए शरीर स्वस्थ होना आवश्यक है। इस स्वास्थ्यके लिए साधना करनेसे पहले तान्त्रिक मूत्र पीते हैं।

"दक्षिण भारतके विद्वान् श्री सिद्धार तिरूमल्लुरेने, अपने तिरुमंदिरम् नामके ग्रन्थमें भी मूत्रचिकित्साको अमृत धारणा नाम दे कर मूत्र द्वारा शक्ति प्राप्त करनेकी बात लिखी है। वे कहते हैं कि तमाम औषधियोंका मूल मूत्रमें रहा हुआ है।

"उपर्युक्त सारी बातें तो पुराणों और पुराने आयुर्वेदकी हुईं; परंतु आधुनिक प्रमाण चाहिये। न्यूयार्क हॉस्पिटल कोर्नोल मेडिकल सेन्टरके डॉ. जॉन लाराधने २० वर्षके अन्वेषणके बाद कहा है कि हाई ब्लडप्रेशरके लिए आज जो दवाएँ दी जाती हैं उनमेंसे बहुत तो अनावश्यक हैं। . . . . रेनीन नामके तत्त्व द्वारा खूनके नॉर्मल दबावको सुरक्षित रखा जा सकता है। उनके प्रयोगके अनुसार मानवमूत्रमें काल्लीक्रेन नामका तत्त्व है, वह रेनीनको क्रियाशील बना सकता है, और ब्लडप्रेशरको संतुलित कर सकता है, अर्थात् मानवमूत्रमें उत्तम औषधीय तत्त्व मौजूद हैं। उच्च रक्तचापमें मूत्रचिकित्सा उपयोगी है। उसे अमेरिकाकी इस शोधसे पुष्टि मिलती है।"

५. अमृततुल्य एवं अमूल्य स्वमूत्र

श्री प्रफुल्लभाई वोरा बम्बईके एक प्रसिद्ध चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट हैं। वे अपने १५–५–'८०के पत्रमें लिखते हैं–"आपके मासिकका 'स्वमूत्र चिकित्सा विभाग' देखा। संस्थाके ध्येयमें मुझे रस है। 'स्वमूत्र-चिकित्साथी फायदो' इस शीर्षकसे 'जनशक्ति'में प्रकाशित पत्रकी कतरन भेजता हूँ।"

उनके पत्रका सारांश निम्नलिखित है :

"श्री सुरेशचन्द्र नायकका डेढ़ वर्ष पहले 'स्वमूत्रके फायदे' विषयक पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसे पढ़कर मुझे स्वमूत्रप्रयोग करनेकी प्रेरणा मिली। उनके पत्रमें निर्दिष्ट रावजीभाईकी पुस्तक 'मानवमूत्र' उसी दिन खरीदकर बहुत दिलचस्पीसे पढ़ी और श्रद्धासे रोज प्रातः एक गिलास स्वमूत्र पीने लगा। रावजीभाईने जोरदार शब्दोंमें यह बात लिखी है कि प्रयोगकर्त्ताका जीवन नियमित और भोजन सात्त्विक एवं हितकर होना चाहिये तथा उसे आरोग्यके नियमोंका पालन करना चाहिये। परंतु मैं तो आरोग्यके बहुत कम नियम पालता हूँ, फिर भी स्वमूत्रपान शुरू करनेके बाद गत १८ माससे दवा लेनेकी जरूरत नहीं हुई है। एलोपेथिक दवाके फायदे की अपेक्षा नुकसान अधिक है। जरूरत पड़े तो आयुर्वेदकी औषधि ली जाय, पर पिछले १८ महीनोंमें आयुर्वेदिक औषधिका भी उपयोग नहीं किया है। स्वमूत्रसे लोग घृणा करते हैं और कोई स्वमूत्रकी बात खुले आम करनेकी हिम्मत नहीं करता है।

"रावजीभाईकी पुस्तक दो तीन बार पढ़ी। छः मास स्वानुभव किया और स्वमूत्र अमृततुल्य प्रतीत हुआ। फिर डॉक्टरों तथा दवाके पंजेमें से लोगोंके तन-मन-धनको बचानेके लिए मैंने स्वमूत्रका प्रचार करनेका निश्चय किया। लगभग २५ रिश्तेदारों और मित्रोंको रावजीभाईकी पुस्तक भेंटमें दी। आजकलकी दवाएँ कामचलाऊ फायदा तो करती हैं, परंतु दीर्घकालमें बहुत ही हानि पहुँचाती हैं। ये दवाएँ जिन रसायनों तथा हिंसक पदार्थों से बनाई जाती हैं वे स्वमूत्रकी अपेक्षा अधिक घृणाजनक होते हैं।

"स्वमूत्र पीनेसे मेरी सर्दी और सिरदर्द कम हुए हैं तथा कब्ज तो बहुत ही कम हो गया है। घृणा एवं पूर्वग्रह छोड़कर लोग स्वमूत्रके लाभ समझें। . . . . लोग सैंकड़ों रोगोंसे पीड़ित हैं; परन्तु डॉक्टरोंकी खर्चीली दवाओं और नफाखोरीसे लोग अधिक पीड़ित हैं। मैंने इस आशयसे यह पत्र प्रकाशित किया है कि लोग डाक्टरोंके खर्चीले उपचारको तिलाञ्जलि दें और अमृत तुल्य एवं अमूल्य स्वमूत्रका सेवन कर नीरोग तथा स्वस्थ बनें। मैं लोगोंको स्वमूत्रका महत्त्व समझानेके लिए इसका प्रचार करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।"

६. स्वमूत्र : जीवनके लिए अमृत

३० जुलाई १९७७के 'इलस्ट्रेटेड वीकली' में एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसका सारांश निम्नलिखित है :—

"श्री बाबूभाई पिछले ६ बरससे अपने दिनका आरंभ एक नये प्रकारके पेय (ताजा स्वमूत्र)से करते हैं। वे बताते हैं कि स्वमूत्रमें हॉरमोन्स एवं दूसरे उपकारक द्रव्य पाये जाते हैं, जो हृदय-रोग और कैन्सर सहित सभी रोग मिटानेकी क्षमता रखते हैं, इस लिए स्वमूत्र जीवनके लिए अमृत समान है। फिर वे स्वानुभवकी बात कहते हैं— मैं ११ वर्षसे कोलाईटिस और गैसके पुराने रोगसे पीड़ित था। मैंने वनस्पतियों, औषधियों, चूर्णों आदि सभी उपायोंको आजमा देखा। परंतु कोई डाक्टर, हकीम, वैद्य मेरा रोग मिटा नहीं सका। एक मित्रने स्वमूत्रपानकी पद्धति सुझायी। उसने स्वमूत्र प्रयोगसे अपनी बवासीरको नष्ट किया था।

"दो दिनमें ही मूत्रकी घृणा जाती रही, और १५ दिनमें ही मूत्रका लाभ भलीभाँति प्रतीत हुआ और दो मासमें मैं संपूर्ण रोगमुक्त हो गया। तबसे मैं कभी सवेरे मूत्रपान करनेमें चूका नहीं हूँ। श्री लवणप्रसाद एक संस्थाके ट्रस्टी हैं। इस संस्थाके बहुतसे सभ्य हृदय रोग, गीला एक्ज़ीमा, अल्सर तथा आर्थराईटिस जैसे रोगोंसे पीड़ित थे। दूसरे उपायोंकी निष्फलताके बाद उन्होंने स्वमूत्रोपचारके आश्चर्यकारक परिणामोंका अनुभव किया। हमें स्वानुभवसे प्रतीति हुई है कि स्वमूत्रमें रोगनिवारक अमूल्य तत्त्व विद्यमान हैं।"

" 'शिवाम्बु क्योर' नामक पुस्तकमें स्व. डॉ. परागजीभाई देसाई लिखते हैं कि 'स्वमूत्रोपचार'का एक महान लाभ यह है कि रोगीका अपना ही मूत्र उसकी सारी बीमारियोंका प्रभावशाली उपाय है, फिर वह कैन्सर, टी. बी., लेप्रसी या कॉलेरा हो।

"किसी भी बीमारीके आरंभमें स्वमूत्रप्रयोग विधिपूर्वक किया जाय तो मैं अपने १५ वर्षके अनुभवके आधार पर पूर्ण विश्वासके साथ कह सकता हूँ कि लेप्रसी, डायबिटीस, हृदयरोग, कैन्सर, सहित सभी छोटे-बड़े रोग १ से २ मासमें मिटाये जा सकते हैं।"

७. डॉ. जितेन्द्रकुमार जैनका अनुभव

डॉ. जितेन्द्रकुमार जैन (पाली, जि. ललितपुर, उत्तरप्रदेश)का पत्र २४–१०–'७९को मिला, जिसमें वे लिखते हैं:—

"इस चिकित्साके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ी। मेरी श्रद्धा बढ़नेका एक कारण और भी है कि मैं चिकित्सा-क्षेत्रमें कार्यरत रहता हूँ। और कई ऐसे रोग हैं, जिनका इलाज किसी भी चिकित्सा-पद्धतिमें संभव न हो सका। उन पर थोड़ा-बहुत प्रयोग करनेसे कुछ लाभ-कारी अनुभव देखने को मिले। और उन रोगियोंको, जो अपने जीवन से निराश हो गये थे, आशाकी किरण दिखाई देने लगी। हमें विश्वास है कि वे अपने रोगोंसे मुक्त हो जायेंगे। इसी संबंधमें अपनी सास का ही केस लेता हूँ, जिनको डॉक्टरने मस्तिष्कका कैन्सर बताया था। ऑपरेशनके बाद हालतमें सुधार नहीं हुआ। पर मूत्र चिकित्साके कारण उनकी हालतमें काफी सुधार हुआ। आज भी चिकित्सा जारी है और धीमे धीमे सुधार हो रहा है।"

८. श्रीमती एन. डेवीके अद्‌भुत अनुभव

श्रीमती एन. डेवी (केनेडाके सर्रे, ब्रिटिश कोलंबिया)का पत्र १४–१–'८०को मिला। वे लिखती हैं:—

"मैं निर्देशके अनुसार प्रतिदिन मालिशके लिए मूत्र रख कर बाकी मूत्र पीती हूँ, और रातको मूत्रमालिश करती हूँ। अच्छे परि-णाम अभी तक भी आ रहे हैं। मेरा वजन कम हो गया है, और स्थूलता व दुठुड्डी मिट जानेसे मुख सुन्दर एवं कान्तिमान लगता है, जिससे मुझे अपूर्व हर्ष होता है। मेरी चमड़ी अधिक कोमल हो गई है और मुझे सदा परेशान करनेवाले टाँगके फोड़ोंका नामनिशान मिट गया है। मूत्रने जैसे मेरे एन्ज़ाईमकी कमीको पूरा कर दिया है वैसे ही खूनमें प्रोटीनके असन्तुलनको भी ठीक कर सकता है। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि १० वर्षसे ली जानेवाली 'कोर्टिजोन' अब लेनेकी जरूरत नहीं है। फिर यह भी आश्चर्यजनक है कि मेरे

नितम्बकी पुरानी पीड़ा भी नष्ट हो गई है। पहले दायीं ओर लेटनेसे मुझे अत्यन्त पीड़ा होती थी। अब मैं दायीं ओर आरामसे लेट सकती हूँ, जिसे मैं मूत्रचिकित्साका ही चमत्कार मानती-समझती हूँ।"

९. स्वमूत्र : प्रकृतिकी अपूर्व देन

श्री सुरेशचन्द्र पी. नायक बम्बईमें रहते हैं। बरसोंसे उन्हें सर्दी परेशान करती थी। सद्भाग्यसे उन्हें 'मानवमूत्र' और श्री मोरारजीभाई देसाईकी पुस्तिका–'कुदरती उपचार' पढ़नेका अवसर मिला और वे स्वमूत्र चिकित्साके श्रद्धालु हो गये। २१–१०–'७७से वे स्वमूत्र प्रयोग करने लगे। १५ दिनमें ही उनकी बरसों पुरानी सर्दीका नामनिशान बाकी न रहा। वे अपने शरीरमें अनोखी स्फूर्ति एवं शक्तिका अनुभव करते हैं। दिनभर काम करनेसे थकते नहीं हैं। पेट साफ रहता है, शान्तिपूर्ण अच्छी नींद आती है, और मनोबल बहुत ही दृढ़ हो गया है।

उनके दो बच्चोंने भी इस प्रयोगसे सर्दी एवं बुखारसे मुक्ति पा ली है। उनकी सलाहसे एक व्यक्तिने मूत्रप्रयोगसे चमड़ीकी बीमारी को मिटाया है; दूसरे व्याक्तने पैरकी पीड़ा एवं सूजनको दूर किया है; और तीसरा व्यक्ति, जो कारखानेमें काम करता है, उसने अपने स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए स्वमूत्रपान किया। उसे दिन भर काम करने पर भी थकान नहीं लगती है और रातको शान्तिपूर्वक गहरी नींद आ जाती है। यों अन्य अनेक व्यक्तियोंने स्वमूत्र-प्रयोग द्वारा अपनी-अपनी बीमारीको मिटाया है।

वे स्वमूत्रको प्रकृतिकी अनुपम देन मानते हैं और चाहते हैं कि सारे देशमें बड़े पैमाने पर स्वमूत्रचिकित्साका प्रचार हो जाय।

१०. एक मुस्लिम सज्जनकी स्वमूत्रनिष्ठा

श्री एम. ए. राऊफ (पिथौरा, जि. रायपुर, मध्यप्रदेश) अपने १८–१२–'७८के पत्रमें लिखते हैं :–

"श्रीमान्‌जी ! बेहद खुशीके साथ लिख रहा हूँ। मेरा लड़का गुलाबखान, उम्र २१ साल; उसके पेटमें अलसर हो गया था। डॉक्टरोंसे

इलाज कराया, ऑपरेशनकी सलाह दी। इस बीच मुझे 'आरोग्यका अमूल्य साधन: शिवाम्बु–स्वमूत्र' पुस्तक पढ़नेको मिली। पुस्तकके अनुसार मैंने दिनांक ३०–९–'७८से दोनों वक्त मालिश एवं तीन बार स्वमूत्र पीना चालू करा दिया है। चालीस दिनके अंदर आराम हो गया . . . पुस्तक और अपने अनुभवके अनुसार मैं इसका प्रचार कर रहा हूँ। अभी खास पिथौरा व नजदीकके गाँवोंमें इसके सेवन से करीब दो-तीन सौ बीमारोंको आरोग्य मिल चुका है। कई प्रकार की पुरानी बीमारीमें इसका सेवन कर लाभ उठा रहे हैं। उदाहरण के तौर पर–अल्सर, कैन्सर, सफेद कोढ़, टी. बी, पुराना दमा, लकवा, फोड़ा-फुन्सी, कान दर्द, हाथका कम्पन आदिके लिए पुस्तक पढ़ते ही मूत्रप्रयोग शुरू कर देते हैं . . . हमें खुशी है कि लोग स्वमूत्रका सेवन कर लाभ उठा रहे हैं। मैं इसका प्रचार बिना स्वार्थ कर रहा हूँ। आपके यहाँ ऐसा प्रचार संबंधी नियम हो तो सूचित करें और साथ ही साथ कुछ मार्गदर्शन करते रहें, एवं पत्रव्यवहार करते रहें, जिससे गरीबोंको और ज्यादा लाभ पहुँचे।"

११. प्रो० के० के० शर्माके स्वानुभव

श्री के० के० शर्मा नेहरू यूनिवर्सिटी नागालॅन्ड (कोहीमा) में प्रोफेसर हैं। वे अपने ७–७–'८०के पत्रमें लिखते हैं:–

"बहुत आश्चर्यकी बात है कि मेरी दंत-पीड़ा स्वमूत्र-चिकित्सासे ४ दिनमें मिट गई है। अब कब्ज नहीं है। दायीं टाँगका एग्जीमा ६ दिनकी मूत्रपट्टीसे ठीक हो गया है। मैंने चश्मेको तिलाञ्जलि दे दी है और आँखकी शिकायत दूर हो रही है।

"मेरी पत्नीने एक मास पूर्व रसाहारके साथ मूत्रोपवास किया था। दिनमें तीन बार ताजा पेशाब पीती थीं। अब सिरका घूमना बंद हो गया है और बेसुधी जाती रही है। वे स्फूर्ति एवं शक्तिका अनुभव करती हैं।

"मेरी १४ वर्षकी पुत्रीको गत दो वर्षसे कफ परेशान कर रहा था। छींकें आती थीं और सिर-दर्द रहता था तथा अशक्ति

भी लगती थी। रसाहारके साथ तीन दिनका उपवास करनेसे काफी लाभ हुआ है। चिपकी हुई बलगम निकली और एक दिन मूत्रकी भाप लेनेसे नीले रंगका कफ निकला था। सामान्य सुधार सन्तोष-जनक है और पूरे आरामकी आशा है।

"स्वमूत्रचिकित्साकी पुस्तकें भेजनेके लिए मैं आपका बहुत आभारी हूँ, जिनसे मेरे प्राकृतिक अनुभवोंमें नया आयाम मिला है। इस चिकित्सा पद्धतिको एक सुदृढ़ प्रभावशाली माननेकी नैतिक शक्ति मिल रही है मुझे।"

१२. युवा विद्यार्थीकी स्वमूत्र-श्रद्धा

एम० एस० वडोदरा यूनिवर्सिटीमें एम. कॉम. के विद्यार्थी हैं। वे १९-९-'७९के पत्रमें लिखते हैं :-

"मैंने श्री रावजीभाई पटेलकी पुस्तक 'मानवमूत्र' पढ़ी। फिर इस बारेमें अपने फेमिली डॉक्टरका अभिप्राय पूछा। उन्होंने तो इसके प्रति बहुत अरुचि बता कर मुझे इसका उपयोग न करनेके लिए कहा। फिर भी इसका उपयोग करनेका दृढ़ निर्णय करके पुस्तककी सूचनानुसार चिकित्सा शुरू कर दी। कैसा चमत्कार! इससे मैंने अपनी खोई हुई स्वस्थताको पुनः प्राप्त कर लिया। अब किसी भी प्रकारकी शारीरिक शिकायत नहीं है। ४ जुलाईको मैंने चिकित्सा शुरू की थी। वह दिन मेरे लिए सुनहरा एवं स्मरणीय हो गया और मैं इस पद्धतिका पक्का हिमायती बना हूँ। मेरा दवाओंका बिल शून्य हो गया है। यह तो कुदरतकी अमूल्य देन है। अपने मित्रों एवं सगे-संबंधियोंसे यह चिकित्सा अपनानेके लिए अनुरोध करता रहता हूँ। उन्हें भी इससे बहुत लाभ हुआ है। हमें प्रजाको इस चिकित्साके बारेमें परिचित एवं जागृत करना चाहिये। दवाओंके बड़े बड़े उत्पादक प्रजाको लूटते हैं। मैं इस बाबतमें आपकी किस तरह मदद कर सकूँ? यह पुस्तक प्रकाशित करनेके लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

१३. जलने, बिच्छू, साँपके दंशकी श्रेष्ठ दवा

डॉ. उषाबहन ठक्कर आर. एम. पी. राजकोटसे अपने परिपत्रमें लिखती हैं :—

"प्रतिदिन अनेक मनुष्य जलनेसे अपंग हो जाते हैं, विकृति धारण करते हैं या मरणकी शरण पाते हैं। जलनेकी परिचर्या जबतक नहीं हो पाती तब तक बड़ी जलन होती है, फफोले उभर आते हैं और दाह शरीरमें वेगसे फैल जाता है। मानवमूत्र जलनेकी श्रेष्ठ दवा है। जले हुए भाग पर मूत्रकी पट्टी रखनेसे जलन बंद हो जायगी, फफोले दब जायेंगे। विशेष चमत्कार तो यह है कि चमड़ी पर नामनिशान भी नहीं रहेगा।

"**बिच्छू या साँपके दंशकी श्रेष्ठ दवा :** बिच्छूके दंशसे बहुत बार मृत्यु हो जाती है। आयुर्वेदमें मानवमूत्रको 'विषहर' बताया है। औषधके रूपमें पीनेसे उलटी हो कर विष उतर जाता है। इन दोनों पीड़ाओंके लिए मानवमूत्र कितना उपयोगी एवं उपकारक है—यह तथ्य सरलतासे समझा जा सकता है।"

१४. स्वमूत्र : सर्वरोगनाशक

श्री एन. पी. भारते बी. एस-सी., एम. ए., बी. एड. लेक्चरर (अकलतारा, जि. बिलासपुर, म. प्र.) अपने २०–८–'७८के पत्रमें लिखते हैं :—

"आदरणीय झवेरीजी,

आपके कुशल निर्देशनके अनुसार मैंने स्वमूत्रचिकित्सा प्रारंभ की। पहले दो-तीन दिन मालिश की, फिर दो दिन तक कुल्ले किये एवं आँखोंमें छींटे मारे। और पाँचवें दिन पीनेका आरंभ किया, फ़ायदा हुआ। तत्पश्चात् सारे शरीरकी इन्द्रियोंमें प्रयोग प्रारंभ कर दिया। सिरमें मालिश, आँखोंको धोना, कानमें डालना आदि आदि। अब यह चिकित्सा मेरे घरमें आमतौर पर प्रचलित हो गई है। बाह्य प्रयोग, जले, कटे, घाव, आँख, कान, नाकके लिए रामबाण-सा उपयोग हो रहा है। अब पेटमें गैस नहीं बनती।

"मैंने अपने क्षेत्र, जांजगिर, अकलतरा, बलौदाके आसपासके लोगोंमें प्रचार आरंभ किया है . . . मैं यह चाहता हूँ कि यह प्रयोग सामान्य हो जावे, और गरीब-निर्धन लोग निःशुल्क उपचार करें एवं स्वस्थ रहें। मैं अर्थशास्त्रका व्याख्याता हूँ, मेरा हर कार्य जनसहयोगसे उच्चतम लोक-कल्याणार्थ होता है। धन्यवाद।"

डॉक्टरोंसे प्रार्थना है कि न्युट्रीशनल कन्सल्टेन्टका निम्नलिखित पत्र पढ़कर स्वमूत्रोपचारकी वैज्ञानिक छानबीन करके उसकी रोग-निवारण शक्तिका स्वानुभव करें।

Gunter Kiehn, B. S. Nutritional Consultant,
2375 Brookside Way Indialantic, Florida, 32903,
(305) 773-1404,
(305) 773-3203 U.S.A.

Nurnberg,
19 Sept. 77

Dear Mr. Zaveri,

Because of my sincere interest in "Natural Healing" I have for some time also looked into "Urine Therapy". In this connection I have noticed that it is quite well known in Europe, especially in Germany. Also I have some idea about why it works. For instance, (1) Baylor University in Texas : scientists found active Tumour-dissolving substances against any type of Cancer and have tested to date of their report. (2) Active substances called Quinones are present according to the great American Medical Researcher, William Frederick Koch. These Quinones are active against all disease conditions of man or beast.

I would be most grateful for putting me in touch with researchers for further exchange of information.

Sincerely,
(Sd.) Gunter Kiehn

१५. हृदयके रोग

मायोकार्डिअल इन्फार्कशन

डॉ. दातेका 'स्वमूत्रोपचार' नामक लेख २२–११–'७७के 'टाइम्स ऑफ इन्डिया 'में प्रकाशित हुआ था। बम्बईवासी श्री वी. के. बानोडकरने उपर्युक्त लेखके सिलसिलेमें जो पत्र डॉ. दातेको लिखा था उसकी नकल हमें २९–१२–'७७को मिली थी, जिसका सारांश निम्नलिखित है :—

“. . . मेरे दायें कन्धेमें दर्द हुआ। मैं अपनी कम्पनीके डाक्टरके पास गया। उन्होंने कार्डिअक ट्रबल होनेका निदान किया और मैं दवाएँ लेने लगा। एक वर्ष सतत दवाएँ लेने पर भी कोई खास फायदा न होने से आपकी सलाह ली . . . आपने 'कार्डिअक इंफार्कशन' तथा 'लेफ्ट वेन्ट्रिक्यूलर हाईपरट्रॉफी' (वाम हृदयकोषका बढ़ जाना)का निदान किया और तदनुसार उपचार शुरू करा दिया। मार्च '७३से मैं आपका उपचार सतत दो वर्ष तक करता रहा, परन्तु कोई विशेष लाभ न होनेसे मैंने आपका इलाज भी छोड़ दिया। मेरा स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन बिगड़ता गया, हथेलियाँ पीली हो गईं, रेखाएँ काली होती गईं और नख पीले एवं कुरकुरे होने लगे। मुझे कोई दवा अनुकूल न आती थी। . . . .

“. . . . इस स्थितिमें ही मैंने 'मानवमूत्र' और 'दी वॉटर ऑफ लाईफ' दोनों पुस्तकें पढ़ कर स्वमूत्रका प्रयोग करनेका निर्णय किया। हृदयकी कमजोरीके कारण मैं आवश्यक उपवास तो नहीं कर सका। फिर भी मैं कभी कभी मूत्रपानके साथ दो-एक उपवास कर डालता था। मैं मूत्रप्रयोग अनियमित करता रहा। छः मासमें मेरा स्वास्थ्य सुधरने लगा। मेरी हथेलियाँ लाल होने लगीं। पीले नखोंमें लाली आने लगी। मेरा दर्द जाता रहा, भूख और वजन बढ़ने लगे। नाड़ीकी धड़कन धीरे धीरे बढ़ कर ६८–७० तक पहुँची, अब ७६–७८ जितनी है। वीर्यशक्ति बढ़ी लगती है। आवाज़ अधिक स्पष्ट तथा तीव्र हुई है। बालोंका सफेद होना रुक गया है। ५८ वर्षकी उमरमें भी नयी प्राणशक्ति प्राप्त हुई है और सम्पूर्ण स्वस्थता प्रतीत होती है।

"...... अब मैंने स्वमूत्रपान कम कर दिया है और भोजनमें भी कोई परहेज नहीं रखता हूँ। मैं अपना सभी दैनिक कार्य स्वयं ही करता हूँ, फुरतीसे सीढ़ी चढ़ता हूँ, पुल पर सरलता से चढ़-उतर सकता हूँ और अपनी कार खुद ही चलाता हूँ तथा उसकी धुलाई भी करता हूँ।

".... मेरे अनेक मित्रोंने अपने छोटे-बड़े रोगोंमें स्वमूत्र प्रयोगसे लाभ उठाया है। चमड़ीके रोगोंके लिए स्वमूत्रसे बढ़कर और कोई मरहम नहीं है। .... कितने ही डाक्टर स्वमूत्रपान का विरोध करते हैं; परंतु मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि मैंने गैलनों स्वमूत्रपान किया है और उससे मुझे कोई भी हानि नहीं हुई है। मैं आशा रखता हूँ कि आप स्वमूत्रोपचारकी प्रभावशालिता के बारेमें पूरा अन्वेषण करेंगे और तत्संबन्धी मिथ्या एवं भ्रान्त विचारको दूर करनेका श्रेय प्राप्त करेंगे।"

हाई ब्लडप्रेशर एवं हृदयरोग

बम्बईके वैद्य श्री वी. ए. अपने पत्रमें लिखते हैं:—

"मैं हाई ब्लडप्रेशर एवं हृदयरोगसे पीड़ित था। मैंने एक 'कार्डियोलॉजिस्ट' (हृदयविज्ञानी)की सलाहसे कुछ 'वासोडाइलेटर ड्रग्स' (रक्तवाहिनियोंको विस्तृत करनेवाली दवाएँ) इस्पोटिन और सॉर्बिट्रेट खाईं। परिणामस्वरूप सख्त सिर-दर्द हो जानेसे तीन मासके बाद उन्हें तिलाञ्जलि दे देनी पड़ी। शिवाम्बुकल्प शुरू किया। ई. सी. जी. से मालूम हुआ कि मैंने स्वास्थ्यकी साधारण—नॉर्मल स्थिति प्राप्त कर ली है, अर्थात् मैं सर्वथा रोग-मुक्त हो गया हूँ। इससे यह फलित होता है कि मूत्रमें पाये जानेवाले उपयोगी तत्त्व—एसिडरियल, नाईट्रोग्लिसरीन, हॉर्मोन्स आदि मूत्रपान द्वारा अन्दर जाकर रोगनाशक एवं स्वास्थ्य-साधक सिद्ध होते हैं। सचमुच ही यह जीवन-जल है।"

हृदयरोग, हाई ब्लडप्रेशर और पथरी

बेंग्लोरके भूतपूर्व मेयर श्री एन. केशव २६–११–'७९के पत्रमें लिखते हैं:—

"१९७८के जुलाई मासमें हृदयरोगका सख्त हमला हुआ। सेन मार्थानी हॉस्पिटलमें मुझे ऑक्सीजन पर रखा गया था। ४० दिन तक हॉस्पिटलमें रहनेके बाद डॉक्टरकी दवा चालू थी। पिछले कुछ वर्षोंसे मैं हाई ब्लडप्रेशरसे भी पीड़ित था और 'गालब्लैडर'में पथरी भी थी। आपकी सलाहसे मैंने स्वमूत्रपान शुरू किया। कुछ दिन तक तो मुझे स्वमूत्रका स्वाद विचित्र लगा, परंतु फिर किसी भी प्रकारकी खराब वास या स्वाद दूर हो गये। जो दवा मुझे दी जाती थी उसे पीना भी बंद कर दिया। मुझे थोड़े दिनोंमें बहुत फायदा मालूम हुआ। एनिमा लेनेकी जरूरत न हुई और शौच स्वतः होता रहा। भूखमें सुधार हुआ। रातको अच्छी नींद आने लगी। और मेरे मित्रोंने मेरी सुधरी हुई तबीयतके बारेमें पूछा। आपने मुझे लगभग पूर्ववत् स्वस्थ कर दिया है। इसके विषयमें मैं अपने मित्रों एवं परिचितोंमें इस चिकित्साका प्रचार करता रहूँगा। मैं आपका आभार शब्दोंमें नहीं मान सकता। आप इस चिकित्सासे लोकसेवा कर रहे हैं उसके लिए हार्दिक धन्यवाद।"

१६. क्षय रोग

श्री धनराज रूपाजी पटेल (जि० उदयपुर, राजस्थान) २४-२-'८० के पत्रमें लिखते हैं :—

"मैं धनराज सभी कार्यकर्ताओंको सप्रेम नमस्कार करता हूँ और जिन पुरुषोंने 'मानवमूत्र' नामकी पुस्तक छपवाकर निकाली है या इस पवित्र कार्यमें साथ दिया है, उनका मैं बहुत आभारी हूँ। मैं एक किसानका लड़का हूँ। मेरी उम्र ३५ साल है। १९७८में क्षयका रोगी था। दवाखानेमें भरती हुआ तथा घर पर दवा ली। इसके बाद अचानक मेरी नजर 'मानवमूत्र' पुस्तक पर पड़ी। पढ़कर मैंने दवाइयाँ बंद कर दीं तथा मूत्रपान शुरू किया। डाक्टरने मुझे दो वर्ष दवा लेनेकी सलाह दी थी। करीब एक वर्षसे मूत्र-पान दिनमें एक बार नियमित करता हूँ तथा किताबमें दिये गए निर्देशोंका अच्छी तरह पालन किया है। अब मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ।"

वर्षोंका क्षय रोग

श्री चन्द्रभूषण झा सहरसा (बिहार) से लिखते हैं :—

"मेरे पिताजीकी उमर लगभग ६५ वर्ष है, क्षय रोग (T. B.) से कई वर्षोंसे बीमार थे। आजसे लगभग १० महीने पूर्व वे स्वमूत्र-पान, दो टाइम सुबह शाम करने लगे। कुछ दिनके बाद कोई खास फायदा नजर नहीं आया। फिर भी वे दो टाइम स्वमत्र-पान करते रहे, और एक महीना तक नमक खाना छोड़ दिया। और इस बीच मूत्रमालिश भी की। एक महीनेके बाद उनको काफ़ी फायदा हुआ। टी. बी. के सभी लक्षण छूट गये। वे अब बिलकुल ठीक हैं तथा अब नमक भी खाते हैं तथा दो बार स्वमूत्र-पान करते हैं।"

पुराना क्षय रोग

श्री दशरथसिंह (गाँव पुराबजार, जि. फैजाबाद, उ. प्र.) अपने पत्रमें लिखते हैं :—

"परम हर्ष है कि मैं आपके बताये हुए 'आरोग्यका अमूल्य साधन – स्वमूत्र' से लाभ उठा रहा हूँ। आजसे लगभग १२-१३ साल पहले मुझे पेचिशने पकड़ा था। मैंने दो कोर्स इन्जेक्शन लिया, मुझे गैस्ट्रिक हो गया। दस्त बड़ी मुश्किलसे होने लगा। मुझे जुकाम होने लगा और अल्सर भी। डाक्टरने टी. बी. घोषित कर दिया। तब मैंने ७-८ वर्ष टी. बी. का इलाज करवाया। उस बीच मैंने दो बार अस्पतालमें एडमिशन लिया, किन्तु दर्द ज्योंका त्यों बना रहा। इस बीच एक मित्र द्वारा मुझे स्वमूत्रकी पुस्तक पढ़नेको मिली। उपाय शुरू कर दिया। अब मुझे पूरा आराम है। मैं रातको आरामसे सोने लगा हूँ। मेरी साँस बराबर चलने लगी है। मैं जल्द ठीक हो जाऊँगा। पुस्तक भेजनेकी कृपा करें।"

१७. खाँसी एवं श्वासकी पीड़ा

श्री रमेश परमार, रांदेर (सूरत) से अपने पत्रमें लिखते हैं :—

"पिछले १० वर्षसे मुझे ६-७ बार श्वासकी पीड़ा हुई थी। गत जूनमें श्वासके आक्रमणके दौरान शरीर बहुत ही शिथिल हो

गया था और चलनेसे श्वास चढ़ जाता था। तब मुझे जीवनजल-(स्वमूत्र)का विचार 'मानवमूत्र' का १०वाँ संस्करण पढ़ कर सूझा।

"२५-१२-'७९ से मैंने सुबह आधा गिलास जीवनजल पीना शुरू किया, जो चालू ही है। अब श्वास-कफकी कोई पीड़ा नहीं है। इस प्रयोगके दौरान मेरा अनुभव यह है कि ईश्वरश्रद्धाके साथ स्वमूत्र लेनेसे कोई तकलीफ पेश नहीं आती है। श्वासकी पीड़ा फिर नहीं हुई और रातको १० से ७ बजे तक संपूर्ण निद्रा आती है। खाँसीका नामनिशान भी बाकी नहीं रहा। एक परिचित सज्जन और दो डॉक्टर भी यह प्रयोग कर रहे हैं। उनका और अपना अनुभव ब्योरेवार लिखता रहूँगा।"

पुरानी खाँसी और गुप्त मार

श्री खीमजीभाईका भेजा हुआ एक और वृत्तान्त।

श्रीमती लक्ष्मीबहन नायकका पुत्र बम्बईसे लिखता है:

"६५ वर्षकी मेरी माता लक्ष्मीबहनको बहुत समयसे सूखी खाँसी परेशान करती थी। बहुत दवाएँ करने पर भी मिटती नहीं थी। मैं स्वयं स्वमूत्र-पान करता हूँ और मेरी बहुत श्रद्धा है। मैंने अपनी माताजीसे स्वमूत्रपान करनेके लिए अनेक बार निवेदन किया, परंतु उन्होंने वैसा नहीं किया। चारेक मास पूर्व वे टेबलसे गिर पड़ीं, दायें हाथमें गुप्त मार लगने से सूजन आ गई। आयुर्वेदका उपचार किया, हड्डी-चिकित्सकको भी दिखाया। परंतु उनकी पीड़ा किसी तरह भी नहीं मिटी। मैं गरम बासी मूत्रसे उनकी मालिश करने लगा। धीरे धीरे उनकी पीड़ा दूर होने लगी, जिससे उन्होंने स्वमूत्र-पान भी शुरू कर दिया। १५ दिनमें ही उनकी पुरानी खाँसी नष्ट हो गई। खाँसीके कारण होनेवाली हाँफी, अनिद्रा, अशक्ति आदि सभी तकलीफें दूर हो गईं। शरीरमें दिन भर स्फूर्ति प्रतीत होने लगी। गरम मूत्रकी मालिशसे सूजन जाती रही और पीड़ा नामशेष हो गई। अब वे दही व छाछ भी ले सकती हैं। स्वमूत्र पीनेसे शरीरके विकार अपने आप दूर हो गए हैं और रातको अच्छी नींद आती है।

"स्वमूत्रके लिए इतना ही कहूँगा कि वह प्रकृतिकी दी हुई अद्भुत, अलौकिक एवं अचूक दवा है। यह रोग-निरोधक शक्तिको बढ़ाती है। इससे दिनमें अनेक बार खानेकी जरूरत नहीं रहती, फिर भी शरीरमें काम करनेकी अनोखी शक्ति बनी रहती है।"

१८. कैन्सर

गलेका कैन्सर

श्री भगवानजी जमनादास पानवाला (गाँव जामरावल, जि. जामनगर, गुजरात) ३१–८–'७८के पत्रमें लिखते हैं:–

"मार्चमें मेरा सिर गरम रहने लगा और दो मास बाद गलेमें फोड़ा हो गया। धीरे-धीरे खाने-पीनेमें पीड़ा बढ़ने लगी। जूना-गढ़के डॉ. भारडियाने बायोप्सी करके कहा कि कैन्सर है। मैं तुरन्त बम्बई पहुँचा और वहाँ टाटा मेमोरियलमें डॉ. प्रफुल्ल देसाईने देखकर सेंक लेनेका सूचन किया। परन्तु मैं वापस आ गया और 'मानव-मूत्र' पढ़कर प्रयोग करनेका निश्चय किया। तदनुसार ७–८–'७८से ४ दिनका मूत्रोपवास करके आपको पत्र लिखा, उसका जवाब आने पर मुझे सन्तोष हुआ, क्योंकि मेरी चर्या तदनुसार चलती थी और अब भी चलती है। तीन सप्ताहमें मुझे लगभग १२ आना फायदा हुआ है। आजकल दोनों वक्त गेहूँके खाखरे और उबली हुई शाकभाजी लेता हूँ। दिनमें ३-४ बार ८ औंस जितना पेशाब पीता हूँ। शुरूमें थोड़े दिन गलेकी मालिश करवाई थी। मानसिक शक्ति खूब ही अच्छी टिकी हुई है। शारीरिक शक्ति बढ़ानेके लिए आपकी सूचनाके अनुसार आहारमें सुधार करनेका विचार है। परन्तु उसके लिए मेरा आग्रह नहीं है।

"उपवासमें दो दिन दस्त हुए। पीछे जन्माष्टमीके कारण फिर दस्त हुए। चार दिनके दस्तोंमें बहुत ही गंदगी निकली है, और रोजकी टट्टी भी बहुत दुर्गन्धवाली होती है।"

१४–१०–'७८के पत्रमें लिखते हैं:—

"आपकी सलाहके अनुसार स्वमूत्रकी भाप या मालिश तो नहीं कर सका। २-३ रोटी व दालभात खाता हूँ। नारियलका पानी, दो बार पपीता, ५० ग्राम मेवा लेता हूँ। सुबह शाम पावभर गायका दूध लेता हूँ। काफी शक्ति मिल गई है। क्रमशः आराम होता जाता है। अब गलेकी तकलीफ नहीं है। दर्दका असर तो महसूस होता है। कब्ज नहीं है। मूत्रकी पट्टी पेडू पर लगानेसे रोज टट्टी ठीक आती है। पहलेसे बहुत अच्छा सुधार प्रतीत होता है, परन्तु गति मन्द है।"

गलेका कैन्सर

तरसाईके पास देवडा गाँव है। वहाँके मुकुन्दभाई मोरारजी चोटाई गलेके कैन्सरसे पीड़ित थे। उन्होंने एक मास गोलियाँ खाईं और अहमदाबादके सिविल हॉस्पिटलमें सेंक लिया। कुछ भी लाभ न होने पर मूत्रप्रयोग शुरू किया। दिनमें ६-७ बार स्वमूत्रपान करते थे। पहले दिन दो उलटियाँ हुईं, दूसरे दिनसे ४ उपवास किये, पाँचवें दिन मूँगके पानीसे उपवास छोड़ा। धीरे-धीरे वे हलका भोजन लेने लगे, फिर अहमदाबादमें जाँच कराने पर डॉक्टरने कहा कि अब और सेंक लेनेकी जरूरत नहीं है। और आश्चर्यसे पूछा कि ऐसा होनेका क्या कारण है। मुकुन्दभाईने डाक्टरको स्पष्ट बताया कि उन्होंने स्वमूत्रसे मिटाया है। अब वे पेशाब पीते हैं और कोई तकलीफ नहीं है।

मुकुन्दभाईकी पत्नीने पेशाबसे आँखें धोईं, जिससे आँखोंसे पानी निकलना बंद हो गया। फिर ४-६ मासके प्रयोगसे चश्मा छूट गया।

तालूका कैन्सर

श्री हरिश्चंद्र वर्मा वाईस प्रिन्सिपल रेल्वे कॉलेज, टुंडला (जि. आगरा) से १७–९–'७८के अंग्रेजी पत्रमें लिखते हैं:—

"आपके १४–६–'७८के पत्रके लिए अत्यन्त धन्यवाद। मेरी पत्नी तालूके कैन्सरसे पीड़ित है। वह रेडियमके अतिशय सेंकसे लगभग मौतका शिकार होनेवाली थी; परन्तु स्वमूत्र प्रयोगके दिव्य उपचार, जिसका प्रचार आपकी संस्था करती है, उससे बच गई है।

"मेरी पत्नीको जून '७६में गले पर रेडियम किरणें दी गई थीं। कुछ भी लाभ न होने पर जून '७७से स्वमूत्रचिकित्सा शुरू की। उस समय यह कहा गया था कि वह तीन मास जीवित रहेगी, परंतु ६ मास स्वमूत्रचिकित्सा करनेसे उसकी तबीयत तेजीसे सुधरने लगी; परन्तु गरमीके कारण सिर दर्द आदिकी शिकायत मालूम हुई। अब ठंड होनेसे सुधार हो रहा है और गत एक मासमें वजन ७ पौंड बढ़ा है। रोगी अब प्रसन्नचित्त है और तेजीसे स्वस्थ हो रहा है।"

चमड़ीका कैन्सर और कब्ज

श्री एच. डी. सेन आसनसोल(पश्चिम बंगाल)के सेन्ट्रल होमियोपेथी हॉस्पिटलके डॉक्टर हैं। वे अपने १८–७–'७८के पत्रमें लिखते हैं:—

"१९७८के मार्चमें बायीं तरफ छोटा फोड़ा-सा लगा। डाक्टरोंने उसे चमड़ीका कैन्सर बताया। गलेमें भी थोड़ा दर्द होता था। मैंने रेडियमका सेंक लिया। परंतु अभी दर्द है। मूत्रचिकित्सासे लाभ उठानेवाले एक मित्रकी सलाहसे २३–६–'७८से सवेरे स्वमूत्र पीने लगा। मैं छाती ठोंक कर कह सकता हूँ कि मूत्रपानसे मेरी पाचन शक्तिमें आश्चर्यजनक लाभ हुआ है। पिछले ३० वर्षसे मैं कब्ज और बदहजमीसे पीड़ित था। तीन सप्ताह मूत्र पीनेसे ही मेरी तकलीफ दूर हो गई है, मेरी भूख बढ़ी है और अपने में नई प्राणशक्तिका अनुभव करता हूँ।"

कैन्सरकी पुनरुत्पत्ति रोकनेका साधन—स्वमूत्र

डॉ. अरुणा सूद मुस्तफाबाद(जि. अम्बाला, हरियाणा)के प्रायमरी हेल्थ सेन्टरकी मेडिकल ऑफिसर हैं। उम्र ३० वर्ष। उनकी छातीका कैन्सर ऑपरेशन द्वारा मिट गया और रेडियम उपचार भी किया गया। फिर उन्होंने कैन्सरकी पुनरुत्पत्ति रोकनेके लिए २१ दिन मूत्रप्रयोग किया, जिसका अनुभव वे ३०–१–'७८के पत्रमें लिखती हैं:—

“(१) मैं स्वानुभवसे कहती हूँ कि स्वमूत्रोपचारमें श्रद्धा रखनेवाला व्यक्ति अपनी प्राथमिक अरुचि एवं झिझककी परवा न करे तो स्वमूत्रपान जरा भी मुश्किल नहीं है।

“(२) स्वमूत्र और पानी पीकर उपवास करना अत्यंत सरल है। यद्यपि मुझे दो दिनके उपवासकी सलाह दी गई थी, फिर भी मैंने आठ दिनका उपवास कर डाला और जरा भी कमजोरी महसूस नहीं हुई। मैं अपना दैनिक कार्य तनिक भी थकान या ऊबके बिना खुद ही कर सकती थी। चार दिनके उपवासमें मेरा वजन चार कि. ग्राम. कम हो गया था, परन्तु उसके बाद वजनमें कोई कमी नहीं आई।

“(३) उपवासके दौरान मुझे कब्ज नहीं हुआ और रोज एक या दो पतले दस्त होते थे।

“(४) चार पाँच दिनके पुराने पेशाबकी मालिश करते समय मैं उसकी गंधसे दो तीन दिन तो अकुला जाती थी; परन्तु फिर क्रमशः उसकी अरुचि दूर हो गई।”

१९. पेट और आँतके रोग

पेटदर्द और गैस

श्री के. एन. सहगल आगरा जिलेके फीरोजाबादमें स्टेट बैंक के कर्मचारी हैं। वे १५–४–’७९के पत्रमें लिखते हैं:—

“मेरे पेटमें बायीं ओर काफी दर्द रहता था और जब भी खाना खाता था तो अत्यधिक गैस बनती थी। कई डॉक्टरों, वैद्यों से इलाज करवाया, लेकिन कोई फर्क महसूस न हुआ। स्थिति दिन-ब-दिन बिगड़ती चली। इस दौरान किसी सज्जनके परामर्शसे मूत्र-पान किया। १० दिनके मूत्रपानसे दर्दका नामनिशान बाकी न रहा। और अब महीनेमें तीन चार दिन मूत्रपान कर लेता हूँ। मैं इस प्रयोगका प्रचार खुले आम करता हूँ। परिणामस्वरूप एक क्रॉनिक केस मेरे पास आया है। आप योग्य सलाह-सूचन भेजें।”

पुराना पेटदर्द और शरीरके दाग

श्री खीमजीभाई (तरसाई, सौराष्ट्र) १९–४–'७८के पत्रमें लिखते हैं:—

"तरसाईवासी ५२ वर्षके लखमण रूडाभाई लिखवाते हैं कि मुझे २० वर्षसे पेटदर्द था। शराब पीनेका व्यसन था। डाक्टर उस दर्दका निदान नहीं कर पाये। पोरबन्दर और जूनागढ़के प्रसिद्ध डाक्टरोंको दिखाया। अनेक एक्सरे लिये गये। लगभग ४०००से अधिक खर्च हुआ। मैं खा नहीं सकता था, खट्टी उलटी हो जाती थी। पुराने दर्दसे मैं बहुत ही तंग आ गया था। शराब छोड़ दी है। दवा लेने पर भी दर्दमें फायदा नहीं हुआ। मुझे मालूम हुआ कि सखपुरके राजशीभाई स्वमूत्रसे अच्छे हुए हैं। उसी समय मेरा इलाज करनेवाले स्थानीय डॉ. हरिभाई रावतने अपनी दवा बंद करके मुझे स्वमूत्रप्रयोग करनेके लिए कहा। मैंने भोजनमें बहुत परिवर्तन किये बिना जनवरीके अन्तमें मूत्रपान और मूत्रमालिश शुरू कर दी। १५ दिनमें फायदा मालूम हुआ। एक महीनेमें मुझे पूर्ण आराम हो गया। भूख बेहद लगती है। शरीरके झीने-झीने दाग बिलकुल मिट गये हैं। नींद अच्छी आने लगी है। मैं मालिश रात को करता और सवेरे नहा लेता था। अब मूत्रपान चलता है। यों मेरे २० वर्ष पुराने दर्दका अन्त आ गया। अब मैं कमसे कम १० रोगियोंको इस प्रयोगसे स्वस्थ करना चाहता हूँ। प्रचार करता हूँ और यथासंभव 'मानवमूत्र' पुस्तक मुफ्त देता हूँ।"

आँतोंका दर्द और गैस

श्री कुन्दनलाल कोचर (मुंगेली, मध्यप्रदेश) तीन चार वर्षसे आँतोंके दर्द और गैससे पीड़ित थे। उन्होंने मूत्रप्रयोगका श्रीगणेश मालिशसे किया। वे बीस दिन तक एक दिन पुराने मूत्रसे मालिश करते रहे। तीन दिनके बाद सुबह एक बार मूत्रपान करने लगे। सात दिनके बाद चार-पाँच बार मूत्र पीने लगे। वे सुबह-शाम दो रोटी व दाल खाते थे। अब एक बार स्वमूत्र पीते हैं और सप्ताहमें

एक बार मालिश करते हैं। यों अनियमित प्रयोग करने पर भी उनकी आँतोंका दर्द नष्ट हो गया है और गैसकी शिकायत भी काफी कम हो गई है।

सूचना :

रोगी अनियमित प्रयोग करनेकी धृष्टता एवं दुःसाहस न करें।

—संपादक

२०. गुर्देके रोग

दो पथरी

श्री खीमजीभाई (तरसाई, सौराष्ट्र) १९–४–'७८के पत्र में लिखते हैं :—

"मेरा भतीजा जयंतीलाल रामजी मकासणा (नवा साधुलका) दो पथरीकी पीड़ासे बहुत परेशान था। मोरबी हॉस्पिटलके डॉक्टरने उसे नोवेल्जीनकी गोलियाँ दी थीं। मैं २०–१–'७९के रोज कार्यवश साधुलका गया, तब यह बात मालूम हुई। दो जगह ऑपरेशन करके ही दोनों पथरियाँ निकाली जा सकती थीं। मैंने स्वमूत्रचिकित्सा करनेके लिए उसे समझाया और २१–१–'७९से प्रयोग शुरू किया।

"जितनी बार पेशाब करता उतनी बार पीने लगा। उसे २ मासमें ७५ % फायदा हो गया। दो मासके बाद एक दिन उसे खूब ही पीड़ाके साथ काला पेशाब आया, जिसे उसने नहीं लिया और फिर पीता रहा। ठीक ढाई महीनेमें पथरीका नामनिशान बाकी न रहा। शरीर भी अच्छा हुआ है। वह अब गेहूँ काटने जैसा सख्त काम कर सकता है। गाँवके बहुतसे लोग छोटी-बड़ी पीड़ाके लिए यह उपचार करने लगे हैं।"

प्रोस्टेट ग्लैंड

श्री कुंदनलाल मोहनलाल भोजक अहमदाबादमें रहते हैं। उन की उमर ७० वर्षकी है। वे १५–५–'८०को केन्द्रमें आकर अपना निवेदन दे गये थे, जिसमें वे लिखते हैं :–

"मुझे ढाई वर्ष पहले प्रोस्टेट ग्लैंडकी पीड़ा हुई। पेशाब करते वक्त बहुत ही जलन होती, बुखार आ जाता और बार बार पेशाब की हाजत हो जाती। सिविल हॉस्पिटलमें दिखाने पर ऑपरेशनकी सलाह मिली। छः मास दवाएँ लीं, परंतु पीड़ा चलती रही। फिर वाड़ीलाल हॉस्पिटलमें दाखिल हुआ। वहाँ फोटो लिये गये और २५ दिनके बाद फिर आनेके लिए कहा गया। फिर मैं अपने मित्रके यहाँ रहने गया। वहाँ शिवाम्बु लेनेकी सलाह मिली। रोज सवेरे एक बड़ा कप स्वमूत्र लेना शुरू किया। फिर नियत तारीखको हॉस्पिटलमें फोटो लिवाया तो कुछ भी विकृति नहीं आई। इस प्रयोगके ऐसे अद्भुत प्रभावसे मुझे अति श्रद्धा हो गई और आजतक प्रतिदिन सवेरे स्व-मूत्रपान करता हूँ। मुझे थकान नहीं लगती। शरीरमें युवक जैसी शक्ति है। और कोई बीमारी नहीं है। इसलिए मैं सर्वत्र शिवाम्बु-प्रयोगका समर्थन करता हूँ। मनुष्य पर ईश्वरकी कितनी कृपा है कि अमूल्य एवं सर्वरोगनाशक स्वमूत्र प्रदान किया है। कोई भी व्यक्ति इसका प्रयोग करके स्वस्थ हो सकता है।"

प्रोस्टेट ग्लैंड

डॉ. धर्मचन्द्र जैन (रामगंज मंडी, खंडवा, मध्यप्रदेश) द्वारा रूबरू दिया गया निवेदन इस प्रकार है :–

"डाक्टरी परीक्षासे मुझे मालूम हुआ कि प्रोस्टेट ग्लैंड (शिश्न-ग्रन्थि) बढ़ रही है और खूब पानी पीनेके लिए कहा गया। वैसा करने पर भी पेशाब रुकता रहा, जिसके लिए १५ गोलियाँ ५ दिन लीं। कुछ भी लाभ न होनेसे मैंने मूत्रप्रयोग शुरू कर दिया। २५ दिनके प्रयोगसे मेरी पेशाबकी तकलीफ बिलकुल दूर हो गई है। मैं अब भी दिनमें तीन बार मूत्रपान करता हूँ और रोज सवेरे चार-पाँच दिनके पुराने पेशाबसे सारे शरीरकी धीरे-धीरे मालिश करता हूँ तथा दो घंटेके बाद नहाता हूँ। सादा, हलका और सात्त्विक भोजन लेता हूँ।"

१५ वर्ष पुरानी पेशाबकी जलन

श्री राजकुमार जीवनमरू (बल्बारपुर, जि. चंद्रपुर, महाराष्ट्र) २७–८–'७९ के पत्रमें लिखते हैं :–

"कुछ दिन पहले मुझे 'आरोग्यका अमूल्य साधन : शिवाम्बु स्वमूत्र' पढ़नेका अवसर मिला, और मैंने स्वमूत्र पीना आरंभ कर दिया। मैं अंदाजन १५ सालसे पेशाबमें जलनकी बीमारीसे परेशान था। गरमीमें चार महीने तो ऐसी दशा होती थी कि पेशाब करनेसे मैं घबराता था। इतनी जलन होती थी कि कभी कभी मैं रो देता था। इस बीमारीमें मैं महीनेमें १०० रुपयेकी दवाई ले कर भी बीमारीसे परेशान रहता था। अब वह परेशानी बहुत ही कम हो गई है। अनेक रोगोंकी दवा स्वमूत्र है। रामबाण औषधकी तरह है। मेरे जैसे भाइयोंको तो डॉक्टरके पास न जाकर ईश्वर पर सच्ची श्रद्धा रख कर स्वमूत्र अमृत समझकर लेना चाहिये।"

२१. चमड़ीके रोग

सोराईसिस : एक असाध्य रोग

ता. १३–३–'८०को एक अंग्रेजी पत्रमें चमड़ीके एक असाध्य रोगके मिटनेका विवरण प्रकाशित हुआ था। उसीके संदर्भमें श्री बी. आर. शर्मा (धार, म. प्र.)का स्वानुभव निम्नलिखित है :–

"अमेरिकाकी मिसिस वर्जीनिया रोबिनाके लिखे हुए वृत्तान्तके संदर्भमें मैं अपने एक मित्रका अनुभव बताता हूँ। वे गत १३ वर्षोंसे चमड़ीके रोग 'सोराईसिस'से पीड़ित थे। उन्होंने एलोपेथी, आयुर्वेदिक, होमियोपेथी और यूनानी इलाज करवाया तथा उरूलीकांचन और तामिलनाडुके पोडुकोटाईके नेचर क्योर हॉस्पिटलमें उपचार कराया। परंतु सभी उपचार निष्फल हुए। एक वर्ष पूर्व मेरे मित्रने प्रतिदिन प्रातः स्वमूत्रपान शुरू किया। वे बिलकुल नीरोग हो गये और उन्होंने अपनी स्वस्थता एवं चमड़ीके मूल रंगको पुनः प्राप्त कर लिया है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक रोगी इस उपचारसे स्वस्थ हो ही जायगा, परंतु अंतिम उपायके रूपमें यह ईश्वरदत्त अमूल्य चिकित्सा रोगीको अपनानी चाहिये।"

पुराना गीला एग्ज़ीमा

श्रीमती गीता एन. अमीन वडोदरासे अपने पत्रमें लिखती हैं :–

"मुझे साइनसकी तकलीफ है। मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी है। यह बात नहीं है कि श्रद्धासे मूत्रप्रयोग करनेका मन हुआ है, परंतु हमने इसका अद्‌भुत चमत्कार देखा है। मेरे पिताजी तीन वर्ष पूर्व गीला एग्ज़ीमासे आक्रान्त हुए थे। तब रु. ३०००का खर्च हुआ था। इस बीच फिर एग्ज़ीमा हो गया। तब आपकी मूत्रप्रयोगकी पुस्तक पढ़ कर यह प्रयोग शुरू किया। वे सतत मालिश करते थे, मूत्र भी पीते थे और बहुत सादा भोजन लेते थे। २० दिनमें एग्ज़ीमा मिट गया। एक मासके बाद उसका दाग भी जाता रहा। इतना अधिक भयंकर एग्ज़ीमा था कि दवासे काबूमें लाना मुश्किल था। अतः अत्यंत धन्यवाद।"

सफेद दाग

वडोदरावासी श्रीमती ज्योतिबहनने प्रत्यक्ष मिलकर अपनी बीमारीका हाल इस प्रकार सुनाया : –

उन्हें अपने शरीर पर दीर्घकालसे सफेद दाग मालूम होते थे। उन्होंने एलोपेथिक तथा आयुर्वेदिक बहुत उपचार किये। कुछ मास पूर्व वे बहुत समय तक केवल छाछ पर रहीं और देसी दवाएँ लेती रहीं। परन्तु उन्हें कुछ भी लाभ नहीं हुआ, प्रत्युत दाग बढ़ते ही गये। इस अरसेमें उन्हें मूत्रचिकित्साका पता चला और वे मूत्रप्रयोग करने लग गईं। डेढ़ मासके मूत्रप्रयोगका यह परिणाम आया कि जो चमड़ी एकदम सफेद हो गई थी वह कहीं कहीं लाल दीखने लगी। सिरके बाल झड़ने कम हो गये। वे इस प्रयोगके लाभकारी सिद्ध होनेकी आशा एवं श्रद्धा रखती हैं।

कोढ़

सूरतके श्री जसवन्त एन. देसाईके शरीर पर बरसोंसे सफेद दाग थे। वे गत तीन माससे मूत्रप्रयोग कर रहे हैं। शुरूमें उन्होंने आठ दिनका उपवास भी किया था। छाती परके सफेद दागके चकते बहुत कम हो गये हैं। आहारमें वे अधिकतर शाकभाजी, मूंग आदि लेते हैं।

श्री भरतलाल सोनी (गाँव राजनांद, म. प्र.) अपने पत्रमें लिखते हैं :--

"आरोग्यका अमूल्य साधन, शिवाम्बू–स्वमूत्र" में जो बातें लिखी हैं, १०० % सत्य लिखी हैं। मुझे आजसे तीन वर्ष पहले गलित कुष्ठ रोग हो गया था। दो वर्ष डाक्टरी इलाज करवाया, किंतु अच्छा नहीं हुआ। प्रधान मंत्री श्री मोरारजीभाईके वक्तव्यसे मैंने २९–१०–'७८को १०० ग्राम स्वमूत्र पीना आरंभ किया। आज़की स्थितिमें शरीरका गलित कुष्ठ रुक गया है और ऊपरी दाग मिट गये हैं। शरीरमें भरपूर शक्ति आ गई है। कोई भी अंग कमजोर नहीं लगता है। किन्तु कभी स्वमूत्र नहीं पीता। दो दिन बाद कुष्ठके चिह्न उभर आते हैं. चिंता इसी बातकी है। मेरे बतानेसे कई बीमार स्वमूत्र पी रहे हैं।

"चार व्यक्तियोंने शराब पीना छोड़ दिया है। आज वे मजेमें हैं. स्वस्थ हैं। कृपया पुस्तक भेज दें।"

मुँहका अनोखा एग्ज़ीमा

सूरतके श्री रोहित वकीलने हालमें श्रद्धेय श्री मोरारजीभाईको जो पत्र लिखा है वह निम्नलिखित है :–

"मैं यह पत्र आपका आभार माननेके लिए लिख रहा हूँ। पिछले २० वर्षोंसे चमड़ीके एक असाधारण रोगसे मैं पीड़ित था। मेरे मुँह पर एग्ज़ीमा-सा था। इससे मैं बहुत परेशान होता था। खूब खाज होती, कभी पानी निकलता, मुँह काला, ऊँघमें खुज-

लाया जाय तो लाल एवं रोगिष्ठ लगता। एलोपेथी, होमियोपेथी और आयुर्वेदकी बेहद दवाएँ कीं। ३ मास पूर्व एक स्किन स्पेश्यालिस्टकी दवा प्रतिकूल सिद्ध हुई, और सारे चेहरे पर सेप्टिक हो गया। पीपके ददोरे हो गये। चमड़ी फट गई। दुर्गंध आने लगी। इस अरसेमें मैंने भारत सेवक समाज द्वारा प्रकाशित रावजीभाईकी पुस्तक पढ़ी और १–५–'७९से शिवाम्बुप्रयोग शुरू किया। नियमानुसार एक सप्ताह आगेसे सारी दवाएँ बंद कर दीं। प्रयोग शुरू करते समय मेरे मुंह पर सूजन एवं पीप थी। ४८ घंटेमें मेरी सूजन गायब हो जानेसे मैं आश्चर्यमुग्ध हो गया। आज १ मास और ६ दिनमें ९० प्रतिशत चंगा हूँ। मुझे २ महीने पहले देखनेवाला और आज देखनेवाला चकित होता है। मेरी चमड़ी नीरोग हो गई है। मानो एक चमत्कार।"

फिर यह सज्जन अपने प्रयोगकी कुछ जानकारी देते हैं :—

"दिनमें ३-४ बार ताजा स्वमूत्र पीता। सवेरे नहाते वक्त और शामको नहाते वक्त ताजा स्वमूत्र गरम करके मालिश करता। शुरूमें थोड़ी फुंसियाँ हुईं, परंतु मालिश चालू रखनेसे मिट गईं। ८ दिनके प्रयोगके बाद ३ दिन लगातार दस्त हुए और चौथे दिन मिट गये। अपने एक असाधारण रोगसे मुक्त होनेका कारण है इस प्रयोग में आपका विश्वास। आपका अंतःकरणपूर्वक आभार। सूरतमें इस चिकित्साका कोई केन्द्र खुले तो मैं अपनी सेवा खुशीसे दूँ।"

यह पत्र श्री मोरारजीभाईने यहाँ भेज दिया था।

२२. आँखके रोग

मोतिया

श्री जसवंत हरिकृष्ण शुक्ल, ध्रांगध्रा (गुजरात) अपने पत्रमें लिखते हैं :–

"मेरी उम्र ६० वर्षकी है। छः सात वर्ष पूर्व मेरी दोनों आँखोंमें 'टाढो झामर' (आँखका एक रोग) था। उस वक्त मुझे शिवाम्बु प्रयोगका ज्ञान नहीं था, इसलिए मैंने दोनों आँखोंका ऑपरेशन

कराया ; उसके बाद मोतिया शुरू हुआ। डाक्टरने कहा कि झामरके ऑपरेशनके बाद मोतिया आता ही है। सात वर्षसे मेरा काला मोतिया धीरे धीरे बढ़ता रहा। गत दीवालीके बाद डाक्टरको दिखाया था। उसने सर्दीमें ऑपरेशन करनेको कहा। इसी अरसेमें पता चला कि हमारे प्रधान मंत्रीश्री मोरारजी देसाई शिवाम्बुप्रयोग करते हैं। अतः मुझे श्रद्धा हुई। किसीसे पुस्तक लेकर पढ़ी। आँखके रोग नामक प्रकरण पढ़कर मैंने १५–१२–'७७से मूत्र पीना शुरू कर दिया और दिनमें अनेक बार मूत्रसे आँखें धोने लगा। लगभग चार महीनेमें मेरी आँखें ७५ % ठीक हो गई हैं, मैं भलीभाँति लिख-पढ़ सकता हूँ। पहले १०–१५ फुटकी दूरीसे आदमीको पहचान नहीं सकता था और अब २०० फुटकी दूरीसे पहचान सकता हूँ।

"मेरा तो अभिप्राय है कि अच्छी आँखवाला भी इस प्रयोगसे लाभ उठा सकता है। सुरेन्द्रनगरके डॉ. देवेन्द्रभाई जोषी यह प्रयोग दूसरे रोगियोंको बताते हैं। डाक्टरने एक बार यह कहा कि पत्थर जैसे काले मोतियेको गला देनेकी शक्ति मानवमूत्रमें है। यह कितने गजबकी बात है! मेरा स्वानुभव डॉक्टरके नाम सहित आपके मासिकमें प्रकाशित किया जाय तो बहुत रोगी लाभ उठायेंगे।

"मेरी पत्नीको वातरोग १०-१५ वर्षसे परेशान करता था। डेढ़ मासके शिवाम्बु प्रयोगसे मिट गया है। दिन भर खूब स्फूर्ति रहती है। इस माससे एलोपेथीके दर्शन नहीं किये हैं। दवाखानेमें दौड़ कर जानेवाले पर दया आती है।"

चश्मेसे मुक्ति

श्री लक्ष्मणसिंह आर्य (गाँव रिसका, जिला हुगली) अपने पत्रमें लिखते हैं :—

"सेवामें निवेदन है कि मैंने आपके वहाँसे प्रकाशित 'आरोग्यका अमूल्य साधन – स्वमूत्र' नामक पुस्तकको कई बार पढ़ा था और इस उपचारसे लाभ उठानेके लिए कई व्यक्तियोंको सलाह दी थी, जिनमेंसे एक वकील साहब थे। वे चश्मा लगा कर पढ़ा करते थे।

कुछ दिन उन्होंने केवल अपनी आँखोंको मूत्रसे धोया। उनको बिना चश्मेके दिखाई देने लगा। और सब कुछ बिना चश्मे पढ़ लिया करते हैं।

"खुद मुझे ही छातीमें कुछ दर्द हुआ करता था। मैंने कुछ दिन मूत्रपान किया और दर्द काफूर हो गया।"

अंधापेसे रक्षा

सौराष्ट्रके प्रसिद्ध एडवोकेट श्री मनुभाई बुधभट्टी खंभालियासे २१–४–'७८के पत्रमें लिखते हैं :–

"प्रिय श्री पन्नालालभाई,

"निसर्गोपचार और मुख्यतः स्वमूत्र चिकित्साके प्रयोगने मुझे अंधापेसे बचा लिया है। मैंने यह शुभ समाचार श्रद्धेय श्री मोरारजी-भाईको लिखा था। उनकी सूचनासे आपका सम्पर्क साधनेके लिए यह पत्र लिखता हूँ।

"चार वर्ष पूर्व मेरी दायीं आँखका परदा घिस गया था और खंडित हो जानेकी स्थितिमें था। नजर इतनी तेजीसे क्षीण होती जाती थी कि डाक्टरोंने मात्र एक मास दृष्टिकी अवधि बताई। डॉ. नागपालने ऑपरेशन किया, परंतु घिसे हुए परदेके कारण विशेष आशा न थी। मैं लगभग दो वर्षसे स्वमूत्रप्रयोग कर रहा हूँ। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि मेरी दृष्टि बच गई है। दिन प्रतिदिन आँखको —– विशेषतः नेत्रपटलको पुनर्जीवन मिल रहा है। कोर्टका काम चालू है और आठ दस घंटे पढ़ सकता हूँ। अहमदाबादमें डॉ. नागपालको अन्तिम बार आँख दिखाई तब उन्होंने कहा कि आँख सुधरी है। अपना अनुभव विशेषतः चिकित्सा-पद्धतिके बारेमें पुस्तक लिखनेका विचार कर रहा हूँ। मेरे वृत्तान्तकी वैज्ञानिक खोज हो तो सहकार देनेको तैयार हूँ।"

२३. विविध रोग

फूड पोइज़निंग

[अन्नविषायण]

श्रीमती कृष्णा बंसल, दिल्लीसे लिखती हैं :—

"मैं २०–९–'७७से स्वमूत्रका सेवन करती हूँ। मेरे पति भी यह प्रयोग करने लगे हैं। हम स्वमूत्रके चमत्कारी परिणामोंका स्वयं अनुभव कर रहे हैं। मेरे पेटमें होनेवाली 'फूड पोइज़निंग' की तकलीफ लगभग मिट गई है। पहलेकी अपेक्षा मैं अधिक स्फूर्ति एवं शक्तिका अनुभव करती हूँ। अब पूर्ववत् चक्कर भी नहीं आते हैं और जरा भी कमजोरी महसूस नहीं होती है।"

डायबिटीज़ और बधिरता

श्री एम. एच. धनुकोडी निवृत्त जज और एडवोकेट हैं। वे अंग्रेजी पत्रमें लिखते हैं :-

"मेरी उमर ७५ वर्षसे अधिक है। मैं १९६०में जूडीशियल सर्विससे निवृत्त हुआ था। मैं स्वमूत्र चिकित्सासे प्रचुर लाभ प्राप्त कर रहा हूँ। मैं गत २० वर्षसे मधुमेहका रोगी था। स्वमूत्रचिकित्सा शुरू करनेके पश्चात् हर छ मास मेरी ब्लड शूगरकी जाँच की जाती थी, जिससे मालूम हो गया कि उसका केवल नियंत्रण ही नहीं हुआ बल्कि नाश हो गया है।

"मेरा बायां कान पिछले छ वर्षसे बधिर था। यथासंभव प्रतिदिन कुछ मूत्रकी बूंदें डालनेसे बधिरता दूर हो गई है और मैं दोनों कानोंसे बराबर सुनता हूँ।"

पुरानी डायबिटीज़ और टी. बी.

श्री दीपक रमणलाल सोनी (गोधरा, गुजरात) १०–४–'७९ को सलाह केन्द्रमें आकर नीचेका लेख दे गये :–

"मेरे पिताजी रमणलाल सोनीकी उमर ५८ वर्ष है। वे २० वर्षसे डायबिटीज़ और ४ वर्षसे टी. बी. से पीड़ित थे। सारे

शरीरमें सूजन भी थी। दवाएँ खाकर ऊब गये थे। 'मानवमूत्र' पढ़कर उन्होंने मूत्रप्रयोग शुरू कर दिया। एक सप्ताहमें थोड़ा लाभ हुआ। सप्ताहमें दो बार पेशाबका एनिमा लेने से शरीरका बहुतसा मल निकल गया। पेशाब खुल कर होने लगा और १५ दिनमें सूजन नामशेष हो गई। अब न तो साँस फूलता है और न ही खाँसी आती है। प्रयोग उत्तम है।

"मेरी माताजीकी उमर ५० वर्ष है। उन्हें भी डायबिटीज़में फायदा लगता है। शरीरमें स्फूर्ति रहती है। हाथ-पैरकी वेदना भी दूर हो गई है। शिवाम्बुके प्रचारके लिए सरकार द्वारा हर जिलेमें सलाह केन्द्र खोले जायँ तो गरीब लोगोंको अच्छा लाभ मिले।"

दाढ़की पीड़ा, सिरदर्द आदि

मेरठ छावनीसे मोहिनीकुमारी कनैयालाल १३–८–'७९के पत्रमें लिखती हैं:—

"मेरी उमर २२ वर्षकी है। मैंने ६–२–'७९से मूत्रप्रयोग शुरू किया। उससे पहले मेरे मुँहमें दोनों तरफकी अक्ल दाढ़ें निकल रही थीं, जिसके कारण मुँह सूज जाता था और बहुत पीड़ा होती थी। डाक्टरोंने दोनों दाढ़ें निकलवानेकी सलाह दी। एक दाढ़ तो मैंने निकलवा दी। लेकिन दूसरी कुछ दिनके बाद निकलवानी थी। इस बीच 'आरोग्यका अमूल्य साधन–स्वमूत्र' पुस्तक अपनी मौसी के वहाँ देखी। और सुबह एक बार मूत्रपान करना आरंभ कर दिया। केवल प्रतिदिन एक बारके मूत्रपानसे मुझे ६–२–'७९से लेकर आजतक यानी ३–८–'७९ तक दाढ़में कभी दर्द नहीं हुआ। दूसरी दाढ़ निकलवानेकी नौबत ही नहीं आई। इसके अतिरिक्त मेरी सिर-दर्द, जुलाब और पेटकी गड़बड़ भी बहुत कम हो गई। इससे प्रभावित हो कर हमारे घरमें सबने मूत्रप्रयोग किया। माताजीकी आँखोंसे बहुत पानी निकलता था, वह भी ठीक हो गया। उनके सिरमें थोड़े-थोड़े दिनोंमें दर्द होता था, वह भी हट गया। जुकाम भी उन्हें जल्द होता था, वह भी ठीक हो गया।

"अन्तमें मैं इतना कहना चाहती हूँ कि वास्तवमें आपकी यह पुस्तक रोगियोंके लिए नया वरदान है। क्योंकि पुस्तककी भाषा अत्यंत सहज तथा रोगियोंके अनुभव तथा पूर्ण सामग्री इस ढंगसे प्रस्तुत की गई है कि पुस्तक पढ़नेसे प्रारंभमें जो घृणा होती है वह दूर हो जाती है। वास्तवमें आजके युगके लिए प्रत्येक घरमें बीमारियोंको दूर करनेके लिए यह पुस्तक एक अमूल्य निधि है।"

कमर, छाती आदिके दर्द तथा बवासीर

श्री गजाननसिंह दारोगा मधुबनी (बिहार)में रहते हैं। वे कमर, छाती आदिके दर्दों तथा बवासीरके दु:साध्य रोगसे पीड़ित थे। अनेक उपचारोंसे कोई खास फायदा नहीं हुआ। "आरोग्यका अमूल्य साधन : शिवाम्बु–स्वमूत्र" पढ़ कर वे स्वमूत्रप्रयोग करने लगे। करीब एक सालके अरसेमें बाल्यकालका कमरदर्द, छाती, कान, दाँत और आँखकी पीड़ाओं तथा बवासीरके दु:साध्य रोगसे वे मुक्त हो गये हैं। अब वे किसी दूसरी दवाका उपयोग नहीं करते हैं तथा उनके परिवारमें भी दवाका उपयोग नहीं होता है। यों 'स्वमूत्र' उनका फेमिली डॉक्टर बन गया है। फिर वे श्रद्धा एवं निष्ठासे शिवाम्बु प्रयोगका प्रचार भी करते रहते हैं।

(१) उनके एक मित्र स्कूल इन्स्पेक्टरका बरसों पुराना पेट-दर्द शिवाम्बुप्रयोगसे लगभग आठ मासमें बिलकुल मिट गया है।

(२) एक दूसरे मित्रको पाँच वर्षोंसे भोजन नहीं पचता था। मूत्रपानसे भोजन पचने लगा है।

(३) पाँच वर्षोंसे एक आदमीके गलेसे खून निकला करता था। केवल चार मासके मूत्रप्रयोगसे खून निकलना बंद हो गया है।

इसके अतिरिक्त उन्होंने सर्पदंश, बुखार, दमा आदि रोगोंसे पीड़ित अनेक रोगियोंको मूत्रप्रयोगसे रोगमुक्त एवं स्वस्थ बनाया है।

वे १८–२–८०के पत्रमें लिखते हैं :

"स्वमूत्र मेरे लिए अमृतके समान है। मुझे किसी प्रकारकी घृणा नहीं रह गई है। और उसको जीवनके लिए उतना ही आवश्यक समझता हूँ जितना भोजन, हवा और पानी है।"

मसूड़े और योनिकी पीड़ा

श्री के. बी. मिश्र, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)का एक फ़ौजी है। वे अपने पत्रमें लिखते हैं :—

"मेरी पत्नी सुषमाको जनवरी '७७में मसूड़ेकी पीड़ा हो गई थी और धीरे-धीरे वह असह्य होती चली। मेरे होमियोपेथ पिताजीने निदान किया कि वधूके गर्भाशयमें सूजन है। मूत्रप्रयोग शुरू किया। मूत्रपानके साथ साथ रातको मूत्रपट्टी रखी जाने लगी, जिसे बार-बार बदला जाता था। एक मासमें पीड़ा दूर हो गई।"

उसी पत्रमें वे लिखते हैं :—

"मेरे पेटमें बड़ी गाँठ थी, वह भी मूत्रप्रयोगसे मिट गई। अब तो हमारे परिवारके सभी छोटे-बड़े किसी भी तकलीफमें श्रद्धापूर्वक मूत्रप्रयोग करते हैं।

"मैं तो इतना प्रभावित हुआ हूँ कि भारत जैसे गरीब देशमें मूत्रचिकित्सा वरदान सिद्ध हो सकती है। लोग इसे श्रद्धापूर्वक अपनाएँ।"

गुप्त एवं घातक मार

श्री सुन्दरलाल घड़ीसाज, पेटलाद (गुजरात)से लिखते हैं :—

"'मानवमूत्र'के मेरे बहुत अनुभव हैं। मेरे कार्यक्षेत्रके कारण प्रतिस्पर्धी मुझे अनेक बार निर्दयतासे बेहद मारते रहे हैं, तब मैं तुरंत ही पेशाब पी लेता था। एक बार मुझ पर जुल्मी हमला हुआ था। बहुत गुप्त मारसे खून निकल आया, मुँह और आँख सूज गये; तब भी मैंने पेशाब ही पिया, कोई दूसरी दवा नहीं की। परंतु उस स्थितिमें निकट बन्धु एवं परमात्माके तौर पर मेरी मदद करनेवाला 'स्वमूत्र' ही था। आज भी २० बरससे स्वमूत्रपान चालू ही है। ६९ वर्ष हुए हैं, फिर भी वहीका वही भ्रष्टाचार विरोधी कार्य चालू है और आज मैं 'स्वमूत्रपान'की कृपासे ही जीता हूँ।"

बवासीर, सर्दी, पैरकी सूजन आदि

बम्बईवासी एक पारसी सज्जनकी उमर ७४ वर्ष है। बरसों तक डाक्टरी उपचार करते करते वे तंग आ गये थे। सुयोगसे एक

परिचितने उन्हें "मानवमूत्र" पुस्तक दी, जिसे पढ़कर किसी प्रकार की बाधा एवं आपत्तिकी परवाह किये बिना ३०–४–'७९को उन्होंने मूत्रप्रयोगका श्रीगणेश कर दिया। थोड़े समयमें ही उनकी विविध पीड़ाओंमें अधूरा एवं पूरा फायदा हुआ है। ताजा स्वमूत्र पीनेमें और पुराना मूत्र मालिशमें काम आता था। सर्दी एवं कफकी पीड़ा बिलकुल मिट गई है। पैरकी पीड़ा कम हुई है। गुदामें दो तीन बार मूत्रमें भिगोई हुई रूईका फाहा रखनेसे कई बार निकलने-वाली गुदा अब टट्टीके समय ही निकलती है। सर्जनकी बहुमूल्य ट्रीटमेन्टसे ३० % टका फायदा हुआ था और अमूल्य पुराने मूत्रके प्रयोगसे ८० % फायदा हो गया है। आशा है कि बाकीका २० % फायदा भी थोड़े समयमें जरूर हो जायगा। फिर आँख धोनेसे दायीं आँखकी दूरदृष्टि बढ़ी है। मूत्रके कुल्ले करनेसे दाँतका दर्द एकदम दूर हो गया है, जिससे नीबू जैसी खट्टी चीज खाई जा सकती है अर्थात् अब दाँत खट्टे नहीं होते हैं।

मूत्ररोग, हाईपरटेन्शन आदि

लखनऊके डॉ. पी. डब्ल्यु. चौधरी १०–९–'७९के पत्रमें लिखते हैं :—

"मेरी सुपुत्री सुभ्रा चौधरीकी उम्र २१ वर्षकी है। वह पिछले एक वर्षसे पेशाब और गुदाके दर्दोंसे पीड़ित है। लखनऊकी मेडिकल कॉलेज और दिल्लीकी ऑल इन्डिया मेड्किल इन्स्टिटयूट दिल्लीके डॉक्टरोंने इस प्रकार निदान किया और विविध प्रकारकी दवाएँ देने लगे। फिर यह कहा कि यदि फायदा न हुआ तो यह रोग असाध्य है।

"मैंने उनके आदेशानुसार इलाज प्रारंभ किया है। इस दौरान आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक पढ़नेका अवसर प्राप्त हुआ और गत दो माससे मेरी सुपुत्री अपना मूत्र दिनमें दो बार छ-छ औंसकी मात्रामें लेती है, कभी तीन बार भी। इसके अतिरिक्त वह अपने शरीर पर भी मालिश करती है। इसका शारीरिक प्रभाव प्रत्यक्ष रूपसे यह हुआ कि पहले तो उसकी माहवारी, जो कभी कभी दर्दसे आती थी, वह ठीक हो गई। पेशाब जो कम आया करता था

उसकी मात्रा बहुत हो गई है और पेशाब रंगविहीन है। पहले जो "आलब्युमेन" पेशाबमें आती थी वह भी कम हो गई है और सिस्टोलिक दवा छोड़ देनेके बाद भी बढ़ी नहीं, और हाईपरटेन्शनका कोई स्थायी भाव दिखाई नहीं दिया तथा "ट्रान्क्वीलाईजर" बंद करने पर भी कुछ तकलीफ नहीं रही। उसके चेहरेसे भी लगता है कि उसे मूत्रचिकित्सासे लाभ हुआ है।"

कुष्ठ रोग, शरीरकी रुखाई आदि

श्री एच. सी. शुक्ल (रायपुर, म. प्र.) १६–८–'७९के पत्रमें लिखते हैं :–

"ता. २८–७–'७९से पूरे शरीरमें मालिश प्रारंभ की, जिससे तीसरे दिन ही मेरा रूखा-सूखा शरीर कुछ चिकना व चमकदार लगा। १–८–'७९से थोड़ा-थोड़ा सुबह-शाम पीना भी आरंभ कर दिया। तीन-चार दिन बाद चार-पाँच बार पीता हूँ तथा सुबह-शाम पूरे शरीरमें तीस मिनिट मालिश करके गरम पानीसे नहा लेता हूँ। मुझे १९७०–७१में कमरके ऊपर लाल लाल सफेद दाग हो गये थे, जिसका निदान ऑल इन्डिया इन्स्टिटचूट ऑफ मेडिकल सायन्सिसमें कुष्ठ रोग किया गया। उसकी जानकारी मैंने परिवारमें किसीको नहीं दी। इलाज करता रहा। इस बीच मेरे बायें पैरके पंजे पर एक दो दाग हो गये। आपकी पुस्तक पढ़ने पर मुझे ऐसा विश्वास हो गया है कि मेरी बीमारीका इलाज स्वमूत्रसे ही होगा।

"स्वमूत्र प्रयोग करनेसे २० दिनकी अल्पावधिमें ही मुझे निम्न-लिखित फायदे हुए हैं :–

(१) पेट साफ रहता है।

(२) फोड़ेका दाग जो सफेद था अब लाल हो गया है।

(३) शरीर रूखा-सूखा नहीं है। चमड़ीमें पहलेसे १००% अधिक चमक है।

(४) बाल सफेद हो गये थे, अब कुछ काले हो गये हैं।

(५) बाल झड़ गये थे वहाँ थोड़े बाल उग रहे हैं।

जिन्दा रहने तक मैं इसका सेवन बंद नहीं करूँगा।"

पांडु रोग

टाइम्स ऑफ इन्डिया (अहमदाबाद एडीशन) में ११-२-'७८को कुटुम्ब कल्याण योजनासे सम्बद्ध फिजिश्यनोंके राष्ट्रीय सम्मेलनका एक वैज्ञानिक अधिवेशन बम्बईमें हुआ था, जिसमें डॉक्टरोंने जो निबन्ध पढ़े थे उनमेंसे डॉ. एस. एच. जयस्वालका 'स्वमूत्रोपचार' विषयक निबन्ध चित्तरंजक सिद्ध हुआ था।

अमरावती जिलेके कपूरतलनीके डॉ. जयस्वालका ११ वर्षीय पुत्र शैलेन्द्र तीव्र पांडु रोगसे पीड़ित था। डॉ. जयस्वालने प्रसिद्ध फिजिश्यनों, पेथोलोजिस्टों और हिमेटोलोजिस्टोंके साथ शैलेन्द्रके रोगके बारेमें विचारविमर्श किया था, जिसके निष्फल सिद्ध होने पर सभी दवाएँ बंद करके स्वमूत्रोपचारका आश्रय लिया था। वे दिनमें दो बार शैलेन्द्रको अनछने मूत्रका एक गिलास पिलाते थे, और एक मासमें उसमें होमोग्लोबिनका परिमाण बढ़ गया। एक वर्षके मूत्रोपचारसे यह परिमाण अपेक्षित आँक तक पहुँच गया। उसकी कमज़ोरी दूर हो गई और वह फुरतीला बन गया। डॉ. जयस्वालने यह स्वीकार किया था कि वे होमोग्लोबिनके बढ़ते हुए परिमाणकी जाँच तो कभी कभी कर लेते थे; परंतु मूत्रप्रयोगके असर रोज नोट नहीं करते थे।

बधिरता तथा मसूड़ेकी सूजन

बम्बई हाईकोर्ट तथा भारतके सर्वोच्च न्यायालयके एडवोकेट श्री सुरेन्द्रकुमार एच. भृगुशास्त्री बम्बईसे २९-११-'७७के पत्रमें लिखते हैं:–

"(१) मेरा बायाँ कान सातेक वर्षसे खराब था। मुझे टेलिफोन या दूसरी आवाज़ बहुत ही धीमी सुनाई देती थी। शिवाम्बु डालनेसे एक महीनेमें कान अच्छा हो गया है।

"(२) मसूड़ेमें जब सूजन आती तब शिवाम्बु घिसनेसे ठीक हो जाती।"

अनेक रोगोंसे पीड़ित

पश्चिम बंगालके शिक्षक श्री कृष्णलाल १२–५–'८०के पत्रमें लिखते हैं: –

"स्वर्गीय रावजीभाईकी किताब बुकस्टॉलसे प्राप्त हुई। मैं अनेक रोगोंसे पीड़ित रहा करता था। तीन महीनेमें लगातार मूत्र-पान और मालिशसे मुझे उत्तम लाभ हुआ है। अनेकोंको मैंने अपने अनुभव तथा रावजीभाईकी पुस्तकसे प्रेरणा देकर रोगमुक्त किया। जहाँ कहीं जाता हूँ स्वमूत्रचिकित्साका गुणगान करनेसे नहीं चूकता। वास्तवमें स्वस्थ जीवन जीनेका स्वमूत्र अचूक साधन है। डॉक्टरी जंजालसे तीन महीनेसे पूरे परिवारको मुक्त रख सका हूँ। उचित मार्गदर्शन देते रहें।"

पार्किन्सोनिज़म

श्री रमणलाल भीखालाल सोनी (धनसुरा, गुजरात) की ६२ साला माता पिछले सात सालसे 'पार्किन्सोनिज़म'से पीड़ित थीं। सात वर्षसे वे रोज प्रेसीटेनकी दो टिकिया लेती थीं। उन्हें मूत्र-प्रयोगसे जो लाभ हुए हैं वे निम्नलिखित हैं: –

"मेरी माताजीने १७–११–'७७से स्वमूत्रप्रयोग शुरू किया और एक बार भोजन करने लगीं। . . . . ६–१२–'७७को प्रेसी-टेनकी टिकिया लेना बंद कर दिया। फायदा (१) जो चमड़ी खुर-दरी हो गई थी, फट गई थी, जिसे छूते ही खून निकलता था; वह अब चिकनी, कोमल और मजबूत हो गई है। (२) हाथ-पैरकी सिकुड़ी व मुड़ी अंगुलियाँ मूत्रमालिशसे सीधी हो गई हैं। (३) स्फूर्ति अच्छी रहती है।"

मानसिक बीमारी, शक्तिहीनता, उत्तेजन

श्री ओ. पी. शर्मा जबलपुरके सरकारी विज्ञान कॉलेजमें गणित के प्रोफेसर हैं। वे अपने ५–६–'८०के पत्रमें लिखते हैं:––

"मेरे पुत्र अनिल शर्माने २६ मई, १९८०की शामसे मूत्रोपचार विधिवत् शुरू कर दिया है। रोज नियमित रूपसे मूत्रमालिश ७ दिन पुराने मूत्रसे तथा दिनमें ३–४ बार मूत्रपान करता है। जब वह दिल्लीसे वापिस आया था तो उसकी मानसिक स्थिति अत्यधिक खराब थी। उस रात एक बजे तक भी न सोया और अजब हरकतें करता रहा तो मैंने अपने स्वयंके १ सप्ताह पुराने मूत्रसे उसके सिर व पैरके तलवों पर दो घंटे मालिश की। उसका परिणाम यह हुआ कि उसे गहरी नींद आ गई। वह सुबह ग्यारह बजे तक सोता रहा। फिर मैंने उसका मूत्र इकट्ठा करना शुरू किया। अब वह उसीके पुराने मूत्रसे मालिश करता है तथा ताजा मूत्रपान करता है। इससे काफी लाभ है। शायद संपूर्ण लाभ भी हो जाय। आज आपका पत्र मिला। मूत्रभापकी नास लेना भी शुरू कर दिया है तथा रातमें सिर पर मालिश करके भी सुलाया करेंगे।"

गायका अफारा

झवेरी डेरी फार्म कठवाडा (अहमदाबाद)के मेनेजर श्री प्रभुदास भाई अपने पत्रमें लिखते हैं :–

"५ वर्षकी गाय पहली बार ब्याई और दूसरे दिन उसे अफारा हो गया। खाना-पीना बिलकुल बंद हो गया और बहुत अशक्ति थी।

"दिनमें तीन बार उसी गायका मूत्र पिलानेसे टट्टी व पेशाब खुल कर हुए और पीड़ा दूर हुई। दूसरे दिनसे वह खाने-पीने लगी। स्वमूत्रपानसे दूधमें कमी या कोई विकृति नहीं हुई है।"

आवश्यक निवेदन

स्वमूत्रचिकित्साके आधुनिक इतिहासमें यह एक नई देन है। पशुपालक, पशुचिकित्सक और गौशालाओंके संचालक इस ओर ध्यान दें। पशुपालक और डेरीसंचालक इस चिकित्सापद्धतिका प्रयोग करें और परिणामसे हमें सूचित करें।

पालतू कुत्तीकी खालमें खाज

श्रीमती लीना पी. वाडियाका आश्चर्यकारी पत्र थाणा (महाराष्ट्र) से प्राप्त हुआ है जिसे यहाँ प्रस्तुत किया जाता है :–

"बताते हुए खुशी होती है कि मेरी कुत्तीको असाध्य चमड़ीका रोग हुआ था जिसे अंग्रेजीमें 'मेन्गे' कहते हैं। वह अब बिलकुल नष्ट हो गया है। यह रोग उसे गत अक्तूबरमें हुआ था और कान के बाल झड़ जानेसे चमड़ीका रंग लाल हो गया था। उस भाग पर खाज भी होती रहती थी। आपकी सलाहके अनुसार दिनमें चार पाँच बार कुतियाका मूत्र वहाँ लगाती थी और रोगग्रस्त कानमें मूत्रकी बूँदें डाला करती थी। लगभग सवा मासके प्रयोगसे लाल चमड़ी धीरे-धीरे फीकी गुलाबी होती गई और अपने मूल सफेद रंग वाली हो गई। बाल भी धीरे-धीरे दो मासमें पहले जैसे आ गये और रोगका नामनिशान भी बाकी नहीं रहा है। कुतिया फिर क्रियाशील हो गई है।

"बम्बईके डाक्टर भी यह सुनकर चकित होते हैं। कुत्तीका मूत्र पर्याप्त परिमाणमें न मिल सकनेसे न तो सारे शरीरकी मालिश की जा सकी और न ही पिलाया जा सका। केवल दर्दवाले भाग पर लगानेसे यह बीमारी मिट गई है।

"यह प्रयोग मैंने भी छोटी-बड़ी बीमारियोंमें आज़माया है, जैसे कि फोड़े, जख्म, खराब खाँसी, दाँतका दर्द और खून निकलना, मुँहमें छाले, कन्धेमें दर्द इत्यादि। तीनेक वर्ष पूर्व छातीमें छोटी गाँठ हुई थी। वह भी लगभग तीन मासके प्रयोगसे मिट गई थी। मैं कभी गैस्ट्राईटिससे आक्रान्त हो जाती हूँ, तब यही उपाय करती हूँ।"

मूत्रका मूल सिद्धान्त

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत हैं, जिनसे यह सृष्टि बनी हुई है। मानवदेह भी इन्हीं पाँच तत्त्वोंसे बनी है। ईश्वरने प्रत्येक मनुष्यको एक जैसी देह दी है और प्रत्येक स्वस्थ देहमें समुचित परिमाणमें ये पाँच तत्त्व होते हैं। मनुष्यके अपने दोषसे जब उस परिमाण में कमी-बेशी होती है तब उसका स्वास्थ्य बिगड़ता है। उस बिगड़े हुए स्वास्थ्यको फिरसे ठीक करनेके लिए पाँच तत्त्वोंके परिमाणकी कमी-बेशीको ठीक कर लेना चाहिये। यह कार्य करनेकी शक्ति केवल स्वमूत्रमें है। पृथ्वीको जितना समुद्रका आधार है, उतना ही आधार मानवदेहको स्वमूत्रका है। पृथ्वीके निर्माण तथा जीवनमें समुद्रका जो स्थान है, मानवदेहमें वह स्थान स्वमूत्रका है। और जैसे सभी महाभूतोंको आत्मसात् करनेकी शक्ति जलमें है, वैसे शरीरमें रहे हुए सभी तत्त्वोंको आत्मसात् करनेकी शक्ति उसके मूत्रमें है।

—रावजीभाई म० पटेल

मूत्रचिकित्सा सम्बन्धी भारत सेवक समाजके प्रकाशन

	नाम	लेखक	मूल्य
१.	मानवमूत्र (गुजराती)	रावजीभाई म० पटेल	१०.००
२.	मानवमूत्र (अंग्रेजी)	,, ,, ,,	१०.००
३.	आरोग्यका अमूल्य साधन शिवाम्बु-स्वमूत्र (हिन्दी)	,, ,, ,,	१.००
४.	शिवाम्बु-स्वमूत्र (हिन्दी संक्षिप्त)	पन्नालाल झवेरी	४.००
५.	,, ,, (गुजराती संक्षिप्त)	,, ,,	३.००

—: प्राप्ति स्थान :—

१. भारत सेवक समाज, गुजरात, पानकोर नाका, अहमदाबाद–१
२. नवजीवन ट्रस्ट, पो० अहमदाबाद–३८००१४
३. शिवाम्बु चिकित्सा प्रचारक मण्डल, एलिफन्स्टन रोड, बम्बई–१३
४. भायाणी बुक डिपो. १५०, प्रिन्सेस स्ट्रीट बम्बई–२
५. धनलाल ब्रदर्स, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई–२
६. श्री मोहनलाल गुप्ता, नया टोला, मुजफ्फरपुर, बिहार
७. सर्वोदय साहित्य भंडार, इन्दौर–१
८. देहाती पुस्तक भंडार, चावड़ी बाजार, दिल्ली–६
९. हिन्द पुस्तक भंडार, चावड़ी बाजार, दिल्ली–६
१०. सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–२२१००१
११. एकमे एन्ड कंपनी, ८/१ एस्प्लान्डे ईस्ट कलकत्ता–७०००६९
१२. उरुलीकांचन, पूना (महाराष्ट्र)
१३. सर्वोदय साहित्य भंडार, इलाहाबाद (उ. प्र.)